

पटना विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबंध

भारतेन्दुयुगीन काव्य में भक्तिधारा

डॉ० रजन

एम० ए०, पी-एच० डी०



रचना प्रकाशन

४५ए खुल्दाबाद इलाहाबाद १

प्रथम संस्करण
जनवरी १९७५



प्रकाशक
जीत मलहोत्रा
रचना प्रकाशन
४५, ए खुल्नाबाग
इलाहाबाद

मूल्य पचहत्तर रुपये



मुद्रक
इलाहाबाद प्रेस
३७०, रानी मंडी
इलाहाबाद ३

भूमिका

भारते दुर्जी बहुमुरी प्रतिभा के धनी थे। वे उन महाकवियों में थे, जो अपनी पूर्व परम्परा का निर्वाह करते हुए अपनी भी एक परम्परा छोड़ जाते हैं। एक नई लोक बना जाते हैं। वे पूर्ववर्ती साहित्य का स्वागत करते हैं। ऐसा दखा जाता है कि वे काव्य-जगत में पूर्ववर्ती हिंदी साहित्य की प्रायः सभी धाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। एक तरफ उनकी कविता में वीरगाथा काल अपनी आवाज बुलंद करता है, तो दूसरी तरफ भक्तिमाल की भागीरथी अपनी चतुरंगिनी (कृष्णाश्रयी, रामाश्रयी, नानाश्रयी, प्रेमाश्रयी) धाराओं के साथ किलोलें करती है। एक तरफ वे राम के तुलसी हैं तो दूसरी तरफ कृष्ण के सूर की भाँति अपनी करनी पर पछताते हैं। शृंगार की जब बारी आती है तो बैदल, भूषण, मतिराम आदि की पंक्ति में न बैठकर घनानन्द और रसखान की बगल में जा बैठते हैं। इस प्रकार शृंगार की सुंदर सरिता उनके काव्य में प्रवाहित हो जाती है। अपने चौतीस वष की अल्पायु में वीरगाथाकाल, भक्तिमाल और शृंगारकाल—का त्रिवेणी-संगम बना जाते हैं। रीति के बहते हुए गंदे प्रवाह को रोक देते हैं, उसे नया मोड़ देते हैं। इस प्रकार काव्य जगत् में उन्होंने अपन जावन पयन्त तथा उसके बाद भी काव्यजगत् का प्रतिनिधित्व किया। इमे ही हमने उनका युग माना है, जो उनके जन्म से लेकर उनकी मृत्यु के बाद के भी १५ वर्षों के समय को घेरता है। यह पच्चास वष उनका है, इस अवधि में साहित्यिक गतिविधियाँ उनसे अनुप्रेरित हैं।

उनका अपना क्रान्तिकारी व्यक्तित्व है। वे आधुनिक काव्य के प्रवर्तक हैं। उनका जन्म रीतिकाल में होता है। रीतिकाल में वे चलते हैं लेकिन रीतिकाल से निक्ल कर एक अलग राह बना लेना, कविता की एक अलग लोक का निर्माण कर लेना, कोई बिरला ही कर सकता है। भारते दु ने यही किया। युग नियामक कलाकार यही करता है। उनके सहयोगियों ने उनके द्वारा निर्मित मार्ग का अनुसरण किया। रास्ते के अवरोध को मिटाकर जनजागरण की स्वर को बुलंद किया। जनवादी विचारधारा का प्रचार किया। मानवतावादी दृष्टिकोण पनप उठा। पौराणिक कृष्ण लौकिक भावभूमि पर उतर आये। राम की उपासना से भय मिश्रित स्नेह-सरिता का आवाहमद हो गया। नयनामिराम राम लोकामिराम बन गये।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में भारते दुयुगीन कविता में भक्ति धारा पर सविस्तार वर्णन किया गया है। इसके विषय का अध्ययन छ परिच्छेदों में सम्पन्न हुआ है। ये परिच्छेद निम्नांकित हैं—

अध्याय १—आधारभूत सामग्रिया का सर्वेक्षण

अध्याय २—भक्ति का स्वरूप और हिन्दी साहित्य में उसकी विवृति

(क) भारते दु पूर्व हिन्दी साहित्य में भक्ति का स्वरूप विकास

(ख) निर्गुणधारा। (ग) सगुणधारा।

(घ) भक्ति का दशन साहित्य और उसके आभाव।

अध्याय ३—भारते दु युग की प्रमुख काव्यधाराएँ और उनकी प्रवृत्तियाँ।

अध्याय ४—भारते दु कालीन भक्तिवाक्यधाराएँ और उनकी विविध विशेषताएँ।

अध्याय ५—भारते दु कालीन प्रमुख भक्ति कवि एवं उनकी भक्तिभावना।

अध्याय ६—भारते दुयुगीन अल्पावध भक्तकवियों का जीवन और उनकी भक्तिपरक रचनाएँ।

प्रथम अध्याय का शीर्षक है आधारभूत सामग्रियों का सर्वेक्षण । इसमें भारतेन्दु और भारतेन्दु युग पर उपलब्ध समस्त आधारभूत सामग्रियों का सर्वेक्षण किया गया है । भक्ति का स्वरूप विकास नामक दूसरे अध्याय का अध्ययन तीन भागों में किया गया है । प्रथम में भक्ति की परिभाषा और हिन्दी साहित्य में उसकी विवृति किस प्रकार हुई, इसकी चर्चा है । दूसरे भाग में भारतेन्दु पूर्व भक्ति के स्वरूप विकास की कथा को व्यक्त करने के लिये बंद, सहिता उपनिषद् पुराण आदि ग्रन्थों में भक्ति तत्व को खोजने का प्रयत्न किया गया है । तीसरे भाग में दार्शनिक सभी सम्प्रदायों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है ।

अध्याय तीन का शीर्षक है 'भारतेन्दु युग की प्रमुख काव्यधाराएँ और उनकी प्रवृत्तियाँ' (भक्तिधारा के अतिरिक्त) इसमें भारतेन्दुयुगान् प्रमुख काव्यधाराओं (राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और प्राकृतिक) की विषय विवेचना की गई है ।

अध्याय चार का शीर्षक 'भारतेन्दुकालीन भक्तिकाव्यधाराएँ और उनकी विविध विशेषताएँ' है । इस परिच्छेद के प्रारम्भ में भारतेन्दुकालीन कवियों ने अपने पूर्ववर्ती कवियों से कहाँ तक प्रगति ली है, इसका उल्लेख किया गया है । इसके बाद निगुण काव्यधारा, सगुणकाव्यधारा (नवधामभक्ति) रामकाव्यधारा और कृष्णकाव्यधारा की तद्दुगीन कविता पर कहाँ तक प्रभाव पड़ा है, इसकी विवेचना की गई है । तद्दुगीन कविता को कृष्णकाव्यधारा में प्रचलित सम्प्रदायों की कसौटी पर कसने की चेष्टा की गई है । परिच्छेद के अंत में तद्दुगीन बहुदेवोपसमना की विशेषताओं पर विचार किया गया है । यह अध्याय शोधकर्त्ता का स्वतन्त्र गवेषणा एवं व्यापक अध्ययन का फल है ।

पंचम अध्याय का शीर्षक 'भारतेन्दुयुगीन प्रमुख भक्त कवि एवं उनकी भक्तिभावना' है । इस अध्याय में तद्दुगीन बारह भक्त कवियों का परिचय एवं उनकी भक्तिभावना पर प्रकाश डाला गया है । इस प्रकार एक साथ विस्तार के साथ उनकी भक्तिभावना पर प्रकाश डालने का यह पहला प्रयास है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का षष्ठ अध्याय 'भारतेन्दुयुगीन अल्पज्ञात भक्त कवियों का परिचय एवं उनकी भक्तिपरव रचनाएँ' है । इस परिच्छेद की सामग्री शोधकर्त्ता की मौलिक गवेषणात्मक उपलब्धि है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध की रचना करते समय शोधकर्त्ता को अनेक महत्वपूर्ण प्रयासों की खोज में बहुत सग्रहालयों एवं पुस्तकालयों में जाना पड़ा । नागरोप्रचारिणी समाज का सग्रहालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन पुस्तकालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का पुस्तकालय, राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना सग्रहालय, पटना विश्वविद्यालय का पुस्तकालय एवं स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, मगध विश्वविद्यालय का विभागीय पुस्तकालय, भारतकलामवन वाराणसी, काशी विद्यापीठ का पुस्तकालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन पटना, नागरोप्रचारिणी समाज, आर्य जाति संस्थाओं के अधिकारियों के प्रति शोधकर्त्ता कृतज्ञता प्रकट करता है जिन्होंने बड़े उदारतापूर्वक सहयोग प्रदान करके इस कार्य को सम्पन्न कराया ।

प्रस्तुत विषय पर अनुमोदन कार्य करने की प्रेरणा गुरुवर डा० मुकुण्डेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' निदेशक राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, (वर्तमान रीडर, मगध विश्वविद्यालय, गया) से मिली । गुरुवर डा० प्रह्लाद मण्डल, प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय से इस विषय पर कार्य करने की आज्ञा प्राप्त हुई । उनकी असीम इच्छा और स्नेह से यह शोधप्रबंध सम्पन्न हुआ । उन्हीं के आशीर्वाद का यह सुमनगुच्छ है ।

अनुमोदक काय में अनेक विद्वानों ने प्रयास, लक्ष्य और खोज निबन्ध से शोधकर्त्ता ने लाभ उठाया है, अतः यह उन सभी योग्य साहित्यकारों का अनुगृहीत है ।

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

(क)

भूमिका

अध्याय १

(क) आधारभूत सामग्रियों का सर्वेक्षण

६

(ख) प्रबंध का विषय सीमा निर्धारण और उद्देश्य

अध्याय २

भक्ति का स्वरूप और उसका विकास

१६

भक्ति, भक्तिकाव्य की व्युत्पत्तियाँ, भक्ति की परिभाषा, भक्ति की महिमा, भक्ति का उद्भव और विकास वेदों की संहिताओं में भक्तितत्व, उपनिषदों में भक्ति, पुराणों में भक्ति, गीता में भक्ति तत्व, भक्ति के प्रकार, साहित्य में भक्तिरस की उद्भावना, भक्ति विषयक काव्य की सामाजिक प्रेरक स्थितियाँ, भक्तिविषयक काव्य की सामाजिक प्रेरक स्थितियाँ, भक्ति विषयक काव्य की धार्मिक प्रेरक स्थितियाँ ।

(ख) भारतेन्दु पूर्व हिंदी साहित्य में भक्ति का विकास

भक्ति आन्दोलन और विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय—(१) त्रिगुण सम्प्रदाय—शंकर का अद्वैतवाद, अद्वैतवाद का सिद्धान्त, दाशगनिक सिद्धान्त, सूफी सम्प्रदाय (प्रेमाश्रयी) का आविर्भाव, सूफी सम्प्रदाय के भेद—चिश्ती सम्प्रदाय, सुहरवर्दी सम्प्रदाय, कादरी सम्प्रदाय, जुनैनी सम्प्रदाय, मदारी सम्प्रदाय, मौलवी सम्प्रदाय ।

(२) सगुण सम्प्रदाय—सगुण सम्प्रदाय का आविर्भाव, श्रीसम्प्रदाय, विशिष्टाद्वैतवाद, श्रीरामानुजाचार्य की भक्ति, हंस सम्प्रदाय, निम्बार्क, ब्रह्म सम्प्रदाय, मध्वाचार्य, चैतन्य सम्प्रदाय, रङ्ग सम्प्रदाय, पुष्टिमाग, पुष्टिमार्गीय भक्ति, राधावल्लभ सम्प्रदाय, हिन्दी साहित्य में भक्ति की परम्परा, रीतिकालीन शृङ्गारधारा का भारतेन्दुकालीन भक्ति साहित्य पर प्रभाव ।

अध्याय ३

भारतेन्दु युग सीमा निर्धारण, राजनीतिक काव्यधाराएँ और उनकी प्रवृत्तियाँ (भक्तिधारा के अतिरिक्त)

७६

भारतेन्दु युग सीमा निर्धारण, राजनीतिक काव्यधारा, राजभक्ति, देशभक्ति, आंग्ल-महाप्रभुओं की साम्राज्यवादी नीति, राजनीतिक अवस्थाएँ और साहित्य में उसका स्वर, सांस्कृतिक और धार्मिक धारा, ब्रह्मसमाज आन्दोलन और नई दृष्टि, आर्य-समाज आन्दोलन और पुनर्स्थान काल, पियोसोफिजल सोसायटी और नवीन परिष्कार,

रामकृष्णमिशन आन्दोलन और नवीन सम्बल, भक्तिधारा—सामाजिक-जागृति विषयक शिक्षा आन्दोलन, फोर्बिलियम कालेज, ब्रुड का शिक्षा-मन्त्र, ईसाई मिशन और शिक्षा, विधवाविवाह समन्धन, बालविवाह और बेमेल विवाह आदि का विरोध, सोन दृष्टि का विस्तार, जाधिक प्रगाढ़ विषयक, प्रकृति विषयक, परम्परागत प्रकृतिसिद्धान्त, प्रकृति के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण ।

अध्याय ४

भारते दुयुगोन भक्ति-काव्यधारायें और उनकी विविध विशेषताएँ

१०७

भक्तिकाल एवं रीतिकाल, भाव एवं प्रभाव, भक्ति एवं रीति पद्धतियाँ का समन्वय प्राचीन एवं नवीन का सगम, रुढ़िवादिता, प्रेरणा—सूर, तुलसी मीराबाई, रसमान, बिहारी, पद्माकर आदि ।

निगुण काव्यधारा—व्यक्तिगत साधना, अद्वैत ब्रह्म, सद्गुरु, आत्मा, सत्सग, नाम महिमा, सामाजिक सिद्धांत, क्षमा और दया, ससार का निःसारता चेतना, पातिव्रतधर्म, नारी निन्हा, काम, क्रोध, लोभ आदि सगुण काव्यधारा । नन्दा भक्ति, श्रवण, कीर्तन, आदि ।

राम काव्यधारा—ऐश्वर्य भाव, कृष्णकाव्यधारा, कात्तानाथ सखीभाव, गोपिभाव और मजरी भाव, निवान—युगल उपासना ब्रुदाबनवास—उपास्य का स्वरूप, उपासना का स्वरूप उपासक का स्वरूप । धैर्य—उपास्य राधाकृष्ण, विविध लीलाएँ राधावल्लभ—उपास्य राधा नित्यविहार लीला वल्लभ सम्प्रदाय—अनुग्रह मुरली रास उपास्य सख्यभक्ति, वात्सल्यभक्ति, माधुर्यभक्ति, स्वकीया, परकीया, गोपा विविध लीलायें गोलोक, गोकुल ।

हरिदासी सम्प्रदाय—उपास्य का स्वरूप उपासना का स्वरूप नित्य विहार लीला, उपासक का स्वरूप, निष्कप ।

बहुतेवोपासना—शिव दुर्गा सरस्वती, लक्ष्मी, गणपति, गंगा, काली, निष्कप ।

अध्याय ५

भारते दुयुगोन प्रमुख भक्तकवि एवं उनकी भक्तिभावना

२०७

- १ बाबा सुमेर सिंह साहबजा
- २ भारते दु हरिश्चन्द्र
- ३ बदरीनारायण चौधरी प्रेमधन
- ४ प्रतापनारायण मिश्र
- ५ जगमोहन सिंह
- ६ श्रीधर पाठक
- ७ सुधारक द्विवेदी
- ८ राधाचरण गोस्वामी
- ९ अम्बिकादत्त व्यास
- १० राधाकृष्णदास
- ११ बालमुकुन्द गुप्त
- १२ राधाकृष्णदेवशरण सिंह गोप

अध्याय ६

भारते दुयुगौन अल्पज्ञात भक्तकवि

२८०

(१) रघुनाथ रामसनेही, (२) युगत्यानयशरण (३) गुरुदत्तदास (४) महात्मा वनादास, (५) जानकीवरशरण, (६) रघुराजसिंह (७) सतसालिगराम, (८) राधा वल्लभ जोशी, (९) वैजनाथ कुरमी, (१०) दीनदास, (११) कामदमणि, (१२) नम-
 देश्वरप्रसाद सिंह, (१३) सीताराम भगवानप्रसाद, (१४) रामलोचन मिश्र, (१५)
 अन्नयकुमार, (१६) रामफलराय, (१७) बालकृष्ण भट्ट, (१८) ठग मिश्र,
 (१९) बनवारीलाल मिश्र (२०) मोरार साहू (२१) शिवदयाल शुक्ल, (२२)
 गुरु सहायलाल (२३) चतुर्भुज मिश्र, (२४) निरजनानन्द तीर्थ, (२५) पीताम्बर
 जी, (२६) रामकृष्ण करतालकर, (२७) बिहारीलाल चौबे, (२८) शिवप्रसाद,
 (२९) केशवहरि, (३०) यनदत्त त्रिपाठी, (३१) ससारनाथ पाठक, (३२) अडकूलाल
 वैद्य, (३३) सरममाधुरी, (३४) विनायकराव, (३५) नारायणस्वामी, (३६) ब्रह्म
 शंकर मिश्र, (३७) व्रजवल्लभदेव, (३८) सियारामशरण, (३९) रामरत्न सनाढ्य,
 (४०) वामनाचार्य गिरि (४१) मारकण्डेय साल (४२) छेनालाल, (४३) ललित-
 किशोरी (४४) ललितमाधुरी, (४५) केशवदास, (४६) रामानुजदास, (४७) हरि-
 दास, (४८) रामचरणदास ।

उपसंहार

सहायक ग्रन्थ-सूची

३६१

३६७

(क) आधारभूत सामग्रियों का सर्वेक्षण

अतःसाक्ष्य

यही मैं भारतेन्दुगीन कविता की मतिधारा का अध्ययन प्रस्तुत करने में जिन पुस्तकों, पत्र पत्रिकाओं और हस्तलिखित प्रतियों से सहायता प्राप्त की है उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर यह निबलाने का प्रयास कर रहा हूँ कि मेरे अध्ययन में उनका कितना योगदान है। भारतेन्दुजी इस युग के युग नेता हैं। अतः हम उन्हीं के ग्रंथ से अध्ययन-सूत्र की प्राप्ति प्रारम्भ करते हैं—

(१) भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग १-२ संपादक श्री ब्रजरत्नदास, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी — इसका दूसरा संस्करण स० २०१० वि में प्रकाशित हुआ। तद्गुणीन कविता को भक्ति-काल की कसौटी पर कसन के लिये इस पुस्तक से काफी उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं।

(२) प्रेमघन सबन्ध, संपादक, प्रभाकेश्वरप्रसाद उपाध्याय, प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, १९६६ वि० — प्रस्तुत पुस्तक में 'प्रेमघनजी' की कवित्व शक्ति को समझने में तथा अपने अध्ययन सिद्धान्तों की पुष्टि में इस पुस्तक की विशेष उपयोगिता सिद्ध हुई है।

(३) राधाकृष्णदास ग्रन्थावली, संपादक धीश्यामसुन्दरदास, प्रकाशक इण्डियन प्रेस, प्रयाग १९३० — इस पुस्तक की राधाकृष्णदास की काव्य प्रतिभा एवं अध्ययन सूत्रों की प्रामाणिकता सिद्ध करने में सहायता ली गई है जिसके उदाहरणों का विशेष महत्व है।

(४) हिन्दी साहित्य और बिह २, भाग २, संपादक, शिवपूजन सहाय, प्रकाशक, बिहार राष्ट्र-माया परिषद् पटना सन् १९६३ ई० — प्रस्तुत पुस्तक की मेरे अध्ययन में विशेष महत्ता है। इसमें १९ वीं शताब्दी के पूर्व के उन साहित्यकारों के विवरण दिये गये हैं जिनकी रचनाओं के उदाहरण अथवा पुस्तकों के नाम उपलब्ध हैं। इसमें राधावल्लभ जोशी, रामफल राय, ठग मिश्र, ससार नाथ गठक, कामदमणि, नमदेश्वरप्रसाद सिंह, बिहारीलाल चौबे, और अन्य कुमार आदि कवियों का संक्षिप्त परिचय एवं उनकी रचनाएँ दी गई हैं।

(५) सतकाव्य, लेखक परशुराम चतुर्वेदी, प्रकाशक, किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९५२ — प्रस्तुत पुस्तक में सत सालिगरामजी की काव्य प्रतिभा एवं उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालने में सहायता ली गई है। अतः यह मेरे लिये महत्वपूर्ण है।

(६) शिवाशिव शतक, लेखक नमदेश्वर सिंह, संपादक नकछेनी तिवारी, 'अज्ञान कवि,' प्रकाशक भारतजीवन प्रेस, काशी १९६८ — इस पुस्तक में नमदेश्वर सिंह की शिव उपासना सम्बन्धी सभी कविताएँ संग्रहीत हैं।

(७) रसिकविलास रामायण, लेखक, अक्षयकुमार, प्रकाशक, बिहार बच्चु प्रेम, बाँकीपुर १९३६ — यह पुस्तक भारतेन्दु युग में रामकाव्य का प्रकाश-स्तम्भ है।

(८) सुकवि सरोज, लेखक, गौरीशंकर द्विवेदी, प्रकाशक सनाढ्यादाश ग्रन्थमाला, बुंदेलखण्ड १९६० — इस पुस्तक में विभिन्न कवियों का संक्षिप्त जीवन और उनकी रचनाएँ दी गई हैं। इसी क्रम में हम अबूलाल जी वैद्य का परिचय प्राप्त होता है। ये भारतेन्दुकालीन भक्त कवि हैं।

(९) कविता कौमुदी, भाग २ संपादक रामनरेश त्रिपाठी, प्रकाशक, हिन्दी रत्नमाला कार्यालय प्रयाग, १९७७ — यह पुस्तक आधुनिक युग के विभिन्न कवियों की रचनाओं का संग्रह है।

इससे मुझे भारते दुयुगीन कवियों की रचनाओं का अध्ययन करने में सहायता मिली। विशेषकर कवि विनायकराव का परिचय यही से प्राप्त होता है।

(१०) प्रताप सहरी संपादक, नारायणप्रसाद अरोड़ा, प्रकाशक, माध्य एण्ड ग्राम कापुर — प्रस्तुत पुस्तक में ५० प्रतापनारायण मिश्र की समस्त कविताएँ संग्रहीत हैं, इनसे मुझे उद्धरण देने में काफी सहायता प्राप्त हुई है।

(११) स्फुट कविता — यह बालमुकुट गुप्त जी की कविताओं का संग्रह है। इसका प्रकाशन भारत जीवन प्रेस, कलकत्ता से यशोदानन्द अखौरी ने करवाया। इस पुस्तक से गुप्त जी की भक्तिपरक रचनाओं का उद्धृत करने में सहायता प्राप्त हुई।

(१२) रत्नेश शर्मा, लेखक रामरतन सनाढ्य, प्रकाशक, नेशनल प्रेम, कापुर — रामरतन सनाढ्य भारत दुयुगीन अल्पज्ञात महान् कवि हैं। इस पुस्तक में उनकी रचनाएँ संग्रहीत हैं।

(१३) ब्रजमाधुरी मार, संपादक, विष्णु हरि, प्रकाशक, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, स० २००६ वि०, — प्रस्तुत पुस्तक ब्रजमाया के प्राचीन एवं अर्वाचीन भक्त कविता का जीवन तथा उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालती है। मुझे नारायण स्वामी, ललितकिशोरी और ललितमाधुरीजी की रचनाओं से उनकी भक्तिभावना को समझने में विशेष सहायता मिली है।

पत्र एवं पत्रिकाएँ

(१) सतमाणी अंक (कल्याण विशेषांक), वर्ष २६, स० २०११ गीता प्रेस गोरखपुर — प्रस्तुत पत्र सता की वाणी का संग्रह है। इससे मुझे भारते दुयुगीन युगन्याय-व्यकरण, नारायण स्वामी, गुरुदास दास जी दीनानाथ जी आदि सतों की वाणियों का अवलोकन करने का मौका मिला।

(२) भक्तचरितांक (कल्याण विशेषांक), वर्ष २६, २००८, गीता प्रेस, गोरखपुर — इस अंक में भक्तों का चरित्र प्रकाशित किया गया है। मुझे भारते दुयुगीन रामसनहो रघुपति सिंह, युगन्याय नन्द, बनावाल, जानकीवरधरण आदि का प्रायोगिक जीवनचरित्र इस अंक से प्राप्त हुआ।

(३) ब्रजवचन मुद्रा, संपादक, भारते दु हरिचन्द्र — इसके १८८३ नवम्बर अंक में रामा बलराम जोशी की रचनाएँ प्रकाशित हैं। ये भारते दुयुगीन अल्पज्ञात भक्त कवि हैं।

(४) साहित्य — यह पत्रिका से प्रकाशित होने वाला त्रैमासिक पत्र है आजकल बन्द है। इसके वर्ष १, १९५२ अंक १ में नर्मदेश्वरप्रसाद सिंह का जीवन चरित्र प्रकाशित मिला। यह मेने लिये काफी उपयोगी हुआ।

(५) ब्रजमार्ग — ब्रज-साहित्य सङ्घ, मथुरा से प्रकाशित होने वाला यह त्रैमासिक पत्र है। इसके सम्पादन प्रमुखमान मोहन जी हैं। इसके वर्ष २ अंक १, स० २०११ में ब्रजमाया के अमा गायक राजलालमदेव जी का समस्त जीवन प्रकाशित है। ये भारते दुयुगीन अल्पज्ञात कवि हैं। अब यह अंक मेरे लिये अध्ययन सूत्र प्रस्तुत करता है।

(६) सरस्वती — इसका हीरोक जयन्ती अंक सन् १९०० काफ़ी लाभप्रद है। इसमें विहारी जी के जीवन चरित्र एवं उनकी कविता प्रकाशित है।

(७) मुद्रा — यह एक मासिक पत्र है। इसमें वर्ष २, खंड २, जुलाई १९२६ ई० में रामानंद सहाय का एक निबंध 'महाराज पाठक छाया है। इस निबंध में लेखक ससारनाथ पाठक का जीवन एवं उनकी रचनाएँ उद्धृत करता है।

(८) हरिचन्द्र कोमुने — इसके सम्पादन बाबू पद्म सिंह हैं। इसका १९५० का अंक बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसमें रामनाथजी मिश्र का समस्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। जिससे प्रेममन जी से समकालीन से और एक आशु कवि से।

(६) हिंदी प्रदीप — यह प० बालकृष्ण भट्ट के सम्पादकत्व में प्रयाग से निकलता था। इसके जिल्द ३० सख्या ३, १९०२ ई० में कवि छेनालाल जी का जीवन प्रकाशित है तथा उनकी रचनाएँ दी गई हैं।

(१०) हरिश्चंद्र चंद्रिका—मकरल हरिदास जी की कवितायें १८७४ के खंड १०, सख्या १ पृष्ठ ३६ पर प्रकाशित है। अतः यह मेरे लिये उपयोगी सिद्ध हुई।

(११) परिपक्व पत्रिका बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना की देखरेख में—यह छपने वाला पत्र है, इसके अंक ३, १९६१ में 'बिहार के रसिक सत्' निबंध प्रकाशित है। इससे हमें भारतेन्दुयुगीन रसिक कवियों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

(१२) श्रीरामराम महिमा—यह एक हस्तलेख है। मुझे बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् से प्राप्त हुआ। इसमें रामलोचन मिश्र की कविताएँ संगृहीत हैं।

(१३) हस्तदत्त—यह ठाकुर जगमोहन सिंह का लिखा हुआ एक हस्तलेख है जो मुझे नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्राप्त हुआ। इसमें ठाकुर साहब की कविताएँ संगृहीत हैं।

(१४) बालकृष्ण भट्ट की डायरी—यह मुझे डा० मधुकर भट्ट, प्राध्यापक ज्ञानपुर डिग्री कॉलेज के सौजन्य से प्राप्त हुई। इसमें भट्ट जी की कुछ कविताएँ संगृहीत हैं। भट्ट जी की मक्ति-परक रचनाएँ इसी में उपलब्ध हुई।

(१५) पारिजात रामायण—यह अठकूलाल जी वैद्य द्वारा लिखित हस्तलेख है। यह राममक्ति का महत्वपूर्ण ग्रंथ है। मुझे नागरीप्रचारिणी सभा काशी से प्राप्त हुआ।

हस्ताक्षर

यहां हम भारतेन्दु के काव्य और तत्कालीन कविता पर आलोचना साहित्य की समीक्षा प्रस्तुत करते हैं। यह देखने का प्रयास करेंगे कि कहां तक हमारे अध्ययन से सम्बन्धित विचार विमर्श हो चुका है। शिवसिंह तिल्ली के प्रथम इतिहासकार और भारतेन्दुजी के समकालीन थे। अतः हम उन्हीं से अपने अध्ययन-सूत्र की प्राप्ति प्रारम्भ करते हैं—

(१) शिवसिंह सरोज, लेखक शिवसिंह सेंगर — शिवसिंह सरोज का प्रकाशन स० १९३४ में हुआ। यद्यपि शिवसिंह जी भारतेन्दु के समकालीन थे फिर भी उन्हें भारतेन्दु जी के समी ग्रंथों में नहीं मिले। सरोज के प्रकाशन के समय तक भारतेन्दुजी की अधिकांश पुस्तकें निकल चुकी थी। सरोज में केवल भारतेन्दुजी के प्रेमभावुरी के ४६, १०८ सम्पर्क दो सँघों का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। भारतेन्दुजी के बारे में उन्होंने केवल इतना ही लिखा है, जो निम्नांकित है—

‘यह कविता के प्रचार में रात दिन लगे रहते हैं। सब विद्याओं की पुस्तकें अपन सरस्वती मठार इकट्ठी की हैं। सब प्रकार के गुणीजन इनकी सभा में विराजमान रहते हैं। यह भाषा और उर्दू को जवानों के रवि हैं। ‘सुन्दरी तिलक’ नामक बहुत ही ललित संग्रह छपवाया है और जो ग्रंथ होने बनावे हैं उनके हालत से हम नावाकिफ हैं।’^१

(१) सचित्र भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र का वृहत् जीवन लेखक श्रीशिवनन्दन सहाय—प्रस्तुत का प्रकाशन गङ्गविजय प्रेस बाकीपुर से १९०५ ई० में हुआ। इसमें कुल २८ परिच्छेद हैं।

१ शिवसिंह सेंगर शिवसिंह सरोज, नवलविशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ संस्करण १८९६ ई०, पृ० ५०६ ५१०।

इस पुस्तक के अध्याय ६ म कविता शक्ति और अध्याय २० मे उनके धर्म पर विचार विमर्श किया गया है।

कविता शक्ति वाला अध्याय मेरे कुछ काम का है। लेखक ने वहाँ निम्नलिखित प्रकाश डाला है—

‘भारतेन्दुजी जन्मजात प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार थे, इससे वे नवरत्नो के अतिरिक्त वात्सल्य, सख्य, भक्ति एवं आनन्द नामक चार अर्थ रसों को पुष्ट तर्कों द्वारा प्रतिपादित किये।

विशेष कर भारतेन्दु की प्रतिभा सम्बन्धी बातों में ही इस अध्याय की इतिथी हो जाती है। काव्य ग्रन्थों की समालोचना एक अध्याय है। वहाँ लेखक ने धर्म एवं राजभक्ति सम्बन्धी ग्रन्थों को छोड़ शेष काव्य-ग्रन्थों का सन्निप्त आलोचनात्मक परिचय दिया है।

(३) हिन्दी नवरत्न, लेखक मिश्रबन्धु—मिश्रबन्धुआ ने हिन्दी नवरत्न के २५ पृष्ठों में भारतेन्दु साहित्य की विशेषताएँ और उनके गद्य पद्य के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। प्रमुखतः भारतेन्दु काल के बारे में मिश्रबन्धु की स्थापनाएँ बड़े काम की हैं। उनमें निम्नांकित मेरे अध्ययन की मीमांसा में हैं—

(क) भारतेन्दु के काव्य में जातीयता के पीछे सबसे अधिक और बढ़िया वणन प्रेम का है। इनमें ईश्वरीय तथा सासारिक दोनों प्रकार का प्रेम विशेष रूप से था।

(ख) इनमें विविध विषयों की यथावत प्रशंसा से वणन करने की क्षमता थी। प्राकृत तथा अन्य विषयों का वणन भी इनकी कविता में प्रचुर मात्रा में हुआ है।

(ग) प्राचीन रीति पद्धति का अनुसरण कर इन्होंने किसी भी पक्ष का सृजन नहीं किया।

(घ) इन्होंने राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक सुधारों पर प्रकाश डाला है।

(ङ) इन्होंने भक्ति तीर्थ, व्रत और धर्म पर विशेष रूप से कविता लिखी है।

(४) हिन्दी साहित्य का इतिहास, लेखक रामचन्द्र शुक्ल—आचार्य शुक्ल के पूर्व हिन्दी साहित्य का क्रमबद्ध अध्ययन नहीं प्रस्तुत किया गया था। इस अभाव की पूर्ति शुक्ल जी ने की। इसके पूर्व वे भारतेन्दु जी के बारे में नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १४, सख्या १० और भाग १५ सख्या १० में अपने विचारों को व्यक्त कर चुके थे। इसे ही उन्होंने चित्तामणि के प्रथम भाग में सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत किया। इसी सामग्री का संशोधित एवं परिवर्धित रूप हिन्दी साहित्य के इतिहास में उप योग किया गया है। भारतेन्दु जी के बारे में आपने निम्नांकित दृष्टिकोणों से अध्ययन किया है—

१ जीवन और साहित्य का पुनर्स्थापन—भारतेन्दुजी ने साहित्य के क्षेत्र में उतर कर हमारे जीवन के साथ हमारे साहित्य को फिर से लगा दिया और बड़े भारी विच्छेद से उन्होंने बचाया।

२ प्राचीन और नवीन का अपूर्व सामंजस्य—भारतेन्दुजी अपनी सवर्तुमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो पद्माकर और द्विजदेव की परम्परा में दिखाई पड़ते थे दूसरी ओर बगदेश के मधुसूदन दत्त और हेमचन्द्र की श्रेणी में एक ओर तो राधा-कृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नई भक्तमाल गुंफते दिखाई देते थे, दूसरी ओर टीकाधारी बगुला भगतों की हँसी उड़ाते तथा स्त्री शिक्षा समाज सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाये जाते थे। प्राचीन और नवीन का यही सुन्दर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है।

३ राष्ट्रीयता—कविता की नवीनधारा के बीच भारतेन्दु की वाणी का सबसे उँचा स्वर देशभक्ति का था।

(५) हिन्दी साहित्य, लेखक श्यामसुन्दर दास—इसका प्रकाशन १९३० में हुआ। बाबू श्याम सुन्दर दासजी भारतेन्दु को ग्राहारी कविता के प्रतिबल आंदोलन का श्रेय देते हैं। उनका विश्वास है कि—

'हिन्दी की हस्त्यकारिणी शृंगारी कविता के' प्रतिकूल आंदोलन का श्रीगणेश उस दिन से समझा जाना चाहिये जिस दिन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने भारतदुर्दशा नाटक के प्रारम्भ में समस्त देशवासियों को सम्बोधित करके देश की गिरी हुई अवस्था पर उन्हें आसू बहाने को आमन्त्रित किया

'रोबहु सब मिलिके आवहु भारत माई ।

हा, हा ! भारत दुदशा न देखी जाई ॥'

रोति कविता की शताब्दियों से चली आती हुई गनी गली से निकल शुद्ध वायु में विचरण करने का श्रेय हरिश्चन्द्र को पूरा पूरा प्राप्त है शृंगारिक कविता की प्रबल वेग से बहती हुई जिस धारा का अवरोध करने में हिन्दी के प्रसिद्ध वीर कवि भूषण समय नहीं हुए थे, भारतेन्दु उसमें पूर्णतः सफल हुए । इसमें भी उनके उच्च पद का पता लग सरता है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और बाबू श्यामसुन्दर दास जी दाना हिन्दी के मूषय आलोचक थे, लेकिन दोनों ने भारतेन्दु और उनके काल के साथ 'याद' नहीं किया । या तो आप दोनों ने भारतेन्दु की कुछ कविताओं को देखकर सस्ती स्थापनाएँ की लेकिन उनके गुण पर उन लोगों ने दृष्टिपात नहीं किया । यह एक भारी भूल हो गई है ।

(६) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, लेखक ब्रजराज दास — इस पुस्तक का लेखन हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग के आग्रह पर हुआ । यह पुस्तक ३५० पृष्ठों में भारतेन्दुजी का सर्वाङ्ग जीवन प्रस्तुत करती है । यह पुस्तक पाँच अध्यायों में है । हर भाग के अध्यायों का विषय क्रम से सूची है । चतुर्थ अध्याय में उनकी कविता की आलोचना की गई है । यह पहली पुस्तक है जिसमें भारतेन्दु काव्य पर 'याद-पूर्वक' इतना विपद समीक्षा प्रस्तुत की गई है । अध्याय चार मेरे काम का है । इसमें उनकी मक्ति या ईश्वरोन्मुख प्रेम की चर्चा करते हुए लेखक ने लिखा है —

'निश्चय ही भारतेन्दु बाबू पद-परम्परा के अंतिम महान् कवि हैं । परंतु पदा की सख्या का अनुमान भ्रान्त है । भारतेन्दु ने ८५० और ८७५ के बीच पदों का निर्माण किया है । यदि उनकी कजलियों होलियों एवं अन्य गानों को भी भूल से पद मान लिया जाय तो भी यह सख्या १२५० से अधिक नहीं जाती । भारतेन्दु के पद्य को दो ही प्रमुख भागों में बाटा जा सकता है । विनय और कृष्ण चरित । कृष्णचरित में भी बाललीला सम्बंधी पद बहुत कम हैं । गोपिया के प्रेम का ही यहाँ प्राधान्य है । पदों के मुख्य रस हैं शांत शृङ्गार तथा शृङ्गार में भी संयोग की प्रमुखता है ।'

(७) आधुनिक हिन्दी साहित्य (१९४१), लेखक डा० लक्ष्मीसागर वर्णान्न — यह पुस्तक १८५० से १९०० तक की हिन्दी साहित्य की गति विधियाँ पर प्रकाश डालती है । इसमें काव्य की नवीन धारा पर ७६ पृष्ठों का एक अध्याय है । इस अध्याय में लेखक का सारपूर्ण मतव्य इस प्रकार है—

"काव्य की नई धारा के विकास की इस सन्निध समीक्षा से यह प्रगट हो गया होगा कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उसके गुरु थे । उन्होंने निश्चय किया और पूर्ण रूप से हिन्दी साहित्य में नवीनता को जन्म दिया । इस कार्य में उनको अपने सहयोगियों से बहुत सहायता मिली । इन कवियों की विचार धारा ने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक आंदोलनों का अनुसरण किया । परन्तु आलोचक कान में कविता को पुरानी धारा का ही प्राधान्य रहा । राधा कृष्ण की प्रेम सीला और मक्ति के घने जंगल में नवीनता स्वच्छ और चमकती हुई पतली जलधारा के समान है । उसमें प्रचारात्मक रहते हुए भी सरलता, स्पष्टता स्वभाविकता, हृदय की सच्ची अनुभूति, मौली की मनोहरता या आधुनिक विचार धारा की जन्मदात्री होने की दृष्टि से हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनका स्थान सदैव ऊँचा रहेगा ।'

सात वर्षों के बाद १९४८ में इस ग्रंथ का संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण निकला। इसके एक परिशिष्ट में कविता की पुरानी धारा पर २७ पृष्ठों का नया अध्याय जोड़ दिया गया है। यह अध्याय भारत-दुयुगीन भक्तिकाल पर संक्षिप्त प्रकाश डालता है। यह मेरे विशेष काम का है। लेखक ने भक्तिकाल के बारे में लिखा है

‘वह भक्तिकाल की रचनाओं का अनुकरण मात्र है और उनकी अपेक्षा अत्यंत शिथिल और और हीन है। यद्यपि अब भी अनेक नये धार्मिक सम्प्रदाय जन्म ले रहे थे तो भी वैष्णव और शैव सम्प्रदायों का ही अधिक जोर था। राम और कृष्ण की भक्ति के अतिरिक्त अब के कवियों ने दास्य और विनय भावनाओं से प्रेरित होकर अथ देवी-देवता, जैसे भैरव, दुर्गा, बाली आदि तथा लीलाओं और तीर्थ क्षेत्रों की रचना करना आरम्भ कर दिया था। भक्ति के इसी रूप का इस काल में विशेषता रही।’

(८) हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, लेखक आचार्य चतुरसेन शास्त्री, १९४९ ई० पहली बार इस पुस्तक में १८६७ से १८८८ तक के २१ वर्षों को भारते-दुयुग के नाम से पुकारा गया। लेखक ने इस युग के गद्य एवं पद्य पर संक्षिप्त रूप से विचार किया है। साथ ही भारते-दुयुग के गद्य के लेखक और कवि के बारे में लेखक ने अपना विचार प्रकट किया है। कुल २ अध्यायों में इस युग की सारी साहित्यिक विधा की रूप रेखा तैयार की गई है। भक्ति के विषय में लेखक का मतभेद निम्नांकित है—

(१) रामचरित्र — राम के पौराणिक चरित्र के आधार पर कुछ रचनाएँ हुईं। नई बात यह हुई कि रामचरित्र को शृंगार में अतिरजित करके कुछ रचनाएँ की गईं जो अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गईं।

(२) कृष्णचरित्र — इस युग में कृष्ण का पौराणिक रूप लुप्त होने लगा। बहुत कवियों ने कृष्ण के पौराणिक चरित्र की चर्चा की। अधिकांश में गोपीवल्लभ कृष्ण का ही विषय वर्णन किया गया।

(३) शिव-साहित्य — यद्यपि हिंदू धर्म में शिव का माहात्म्य अति महान् है और प्राचीन है पर वह रामकृष्ण की भाँति बाद में आकर फीका पड़ गया। इस युग में शिव पूजा सम्बन्धी दो रचनाएँ हुईं।

(४) पौराणिक-काव्य — इसकी रचनाएँ बहुत हुईं परन्तु कोई उत्कृष्ट काव्य नहीं लिखा गया। “सत चरित्र और स्तुति काव्य की भी इनी गिनी साधारण रचनाएँ हुईं।

(९) आधुनिक काव्य धारा १९४३-४४, लेखक डा० केशरीनारायण शुक्ल — प्रस्तुत पुस्तक में २३४ पृष्ठ हैं। इनमें ८२ पृष्ठों की आधुनिक काव्य का प्रथम युग भारतेन्दु युग ने घेरा है। भारत-दुयुगीन आधुनिक काव्य का विवेचन डा० शुक्ल ने आठ अध्यायों में किया है। इसमें छठा अध्याय (धार्मिक कविता) मेरे काम का है। विद्वान् लेखक ने चार पृष्ठों में तद्व्युत्पन्न भक्तिकाल पर विचार विमर्श किया है। लेखक का विचार है— भारतेन्दु युग की धार्मिक कविता में भक्तिकाल की परम्परा का निर्वाह मात्र हुआ है। इस समय के कवियों में इस दृष्टि से एनी स्वतंत्र उद्भावना के दर्शन नहीं होते जिससे इनकी कविता अल्पकाल की धार्मिक मात्रा से रचित होकर राम और कृष्ण की स्तुति प्राचीन भक्त कवियों के समान ही करते थे। पुराने भक्त कवियों के सदृश्य इन कवियों ने भी अपने उपास्यदेव के प्रति अपनी कामनाएँ निवेदित की हैं। इनकी भक्तिपूर्ण रचनाओं में विनय और आत्म समर्पण की भावना है। इतना निर्विवाद है कि भारतेन्दु युग में भक्तिकाल की उपासना की पद्धति और आदर्श का चलन था और व्यापक शक्ति के रूप में धर्म की सूर्ण भावना का अभाव था।

(१०) आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत, लेखक डा० केसरीनारायण शुक्ल, १९४७ — इस पुस्तक में, भारतेन्दु काव्य, नामक एक अध्याय है जो ४३ पृष्ठों में है। इसमें लेखक ने भारतेन्दु के काव्य पर तो विचार किया है साथ ही साथ उसने युगीन कविता पर भी विचार किया है। उपसंहार में लेखक का जो विचार है वह द्रष्टव्य है।

‘भारतेन्दु काल का सबसे बड़ा महत्व इस बात में है कि इस युग के कवियों ने न तो शताब्दियों से आती हुई भारतीय सङ्कृत की धारा से अपना सम्बन्ध विच्छेद किया और न वे उनति के मार्ग के कटक बने। इससे क्रान्ति काल में भारतीय सङ्कृति के सदृश स्वरूप को सामने रखते हुए उन्होंने सांस्कृतिक रक्षा का जो संदेश दिया उसका आज भी महत्व है।’

(११) भारतेन्दु युग, लेखक डा० रामविलास शर्मा — प्रस्तुत पुस्तक डा० शर्मा के लेखों का संग्रह है। इसमें तद्दुगीन कविता पर एक आलोचक की दृष्टि से विचार नहीं किया गया है। यद्यपि भारतेन्दु युग पर डा० शर्मा की यह पहली पुस्तक है। इसके १४ वें अध्याय में भारतेन्दु और प्रताप नारायण मिश्र की कविता पर विचार किया गया है तथा १५ वें अध्याय में प्रेमधन तथा अय कवि पर विचार हुआ है लेकिन मेरे अध्ययन से कोई सम्बन्ध नहीं है। लेखक का दृष्टिकोण नवीनता की तरफ विशेष है।

(१२) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, लेखक डा० रामरत्न भटनागर, १९४३ — प्रस्तुत पुस्तक में ४८ पृष्ठों का एक परिशिष्ट है। इसी में भारतेन्दु की कविता पर विचार हुआ है। ब्रजरत्नदास जी ने जो प्रयास किया था उसी प्रयास का सुदृढ़ आकार प्रस्तुत पुस्तक में भूषण मारता है। तत्कालीन भक्ति परक रचनाओं के बारे में लेखक का निम्नांकित वक्तव्य है—“भक्ति, भृगु और सत्कार की नववर्तता के कवित्त सवैये जिनमें परम्परा का पालन मान था, नवीनता नहीं।”

(१३) भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, लेखक डा० किशोरी लाल गुप्त, प्रकाशक, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, २०१२ वि० — इस पुस्तक में डा० गुप्त ने भारतेन्दु की समस्त कविताओं का क्रमबद्ध अध्ययन प्रस्तुत किया है। साथ ही साथ अन्य सहयोगी कवि में तद्दुगीन ६ प्रमुख कवियों का संपिप्त जीवन परिचय और उनके काव्य की समीक्षा भी गई है। पुस्तक बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है।

(१४) हिन्दी साहित्य (उद्भव और विकास), लेखक डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक, अंतराष्ट्र कपूर एंड सन्स, देहली — इस पुस्तक में भारतेन्दु साहित्य पर दृष्टिपात करते हुए विद्वान् लेखक ने यह स्वीकार किया है कि भारतेन्दु ने कविता को इन दोनों अयोग्यताओं (सांस्कृतिक व्याख्याओं और कविता का राज-दरबारों की तरफ आवर्षण) के पथ से उबार दिया। उन्होंने एक तरफ काव्य का फिर से भक्ति की पवित्र मन्दाकिनी में स्नान कराया और दूसरी तरफ से निकाल कर लोक-जीवन से सामने खड़ा कर दिया।

(१५) २०वीं शताब्दी हिन्दी साहित्य-अधूरे सदन, लेखक डा० लक्ष्मीसागर वाष्णोय, प्रकाशक साहित्य भवन प्रा० लि० इलाहाबाद, १९६६ — इस पुस्तक में डा० लक्ष्मीसागर वाष्णोय ने सम्भवतः स्वतन्त्रता के पूर्व और भारतेन्दु युग के बीच लिखी जाने वाली सामग्रियों पर राजनीतिक दृष्टि से धार्मिक, सांस्कृतिक, तथा सामाजिक सन्दर्भ स्पष्ट किये हैं। मेरे अध्ययन से सम्बन्धित विचार नहीं प्रस्तुत किये गये हैं।

(१६) भारतेन्दु की कविता, लेखक श्रीशिवनाथ, प्रकाशक युगाग्रय, वाराणसी, स० २००८ — इस पुस्तक में कुल १८ शीपक हैं। भक्तिवत्त शीपक मेरे अध्ययन का है। इसमें वल्लभ के व्यावहारिक सिद्धान्तों की कमी पर भारतेन्दु की कविताओं को बसाने का प्रयास अच्छा है। लेखक का

विश्वास है कि भारतेन्दु की भक्ति भावना में साम्प्रदायिकता का पुट है, और अच्छा पुट है।

(१७) भारतेन्दु काव्यादर्श, लेखक वृष्णकिशोर मिश्र, पीयूष प्रकाशन, कानपुर, १९६२ ई० प्रस्तुत पुस्तक में ५ अध्याय हैं। चौथे अध्याय में भारतेन्दु की कविता का अध्ययन विभिन्न शोधकों में प्रस्तुत किया गया है। भारतेन्दु की कविता के अध्ययन में इससे बड़ी सहायता मिलती है।

(१८) पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, सम्पादक डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, वृज साहित्य मण्डल, २०१० वि० — इस पुस्तक में 'आधुनिक युग के वृज भाषा कवि 'नामक' एक निबन्ध है। इस निबन्ध में नारायणस्वामी कवि का सशुद्ध परिचय प्रस्तुत किया गया है। यह निबन्ध मेरे अध्ययन से सम्बन्ध रखता है।

(१९) हिन्दी साहित्य की विद्वत् की देन, लेखक श्रीप्रयागदत्त शुक्ल, प्रकाशक, विन्म हिन्दी साहित्य सम्मेलन नागपुर, १९६० — इस ग्रंथ में भारतेन्दुयुगीन अल्पज्ञात भक्त कवियों में कस्ताल कर जी का सशुद्ध परिचय है।

(२०) हिन्दी साहित्य की बिहार की देन, लेखक कामेश्वर शर्मा, प्रकाशक, मुहम्मद सय्यद, मुजफ्फरपुर, स० २०१२ — प्रस्तुत पुस्तक भारतेन्दुवालीन बिहार की कविता के लिये विशेष उपयोगी सिद्ध हुई है।

(२१) प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य, लेखक डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल, प्रकाशक अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर, २०१६ वि० — यह पुस्तक दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम में उनका जीवनवृत्त, तत्कालीन परिस्थिति और कृतियाँ का सशुद्ध परिचय है। दूसरा खण्ड समीक्षा का है। इस खण्ड में भक्ति भावना एक शोधक है जो मेरे लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। यह पुस्तक मेरे लिये लाभप्रद है। विद्वान् लेखक ने इनकी भक्ति भावना के बारे में जो विचार प्रस्तुत किया है, वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। लेखक के शब्दों में—'इनमें यदि एक ओर कब की सी प्रेमाकुलता है तो दूसरी ओर तुलसी और मूर की सी अनन्यता, समयता और सगुणोपासना के प्रति निष्ठा है—

(२२) हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास लेखक अयोध्या सिंह उपाध्याय, प्रकाशक पुस्तक भण्डार लहेरिया सराय, पटना — प्रस्तुत पुस्तक में सुमेर सिंह साहब जी का वर्णन प्रथम बार आया है। य भारतेन्दु मण्डल के प्रसिद्ध कवि थे। इनके जीवन और काव्य के प्रामाणिक अधिकारी 'हरिऔध' जी ही हैं। मुझे सुमेर सिंह जी की कविता तथा उनके जीवन के बारे में इसी पुस्तक से जानकारी प्राप्त होती है।

(२३) श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, लेखक डा० रामचन्द्र मिश्र, प्रकाशक, रणजीत प्रिंटर्स देहली, प्रस्तुत पुस्तक से श्रीधर पाठक के जीवन तथा उनकी कविताओं को समझने में बड़ी मदद मिलती है। विद्वान् लेखक ने श्रीधर पाठक के जीवन सम्बन्धी सभी सूत्रों का उद्घाटन किया है।

भक्तिपरक ग्रंथ, तत्त्व दर्शन, सम्प्रदाय आदि

(१) भक्ति का विकास, लेखक डा० मृगीराम शर्मा, प्रकाशक चौबिम्बा विद्यामवन, वाराणसी, १९५८ — प्रस्तुत ग्रंथ में भक्ति एवं भक्ति के तत्त्व और नवधा भक्ति के बारे में विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। हिन्दी वर्णवर्ग भक्ति की समझने के लिये यह आधार ग्रंथ है।

(२) भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, लेखक डा० रतिमानु सिंह नाहर, प्रकाशक, विताब महल, इलाहाबाद — भक्ति आन्दोलन और सगुण सम्प्रदाय के प्रमुख तत्त्वों का विवेचन प्रस्तुत किया है।

(३) सत साहित्य की सांस्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि लेखिका, डा० सावित्री शुक्ल,

विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ विश्वविद्यालय — अद्वैत दर्शन, सूफी दर्शन एवं भक्ति सम्प्रदायों की विवेचना प्रस्तुत की गई है ।

(४) श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य कमयोगशास्त्र, लेखक, बाल गंगाधर तिलक, प्रकाशक, तिमला हाउस, चौपाटी, बम्बई, सन् १९२८ ई० प्रस्तुत पुस्तक के तेरहवें प्रकरण में 'भक्ति मार्ग' एक अलग से शीर्षक है । इसमें भक्ति के अग्रे उपागों का वर्णन किया गया है ।

(५) गीता प्रवचन, लेखक, आचार्य विनोबा भावे, ग्राम सेवा मठ, गोपुरी, वधा, नवम्बर १९६० ई० इस पुस्तक के सातवें अध्याय में प्रपञ्च अथवा ईश्वर शरणा पर प्रकाश डाला गया है भक्ति के बारे में विविध चर्चा की गई है और बारहवें अध्याय में सगुण और निर्गुण भक्ति की पूर्ण व्याख्या की गई है । सगुण एवं निर्गुण भक्ति पर प्रकाश डाला गया है । इसी प्रसंग में सगुण एवं निर्गुण का भेद स्पष्ट करने में लेखक को काफी सफलता मिली है ।

(६) हिंदी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, लेखक डा० पौताम्बर दत्त बडल्यवाल, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ प्रस्तुत पुस्तक में निर्गुण सम्प्रदाय की चर्चा की गई है ।

(७) निर्गुण काव्य-दर्शन, लेखक मिदनाथ तिवारी, प्रस्तुत पुस्तक में निर्गुण साहित्य की समुचित व्यवस्था की गई है । साथ ही लेखक ने सगुण एवं निर्गुण को समझने का स्तुत्य प्रयास किया गया है ।

(८) अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय, लेखक डा० दीनदयाल गुप्त, प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग — प्रस्तुत पुस्तक में बल्लभ सम्प्रदाय सम्बन्धी सारी बातों को लेखक ने एक जगह एकत्र कर दिया है । इस पुस्तक से बल्लभमत के अनुसार भक्ति, भक्तित्व तथा भक्तिदर्शन को समझने में काफी सहायता मिलती है । बल्लभ सम्प्रदाय में पृष्टि भक्ति की प्रधानता है । लेखक ने पृष्टि भक्ति की विविध विवेचना प्रस्तुत की है ।

(९) राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य, लेखक डा० विजयद्र सनातन, प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस, निली १९६६ — इस ग्रन्थ में राधावल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्त और साहित्य दोनों पक्षों का मौलिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इन सम्प्रदायों की समस्त मायताओं का विविध अध्ययन प्रस्तुत करने के लिये प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रन्थों का अध्ययन और मनन किया है । मार-तैन्दु युग पूर्व तथा भारतेन्दु युग में उसका प्रभाव कहाँ तक रहा है, इसे समझने के लिये पृष्ठभूमि प्रमाणिक तथा उपादेय है, साथ ही अन्य वैष्णव सम्प्रदायों के मतों का तुलनात्मक अध्ययन ग्रन्थ की उपादेयता बना देता है ।

(१०) भागवत सम्प्रदाय लेखक श्री बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१० वि० — प्रस्तुत ग्रन्थ में भारतभूमि में चलने वाले प्रधान वैष्णव सम्प्रदायों के ऐतिहासिक विकास एवं तार्किक सिद्धान्तों का विविध परिचय प्रदान करने का सफल प्रयास है । वैष्णव साधना के गम्भीर तत्वों का सहज एवं सुमधुर भाषा में उद्घाटन पहली बार हुआ है । यह अपने विषय का प्रामाणिक और उपादेय ग्रन्थ है ।

(११) रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय — लेखक डा० मगवती सिद्ध, प्रकाशक, अवध साहित्य मन्दिर, बलरामपुर, २०१४ वि० — प्रस्तुत पुस्तक में रसिक भावना पर विशेष प्रकाश डाला गया है । साथ ही साथ रसिक सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखने वाले भक्त कवियों का रसिक परिचय प्रस्तुत किया गया है । इस पुस्तक में महात्मा बणादास और जानकीशरण जी की रसिक भावना पर प्रकाश डाला गया है । बणादास के बारे में लेखक का विचार उत्तम है ।

(१२) रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना — लेखक डा० सुवनेश्वरनाथ मिश्र, प्रकाशक,

विहार, राष्ट्रमापा परिषद्, पटना — यह पुस्तक भगुर उपासना पर विशेष प्रकाश डालती है। इसमें वैष्णव कुरमी के बारे में विशेष चर्चा की गई। यह मेरे लिये विशेष उपयोगी सिद्ध हुई है।

(१३) उत्तरी भारत की सत परम्परा—लेखक परशुराम चतुर्वेदी, प्रकाशक, भारती मंडार, प्रयाग १९५१—प्रस्तुत पुस्तक से सत सालियराम जी का संपिप्त जीवन तैयार किया गया है। 'यह पुस्तक उत्तर भारत में प्रचलित सभी सम्प्रदायों का अध्ययन प्रस्तुत करती है।

(१४) भक्ति साहित्य में भगुरोपासना—लेखक परशुराम चतुर्वेदी, प्रकाशक भारती मंडार, इलाहाबाद, २०१८ वि० —प्रस्तुत ग्रंथ तीन निबंधों का संग्रह है। प्रथम निबंध में भक्ति साहित्य में भगुरोपासना के आविर्भाव तथा विकास का वर्णन लेखक ने विस्तारपूर्वक किया है। भारतवर्ष की विभिन्न प्राचीन भाषाओं के साहित्य में उस विकास का संपिप्त विवेचन है। अन्य निबंधों में लेखक का कृष्णोपासना में सली सम्प्रदाय और रामोपासना में रसिक सम्प्रदाय का अध्ययन द्रष्टव्य है।

(१५) हिंदी भक्ति शृंगार का स्वरूप—लेखक डा० मिथिलेश काति, प्रकाशक चैतन्य प्रकाशन, बानपुर, १९६३ ई० —भक्ति के शृंगारात्मक रूप का विस्तृत एवं गहन अध्ययन प्रस्तुत करने वाला यह शोध प्रबंध है। विद्वान लेखक ने भक्ति-शृंगार के विभिन्न रूपों एवं विभाजनों का गवेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। भक्ति के शृंगारात्मक परिवेश, जो भारतेन्दु युग की पृष्ठभूमि है, का विचारोत्तेजक एवं गम्भीर वर्णन है।

(१६) १६ वीं शती के हिंदी और बंगाली वैष्णव कवि—लेखक डा० रत्नकुमारी, प्रकाशक भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली, १९५६ ई० —प्रस्तुत ग्रंथ में १६ वीं शती के हिंदी और बंगाली वैष्णव कवियों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

(१७) हिंदी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका—लेखक डा० रामारंजन वर्मा, प्रकाशक, मागरी प्रचारिणी सभा, बाराणसी, २०२० वि० —प्रस्तुत ग्रंथ से देवात्मकीय परंपरा तथा आगमिक भक्ति का, सांस्कृतिक प्रेरणा के रूप में तथा मध्यकालीन हिन्दी सगुण भक्तिकाव्य पर पड़ने वाले प्रभाव का विस्तृत परिचय मिलता है।

(ख) प्रबंध का विषय-सीमा निर्धारण और उद्देश्य

प्रस्तुत प्रबंध का उद्देश्य भारतेन्दुकालीन काव्य-साहित्य के आधार पर तत्कालीन काव्य में भक्ति धाराओं का अध्ययन करना है। इस उद्देश्य का प्रतिपादन दो दृष्टियाँ से किया गया है—पहला दृष्टि कोण है, तद्दुगीन कवियों ने अपने पूर्ववर्ती कवियों से कहाँ तक प्रभाव ग्रहण किया है। दूसरा यह देखने का प्रयत्न किया गया है कि तद्दुगीन कविता में विभिन्न भक्ति साधनाओं का सिद्धांतिक एवं व्यवहारिक विवेचन कहाँ तक हुआ है। इस उद्देश्य से प्रेरित होकर हमने भारतेन्दु युगीन कविता को निगुण-काव्य धारा और सगुण-काव्य धारा (रामकीय एवं कृष्णकाव्य) दो शोधकों में रखकर अध्ययन किया है। इस शोध प्रबंध में, ब्रजमंडलीय सभी सम्प्रदायों के सिद्धांतों की चर्चा करते हुए भारतेन्दु युगीन कविता पर उनका क्या प्रभाव पड़ा है, तथा तद्दुगीन कवि उससे कहाँ तक प्रभावित रहे हैं, को खोज करना प्रबंध का प्रमुख उद्देश्य है।

प्रस्तुत प्रबंध में भक्ति के ऐसे कई कवियों का साहित्यिक परिचय उनकी रचनाओं के साथ प्रस्तुत किया गया है जिनसे हिंदी साहित्य के पाठकों को अपरिचित है। अपरिचित रहने का मुख्य कारण यह है कि इनकी रचनाएँ अब तक उनके हस्तनिर्मित ग्रंथों में या तद्दुगीन पत्रिकाओं की संविधाओं को ही सुशोभित करती रहीं। इन अल्पज्ञात कवियों की रचनाओं से भी तद्दुगीन भक्ति धाराओं का अच्छा परिचय प्राप्त होता है।

भक्ति का स्वरूप और उसका विकास

भक्ति

‘मज सेवायाम्’ धातु से ‘बियां क्तिन्’^१ इस सूत्र के अनुसार ‘क्तिन्’ प्रत्यय लगाने से भक्ति शब्द बनता है। वस्तुतः ‘क्तिन्’ प्रत्यय भाव अर्थ में होता है—भजन भक्ति। परंतु व्याकरण के आचार्यों के यहाँ कृदन्तीय प्रत्ययों के अथ परिवर्तन एक प्रक्रिया के अंग हैं। अतः वही ‘क्तिन्’ प्रत्यय अर्थान्तर में भी हो सकता है।

भक्ति शब्द की व्युत्पत्तियाँ

‘मजन भक्ति’ ‘भज्यते अनया इति भक्ति’, ‘मजन्ति अनया इति भक्ति’, ‘मज सेवायाम् भक्ति’ इत्यादि भक्ति शब्द की व्युत्पत्तियाँ हैं।

भक्ति की परिभाषा

हिन्दू धर्म के क्रम विवास के इतिहास को स्पष्ट रूप से तीन भागों में विभक्त किया गया है— (१) कर्म प्रधान, वैदिक युग (२) ज्ञान प्रधान औपनिषदिक युग, तथा (३) भक्ति प्रधान पौराणिक युग। इसमें भक्ति भाग का भारतीय धर्म-साधना में अपना विशिष्ट सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक महत्त्व रहा है। इस भाग में सर्वप्रथम व्यापक रूप से भारतीय समाज के प्रत्येक अंग को प्रभावित कर एक बहुल लम्बी अवधि तत्र पथप्रदर्शन करते हुए जन जीवन में स्थायी मोड़ दिया। कारण यह है कि यह वही भाग है जो सर्वप्रथम हृदय को स्पष्ट करता है। आलोचकप्रवर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, ‘जहाँ से कर्म में हृदय तत्त्व को कुछ अधिक स्थान देने की प्रवृत्ति हुई वही से भक्तिभाषा का आरम्भ मानना चाहिये’^२ फलतः भक्ति की परिभाषा में बाँधने की अपार चेष्टा हुई और आज भी होती जा रही है, लेकिन जहाँ हृदय पथ की प्रधानता है वहाँ शास्त्रों की क्या बिसात?

भक्ति में सर्वप्रथम सेवा की भावना जागृत होती है, जिससे हृदय का निजी सम्बन्ध है। भक्ति की विस्तृत एवं शास्त्रीय व्याख्या प्राचीन मनोपियों में की है। साथ ही साथ इसके अग्रे उपागों के चिह्न भी उनकी व्याख्या में परिलक्षित होते हैं। भगवद्गीता ने रचयिता तथा भक्तिशास्त्र के आचार्यों—शाङ्ख्य, न्याय एवं भक्तिभावना पर विचार करने वाले अग्रणी प्राचीन और अर्वाचीन चिन्तकों ने भक्ति के लिये जिन तत्त्वों का निरूपण किया है उनमें ईश्वर में अत्यन्त अनुरक्ति^३ या ईश्वर के प्रति परम प्रेम^४ के साथ अहेतुकी भाव^५ का हाना ही निरान्त आवश्यक है।

१ समु सिद्धान्त वीमुदी, पा० सू० ३।३।६४

२ सूरदास रामचन्द्र शुक्ल, सरस्वती मन्दिर, जतनवर, वाराणसी, सन् १९६१ ई०, पृ० १८।

३ सा परानुरक्तिरीश्वरे। —शाङ्ख्यभक्ति सूत्र

४ सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा। —नारदभक्ति सूत्र २, प्रेमदर्शन हनुमान प्रसाद पोद्दार, पृ० २०।

५ स वै पुगा परोपमो यथा यत्तिरथोसजे।

अहेतुक्य प्रतिज्ञा यथा त्मा संप्रीदति ॥

धीमायाप्रसाद मित्र के शब्दों में परामक्ति ईश्वर में अनुरक्ति या अनुराग है। अनुरक्ति का अनुदान है। अनुरक्ति का अनु इस बात का द्योतक है कि वह राग, प्रेमभाव, ध्येय के महत्व, अनन्य नित्य आदि के जान लेने के बाद ही उत्पन्न होता है। और जैसे ध्येय के महत्वादि गुण आत्मदर्शन का रूप धारण करते जाते हैं वैसे ही रागात्मिका वृत्ति या प्रेमभाव भी प्रगाढ़ और अद्वितीय होती जाती है, यहाँ तब कि परिपाक की चरम सीमा पर परामक्ति का नामान्तर हो जाता है।^१ वस्तुतः भक्ति का प्रधान तत्त्व है परमात्मा से अनुराग उस राग में तल्लीनता तथा आम सम्पन्न का भाव भी नितांत आवश्यक है।

मनुष्य का मस्तिष्क विचारशील है। उसके सारे काय ईश्वर के सन्निकट पहुँचने के हैं। इसी हेतु वह बुद्धि-व्यायाम में अर्हतिश रत है। मोग ही उसका प्रधान लक्ष्य है। 'अतः सिद्धावस्था की प्राप्ति कर लेना ही हम ससार में मनुष्य का परम साध्य या अन्तिम ध्येय है। और उसके लिये केवल यह बीरा गान कि ब्रह्म निगुण है, किसी काम का नहीं, दीर्घ समय के अभ्यास और नित्य की आदत से इस गान का प्रवेश हृदय में तथा देहेन्द्रिया में अच्छी तरह हो जाना चाहिये, और आचरण के द्वारा ब्रह्मत्वैक्य बुद्धि ही हमारी देह स्वभाव हो जाना चाहिये, ऐसा होने के लिये परमेश्वर के स्वरूप का प्रेमपूर्वक चिन्तन करने मन को तदावार करना ही एक सुलभ उपाय है। यह मार्ग अथवा साधन हमारे देश में बहुत प्रचीन समय से प्रचलित है इसी को उपासना या भक्ति कहते हैं।'^२ इसी तरह भक्ति के श्रद्धा, दधि, लो, लगन, प्यार और इतक पर्यायवाची शब्द हैं।^३ उपासना प्रार्थना का ही नाम है। प्रार्थना से हम प्रभु को रिभाते हैं। प्रार्थना करना धर्म है प्रापना और भजन एक ही तरह के शब्द हैं। पैगम्बर मुहम्मद साहब ने एक जगह कहा है—प्रापना धर्म का स्तरम् है स्वर्ग प्राप्ति के लिये सुलभ मार्ग है और मोग मन्दिर के द्वार को खोल देनेवाली सुनहली चाबी है।^४

भारतीय पाँचरास के अनुसार सम्पूर्ण इन्द्रिया को भाषा के बंधनों से सबंध मुक्त करके अन्य मनसा श्रुतीवेश भगवान का आराधन करना ही भक्ति है। भक्ति के साम्राज्य में भोक्ता और भोग्य—दोनों ही पारस्परिक साहचर्यजन्य आनन्द का उपभोग करने के लिये विमल देहेन्द्रिय विनिष्ट होने हैं।^५ भक्ति स्वतः पूर्ण है। वह कर्म गान अथवा अन्य किसी प्रकार की साधना की अपेक्षा नहीं रखती। साथ ही साथ वह हृदय की भूख है जो कभी भी शांत नहीं होती और तब उसका नाश ही होता है बल्कि उनका उत्तरोत्तर विनाश ही सम्भव है। इसने विनाश का क्रम भी दोनों तरफ बराबर ही रहता है। ऐसा नहीं कि भक्ति का विनाश केवल भक्त में ही दृष्टिगोचर होता है बल्कि इसका विनाश तो जिसके प्रति भक्ति की जाती है उसमें भी स्पष्ट रूप से अनुभूति होता है। भक्ति जिसके प्रति होती है उसे भी नित्य नव रस मिलता है और जिसको होती है उसे भी रस मिलता है क्योंकि भक्ति 'भक्त का जीवन' और उनका स्वभाव है, जिनकी वह भक्ति है। इतना ही नहीं भक्त का अस्तित्व

१ भारद और शांतिव्य की भक्ति पद्धति आद्याप्रसाद मित्र लिखितानी, अक्टूबर १९४६।

२ गीताश्रम बालगंगाधर तिलक, अनु० माधवराव सप्रे गिरला हाउस बम्बई १९२८ ई०, पृ० ४०६।

३ हिन्दी प्रणीत, जिल्हा २२, सं० ६७।

४ भक्ति सुन्दर जी रत्नाय जी बाणई, कल्याण, भक्ति आ, वर्ष ३२ सं० १, माघ २०१४, पृ० ३११।

५ भक्ति भक्ति विज्ञानतीर्थ जी महाराज, कल्याण, भक्ति अर्थ, पृ० १२।

भक्ति होकर ही उनसे अमित्र होता है जिनके प्रति भक्ति उदय होती है ।^१

परवर्ती शास्त्र प्रणेता तथा धर्माचार्यों ने भक्ति की व्याख्या श्रीमद्भागवत को आधारभूत मान कर की है । आधुनिक पण्डितों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बलदेव उपाध्याय, गोपीनाथ कविराज, डा० मुशीराम शर्मा, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा० मोती सिंह, डा० माधव और आचार्य विनायक भावे आदि ने भक्ति की व्याख्या स्पष्ट शब्दों में की है । जगन्नाथ रामचन्द्र शुक्ल ने तो भक्ति का धर्म का हृदय माना है । उन्होंने भक्ति की परिभाषा देते हुए लिखा है कि धर्म की रसात्मक अनुभूति का नाम भक्ति है ।^२ आचार्य बलदेव उपाध्याय का विचार है—'भक्ति के द्वारा भक्त भगवान् के साथ अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है ।'^३ डा० मुशीराम शर्मा ने इसे ही इन शब्दों में प्रकट किया है—'रचनाक्रम में परमात्मा से भाव और भाव से तप रूप ज्ञान तथा क्रम प्रकट होते हैं, जो पीछे नाम-रूपात्मक जगत् में परिणत हो जाते हैं । विलोनीकरण में यह क्रम विपरीत हो जाता है । नाम तथा रूप भाव में और भाव परमात्मा में लय को प्राप्त होते हैं । भक्त भी इसी प्रकार विसृष्टियाँ का नाम रूप के सहारे भाव में, फिर भाव के सहारे परमात्मा में लीन कर देता है । भक्तिगोप इसी भाव-व्यवस्था का दूसरा नाम है ।'^४ अतः डा० मुशीराम शर्मा के शब्दों में 'भक्ति भजन है । जिसका भजन ब्रह्म का, महान का, महान वह है जो चेतना के स्तर में मूर्धन्य है यानि यो म यनिष्ठ है, पूजनीयता में पूजनीय है, सत्त्वितो, सत्त्व सम्पन्ना में गिरोमणि है और एव होता हुआ भी अनेक का शासक, कमफन्यता तथा भक्तों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाला है' ।^५ जो श्री हजारी भक्ति का मार्ग काफी सुलभ एवं सुगम है । यह भगवान् के सन्निकट पहुँचने का वह मार्ग है जिसमें किसी प्रकार की भ्रष्टा नहीं । वही सभी पहुँच सकता है, केवल लालसा की लौ तो चाहिये । जन्म और मृत्यु के भय से बचान का सच्चा साधन भक्ति ही है । मानव मन में उपासना के जो भाव हैं उनमें स्वभावतः वैयक्तिक और प्राकृतिक मिश्रता के कारण भक्ति के स्वरूपों में भिन्नता पाई जाती है । उसकी सच्ची अनुभूति तो भक्त का हाती है । इसे प्रकट करना गूँगे के आस्वात् की भाँति है । भक्ति की सफेद साधन और माध्य की सीमाओं के पार जा प्रकाश की किरणें विकीर्ण करती है ।

भक्ति की महिमा

भारतीय धर्म चेतना के इतिहास में भक्ति का स्थान सर्वोपरि है । भक्ति की युग मतिना में अवगाहन करने से जीवन-मरण के कष्ट से मुक्ति मिल जाती है । ईश्वर के शासन सार्वभौमिक भक्ति की भागीरथी प्रवाहित होती है । भक्त प्रवर सूरदास भक्ति को सर्वोपरि स्थान देने में यत्न नहीं, भक्ति ही उनके लिये व्रत, समय, योग, स्वाध्याय तीर्थ आदि सब कुछ था । उन्होंने लिखा है—

यहै जप यहै तप यम नियम व्रत यहै मम प्रेम फल यहै पाऊँ ।

यहै मम ध्यान, यह ज्ञान सुमिरन यहै सूर प्रभु देह हों यहै पाऊँ ॥

१ भक्ति का विकास डा० मुशीराम शर्मा चौखम्बा विद्यामन्दिर, वाराणसी १९५० ई०, पृ० ७३ ।

२ भक्ति डा० मुशीराम शर्मा, हिन्दी निश्चयोप, खंड ८, १९६७ ई०, पृ० ८२० ।

३ भक्ति का स्वरूप ३ शरणानंद जी महाराज, कल्याण, भक्ति दर्शन, पृ० ७३ ।

४ चिन्तामणि रामचन्द्र शुक्ल, पहला भाग, इंडियन प्रेस, प्रयाग १९६३, पृ० १६ ।

५ भागवत सम्प्रदाय प० बलदेव उपाध्याय, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, म० २०१० ई० पृ० ५५ ।

६ नन्दलाल वाजपेयी (सपा०) सूरसागर भाग १, नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० १०६ ।

भक्तमाल में प्रताप सिंह ने भक्ति की महिमा को पुराण वेद और श्रीमद्भगवत् का उदाहरण देते हुए अपने शब्दों में व्यक्त किया है जो बहुत ही मार्मिक एवं गौरवपूर्ण है। 'भगवत्' में व भक्ति में कुछ अंतर नहीं परन्तु एक विशेष विचार स्मरण हो आया जिस वरके भगवद्भक्ति को बढ़ाई प्राप्त हुई किन्तु भगवत् सी कम के अनुसार सबका सुख-दुख दोनों देता है व भक्ति महारानी दुखों का दूर करके सुख ही देती है व दुःख को समीप नहीं आने देती^१। सूरदास ने लिखा है कि भक्ति के बिना मनुष्य आवागमन की चक्की में पिसता है^२।

भक्ति का उद्भव और विकास

भक्ति के उद्भव और विकास के बारे में विद्वान एक मत नहीं है। फिर भी यह प्रमाणित रूप से कहा जा सकता है कि आस्तिक भाव से ईश्वरापासना करने वाले आर्यों में भक्ति के मूल बीज विद्यमान थे और आश्विन रूप में भक्ति के विविध रूपों का आभास उद्भूत ब्रह्म का नाम भी मिल गया था। लेकिन भक्ति के उद्भव के बारे में एक बात स्पष्ट है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। भक्ति के उद्भव की कोई सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने लिखा है कि वेद जैसे कर्म तथा ज्ञान का उत्पत्त्य है उसी प्रकार भक्ति का भी उद्गम स्थान है^३।

भारतीय मनीषि अनुराग सूचक भक्ति-परक अभिव्यक्तियाँ से व्यक्ति ऋचाओं का सामाजिक स्वीकार करते हैं। दूसरी तरफ पारश्चात्य विद्वानों ने हमें भारतीय तत्व सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। उन लोगों के बुद्धि के व्यापार को देखकर तो बड़ा ही आश्चर्य होता है। पारश्चात्य धिक्तर वेबर कीय और प्रियसन इसे ईसाई धर्म की देन स्वीकार करते हैं। पारश्चात्य पंडिता का यह कथन कि संसार के इतिहास में सर्वप्रथम ईसाई मत में ही भक्ति का उत्पन्न हुआ और यही से भारतवर्ष में भक्ति की मागीरणी प्रवाहित हुई, सबका निराधार और नितान्त निमूल है। यही तर्क नहीं बेबर महोदय तो कृष्ण को भगवान् के रूप में वत्पना का श्रेय ब्राह्मण को देते हैं। अपने इस भ्रम मूलक सिद्धान्त के प्रतिपदान में जाज प्रियसन का मन है कि प्राचीन काल में ईसाईया की एक वस्ती मद्रास प्रांत में थी, जन्ही के प्रभाव से हिन्दुओं में भक्तिभाव आया और बाद में दक्षिण भारत से समस्त भारतवर्ष में फैल गया^४।

दृष्टि के प्रारम्भ से ही मानव के अन्तर्गत म भक्ति की सुधा सलिला प्रवाहित है वाक्य चातुय के कौशल के रहते भी उसकी अभिव्यजना शक्ति इस भाव के प्रवदीकरण में मूक है। अतः इस भवसागर में आदिम काल से ही वह कभी सुख की घड़िया में उछलता कभी दुःख के भवर में पड़ आसुओं की घारा बहाता। सुख दुःख की इस अखिमिथौनी में उसका प्रयत्न सुख की तरल तरंगों से अलवेलिया करने में बराबर रहता। पर साथ ही वह दुःख से बचने की कांक्षि भी करना। इस प्रयत्न के क्रम में उसे परोक्ष शक्ति का आभास हुआ। बस क्या था? वह उस परोक्ष शक्ति के साथ शाश्वत् सम्बन्ध स्थापित करने को लालायित हुआ। फिर तो वह उस कुल देवता बनाकर घर में पूजने लगा।

१ प्रताप सिंह (सपा०) भक्तमाल नवविश्वीर प्रेस लखनऊ स० १९२६, पृ० ४।

२ पुनि दु ख पाइ पाइ सो मरे विनु-हरि भक्ति नरक में परे।

नरक जाइ पुनि बहु दुख पावै पुनि पुनि या ही आव जाव ॥

नददुलारे बाजपेयी (सपा०) शूरसागर भाग १ ना० प्र० समा, पद २६।

३ बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय काशी प्र० स० २११० वि० पृष्ठ ६४

४ जनल आव रायल एशियाटिक सोसाइटी १९०७ ई०, पृ० ३११-३६।

इसी पूजा भाव से भक्ति की उत्पत्ति हुई। यह भक्तिभाव की धारा वेद से उपनिषद्, उपनिषद् से पुराण, पुराण से संहिता आदि शास्त्रों के तटों को स्पृश करती हुई हिंदी साहित्य सागर में आ मिली। पुराण की पावन वनस्थली में ऐश्वर्यवाद की धारा प्रवाहित हुई। यही धारा उपनिषद् की उपत्यका में निवृत्तिपरक नान माग और कमपरक नान माग की दो धाराओं में विभक्त होकर प्रवाहित हुई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—‘इसी कम-परक नानमाग से जिसमें कर्म के साथ, बुद्धि और हृदय दोनों का योग आवश्यक ठहराया गया था, आगे चलकर भक्ति का विकास हुआ’।^१

भारतीय भक्तिमाग में ब्रह्म से उभयात्मक स्वरूप की प्रतिष्ठा की गई है। उस उभयात्मक स्वरूप में ब्रह्म के दो रूप हैं—सगुण और निगुण। परमात्मा के ये दोनों रूप नित्य और सत्य हैं। उपनिषत्काल में इस भावना का विकास हुआ। फलस्वरूप इस काल में उपासना की पद्धति में भी परिवर्तन हुआ। वैदिक युग में पूजा की भावना थी जिसमें मूर्त स्वरूप कुछ यस्तुएँ प्रदान की जाती थी। उस पद्धति में स्वल्पचिन्तन या दशन की भावना का पूर्णतः अभाव था। इस आलोच्य काल में पूजा के साथ ही साथ स्वरूपबोध या दशन की भावना जमी। इस तरह ज्ञान का क्पाट खुला। ज्ञानचक्षु के खुलते ही कर्म के साथ मन का योग सम्भव हुआ। इस सयोग में मन की बाधवृत्ति और रागात्मिका वृत्ति दोनों सम्मिलित थी। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि जहाँ से कर्म में हृदय तरंग को कुछ अधिक स्थान देने की प्रवृत्ति हुई वहीं से भक्तिमाग का आरम्भ मानना चाहिये।^२ भक्ति की उत्पत्ति के बारे में आचार्य शिवपूजन सहाय ने लिखा है कि सत्संगति के प्रभाव से सत्त्व की अमरवर्णियों का मनन करते रहने से, हरि कथा-कीर्तन से, सांसारिक प्रपञ्च से मन को धीरे धीरे हटाते रहने के जम्मासे से और शास्त्रचिन्तन से मनुष्य का हृदय क्रमशः निमग्न होता जाता है। हृदय के शुद्ध होने पर उसमें ईश्वर की भक्ति का संचार होता है, तब भक्त प्रेम विह्वल होकर भगवान् का पुकारने लगता है।^३

वेदों की संहिताओं में भक्तितत्त्व

वेद भक्ति के मूल स्रोत हैं। भक्तिभावना की भागीरथी वेद से ही प्रवाहित हुई। अतः इसमें भक्ति तत्त्वा की विगढ़ व्याख्या हुई है। वेदों की संहिताओं में भक्ति तत्त्व का निरूपण किया गया है। शुक्ल यजुर्वेद संहिता में सर्वे प्रथम भगलाचरण में ही स्तुतिपरक श्लोक की अभिव्यक्ति हुई है। यथा—

भगलाचरण

ॐ नमः शम्भवाय च भयामवाय च ।

नमः शक्राय च मयस्कराय च ।

नमः शिवाय च शिवतराय च ॥४॥

इस प्रकार अथर्ववेद संहिता में भी भोक्तृ-कामना-हेतु प्रार्थना हुई है। संहिता में कहा गया है कि जिससे मांस-सुख प्राप्त होता है तथा जिससे इस लोक एवं परलोक के विविध सुख प्राप्त होते हैं, उस भगवान् को नमस्कार है। जो पारमार्थिक अनन्त महान् सुख का प्राप्त कराता है तथा जो सर्व प्रकार के सुखा का दाता है उस परमात्मा को नमस्कार है। जो परमेश्वर वरुणा स्वरूप है तथा स्वमत्तो का

१ रामचन्द्र शुक्ल सूरदास, सरस्वती मन्दिर, वाराणसी, पृ० १२ ।

२ वही, पृ० १८ ।

३ शिवपूजन सहाय शिवपूजन रचनावली, ३ बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९६३, पृ० १०८ ।

४ शुक्ल यजुर्वेद संहिता, १९१४१

बेनउपनिषद् से ब्रह्म की उपासना पर बल दिया गया है और यह भी बतलाया गया है कि ब्रह्म की कृपा होने पर उसको प्राप्त कर सकते हैं ।^१

मुण्डकोपनिषद् तथा ऋग्वेदोपनिषद् भक्तिभावना के ओतप्रोत हैं । इनमें भक्ति के तत्त्वा से लबालब सरी श्लोको को अगम सरिता का प्रवाह देखते ही बनता है । मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि यदि देवतागण ब्रह्म की उपासना करते हैं तो मनुष्या को उसकी उपासना करनी चाहिये । एक उदाहरण प्रस्तुत है—

धनुगुहीत्वोपनिषद् महात्सव

शर इयुपासा निश्चित सधवीत ।

आपभ्य तद् भावगतेन चेतसा

सद्य सदेवाभार सौम्य विदि ॥^२

उपनिषदुक्त धनुष ग्रहण करके उभ पर शर को योजित करें । पहले से ही उपासना के द्वारा उस शर को तेज धारवाला बना ले । ब्रह्म में तथ्यमयता युक्त अन्तःकरण के द्वारा उस धनुष को आकर्षित करें और उसका सद्य अन्तर ब्रह्म को ही जाने । छान्दोग्य उपनिषद् और तैत्तिरीय उपनिषद् में प्रतीक उपासना का स्पष्ट उल्लेख है । उस मन में कहा गया है कि 'मन की ब्रह्म रूप में उपासना करें' जैसे ब्रह्म को इन्द्रिया के द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता उसी प्रकार मन भी इन्द्रिया के द्वारा गृहीत नहीं होता । इसी सादृश्य के कारण मन को ब्रह्म से उपासना करने का बताता गया है । सूर्य जैसे ज्योतिर्मय है ब्रह्म भी उसी प्रकार प्रकाशमान है । इसी सादृश्य के कारण सूर्य की भी ब्रह्म रूप में उपासना करने की बात कही गई है ।

मनो ब्रह्मेत्युपासीत (छा० ३।१८।१)

आदित्यो ब्रह्मेत्युपासीत (छा० ३।१९।१)

पुराणों में भक्ति

पुराण पंचम वेद के नाम से धार्मिक साहित्य में अभिहित किये जाते हैं । वेदों के निगूढ अर्थों का सम्यक् अनुशीलन करने के लिये पुराणों की सहायता ली जाती है । उपनिषदों की भांति ही पुराणों में भी भक्ति के तत्त्व पाये जाते हैं । पुराणों के अध्ययन के बिना विद्या का पढ़ना और पढ़ाना अपू्ण माना जाता है । अतः इनका अध्ययन आवश्यक है । पद्मपुराण,^३ वायुपुराण,^४

१ तद्वनमित्युपासितव्यम् । —केनोपनिषद् ४।५

२ मुण्डकोपनिषद् २।२।३

३ वेदेभ्य उद्धृत्य समस्त धर्मान् यो य पुराणेषु बगार देव ।

व्यास स्वरूप जगद्धिताय वदे तमेन कमलासमेतम् ॥

पद्मपुराण, त्रिमायोगसार, १।३

४ यो विद्याच्युतरोवेदाम् सागोपनिषदो द्विवज ।

न चेत पुराण सविद्यानेव स स्याद् विचक्षण ॥

इतिहास पुराणाम्याम् वेद समुपवृहयित् ।

विमेत्यल्पश्रुताद् केनो मामय प्रहरिष्यति ॥

—वायुपुराण

शिवपुराण,^१ देवीभागवतपुराण,^२ विष्णुपुराण बृहन्नारदीय पुराण^३ और कृमपुराण^४ आदि में भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। अतः भक्ति की जो धारा वैदिक युग से प्रवाहित होती हुई पुराणों के पावन तटों को स्पष्ट करती है, उसी विकास क्रम की पुराण एक बड़ी है। अब हम नीचे इनके संबंध में विचार करेंगे।

गीता में भक्तितत्त्व

विद्वानों ने श्रीमद्भगवद्गीता को समस्त शास्त्रों का सार माना है। इसीलिये इसे सबशास्त्र मयी गीता शास्त्रीय प्रवाद सबवादि सम्मत है। परिणाम-स्वरूप सबशास्त्रों से सम्पन्न गीता भक्तिभावनाओं से ओत प्रोत है। इसमें कर्मयोग, साध्व्ययोग, ध्यानयोग, ज्ञानयोग की विशद् व्याख्या के साथ ही साथ भक्तियोग की धर्मा भी हुई है। भक्तियोग पर इसका एक अध्याय ही है जिसमें भक्ति के समस्त तत्त्वों, महत्त्वा और उपादेयता पर प्रकाश डाला गया है। समस्त योग साधना में भक्तियोगका स्थान सर्वोपरि है। इस भक्तियोग साधना में समस्त साधनाएँ विलीन होकर साधक के लिये अमृतत्व समान प्राण-दायिनी शक्ति प्रदान करती हैं। इस अध्याय के बारे में आचार्य विनोबा भावे ने कहा है कि भगवद् गीता आदि से अतः तक सभी जगह पवित्र हैं। परन्तु बीच में कुछ अध्याय ऐसे हैं, जो तीर्थ-क्षेत्र बन गये हैं।^५ स्वयं भगवान् ही इसे 'अमृतधारा' कहते हैं—येतु धर्मांमृतमिदं यथोक्तं पश्यपासते। इस अध्याय में भगवान् ने खुद ही भक्तिरस की महिमा का तत्त्व गाया है—

वे यथा मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव अब्राम्यहम् ।^६

इसी प्रकार सगुणभक्ति मार्ग का रहस्योद्घाटन गीता के नवें अध्याय में भगवान् ने किया है—

इह तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।

ज्ञान विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्षयेज्जुभात् ॥

१ पतिता वापि धर्मात्मा पण्डिता मूल एव वा ।

प्रसादे तत्पणादेव मुच्यते नात्र संशयः ॥

अयोग्यानां च कारुण्याद् भक्तानां परमेश्वर ।

प्रसीदति न सदेहः निगूह्य विविधान् मलान् ॥

—शिवपुराण, वायवीय संहिता, उत्तर भाग ८ । २५-२६

२ यथा तु व्यज्यते वर्णविभिन्नं स्फटिके मणि ।

तथा गुणबन्धाद् देवी नाना भावेषु व्यज्यते ॥

एकोभूत्वा ययामघं पृथक्त्वं नावतिष्ठते ।

वर्णतो रूपं तद्वच्च तथा गुणवसाज्जया ॥

—देवीभागवतपुराण, ३७ । ६४ ६५ ।

३ नमः शुक्लाशवे तुभ्यं द्विजराजाय ते नमः ।

रोहिणीपतये तुभ्यं लक्ष्मायान्ते नमोस्तुते ॥

—बृहन्नारदीयपुराण, १८।१७

४ सर्वपापमेव भक्तानामिच्छेत् प्रियतमो मम ।

याहि ज्ञानेन मां नित्यमाश्रयति नान्यथा ॥

—कृमपुराण उत्तराध्याय ४ । २५

५ विनोबा भावे गीता प्रवचन, मालती दास्ताने ग्रामसभा मठल वर्षा, पृष्ठ १७२ ।

६ श्रीमद्भगवद्गीता, ४ । ११

। राजविद्या राज गुहा पवित्रमिदमुत्तमम् ।

प्रत्यक्षावगम धर्म्यं सुसुखं वर्तुमव्ययम् ॥^१

दुराचारी को भी आश्वासन देते हुए भगवान् न कहते हैं कि अतिशय दुराचारी भी अनयमाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है—

अपिचेत् सुदाराचारो भजते मामनयमाक ।

साधुरेव स मतव्यं सम्यग्वयवसितो हि स ॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।

कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तं प्रणश्यति ॥^२

इसी प्रकार भगवान् ने भक्ति को महिमा, तत्त्व और उसकी उपादेयता का रहस्योद्घाटन किया है ।

भक्ति के प्रकार

भक्ति के प्रकार को स्पष्ट करने में मानवीय वृत्ति और साधना पथ से काम लिया गया है । मानवीय वृत्ति के अनुसार भक्ति के चार भेद हैं—१ सात्त्विकी, २ राजसी, ३ तामसी, और ४ निगुण ।^३ प्रथम तीन को काम्य और चतुर्थ को निष्काम्य की सना से अभिहित किया जाता है । काम्य भक्ति को अनय भक्ति और निष्काम्य को सुधासार भक्ति भी कहते हैं ।

रामायण और गीता में भी भक्ति के चार भेद कहे गये हैं—

चतुर्विधा भजन्ते मां जना सुहृदिनोऽर्जुन ।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी क्षात्री च भरतपम ॥

तैपा नानी नित्ययुक्त एकभक्तिविशिष्यते ।

प्रियो हि ज्ञानिनोऽप्यर्थमहं स च ममप्रिय ॥^४

राम भगत जगत्कारि प्रकारा । सुकृती चारिण अनघ उदारा ॥

चहूँ चतुर कहूँ नाम अधारा । म्यानी प्रभुहि बिसेपि पियारा ॥^५

साधारण को ध्यान में रखते हुए श्रीभागवत् के सतार्वे स्वर्ग में प्रह्लाद ने भक्ति के भी अग बताते हुए कहा है—

धवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवनम् ।

अर्चन वन्दन दास्य सख्यभात्मनिवेदम् ॥^६

रामचरितमानसकार ने भी इस नवधा भक्ति को स्वीकार किया है । शबरी को भक्ति का उपदेश देते हुए उन्होंने कहा है—

नवधा भगति कहउँ तोहि पाही । सावधान सुनु धर मनमाही ॥

प्रथम भगति सत हृदर सगा । दूसरि रति मम कथा प्रसगा ॥

गुरुपद पकज सेवा तीसरि भगति अमान ।

चौथि भगति मम गुनगन करइ कपट तजि जान ।

१ श्रीमद्भगवद्गीता, ६ । १-२

२ वही, ६ । ३० ३१

३ श्रीमद्भगवद्, तृतीय स्कंध, अध्याय २६, श्लो० ७ १४ ।

४ श्रीमद्भगवद्गीता, ७ । १६ १७

५ गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस, बालकाण्ड २१ । ६ ७

६ श्रीमद्भगवद्गीता, ७ । ५ । २३ ।

मन्त्र जाप मम दृढ विस्वासा । पंचम भजन सौ वेद प्रकासा ॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा । निरत निरन्तर सज्जन घरमा ॥
सातव सम मोहि मय जग देखा । मोते सत अधिक करि लेखा ॥
आठव जया साम सतोषा । सपनेहुँ नहि देखइ परदापा ॥
नवम सरल सबसन छलहीना । मम मनोस हिय हरष न दीना^१ ॥

वेदों में भी इस नवामक्ति का अनेक स्थली में निरूपण है—

भद्रं कर्णोमि शुणुयाम^१ ।
इमा उ त्वा^२ ।
मर्गो देवस्य धीमहि^३ ।
पर देवस्य^४ ।
इन्द्राय मद्बुधने^५ ।
अमि त्वा शूर नोनुम^६ ।
मन्त्रं कञ्च^७ ।
स न पितेव सूनवे^८ ।
उत वात पितासिन^९ ।

परमानन्ददास जी ने तो प्रेमलक्षणा, माधुर्यभाव की भक्ति को एक अलग से भक्ति का प्रकार मानकर दसधामभक्ति की योजना कर दी है^{१०} ।

१ शुक्ल यजुर्वेद २५।२१

२ समावेद पूर्वार्चिक २।२।१।२

३ ऋग्वेद, ३।६२।१०

४ वही, ८।१०।१५

५ वही, ८।६२।१६

६ वही, ७।३२।२२

७ वही, ८।६३।४

८ वही, १।१।६

९ वही, १०।१८६।२

१० ताते दसधा भक्ति गली ।

जिन जिन कीनी तिनके मन ते नेकु न अनत चली ।

‘सुवन’ परीक्षित तरे, राजरिपि ‘कीर्तन’ करि सुवदेव ।

‘सुभीरत’ करि प्रह्लाद निभय भयो नमस्ता करी पद सेव ।

प्रभु ‘अरचन’ सुफलुक सुत वदन दासभाव हनुमत ।

सखा भाव अजुन बस कीने श्रीहरि श्रीमगर्वत ।

बलि आत्मसमपन करि हरि राखे अपने पास ।

अबिरल प्रेम भयो गोपिन को बलि परमानन्द दास ॥

—परमानन्द सागर, हस्तलिखित प्रति, नामरीप्रचारिण समा पुस्तकालय सग्रह सं० ३१४ ।

महर्षि नारद ने इसी भक्ति के व्यापक भेद बताया है। यह भेद आसक्ति भाव के कारण है।

साहित्य में भक्तिरस को उद्भाषना

भक्ति की सताएँ वैष्णव धर्म में अवाप गति से निबधित हुईं। हिन्दी साहित्य में प्रेम और भक्ति को कुछ लाग पर्यायवाची मानते हैं।^४ लेकिन पर्यायी होने हुए भी दाना में अन्तर है। प्रेम अपने निर्विकार रूप में प्रेम है किन्तु श्रद्धा से युक्त हा जाने पर वही भक्ति में परिणत हो जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'श्रद्धा और प्रेम के याग का नाम भक्ति है।'^५ अतः जिसे देखकर प्रेम उत्पन्न होता है, उस ही देखकर भक्ति का उभट जाना सम्भव नहीं। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य में भक्ति का अलग से स्थायी भाव माना गया है। कुछ लोग इस देवार्ति विषयक रति मानते हैं। यही कारण है कि इसे श्रु गाररम में समाहित कर लेते हैं। कुछ आचार्यों ने तो इसे शान्तरम में समाहित कर दिया है। किन्तु सत्कार की निस्सारता की प्रतिश्रिया जिस प्रकार वैराग्य की ओर ढकेलती है, उसी प्रकार वैराग्य की अतिशयना देवदेवियारी ओर झुकाती है। वैराग्य में जहाँ निवृत्ति है, भक्ति में प्रवृत्ति। अतः इसे स्वतन्त्र रम मानने में कोई अत्युक्ति नहीं है।

वैष्णव धर्म की विशिष्टता तो भक्तिरम की शास्त्रीय विवेचना करने में ही है। सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है कि भक्तिशास्त्र का जितना प्रामाणिक विवरण वैष्णव धर्मावलम्बी लेखकों और भक्तों द्वारा हुआ है उतना किसी अन्य धर्मावलम्बी द्वारा सम्भव नहीं हुआ है। वैष्णव धर्म में भक्तिरस की सर्वाधिक प्रधानता है। वैष्णव साधना और विचारकों ने भक्ति की भावदशा से ऊपर उठकर रस दशा में स्थापित किया और भक्तिरस को स्वश्रेष्ठ रम निर्धारित किया।^६

वैष्णवमत्ता ने भक्तिरस से एक विलक्षण आनन्द की प्राप्ति बताया है तथा इस विषय को बड़ा ही व्यापक और सुरचिपूर्ण बनाया है। उन्होंने भक्तिरस को आधार मानकर मधुर भाव की रचना की। बाद में रूपगोस्वामी ने उज्ज्वल नीलमणि और हरिभक्तिरसामृत ग्रन्थों की रचना की जो इस विषय का गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। इसमें भक्तिभाव का विवेचन बहुत ही पाठ्यपूर्ण ढंग से किया गया है। भक्तिरस समस्त रसों का मधुर निपास एवं समस्त मोन्दर्यों का सौन्दर्य है। इसके स्वाद के सम्मुख लोक-परलोक का कोई भी आनन्द नहीं टहर सकता। भक्तिरस के आनन्दव्यापारे से साधक भक्त आत्मसम्भूत और वरसम्भूत मात्रनामा में संवया असन्तुष्ट और निराचिन्तानन्दमय हो जाता है। भक्ति रस की जैसी उन्नत एवं मञ्जुल व्याख्या वैष्णव ग्रन्थों में है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है।

१ गुणमाहात्म्यासक्ति, रसासक्ति, पूजासक्ति स्मरणसक्ति दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, शान्तासक्ति, वात्सल्यासक्त्यात्मनिवेनात्मिक तन्मयतासक्ति परमविरहासक्ति, तथा एकधाध्येकादशधा ॥

नारदभक्ति सूत्र, ८२।

२ परानुरक्ति इस चरणन में विज्ञात की होई।

भक्तिसूत्र में शाब्दिक श्रुति न भक्ति बनाई सोई ॥

प्रेम और अनुरक्ति अर्थ में नहीं भेद कबु ताता।

ताते प्रेम अह भक्ति को जानहु एकहि बाता ॥४२॥

नारायणदास अरोडे भक्ति और प्रेम, पृ० ४१।

३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि, प्रथम भाग, पृ० ३२।

४ डा० सावित्री शुक्ल सत साहित्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, लखनऊ विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, पृष्ठ २४।

भक्ति विषयक काव्य की सामाजिक प्रेरक स्थितियाँ

जनता की समष्टि का दूसरा नाम ही समाज है। जन-जीवन की स्पष्ट छाप समाज पर परि-
रक्षित होती है। समाज जन जीवन के साथ ही पतनो-मुख और विकासो-मुख होता है। जन-जीवन के
विकास के साथ ही समाज उन्नति के शिखर पर अग्रसर होता है। बरना वह पतन के गत म गिर कर
स्वाहा हो जाता। परिणामस्वरूप समाज की प्रतिक्रिया ही साहित्य के पन्ना पर दृष्टिगोचर होती है।
जन-जीवन अपने क्रिया कलापा द्वारा समाज को प्रेरित करता है। समाज उसकी समस्त प्रतिक्रियाओं
को आत्मसात कर लेता है और तब साहित्य उसे समाज के सामने रख देता है। जन-जीवन को प्रेरित
करने वाले तत्त्व एवं देशकाल की परिस्थितियाँ समाज को बहुलाश्रय में प्रभावित करती हैं। फलतः जन
जीवन का रूप बदर भी जाता है और बिगड़ भी जाता है। अतः जन-जीवन की प्रतिच्छाया समाज पर
और समाज की प्रतिच्छाया साहित्य पर पड़ती है।

समष्टि के ये तीनों तत्त्व (जनजीवन, समाज और देशकाल) का घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक दूसरे
के परिपूरक हैं। एक दूसरे पर आश्रित और निर्भर हैं। समाज और साहित्य दोनों में अयोप्राश्रित
सम्बन्ध है। एक के अभाव में दूसरे की कल्पना असम्भव है। मानव जीवन क्या है? एक प्रकार के
विकास का व्यापार है। इसी व्यापार को साहित्य संचित तथा अभ्युन्नत रखता है। और साहित्य समाज
के विकास एवं विनाश का कहानी प्रस्तुत करता है। स० ५०० से इसका क्रमबद्ध इतिहास हम उपलब्ध
होता है। आचार्य चतुर्वेदी ने हिन्दी साहित्य का आन्वित स० ५०० स ही माना है।^१ इसके पहले
वैदिक युग है जिसे हम प्राचीन युग की सभा से अभिहित कर सकते हैं।

प्राचीन युग का समाज भक्ति भावनाओं से ओतप्रोत था। सृष्टि के विकास के साथ ही साथ
भक्ति की उत्पत्ति हुई। समाज की एक सत्त्वृति की एक पेशा था और समाज विभिन्न वर्गों में नहीं बँटा
था। परिणामस्वरूप जन जीवन काफी शुद्ध एवं जटिल था। दूसरी तरफ प्राकृतिक शक्तियों के अलौकिक
क्रियाकलाप प्राकृतिक अमिराम छाया, घपला की चमक, नम का बादलो से आच्छादित होना और पुन
सूय की उश्मिया से उनका लोप हो जाना आदि मानव मन में अलौकिक परम सत्ता के प्रति विश्वास हो
गया। यही कारण है कि वैदिककाल का जन-जीवन उस अलौकिक सत्ता के प्रति आकृष्ट हो गया। वेद
उपनिषद्, पुराण और ब्राह्मणों में भक्ति के मन्त्र की विपुलता है।

समाज में शांति से रहना बड़ा ही दुर्लभ कार्य है। मानव मन शांति की खोज में सदैव चिन्ता
चुर रहता है। समाज का विकास ज्वा-ज्वा होता गया उसकी आवश्यकताएँ बढ़ती गई। आवश्यकताओं
के बढ़ने से उनकी पूर्ति के लिये संघर्ष शुरू हुआ जिससे युद्ध की भावना जगी। युद्ध में विजय हेतु प्रार्थना
की गई। भक्ति की धारा उमड़ पड़ी।

अब हम मध्ययुगीन सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे। हिन्दी साहित्य के विकास के
इतिहास के साथ ही साथ उत्तर भारत पर मुसलमानों के आक्रमण आरम्भ हो गये थे और राजपूतों के
पतन के पश्चात् क्रमशः दासवंश (१२०६-१२६० ई०) खिलजी (१२६०-१३२० ई०), तुगलक
(१३२०-१४१२ ई०), लोदी (१४१४-१४५१) तथा लोदी वंश का (१४५१-१५२६) तक आधिपत्य
रहा। इस ३२० वर्ष के राजनीतिक हलचल में समाज में विद्रोह की भावना एवं विपन्नता का नया
नृत्य होता रहा। इनके राजनीतिक उत्कर्ष के मूल में धार्मिक प्रेरणाएँ ही हँसती खेलती रही। सुल्तानों
की धार्मिक असहिष्णुता ने अनेक बार अपना नान्न रूप प्रदर्शित किया। इन ३२० वर्षों में पाँच बार

१ चतुर्वेदी साहू हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, गौतम बुक डिपो, दिल्ली, १९४६ ई०,

राजवंश परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन के मूल में धार्मिक विद्रोह एवं घातक घट्यभेदों का ताना लगा रहा। इस विद्रोह एवं अशांत वातावरण का हिंदू प्रजा पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। मुसलमान आपस में विद्रोह की आग फूँटते थे और हिंदुओं को लूटते थे। हिंदू प्रजा पर अत्याचार किया जाता था, अतः दखिना के मार या प्राण भोह में घम च्युत होना या घम को दुहाई देना ही प्रबल होता है।

मध्ययुग का समाज इसी तरह अनवरत अमिशापा में ग्रस्त था। समाज में नैतिक नियंत्रण का नाम ही नहीं था। नैतिकता को जगह पर उच्छेद्यता और खर्वरता बढ़ गई थी। मुसलमान उन्हें धुणा की दृष्टि से देखते थे। वे अपने घम और राज्य का तलवार के बन पर प्रचार और प्रसार कर रहे थे। हिंदुओं के भक्तिपन्थ में सदैव विरोध का साजनाएँ जग रही थी। मुसलमानों की बटोरता तथा उनका राज्य के लोग में आपस का वैमनस्य देश की दशा का जीर भी दुखद बना रहा था। हिंदुओं के पास अब पोषण नहीं रह गया था। उस्ताह और उमम तो मुसलमानों ने हमन की मटटी में भौक दिया। इतना होने पर भी धर्म के प्रति उनका दृढ़ विश्वास था, अन्त आस्था थी।

मुसलमानों के आने ■ भारत भूमि को सस्कृतियों का सगम स्थल बना। उनकी व्यक्तिगत भौतिकता और विलासिता आचरण को और दूषित कर रही थी। दाना अपनी भिन्न सस्कृतियों के कारण आपस में मिल न सके। सारा समाज अनाचार आर अनैतिकता का अड्डा बन गया। सुरा, सुन्दरी, सौन्दर्य की लोभ में समाज टाँखना हा गया। दूसरी तरफ अपना पराधीनता और निधनता के कारण हिन्दू समाज अपने उच्चावशों से चिपका रहा। फलस्वरूप वैदिक काल की ग्राम्यसम्यता का पुनर्जीवन प्राप्त हुआ।

भक्ति विपक्षक कार्यों की राजनीतिक प्रेरक स्थितियाँ

किसी देश के समाज पर बहाने वातावरण, वायु एवं राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ना अवश्यमानी है। राजनीति से समाज और साहित्य का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। समाज के विकास में राज नीति का हाथ स्पष्ट होता है। राजनीतिक हलचल का समाज पर ही प्रभाव पड़ता है। राजनीतिक प्रेरक स्थितियाँ स समाज का सर्वाधिक अंग चेतनशील बनता है। राजनीति समाज के जीवन-दर्शन, चिन्ता-मंडति एवं दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित कर देती है। कवि समाज का चेतनशील प्राणी है। वह अज्य जनों से काफी भावुक एवं चिन्तनशील होता है। अतः वह अपने समय की सामा-जिक, राजनीतिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों से अधिक प्रभावित होता है। फलतः वह अपनी प्रतिक्रियाओं और अनुभूतियों को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। उसकी अभिव्यजना शैली में तत्कालीन परिस्थितियों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। किसी कवि या साहित्यकार की रचनाओं को उसकी तत्कालीन परिस्थिति का अध्ययन किये बिना समझना नामक होगा।

समाज के साथ राजनीति का सम्बन्ध आदि युग से चला आ रहा है। प्राचीन युग से ही यह देश धर्म प्रवण रहा है। धर्म ही हिन्दू समाज का प्राण है। इसके प्रचार एवं प्रसार से यहाँ के राजाओं ने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। शाहस्यमूलक चारा आध्यात्म में नर-नारायण की पूजा की प्रधानता थी। भागवत धर्म ही प्राचीन धर्म था, इसका अम्युदय मथुरा में हुआ था। भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म सात्वत वंश में हुआ था। इसी वंश द्वारा इस धर्म का प्रचार समस्त भारत में हुआ। सात्वत लोग दक्षिण के निवासी थे। सात्वत ने ही भागवत धर्म का प्रचार उत्तर भारत से ले जाकर दक्षिण में किया। सात्वत वाद में उत्तर से दक्षिण में जा बसे थे। इस प्रकार समस्त भारत भागवत धर्म के सूत्र में बँध गया तथा यह भी स्पष्टता परिलक्षित होता है कि भगवत धर्म के प्रादुर्भाव के साथ-साथ ही उसे

राजाश्रय प्राप्त हो गया। डा० नाहर ने भी भागवत धर्म के राज्याश्रय के बारे में लिखा है कि "महाभारत युग तक आते-आते पहले से जाने वाले भागवत सम्प्रदाय को वही-वही राज्याश्रय प्राप्त होने लगा था"। इस तरह भक्ति को राजनीतिक का महारा प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप इसके प्रचार एवं प्रसार में राजनीति की प्रेरणा-दायिनी शक्ति प्रबल है। उसके प्रचार प्रसार में लोभमत्त था।

भागवत धर्म का गम्बघ प्रसिद्ध सात्वत कुल से था। लेकिन उसे कभी भी किसी राज्याश्रय की अपेक्षा नहीं थी। यह ब्राह्मण धर्म की भाँति लचीला नहीं था। आध्यात्मिक जगत् में इस धर्म में भगवान् विष्णु के अवतारों के शरण की सर्वाधिक आवश्यकता थी और व्यावहारिक जगत् में इसे जनता-जनान पर काफी सरोसा था। राज्याश्रय प्राप्त धर्म तो अपने प्रचार प्रसार में राजनीति के तराजू पर झूलते झिलसाई पड़ते थे। भागवत धर्म लोकमत का धर्म था।

बाद में जैन एवं बौद्ध धर्म की स्थापना हुई। इन्हें भी राज्याश्रय प्राप्त था। इनके अभ्युदय काल से ही धर्म राजनीति का विषय बना। इन दोनों धर्मों का विकास राजघराना द्वारा तथा इनके संस्थापकों के संबंधियों द्वारा बहुत बड़ा योग मिला।

भक्ति को गुप्तकालीन इतिहास एक नया परिच्छेद प्रदान करता है। चौथी शताब्दी में इस भक्ति का उदय होता है और आगामी दो शताब्दी तक इस भक्ति को सर्वश्रेष्ठ राजनीतिक शक्ति बनाने का प्रयास रहा। इस युग में भक्ति के प्रचार एवं प्रसार में चारबाँत लग जाता है राजाओं द्वारा विष्णु मन्दिर बनाने का उल्लेख भी मिलता है। समाज इनसे काफी प्रभावित था। इनसे प्रेरणा प्राप्त कर भक्ति साहित्य काफी सबल बना। 'भागवत धर्म' सम्बंधी साहित्य के सृजन एवं अभिवर्द्धन का स्वर्णिम अवसर प्रदान हुआ था। यह गुप्तों के साहित्यानुराग का ही प्रतिफल रहा कि अनेक दार्शनिक एवं पौराणिक ग्रंथों का रचना हुई जिससे भागवत धर्म गतिशील एवं शास्त्रानुमोदित हुआ। अश्वघोष जैसा मेधावी ब्राह्मण इसी युग में हुआ था जो भक्ति एवं उसके सामाजिक प्रभावों को जानकर बौद्ध हो गया। गुप्तकालीन इतिहास बताता है कि वैष्णव तथा शैव तत्त्व प्रतिपादक एवं असुरय मन्दिरों और मूर्तियों के निर्माण के फलस्वरूप सगुण काव्यधारा के प्रचार के काम में सहयोग प्रदान किया। इस काल में भक्ति काव्य के प्रचार एवं प्रसार में आश्चर्यजनक प्रगति हुई।

हर्षोपरान्त भारत में हिंदू राजनीतिक शक्ति प्रायः लुप्त हो गई। राज्य ध्वस्त मित्र हो गये। आपसी वैमनस्य, विरोध एवं निजी राज्य प्रसार की भावना का बोलबाला हुआ। सगठित राजनीतिक शक्ति का ह्रास हो गया। देश पर अत्याचार के आलस में डराने लगे। अशांति एवं सचप का काल आया। तेरहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक देश की राजनीतिक धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में पयास परिवर्तन हो गया। इस आलोच्यकाल में मुगलक वंश और लोदी वंश के उपरांत बाबर ने मुगल वंश की नींव डाली। भारतीय राजनीति इस अवधि में काफी सुबुद्ध असंतुलित एवं अशान्त बनी रही। बाहर निरंतर आक्रमण के कारण राजनीति की नींव ढगमगा चुकी थी। गौरी गज़नी को लुट-खनोट की नीति से भारतीय जनता को नतमस्तक होना पड़ा। भारतीय राजनीति पर बाहरी शक्तियाँ न बराबर नये-नये प्रयोग किये। अलाउद्दीन बख्तियार खान समृद्धि को रोकने के लिये अथक परिश्रम करता रहा। सामूहिक शक्ति को वह कुचल कर बादशाह बन बैठा। बाद में व्यक्तिगत समृद्धि को भी वह नष्टप्राय करने के लिये उसने शक्ति अपहरण को निशाना बनाया तथा उसने घोषणा करवा दिया कि हिंदू लोग तब तक विनम्र और आनाकार नहीं होंगे जब तक उन्हें पूणतया दखि

नहीं बना दिया जायगा।^१ तत्कालीन हिन्दू समाज को कुचल एवं शक्तिविहीन कर देने के लिये इन सुल्तानों ने जो कुछ किया इतिहास के पृष्ठ उसके सामने हैं। उसकी नीति साहसपूर्ण एवं क्रान्तिकारी तो थी ही लेकिन हिन्दुओं के प्रति उसके व्यवहार को धर्माघातपूर्ण ही कहा जायगा। अलाउद्दीन हिन्दुओं का अपनी प्रजा उस रूप में नहीं समझता था जिस रूप में वह मुसलमानों को समझता था और हिन्दुओं के हित तथा कल्याण के लिये अपने को उत्तरदायी नहीं मानता था। हिन्दुओं का दमन उसके धार्मिक आवेग का परिणाम नहीं था बरन् उसकी नीति का अभिन्न अंग बन गया था।^२

खिलजीवंश के पतन के बाद मुगलवंश का आधिपत्य १३२०-१४१२ ई० तक रहा। मुहम्मद तुगलक अलाउद्दीन की अपेक्षा बड़ा साहसी एवं विद्वान् था। वह हृदय से बुद्धिवादी था। परिणाम स्वरूप उसने नय-नये प्रसंगों में अपनी रचि निखलायी। उसने रूढ़िवादिता पर कसकर प्रहार किया। उसका शासन स्वेच्छाकारी तथा निरंकुश था। शक्ति अनिर्वाच्य थी परन्तु उसने परामर्शदातृ परिपद की व्यवस्था की थी। लेकिन उसका शासन अमफलताओं का ही इतिहास प्रस्तुत करता है। इसके पश्चात् फिरोज तुगलक गद्दी पर बैठा। वह सामरिक प्रयुक्ति का व्यक्ति नहीं था और न सेनानायक की सगठन शक्ति ही उसके पास विद्यमान थी। हिन्दुओं के साथ उसका व्यवहार अच्छा नहीं था यद्यपि कि वह एक राज-पूत माता मैला का पुत्र था।^३ उसने हिन्दुओं को मुसलमान बनने के लिये प्रोत्साहित किया। उसके आत्म-कथा के अंग से हम बात की पुष्टि हो जाती है। उसने लिखा है कि मैंने काफीर प्रजा को पैगम्बर का धर्म अंगीकार करने के लिये प्रेरित किया और घोषणा की कि जो भी व्यक्ति कसमा पड़ेगा, उसे जजिया से मुक्त कर दिया जायेगा।^४

तुगलकवंश के पतन के बाद राजनीति के मैदान में पुनः विभूत खलता आ गई। तैमूर आदि विदेशी आक्रमणकारियों ने देश की जड़ का भ्रज-भोर दिया। तुगलकवंश की गौरव-श्री सबका के लिये बिलीन हो गई। उसने अपने आक्रमण के उद्देश्य को स्पष्ट किया है—“भारत पर आक्रमण करने का मेरा उद्देश्य काफिरों के विरुद्ध युद्ध करना है, पैगम्बर की आज्ञानुसार उन्हें सच्चा धर्म (इस्लाम) स्वीकार करने के लिये बाध्य करना, बहुदेववाद तथा अधविश्वास से मुक्त करने पवित्र करना तथा मन्दिरों और मूर्तियों का उन्मूलन करना जिससे हम धर्म तथा ईश्वर के समर्थक और सैनिक बनकर गाजी तथा मुजाहिद का पद प्रदान करेंगे।”^५ तैमूर का आक्रमण बड़ा ही विनाशकारी था। इतिहासकारों ने बताया है कि तैमूर के अनन्तर देश में भुवमरी, विनाश और अकाल के लक्षण स्पष्ट दृष्टि-गोचर होने लगे। मुस्लिम सत्ता क्षिप्त भिन्न हो गई। कुछ वर्षों तक राजधानी में अशांति का साम्राज्य रहा। बाद में सैयद एवं लोदी खानदान वाला ने शक्ति संचित कर सिंहासनाखंड हूए। इन दोनों खानदानों में कोई ऐसा राजा नहीं हुआ जो शांति कायम कर सकता। इसी खानदान में सिक्न्दर लोदी नाम का बादशाह हुआ। निगुण भक्ति के आदि आचार्य कबीरदास जी को इसी का समकालीन बताया जाता है। लोदी राज के साथ ही साथ गुनामवंश की विनाश हो जाती है। इब्राहिम लोदी के समय पानीपत की पहली लड़ाई से मुगलवंश एवं गुनामवंश के माग्य का फैला हो जाता है। बाबर देश का साम्राज्य बनाता है।

- १ ए० आर० शर्मा भारत में मुगलशासन का इतिहास आगरा, प्र० स० १९५४, पृ० ११५
- २ श्रीनेत्र पाण्डेय भारत का बृहत् इतिहास स्टुडेन्ट्स फोन्डिंग बनारस, वृ० स० १९५४, पृ० २३६।
- ३ श्रीनेत्र पाण्डेय भारत का बृहत् इतिहास, वृ० स० १९५५ ई०, पृ० ३३३।
- ४ ए० आर० शर्मा भारत में मुगल शासन का इतिहास, पृ० २७२।
- ५ वही, पृ० १५८।

मुगलवश की राज्य स्थापना के पश्चात् देश में कुछ दिन तक शांति के मूसल वाला स्थिति पड़ते हैं। राजनीति में उथल उथल तो रहा लेकिन कौरा विनाशकारी प्रभाव नहीं पड़ा। मुगलान की साम्राज्यवाणी नीति ने राज्यविस्तार में हिंदुओं का सहयोग सहज ही में प्राप्त कर लिया। अकबर ने तो वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित कर लिया। उसके सामने क्या हिंदू क्या मुसलमान सभी ने घुटन टेक लिये। अकबर और जहांगीर ने मुगल साम्राज्य का अत्यंत विशाल रूप प्रदान किया।

तत्कालीन राजनीति में विद्रोह दमन, अत्याचार एवं विनाश की अग्नि प्रज्वलित होती रही। शासक वर्ग में राज्य प्राप्ति के लिये अनेक गृहयुद्ध होते रहे और निम्न हत्याकाण्ड का क्रम चलता रहा, उत्तराधिकार का कोई नियम नहीं था। मुसलमान शासन सबका अनुदार नहीं थे। अकबर ने विशेषरूप से धार्मिक उदारता का परिचय दिया। उसके दरबार में हिंदी के कवियों का भी सम्मान हुआ।

मुगल शासन के पतन के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी की व्यापारी नीति का दमनचक्र चला। कंपनी व्यापारी बनकर आई और बादशाह बन गई। यह भारतीय इतिहास की आश्चर्यजनक घटना है। इस प्रकार शोषण-दमन एवं अत्याचार से भारतीय जनता बराबर नाहि नाहि के निरन्तर व्यापी नारा से भगवान् की दुहाई देता रहा। इन दुहाई ने ही भगवद् भक्ति की ओर प्रेरित किया। मिशन का धर्म प्रचार कार्य राज्यविस्तार के साथ ही सम्पन्न हुआ।

ऊपर हमने प्राचीन युग से लेकर ईस्ट इंडिया कंपनी तक राजनीतिक स्थिति का अवलोकन किया। तत्कालीन धार्मिक गतिविधियों का जो विवरण प्राप्त किया है उससे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अधिवास भारतीय नरेश धार्मिक सहिष्णुता की नीति को अपनाते रहे। भारतीय नरेशों ने निम्न प्रकार मागधतधम, ब्राह्मणधम, जैनधम और बौद्धधर्म के प्रचार एवं प्रसार में जिस लगन एवं उत्साह से काम लिया, इस्लाम के प्रवक्तान भी उसी लगन एवं उत्साह से काम लिया। मिशन के प्रचार में भी राजनीतिक शक्ति का ही श्रेष्ठ है। शासका की धार्मिक सहिष्णुता का प्रजा पर उपयुक्त प्रभाव पड़ा। हाँ गुलाम एवं मुगलवश ने राजाशा के समय जन विद्रोह का अवसर प्राप्त था लेकिन केन्द्रिय शक्ति के अभाव में धार्मिक जागरण का बीज अंकुरित नहीं होता रहा। धार्मिक क्रांति की चिनगाड़ी मनाव-मन्त्रिण को भ्रूभोर रही थी। उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर भक्ति आन्दोलन का बीज फूट पड़ा। परिणामस्वरूप वैष्णव सम्प्रदायों का विकास हुआ। डा० नाहर ने लिखा है कि उत्तर मध्यकालीन भक्ति की प्रगति भूमि दक्षिण में तो अनेक नरेशों ने वैष्णव सन्ता तथा कवियों को राजाश्रय प्रदान कर दक्षिण भारत के भक्ति आन्दोलन में एक नई सहर ला दी थी।^१ इस प्रकार राजनीति अगान्ति ने भारतीय भूमि पर धर्मव्यवहार फहराने के लिये प्रेरणास्वरूप उन समस्त तत्त्वों को प्रदान किया जिनकी आवश्यकता थी। विद्रोह एवं श्रम में ही अलौकिक सत्ता की तरफ ध्यान आकर्षित होता है। जनता का मन्त्रिण हनन से उद्वेगित होकर प्रभु सत्ता का तरफ केन्द्रित हो गया।

भक्ति विषय काव्य की धार्मिक प्रेरक स्थितियाँ

धर्म, समाज और साहित्य का अयोधायत्र सम्बन्ध है। य तीन एक दूसरे का विकास में सहायक हैं। साथ ही यह प्राय निश्चित ही है कि एक के भ्रष्ट होने पर दूसरे का भ्रष्ट होना अवश्य

भ्रावी है। इन तीनों का विकास एवं ह्रास एवं दूसरे पर निर्भर है। प्राचीन युग से लेकर आज तक साहित्य समाज एवं धर्म की यही दशा है।

प्राचीन युग से भारतवर्ष धर्म प्राण देता है। धर्म का स्वर यहाँ व वायुमंडल में गूँज रहा है। यहाँ की पृथ्वी के कण-कण में धर्म व्याप्त है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इसे इसी से धर्मप्रधान न कहकर धर्मप्राण कहा है।^१ यह देश प्राचीन काल से ही धार्मिक सम्प्रदायों का श्रीढाँचा रहा है। वैदिक धर्म की दोनों शाखायें श्रौत धर्म तथा वैष्णव धर्म इसी भू-भाग में प्रस्फुटित हुए। इन धर्मों का प्रचार प्रसार यही हुआ तथा इनके उच्च आदर्श न भारत का बहुत कल्याण किया। जाय सद्बृत्ति विरक्त काल तक इनका श्रेष्ठ रहेगा। धर्म ही मानव समाज के जीवन स्तर को उन्नत बनाने तथा सभी धर्मनाओं का हटाकर उदार एवं उन्नत तथा विशाल भावनाओं का उद्रेक करने में समर्थ होता है। धर्म यही श्रेष्ठ है जो मानव हृदय में सौन्दर्य एवं भाव्य भावों की वृद्धि कर उसे सरल विकासशील एवं रसस्निग्ध बनाता है।

वैष्णव धर्म अपनी उत्तारता के लिये पृथ्वी पर श्रेष्ठ है। इसकी औन्नत्य दृष्टि के सामने समस्त के समस्त धर्म नतमस्तक हो जाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता इस धर्म का प्रधान ग्रन्थ है। इसकी समन्वय दृष्टि की समता के सामने भारतीय साहित्य में कोई भी धर्म नहीं है यद्यपि वर्णाश्रम धर्म में प्रस्तुत धर्म की पूर्णता आस्था है। वर्णाश्रम धर्म में आस्था रखते हुए भी हमने भगवत्प्रेम से निरसी को वंचित नहीं किया है। शूद्र भी भक्ति के राज्य में ब्राह्मणों के समान ही अधिकारी है। यह धर्म भक्ति प्रधान धर्म है। भक्ति की प्रेरक स्थितियाँ इस धर्म में मिल सकती हैं। नमस्कार के अनेक विधानों में शूद्र अधिकार से वंचित रखा गया है, परन्तु भक्ति के राज्य में वह ब्राह्मणादिकों के समान हो सच्चा अधिकारी माना गया है।^२ यह धर्म बहुत ही पुराना धर्म है। इसके साथ ही साथ ब्राह्मण, शैव, जैन तथा बौद्ध धर्म भी प्रचलित थे। ब्राह्मण धर्म में, वैष्णव धर्म में वैदिक धर्म की अवस्था में कुछ परिवर्तन परिलक्षित होता है।

आठवीं शताब्दी धर्मशास्त्र के इतिहास में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का परिच्छेद जोड़ती है। यही पर देवी-देवताओं की पूजा की प्रधानता तथा अनेक देवी-देवताओं के बारे में रहस्यपूर्ण उद्घाटन एवं मन्दिरों का निर्माण होने लगा। प्राचीन देवी-देवताओं के लिये मंदिर तथा नवीन देवी-देवताओं के लिये वेदी, चौरा आदि का प्रबंध होने लगा। राजाओं द्वारा सहयोग एवं सावजनिक सहयोग भी प्राप्त होने लगा। इस प्रकार मंदिर आदि साम के कारण बने बा० नाहर ने लिखा है कि मंदिरों में 'सोना धरसने' की बात सभी सादरों से सिद्ध होती है और मुलतान के अरबों ने तो केवल इसी आर्थिक लाभ की दृष्टि से अपने महोत्सवों की आना दे दी थी।^३ देवी-देवताओं का बाहुल्य हो गया। तरंग सीन समाज की प्रार्थना एवं उपासना तथा पूजा पर पूर्ण आस्था थी। इस धर्म की सख्या ४२ तक पहुँच गई थी। सुरा का रियाज समाज में शूद्रों को छोड़कर और वही नहीं था।

शैव सम्प्रदाय की शक्ति का विकास इसी शताब्दी में हुआ। करीब दो सौ वर्षों तक इसे राज्याध्यक्ष प्राप्त रहा। सभी राजपूत नरेश शैवोपासक थे। समाज में शैवोपासकों का काफी सम्मान था। लेकिन ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि वैष्णव धर्म खुद ही हो गया। कुछ राजवंशों में दोनों धर्मों की ध्वजा फहरा रही थी।

१ बलदेव उपाध्याय भगवत् सम्प्रदाय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण, २०१०, पृ० ३।

२ बा० रतमान सिंह नाहर भक्ति-आन्दोलन का अध्ययन, पृ० २६७।

जैन एवं बौद्ध धर्म का प्रचार समाज की हिंसात्मक प्रवृत्ति ने कारण हुआ। इन दोनों धर्मों का सम्बन्ध राजघराना से था। इनके प्रचार एवं प्रसार में राजवंशों के सगे सम्बन्धियों ने काफी सहयोग प्रदान किया। समाज में विषमता का प्रश्न बहुत ही जोर पकड़ रहा था, ब्राह्मण धर्म का जातिवाद इस धर्म के आगमन के समय स्वागत किया। वश्य एवं शृपक स्वेच्छा से जैन धर्म और बौद्ध धर्म में दीक्षित होने लगे। राष्ट्रकूट नरेशों द्वारा इसे प्रथम मिला। जैन धर्म का विकास अगिण भारत में ही हुआ। उत्तर भारत सबका वचित रहा।

बौद्ध धर्म की अहिंसावादी प्रवृत्ति ने समाज को भयभीत किया। दूर-दूर देशों में इसके प्रचारक गये और वहाँ उन्हें सफलता मिली। लेकिन बाद में इसकी अवस्था शोचनीय होने लगी। इनके दो दल हो गये। इस शताब्दी में महायान बौद्ध हीनयान पर हावी हो जाता था, तो बौद्ध हीनयान महायान पर। डा० नाहर ने इसे स्वीकार किया है कि यह बौद्ध धर्म को हिंदू धर्म में विलीन करने का प्रथम अनजाना प्रयास और महत्त्वपूर्ण सोपान था। इसी समय शङ्कराचार्य का प्रादुर्भाव हुआ। शङ्कराचार्य का उत्कर्ष ईसा की आठवीं शताब्दी के आस-पास हुआ। उनके मत की छाप सर्वसाधारण पर पड़ी।^१ मायावाद के प्रवर्तक शङ्कराचार्य ने इसकी शक्ति को मिट्टी में मिला दिया। कुमारिल भट्ट का सहयोग भी इसके विनाश करने में मिला।

दसवीं से बारहवीं शताब्दी का इतिहास राजनीतिक उथल-पुथल का इतिहास है। लेकिन धार्मिक दृष्टि से यह युग बहुत ही क्रियाशील रहा। अन्तर्जातीय प्रवृत्ति प्रबल होती जा रही थी। बौद्ध धर्म एवं ब्राह्मण धर्म दोनों साथ साथ चल रहे थे। बौद्ध धर्म पतनारम्भ की तरफ झुक रहा था। धर्म की क्रियाशीलता केवल तार्किक थी। वह बाल की खाल निकालने में व्यस्त था। समाज खोलला हो गया था। साहित्यकार, कवि, आचार्य सभी इसी रोग के शिकार थे। धार्मिक अवस्था में ठेकेदारी की प्रथा आ गई थी। धर्म में पाल्ड एवं दम्भ का बोलबाला था। सम्प्रदाय के सम्प्रदाय बनते जा रहे थे। शंकर के जड़तत्वा के प्रतिक्रियाम्बुधिरूप भक्ति प्रधान धार्मिक सम्प्रदायों का विकास हुआ। रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद, माध्वाचार्य का द्वैतवाद, निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद, विष्णुस्वामी तथा बल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद भक्ति प्रधान वादा की अवतारणा हुई। विष्णु के अवतारों, रामकृष्ण आदि का विकास हुआ। रामानुज ने रामभक्ति का प्रचार किया।

तेरहवीं शताब्दी में घाढ़री आक्रमण ने भारतीय जनता को पदचलित कर दिया। भारतीय जनता समस्त मौलिकता, स्वातन्त्र्य और प्रगतिशीलता को भूलकर किसी तरह जीवन के शेष क्षणों को काटने के लिये सोचने लगी। देश में मुसलमानी राज्य कायम हो गया। इस्लाम का झंडा फहराने लगा। सूफी धर्म के प्रचार प्रसार में मुसलमानी शासकों ने जी तोड़ कर परिश्रम किया। डा० नाहर ने आठवीं से पंद्रहवीं शताब्दी तक के इतिहास को विश्व इतिहास में आध्यात्मिक प्रगति का युग माना है। उन्होंने लिखा है कि इसी युग में ईरान के सूफियों, भारत के वेदांतियों तथा यूरोप के रहस्यवादियों का उदय हुआ था।^२ यह युग बड़ा ही भयावह एवं भयंकर था। हिंदू धर्म पर बड़े से बड़े प्रहार हो रहे थे। सामान्य जनता की धर्म भावना दबती जा रही थी। विनाश के बान्ह हिन्दू जाति में मस्तक और क्षितिज पर सदैव विद्यमान रहते थे। हिंदुओं की जीवन नौका इन पाँच सौ वर्षों में राजनीतिक

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी ग्रंथरत्नाकर बम्बई, चतुर्थ संस्करण, १९५०, पृ० २८।

२ डा० रतिमान सिंह नाहर भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, किताब महान, इलाहाबाद, पृ० ७५२।

उत्पातों, वात्याचक्रा, उत्पीडनों के कारण निरन्तर अस्थिर ही बनी रहती थी।^१ राजनीति घम का गला दबा रही थी और घम मायन की कोशिश कर रहा था। वह जितना ही भागता राजनीति उतना ही पीछा पकड़ती। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि घम की मावात्मक अनुभूति भक्ति जिसका सूत्रपात महाभारत काल में और विस्तृत प्रवर्तन पुराणकाल में हुआ था, कभी वहीं दबती कभी वहीं उभरती, किसी प्रकार चली भर जा रही थी।^२

हिन्दू जनता अपने विनाश से बराह रही थी। घम छटपटा रहा था। राजनीति केवल इस्लाम धर्म के प्रवर्तन में थी। कभी जज़िया उठता तो कभी लगाया जाता। धार्मिक दृष्टि से देश परमुखापक्षी बन चुका था। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद अंग्रेज़ों का आगमन होता है। इस्लाम की जगह ईसाई धर्म ने ले ली। ईसाईयों ने अपने घम के प्रचार प्रसार में अथक परिश्रम किया। शेष घम के ही लिये नहीं बल्कि आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से भी अब परमुखापक्षी बना। इस प्रकार देश में घम के नाम पर अत्याचार ही अत्याचार दिखाई पड़ने लगे।

हिन्दू अपने धार्मिक जीवन का मूल वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मणों आदि में मानते थे। उनमें त्रिमूर्ति, बहुदेववाद, साम्यवाद, मूर्तिपूजा, तीर्थ, पुनर्जन्म आदि का प्रभाव था। सदियों के सघर्ष में पला हुआ समाज इनसे अभी भी बचिब न था। बौद्ध धर्म, जैन मत तथा इस्लाम का हिन्दू घम पर प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा था। भक्ति की दो धारायें, सगुण एवं निर्गुण में फूट पड़ी। शैव, शक्ति आदि मतावलम्बी अपने क्रियाकलापों से जनता को खराबोख में डाल देते थे। हिन्दू घम में उच्च आदर्शों का अभाव था। शिथिल समुदाय ही अपने को भक्ति का ठेकेदार समझता था। फलतः हिन्दी भाषा भाषियों का धार्मिक जीवन किसी नवीन आदर्श से प्रेरित न होकर निस्पन्द पड़ा रहा। हिन्दू घम में उच्च दार्शनिक एवं धार्मिक सिद्धांतों का प्रचार केवल मुद्दीमर शिक्षित व्यक्तियों तक ही सीमित था। समाज के अधिकांश में धर्म का माहुर परम्परा नहिब, रुढ़िग्रस्त जयविश्वासों और मूर्तिपूजा, बहुदेववाद तथा सर्वदेववाद के अत्यन्त गहिब और विवृत रूप से संचालित और कमकाण्डवाला रूप प्रचलित था।^३ घम का रूप विवृत एवं विवलाग था। इनमें कुत्सित असायाजिक सारहीन एवं कुरीतिया और प्रथाएँ थीं। लोग का विश्वास पडिता एवं ब्राह्मणों पर था जो घम के ठेकेदार थे। इन्हे खुद भी हिन्दू शास्त्र का ज्ञान नहीं था। दुर्भाग्यवश जनता शिखाभिहीन थी, उह प्रायश्चित्त के रूप में नाना प्रकार की असहनीय यातनाएँ दी जानी थी। रुढ़िग्रस्त परम्परा का विकास ही सदा होता रहा। इसी से इस सन्दर्भ में डा० बाण्य ने लिखा है कि बिना समझे वृद्धे मोक्ष की जाशा से शरीर को अधिकाधिक और विविध प्रकार की यातनाएँ और कष्ट देने में लोग घम की सामकता समझ बैठे थे। इस्लाम और ईसाई घम को इन्ही परिस्थितिया ने पनपने के लिय बाध्य किया। हिन्दू धर्म की कमजोरी से इनके विकास को बल मिला।

विगत पृष्ठ में हमने बैदिक काल से १८ वीं शताब्दी तक की राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक प्रेरक स्थितिया का अध्ययन किया। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि बैदिक काल से

- १ डा० सावित्री शुक्ल सत काव्य की सांस्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि, लखनऊ विश्वविद्यालय, पृ० ७६।
- २ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी समा, वाटगसी, पृ० ५७।
- ३ डा० लक्ष्मीसामर बाण्य आधुनिक हिन्दी साहित्य, हिन्दी परिषद् इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, प्र० सं० १९५४, पृ० ६।
- ४ डा० लक्ष्मीसामर बाण्य आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० १०।

लेकर दशवीं शताब्दी तक देश में 'राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक' एकता थी। लेकिन ग्यारहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक की स्थिति अत्यंत शांतिपूर्ण एवं दयनीय थी। इन आठ सौ वर्षों में देश की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक स्थितियाँ पूर्णतः विकृत हो गई थी। जनता एक प्रकार से निराशा एवं उन्मादित हो चली थी। विषट्क, विद्रोह, विनाश विध्वंस, विन्देय विमर्ग आदि का ताण्डव नृत्य चतुर्दिश दिशा में व्याप्त था। हिन्दी के भक्त कवियों ने इन विकृत स्थितियों के फलस्वरूप समुत्पन्न निपमताओं को दूर करने के लिये एक ऐसी साधना के मार्ग का द्वार उन्मुक्त किया जिससे ऊँच, नीच, कुलीन अत्यन्त सभी को प्रवेश मिले सके। एक तरफ मूर्तिपूजा का खण्डन किया गया तो दूसरी तरफ रोजा और नमाज का तिरस्कार किया गया। हिन्दू और मुस्लिम ऐक्य की भावना तत्कालीन भक्ति काव्या में दृष्टिगोचर होती है। हिन्दुओं की रुढ़िवादी नीति पर कठोर आघात का समक्ष प्रहार की सुरसरि में समाज को मोता लपाने का स्पष्ट संकेत परिलक्षित होता है।

भक्तिकाव्य की प्रवृत्तियाँ

हिन्दी साहित्य में भक्ति की परम्परा, भक्तिकाल में आकर दो धाराओं में बहने लगी। एक का नाम सगुण तथा दूसरी नाम धारा निगुण के नाम से प्रसिद्ध है। इन दोनों धाराओं में कोई प्राप्त अन्तर नहीं है। गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि 'सगुणहिं अनुग्रहिं नहिं कुछ भेद'।^१ आचार्य विनोबा भी अपने गीता प्रवचन में लिखते हैं कि सगुण और निगुण, दोनों एक दूसरे में गुंथे हुए हैं। सगुण निगुण का आधार सबका तोड़ नहीं सकता और निगुण का सगुण के रस की जरूरत होती है।^२ सगुण और निगुण वस्तुतः भक्तिरूपी वृत्त की दो शाखाएँ हैं जिससे एक ही प्रकार का फल उपलब्ध होता है और होगा भी। सगुण के अन्तर्गत राम और कृष्ण की भक्ति और निगुण में सूफी और मतनाब्य धारा आती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निगुण धारा के सत्काव्य का नाम 'निगुण भावाधारी शाखा' दिया है,^३ लेकिन इस नाम से इस धारा में भक्ति की भाँति होती है जबकि निगुण कवियों ने प्रेम के सम्मुख ज्ञान को विशेष महत्त्व नहीं दिया। आध्यात्मिक प्रेम ही उनकी साधना का मूलमंत्र है।

भक्ति की लहर देश की दो दिशाओं, उत्तर दिशि और दक्षिण से उत्तर की तरफ आग की लपट की भाँति फैल गयी। मध्ययुग इस लहर से द्रवीभूत हो उठाता। एक तरफ राजनैतिक उपलब्धता ने उत्तर भारत में भक्ति का उपयुक्त वातावरण तैयार किया तो प्रकृति ने भी राम और कृष्ण को जन्म इसी क्षेत्र में दिया। दूसरी तरफ पौराणिक धर्म के लुप्त हो जाने के कारण लोकधर्म अपना आसन झटक फूट कर बिछा रहा था। अध्यात्म के नाम पर दम्भ का भोलभाव हाँ रहा था। शक्ति का मायावाद फुफकार रहा था। भक्ति के लिये उपयुक्त भूमि तैयार हो चुकी थी। मुसलमानों के धर्म में धुआँझूत का आसन बौद्ध सिद्ध और नाथपंथियों का अनुकरण करना भक्ति को व्यापक बना दिया।

१ बाकर पाथर जोरि के मस्जिद लिया बनाय ।

तामे मुदला बाग दे क्या बहरा हुआ खुदाय ॥

—कबीर ।

२ गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ० १०१ ।

३ आचार्य विनोबा भावे गीता प्रवचन पृ० १८६ ।

४ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, बारहवाँ संस्करण सं० २१५ पृ० ६६ ।

इस प्रकार भक्ति काव्य की प्रवृत्तियाँ का अध्ययन करने का पूणत मौका मिल जाता है। काफी आलोडन विलोडन के बाद हम निम्नांकित निष्कर्ष निकालते हैं। भक्तिकाव्य के अध्ययन से निम्नोक्त प्रवृत्तियाँ दिखलाई पड़ती हैं—

- १ निजी सम्बन्ध की दृग्ता
- २ आध्यात्मिक विषयों की अभिव्यक्ति
- ३ सगुण और निगुण का समन्वय
- ४ अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति
- ५ विभिन्न प्रांतीय भाषाओं में चित्रण
- ६ जनभावना से प्रेरित काव्य
- गुरु की महानता
- ७ भावपूर्ण की प्रचुरता
- ८ आत्मसमर्पण की भावना
- ९ अत्यन्त
- ११ गीतिपरक रचनाओं का बाहुल्य

भक्ति-आन्दोलन और विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय

भारतीय सनातन दर्शन के दो विचार ही भारत के विचारकों का प्रभावित करते चल आये हैं—प्रवृत्तिमूलक तथा निवृत्तिमूलक चिन्तन। प्रथम मत के समर्थक हैं कर्मकाण्डी भीमामक तथा दूसरे मत के समर्थक हैं वेदांती। कर्मकाण्डी का लोप भारतीय धर्म सस्कृति के विनाश के साथ ही साथ हुआ। साधारण मनुष्यों के लिये यथादि अनुष्ठान भी कठिन प्रतीत होने लगा और ज्ञान मार्ग का बोद्ध मार्ग भी दुर्गम एवं क्लेशकारी बना। फलस्वरूप एक ऐसे मार्ग की आवश्यकता पड़ी जो दोनों के समन्वित रूप का प्रचार कर सके जिससे भाग्य अति गहन एवं अगम्य प्रतीत न हो सके। इसी समस्या का समाधान भारतीय भक्तों तथा सन्तों ने किया। इस मार्ग का नाम भक्तिमार्ग पड़ा। प्रसिद्ध लोकोक्ति—

भक्ति द्रविड उपजी लाए रामानन्द।

नवीर ने परगट करी सात दीप नवलख ॥

—साखी ग्रन्थ, पृ० १०, दो० १।

पद्मपुराण के प्रस्तुत श्लोक भी इस पर स्पष्ट ध्यान दे—

उत्पन्ना द्रविडे साह बुद्धि वण्टिक्के गता।

वचचित्पवचि महाराष्ट्रे गुजरे जीणता गता ॥

—पद्मपुराण।

इस प्रकार भक्तिमार्ग का प्रादुर्भाव दक्षिण में हुआ और इसे शास्त्रीय समर्थन उत्तर भारत में प्राप्त हुआ। द्रविड में भक्ति के प्रादुर्भाव पर आजकाएँ प्रकट की जा सकती हैं, क्योंकि इनके रस्म रिवाज तथा धार्मिक विश्वास सभी अवैदिक थे। रामधारी सिंह 'दिनर' के शब्दों में—अपने मूल रूप में भक्ति आर्योत्तर प्रवृत्ति थी और वह आर्यों और द्रविडों के भारत आगमन के पहले ही भारत में विद्यमान थी। चैतन्य द्रविड भारत में आर्यों से पहले आये इसलिये भक्ति तत्त्व पहले द्रविड धर्म में समाविष्ट हुआ। वैदिक आर्यों में भक्ति का प्रभुपुष्टि रूप नहीं मिलता, क्योंकि उनका धर्म, ध्वज और यज्ञ तक ही सीमित था^१। इस भक्ति मार्ग का विकास भारत की पावन भूमि पर अवाध गति से महानारत युग

१ रामधारी सिंह 'दिनर' सस्कृति के चार अध्याय, पृ० २८६।

तक होता रहा। बाद में भक्ति का क्षेत्र बहुत विवर्धित हो गया। फलस्वरूप एक ही वृक्ष को बहुत सी शाखायें निकल आयी और अपने गुरुभि सुगन्ध से भारतीय चिन्तन के इतिहास के पृष्ठों को सींचने लगी। ज्यों ज्यों चिन्तन का विकास होता गया भक्ति में क्रान्ति की कड़ी जुगुप्सी गई।

गोता की रचना के साथ ही इमने एक सम्प्रदाय का रूप धारण कर लिया जिसे पौराणिक या मागवत सम्प्रदाय कहा जाने लगा। ईसा की पहली शताब्दी से आठवीं शताब्दी तक अपने इसी रूप में चलता रहा। इसी समय मायावाद के प्रवर्तक शंकराचार्य का भारतीय धर्म साहित्य के इतिहास में प्रादुर्भाव हुआ।

निर्गुण सम्प्रदाय

निर्गुण = निर्गुण शब्द का अर्थ योग के अनुसार 'गुणों से रहित' है। व्याकरण के अनुसार 'निर्गुणो गुणेश्च' अर्थात् गुणों से शून्य या गुणों से विहीन होता है। दण्ड साहित्य में गुण शब्द ब्रह्मा के लिये प्रयोग होता है। संज्ञित साहित्य में यह व्यापक अर्थ रखता है। सगुण, सद्गुण, प्रत्यक्षा प्रभाव, धर्म, शील, दृग्गुण आदि के रूप में होता है। ब्रह्मा के अर्थ में जब इसका प्रयोग होता है तब रजस, तमस एवं सत्त्व गुणों से इसका सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। धार्मिक साहित्य में वैदिक काल से लेकर आज तक इसका प्रयोग होता आया है। कालांतर में यही निर्गुण जब अनान और अथ पराम्परा के निराकरण के निमित्त एक क्रान्ति की आवश्यकता महसूस हुई तो, सम्प्रदाय का रूप पकड़ लिया।

मध्यकालीन भारत में आतान एवं अथ परम्परा से एक तरफ मुसलमानी धर्मापत्ता का जन्म हुआ तो दूसरी तरफ समाज में शूद्रा पर अत्याचार किया। समाज की यह विषमता भारतीय धर्म साधना एवं चिन्तन के विकास में गतिरोध उपस्थित करती थी। साम्प्रदायिक ऐक्य और सामाजिक न्याय भावना को विकास नहीं मिल रहा था। इन्हीं दो बाधाओं के कारण समाज में कलह एवं अत्याचार फैल रहे थे।

वैष्णव धर्म और इस्लाम धर्म दोनों की धारा समानांतर अबाध गति से बह रही थी। सामाजिक अत्याचार से पीड़ित दोनों धर्मों के विरक्त महात्मा जनसाधारण में धार्मिक स्वच्छता के द्वारा सहानुभूति, सौहार्द और उदारता के भावों को भरने को सतत चेष्टा कर रहे थे। इस आध्यात्मिक आन्दोलन में सामाजिक ऐक्य की भावना के बीज अन्तर्निहित थे। दोनों धर्मों के समर्पित धारा की आवश्यकता थी जिसके परिणाम स्वरूप निर्गुण सम्प्रदाय का जन्म हुआ। 'इस समागम में एक ऐसे आध्यात्मिक आन्दोलन के बीज अन्तर्निहित थे, जिसमें समय की सब समस्याएँ दल हो सन्ती थी, क्योंकि इसी समागम में दोनों धर्म वाले अपने-अपने सर्वाधिकारों की भूलें समझना सीख सकते थे, और यही दोनों धर्म एक दूसरे के ऊपर शांत रूप से प्रभाव डाल सकते थे। यही समय पारर धीरे-धीरे विकसित होकर यह आध्यात्मिक आन्दोलन निर्गुण सम्प्रदाय के रूप में प्रकट हुआ।' हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म के सघर्ष से भारतीय धर्म-साधना का इतिहास नया मोड़ लेता है। इन नये माह में दोनों धर्मों की समानता ही मार्ग की बाधक परिस्थितियों से युद्ध करती है। इन समानता के भाव दोनों धर्मों के मूल तत्त्व में विद्यमान थे।

१ डा० पीताम्बर दत्त बडवाल हिन्दू काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय संपादक डा० मनीरथ मिश्र, अनुवादक परशुराम चतुर्वेदी अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, पृ० ८६।

२ डा० पीताम्बर दत्त बडवाल हिन्दू काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय संपादक डा० मनीरथ मिश्र, अनुवादक, परशुराम चतुर्वेदी, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, पृ० ८६।

किया है—‘इनके स्मात सम्प्रदाय के लिये पक्षेव अथात् शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य व गणेश की समान आराधना आवश्यक थी, और स्मृतियों द्वारा विहित जप, तप, व्रत, उपवास, यज्ञ, दान सत्कार, उत्सव,^१ प्रायश्चित्तादि का करना भी प्रत्येक मनुष्य के लिये परम कर्तव्य समझा गया था।’^२

अद्वैतवाद का सिद्धांत

शंकर के अद्वैतवाद में जगत् माया, आत्मा और ब्रह्म, इन चारों पर तत्त्व का करारा प्रहार हुआ है। इन चारों की समन्वित चारों का नाम ही अद्वैतवादा है। यह ससार भी भ्रम है। उस भ्रम का कारण अज्ञान है। अज्ञान के कारण आवरण और विलेप होता है। जहाँ ब्रह्म का स्वरूप आच्छादित होकर जगत् की प्रतीति होती है। सृष्टि का प्रवाह अनादि काल से चला आ रहा है। इस मसार के पहले असत् ससार हो चुके हैं। उनके सत्कार ही जीवा में रह जाते हैं। ससार का तो विनाश हो जाता है। शुद्ध सत्ता ही ससार का मूल कारण है। इसी सत्ता का स्वामी शंकराचार्य ब्रह्म कहते हैं। माया ईश्वर की शक्ति है। इसी माया के द्वारा मायावी ईश्वर वैविध्यपूर्ण सृष्टि की अद्भुत लीला दिखलाते हैं। मोक्षावस्था को ब्रह्मानुभूति इस मत् के प्रवक्तृ मानते हैं। केवल क्लेशों से छुटकारा पाना ही मुक्ति नहीं है।

आचार्य शंकर का अद्वैतवादा और मागवत सम्प्रदाय के प्रवक्तृओं का द्वैतवादा भारत की पावन भूमि पर समानांतर ही चल रहे थे। अद्वैतवाद ज्ञान की कठोर भूमि पर सरहों की भाँति छलांग मार कर अपनी प्रतिष्ठा कायम करना चाहता था। द्वैतवादा कछुवों की भाँति मद-मद मम्तानी चाल से अद्वैतवाद पर करारा प्रहार कर भक्ति की भागीरथी में समस्त ससार को डुबो देना चाहता था। अद्वैतवाद के विरोध में शुद्धाद्वैतवाद के प्रवक्तृ बल्लभाचार्य ने जो नारा बुलंद किया उसको मुलाया नहीं जा सकता। शंकर ने माया सम्बन्धों से मुक्त ब्रह्म को जगत् का कारण स्वीकार किया था किंतु बल्लभाचार्य ने जोरदार शब्दों में यन्त्र किया—

माया सम्बन्ध रहित शुद्धमित्युच्यते बुधैः ।

कायकारण रूप हि शुद्ध ब्रह्म न भाषिकम् ॥^३

यहाँ ब्रह्म के तीन भेद प्राप्त हैं—अविर्मितिक, आध्यात्मिक अधिदैविक। अर्थात् तत्त्व जगत् ब्रह्म और परब्रह्म। बल्लभ ने अक्षर ब्रह्म में सच्चिदानन्द ब्रह्म के जगत् का किंचिन्मात्र तिरोधान स्वीकार किया है और आनन्द से परिपूर्ण केवल परब्रह्म को ही माना है।

इस प्रकार शंकर के अद्वैत में प्रायः सभी सगुणवादी आचार्यों ने करारा प्रहार किया। शंकर का मायावाद दशन की दिव्यभूमि से उचक गया, और दूर चला गया।

दाशनिक सिद्धांत

आचार्य शंकर का दाशनिक सिद्धांत माध्यम्य एव सूत्रों में दशन की दिव्य भूमि पर दृष्टिगोचर होता है। दुःख से मुक्ति करना जीव का धर्म है। वह दुःख से छुटकारा पाने के लिये अर्हतिशय प्रयत्नशील है। अविद्या के नाश की इच्छा रखता है। इस प्रयत्न में वह आत्मा और परमात्मा का सम्मिलन चाहता है। आत्मा जीव का ही रूप है। आत्मा की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। जब तक मानव अविद्या रूपी राग से ग्रसित रहेगा तब तक उसे उपलब्ध नहीं हो सकता।

१ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सत् परम्परा, भारती मंडार, प्रयाग, प्रथम संस्करण स० २००८ पृ० ३८ ।

२ दे० रतिमान सिंह नाहर भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, पृ० १८६ ।

शंकर शाक्त पहले हैं वैष्णव पीछे । उनका दशन अद्वैत दशन के नाम से प्रसिद्ध है । उपनिषद् ही इस दशन के मूल स्रोत हैं । आपने ब्रह्मसूत्र में अपने विचारों को व्यक्त किया है । इसके अलावे आपने गीता भाषा विवेक चूडामणि, विष्णुस्रोत आदि पुस्तकों का सज्जन किया है ।

अद्वैत दशन के अनुसार इस भूमि में एक ही तत्त्व विद्यमान है, उसे ब्रह्म या आत्मा कहा जाता है । आत्मा या ब्रह्म दोना एका हैं । दाना आनन्दमय हैं । सत् + चित् + आनन्द सच्चिदानन्द ब्रह्म है । इसके अलावे वे किसी चीज की सत्यता पर विश्वास नहीं करते हैं । उनका कहना है ब्रह्म ही सत्य है—

सर्पानि रज्जु सत्तेव ब्रह्मसत्तव केवलम् ।

प्रपञ्चा धार रूपेण वर्तते तद् जगन् हि ॥^१

ब्रह्मानन्द की अनुभूति के लिये अज्ञान और माया का ज्ञान आवश्यक है । शंकर ने सत्ता को तीन भागों में विभाजित किया है—

१ पारमार्थिक सत्ता —ब्रह्म

२ प्रतिभासिकी सत्ता —रस्मी और सप

३ व्यावहारिकी ज्ञान —व्यवहार के लिये सत्य मानने की दशा ही व्यावहारिक सत्ता है ।

चैतन्य स्वरूप दो हैं—(१) चैतन्य रूप

(२) माया रूप

चैतन्य रूप में विशुद्ध सत्त्व की प्रधानता है और लेकिन माया रूप में नहीं । वहाँ रजोगुण और तमोगुण की प्रधानता है ।

कोश पाँच होते हैं—(१) विज्ञानमय } सूक्ष्म
(२) प्राणमय }
(३) मनोमय }
(४) अनयमय } स्थूल
(५) आनन्दमय कारण^२

विज्ञानमय कोष में पाँच ज्ञानेन्द्रिय और बुद्धि के सहयोग से कार्यवस्तु शरीर में उतराने होती है, वह चैतन्य जीव की सत्ता प्राप्त करता है । जगत् के कारण ही वह आनन्दमय कोष की सत्ता प्राप्त करता है । यहाँ एसी हालत में सभी लय रहता है । मनोमय कोष में मन को उत्पन्न कर सकल आत्मिक विकल्पात्मक भावों की उत्पत्ति होती है ।

अब ही इस दर्शन का प्रमुख कारण है । प्रमाण है—(१) प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि । अद्वैतवेदांत के आचार्यों ने ब्रह्म और उसकी माया से ही दशन शास्त्र की इतनी बड़ी इमारत बनायी । आचार्य शंकर ने स्पष्ट स्वीकार किया है—एकमेवाद्वितीय मेह नानास्ति, ब्रह्म सत्यं जगन्मिमांसा, मन्वरकन्विदं ब्रह्म ।

आचार्य शंकर ने भक्ति की कारण रूप सामग्री में भक्ति ही को सबसे बड़कर माना है और अपने यास्तत्रिन् स्वरूप का अनुसंधान करता ही भक्ति है—

योगधारण सा मय्या भक्तिरेव गरीयसी ।

स्व स्व रूपानुमपानं भक्तिरित्यभिधीयते ॥^३

यही शंकर का अद्वैत दर्शन है ।

१ सतवाणी त्रिशोषक, कल्याण वष २८ संख्या १, भाष २०११, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ० १४६ ।

२ बचन उपप्लाय भारतीय दान, पृ० ४३० ।

३ कल्याण, सतवाणी अब, वर्ष २८ संख्या १, भाष २०११, पृ० १४६ ।

सूफी सम्प्रदाय (प्रेमाश्रयी) का आविर्भाव

आठवीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक का युग शक्ति साहित्य मे ब्रान्ति का युग है। भारतीय धर्म साधना एवं चिन्तन मे इस ब्रान्ति से नई प्रगति आती है। इसी युग मे ईरान के सूफियो, भारत के वेदान्तिया, यूरोप के रहस्यवाणियों का उदय हुआ। भारत से मुसलमानी सत्ता के साथ ही साथ सूफी संप्रदाय यहाँ आने लगे थे। यह मत इस्लाम धर्म का अंग है। जिस प्रकार हिंदू धर्म की वैदिक कमकाण्ड की प्रतिक्रिया वैष्णव मत में देखी जाती है। उसी प्रकार सूफीमत इस्लाम धर्म की शरीयत (कमकाण्ड) की प्रतिक्रिया है। सूफीमत को फारसी में तसवुफ कहते हैं। इसका प्रवेश भारत में सातवीं शताब्दी में हुआ और इसका प्रचार विशेष रूप से १५ वीं शताब्दी तक भारत की शस्यश्यामना भूमि पर रहा। डा० नाहर ने सूफिया का उद्गम स्थान मिश्र माना है।^१

सूफी शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे विद्वान् एकमत नहीं है। आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय ने सूफी शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे जो विचार व्यक्त किया है वह विशेष रूप से द्रष्टव्य है—

“कुछ लोगों की धारणा है कि मनीना के मन्त्रिण के सामने एक सुफा (चबूतरा) था। उसी पर जो फकीर बैठते थे वे सूफी कहनाए। दूसरे लोग का कहना है कि सूफी शहर के मूल में ‘सफ’ (पवित्र) है। नियम के तिन जो लोग अपने समाचार एवं व्यवहार के कारण और से अलग एक पवित्र में छोड़े किये जायेंगे, वास्तव में उन्हीं को सूफी कहते हैं। तीसरे दल का कथन है कि सूफी वस्तुतः स्वच्छ और पवित्र होते हैं। ‘साफा’ होने के कारण उनको सूफी कहते हैं। चौथे दल के विचार में सूफी शब्द सोफिया (ज्ञान) का रूपान्तर है। ज्ञान के कारण ही उनको सूफी कहा जाता है। पर अधिकतर विद्वानों का मत है कि ‘सूफी’ शब्द वास्तव में सूफ (ऊन) से बना है। सूफगारी ही वास्तव में सूफी के नाम से ख्यात हुए। निश्चयन, वाउन, मारगोलियष प्रभृति विद्वानों ने सिद्ध कर दिया है कि वास्तव में सूफी शब्द सूफ से बना है। अनेक मुस्लिम प्रतिभाओं ने भी इसे स्वीकार किया है। अस्तु हमको यह व्युत्पत्ति मान्य है। बदतिस्मा देने वाला जान या यूहन्ना भी सूफीधारी था, पर अब सूफी का प्रयोग मुस्लिम सत या फकीर के लिये ही नियत समझा जाता है।^२”

वस्तुतः सूफी शब्द की व्याख्या सम्बन्धी उपयुक्त मायताएँ उस व्यापक अर्थ को अनिव्यक्ति प्रमाण नहीं करती जो कि सूफी धर्म का मूलोपास है। इस्लामधर्म में ‘अल्लाह’ की अनपेक्षा का प्रतिपादन किया गया है, अर्थात् उनसे अनिरिक्त अर्थ किसी को इस्लाम देवता नहीं मानता। मुहम्मद माहब अल्लाह के दूत हैं और ‘इस्लाम’ का रूप में उनके आश्रितों का जीव तब पहुँचाते हैं। इस प्रकार ईश्वर (अल्लाह) को अनन्य देवता मानते हुए भी इस्लाम धर्म में उसकी मान्यता का अन्तर्गता की पुष्टि नहीं माना गया, जीव से उसका सम्बन्ध मुहम्मद माहब के बाहरी उपदेशों से जोड़ा गया है।

सूफीमत का विशाल सूत्र इस्लाम के मूल में है। इस्लाम एक नया मजहब बन कर आया जिसमें शैतान को भी ईश्वर से मर्यादित बताकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि ईश्वर परम सत्ता

१ डा० रजिमान गिह नाहर भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, पृ० २३५।

२ चन्द्रबली पाण्डेय तमगुफ अथवा सूफीमत, गस्तवती मन्दिर, बनारस, द्वितीय संस्करण १९४८, पृ० १।

नहीं हो सकता। ईश्वर अनन्य देवता हो सकता है। भारतीय चिंतको न ज़म प्रकार आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध जोड़ा है उसी प्रकार इस धर्म में भी अल्लाह और मुहम्मद को समन्वित किया गया है। अल्लाह अन्तर्यामी बन जीवधारी के हृदय पर आसीन हो गया। यही सूफी धर्म है। इसके विकास की कहानी के सम्बन्ध में भूतकथ नहीं है। फिर भी चिंतको ने सूफ़ी विवेचन के आधार पर अन्तर स्पष्ट करने की भरपूर चेष्टा की है।

सातवीं शताब्दी में अरब की पवित्र भूमि धर्म के नाम पर मानव रक्त से रजित थी। धर्म के ठेकेदार शासन के ठेकेदार भी बनने के इच्छुक थे। मुहम्मद साहब ने पावन उपदेश उनके अनुयायी भूलते जा रहे थे और अहर्निश पारस्परिक संघर्ष में रत थे। इस्लाम का उज्ज्वल प्रकाश क्षीण होता जा रहा था। खलीफा का पद भयंकर संघर्ष का कारण बन गया। मुहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात् इस धर्म की पतनावस्था बिल्कुल ही अल्पनीय थी। चित्तक चित्तन चक्र की घुरी को परिचालित कर मुहम्मद साहब के उपदेशों का पुनर्मूल्यांकन कर उनके सम्मीर एवं गूढ़ रहस्यों को जन साधारण में प्रचार करने लगे। इस चित्तन के प्रतिक्रिया स्वरूप सूफी धर्म का उदय हुआ।

सूफीमत के उद्भव के सम्बन्ध में डा० सावित्री शुक्ल का मत उल्लेखनीय है—“कुछ सूफी चिन्तका का कथन है कि सूफीमत का आदम में बीजवपन, मोह में अकुर, इब्राहीम में कली, मूसा में विकास, मसीह में परिपाक एवं मुहम्मद में मधु का फलागम हुआ। एक और प्रवाद है कि सूफ़ियों के आठ गुणों का आविर्भाव क्रमशः इब्राहीम, इस्माक़ अमूव, जकरिया, यहीमसा ईसा एवं मुहम्मद साहब में हुआ। इसी प्रकार अय मत भी प्रचलित है। सारांश रूप में हम यह कह सकते हैं कि सूफी सम्प्रदाय का सम्बन्ध शायी विचारधाराओं से प्रभावित इस्लाम धर्म से है^१।

सूफी सम्प्रदाय के भेद

सूफी सम्प्रदाय कई एक उपसम्प्रदायों में आगे चलकर विभक्त हो गया। ये सभी उपसम्प्रदाय इस्लाम मतानुगामी लोगों में सूफी धर्म का प्रचार एवं प्रसार करते रहे। अब इनमें करामतें दिखाने की प्रवृत्ति बढने लगी थी। सूफी धर्म के मूल में जो बातें सन्निहित थी, इस युग में आकर विस्मृति के गर्त में जाने लगीं। परशुराम चतुर्वेदी ने इस बात को स्वीकार किया है कि भारत में सूफी मत का चिर-स्थायी प्रभाव इन्हीं उपसम्प्रदायों द्वारा पड़ा^२। अब हम उन्हीं सम्प्रदायों का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे। वे निम्नोक्त हैं—

- (१) चिश्ती सम्प्रदाय
- (२) सुहरवर्दी सम्प्रदाय
- (३) कादरी सम्प्रदाय
- (४) नक्साबन्दी सम्प्रदाय
- (५) शक्तारी सम्प्रदाय
- (६) गुनदी सम्प्रदाय
- (७) मदारी सम्प्रदाय
- (८) मौलवी सम्प्रदाय

१ डा० सावित्री शुक्ल 'सतनाथ की सांस्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ० १८३।

२ परशुराम चतुर्वेदी 'उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ० ७१।

सुहरवर्दी सम्प्रदाय

सुहरवर्द नगर के नाम पर ही इस सम्प्रदाय का नाम सुहरवर्नी या सुहर्वादिया सम्प्रदाय पड़ा। सवप्रथम सुहरवर्दी सूफी ही भारत की पवित्र भूमि में प्रवेश किये और अपने ख्याति प्राप्त सम्प्रदाय की स्थापना की। सुहरवर्दिया का प्रथम प्रचारक जिहाउद्दीन अबुल नजीब, अब्दुल कादिर, इब्न अब्दुला माने जाते हैं जिनका जन्म सुहरवर्द नगर में सन् १६५४ हुआ था और जिनकी मृत्यु सन् १२२५ में बगदाद नगर में हुई थी। इन्होंने तथा उनके भतीजे शिहाबुद्दीन (१२०२-१२६१) मिलकर इस सम्प्रदाय की नींव डाली थी और इसका प्रचार भी किया था। भारत में इस सम्प्रदाय का प्रचार विशेष रूप से बहाउद्दीन जकारिया ने किया। ये शिहाबुद्दीन के ही शिष्य थे और मुलतान के निवासी थे। आप मक्का मदीना से हज्र करके लौट रहे थे कि बगदाद में शिहाबुद्दीन से उक्त सम्प्रदाय की खाना ले ली। इसके बाद भारतीय सुहरवर्दियों का इस सम्प्रदाय के प्रचार एवं प्रसार में हाथ रहा। सत्यजित् जलालुद्दीन सुर्ख पीर का नाम मुलाया नहीं जा सकता। आपने सिंध, गुजरात, पंजाब आदि प्रांतों में घूम घूम कर प्रस्तुत सम्प्रदाय के सिद्धांतों का प्रचार किया। इनके पौत्र जलाल इब्न महमूद कबीर को मखदूम जहानिया की उपाधि से विभूषित किया जाता है। यह हज्र करने के बड़े शौकीन थे। धार्मिकता इनकी नस-नस में व्याप्त थी। अथ सुहरवर्दियों ने अपन परिश्रम करके बंगाल, बिहार और हैदराबाद में भी सूफी सम्प्रदाय का प्रचार किया।

इस प्रकार यह उप-सम्प्रदाय समस्त भारत में फैल गया। राजा महाराजाओं तक ने दीप्ता ली और इस सम्प्रदाय के सिद्धांतों के प्रचार में जो योगदान दिया उसे मुलाया नहीं जा सकता है। हैदराबाद के निजाम का आसफजाही वंश भी इसी उपसम्प्रदाय का अनुयायी कहा जाता है।^१ शेख तकी अब्दुल अकबर और बलीउल्ला नामक कवि भी इसी सम्प्रदाय के अनुयायी थे।

चिश्ती सम्प्रदाय

ख्वाजा अब्दु अब्दुला चिश्ती इस उपसम्प्रदाय के प्रवक्तृक थे। इन्होंने इस सम्प्रदाय का नाम चिश्ती सम्प्रदाय रखा था। लेकिन भारत में आप द्वारा इस सम्प्रदाय का प्रवेश नहीं हुआ। भारत में मुहनुद्दीन चिश्ती द्वारा यह सम्प्रदाय प्रादुर्भूत हुआ। आप इरान प्रदेश के निवासी थे। शहाबुद्दीन गोरी की सेना के साथ आपका प्रवेश हुआ। सूफी आचार्यों के साथ शास्त्रार्थ करते हुए आप कुछ दिन तक लिली और पंजाब में रहे बाद में अजमेर को चले गये। यही चिश्तिया सम्प्रदाय का प्रचार करते हुये। मृत्यु को प्राप्त हुए। आपका प्रभाव हिन्दुओं और मुसलमानों में बराबर था। आपकी योग्यता की मनी सराहना करते थे और लोहा मानते थे। आप एक ऐसे फकीर थे जिसके सामने होने पर सर अनायास ही झुका स भुङ्ग जाता था। आपकी प्रसिद्धि का पता सिर्फ इसीसे चल जाता है कि आपके मरने के बाद अजमेर में जो दरगाह बनी, वहाँ आज भी प्रति वर्ष ६ दिनों तक मेला लगता है। अपार जनसमूह चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान आपके दरगाह के दर्शनार्थ उमड़ पड़ता है। इस दरगाह के बारे में परशुराम चतुर्वेदी का मतलब्य द्रष्टव्य है। 'इनके दरगाह के निकट प्रतिदिन प्रत्येक तीन घंटे पर संगीत हुआ करता है और अच्छे से अच्छे गवैयें आकर उसमें भाग लेते हैं। बनिया लोग नित्य प्रति अपनी कुजिया टूकान खोलने के पहले दरगाह की सीढ़िया पर लेते हैं और उसके निकट हड़े से भात भी लुटाया जाता है। कहा जाता है कि उक्त दरगाह तक सम्राट अकबर भी नये पैर गये थे'। चिश्तियों का प्रचार उत्तरी एवं दक्षिणी भारत में था। आगे चलकर इस उपसम्प्रदाय में भी दो दल हो गये—
चिश्तिया और खिर चिश्तिया।

१ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सन्त परम्परा पृ० ७३।

२ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ७२।

कादरी सम्प्रदाय

इस उपसम्प्रदाय के प्रवर्तक बगवान् के निवासी शेष अब्दुल कादिर जोलानी थे। उनका समय स० ११३५ स० १२२३ है। इस शाखा का भारत में प्रचार १६३६ में हुआ। सयद बन्दगी मुहम्मद गोस इस सम्प्रदाय के प्रचारक थे। आप बड़े ही धर्मात्मा व्यक्ति एवं योग्य तथा विद्वान् वक्ता थे। आज भी काश्मीर में आपकी विद्वत्ता स्तुत्य है। यही कारण है कि आप वहाँ एक प्रमुख सत के रूप में पूजे जाते हैं। काश्मीर प्रदेश में इस धर्म का प्रचार आपके शिष्य मिया मोर के शिष्य मुल्ला शाह ने किया। मिया मोर और मुल्ला शाह भी बड़े ही योग्य एवं विद्वान् पुरुष थे। बड़े-बड़े राजा महाराजा भी इस मत में दीक्षित थे। शाहजाना द्वारा शिकोह भी इसी शाखा का अनुयायी था और उसने 'रिसाल-ए-हकनुमा' तथा सूफी नात औलिया की रचना फारसी में की थी।^१ शाह जलाल और मखदूमशाह ने बगाल बिहार में इसका प्रचार किया। बगाल और बिहार में आज भी सूफीमत के मानने वाले पाये जाते हैं।

नक्साबन्दी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक जरी का काम करते थे। जरी के काम करने वाले की तरह तरह के नक्शे बनाने की आवश्यकता पड़ती है फलस्वरूप ये नक्साबन्द कहलाये और इनका मत नक्साबन्दी सम्प्रदाय के नाम से विख्यात हुआ। इस सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक रवाजा बहाउद्दीन नक्साबन्द थे। ये तुर्किस्तान के रहने वाले थे। अतः नक्साबन्दी सम्प्रदाय का संप्रथम प्रादुर्भाव तुर्किस्तान में हुआ। भारत में तो ख्वाजा मुहम्मद बाकी विल्लाह बेरग ने इस मत का प्रचार किया। इनका मृत्युकाल स० १६६० है। शिद्दात् प्रचार का श्रेय शैख अहमद फारुखी 'सरहिदी' को देते हैं। इनका देहांत स० १६८२ में हुआ था। परशुराम चतुर्वेदी का मत है कि यह हजरत मुहम्मद के अनन्तर दूसरी सहस्राब्दी के आरम्भ काल के प्रधान धर्म सुधारका में गिने जाते हैं। फिर भी इनके द्वारा प्रतिपादित बातों का प्रचार यहाँ मफलतापूर्वक नहीं हो सका।^२ यह सम्प्रदाय सबसाधारण के लिये नहीं था। अतः इसका प्रचार बहुत कम हो सका। केवल शिषित वर्ग तक ही सीमित रहा।

अन्य उप-सम्प्रदाय

विगत पृष्ठों में हमने सूफी धर्म साधना के प्रतिष्ठित उपसम्प्रदायों का आलोचन किया। पर जिन चार उपसम्प्रदायों के बारे में अध्ययन किया गया वे ही विशेष रूप से प्रचार व प्रसार पा सके थे। मदारिया, जुनीनी और जलाली सम्प्रदायों के बारे में कोई विशेष बातें नहीं मालूम हैं। इन सभी उपसम्प्रदायों में किसी प्रकार का विरोध नहीं था। यदि विरोध था भी तो प्रमुख गुरुओं की विशेषता एवं साधना के फलस्वरूप गौण रूप में। एक शाखा का व्यक्ति दूसरे सम्प्रदाय में बिना हिचक दीक्षित हो जाता था। राजकीय सहायता सभी को प्राप्त हुई। फलतः सभी का भारत में सबधा प्रचार हुआ। इन लोगों में बदतरपन अधिक था और अपने सम्प्रदाय में दीक्षित करने के लिये हिन्दुओं के साथ व्यवहार अच्छा नहीं था। सूफी आचार्य विद्वान् हात और अपन उपदेशों को बड़ी सरलता से समझते थे। इनका हृदय पवित्र था। ईश्वर के प्रति अगाध भक्ति, बाह्याचरण की पवित्रता, विश्ववस्तुत्व की भावना व पारम्परिक सम्बन्ध का स्रोत इनकी धर्मनियमों में तीव्र गति से प्रवाहित होता था। व्यवहार कुशलता ही इनकी लोकप्रियता का कारण बनी। अतः सर्वसाधारण ने इन्हें पीर, 'शकरगज', बाबा दादागज आदि उपाधियाँ

१ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ७४।

२ वहीं, पृ० ७५।

जीवितावस्था में ही प्रदान की। 'परिणाम स्वरूप हमें आज पता चलता है कि भारतीय मुसलमानों के कम से कम दो तिहाई भाग में वे लोग हैं जो किसी न किसी सूफी शाखा के भीतर भी आ जाते हैं'।

सूफी सम्प्रदाय का प्रभाव

भारतीय साहित्य और समाज पर उपर्युक्त विवेचित सम्प्रदायों ने पर्याप्त प्रभाव डाला। हिन्दी साहित्य के उद्भव के साथ ही सूफी सम्प्रदाय की प्रेमोपासना का प्रभाव परिलक्षित होने लगता है। फलस्वरूप हिन्दी साहित्य में प्रेमाराधनात्मक साहित्य परम्परा का विकास हुआ। प्रेमगाथा की परम्परा का जब आविर्भाव हुआ। इसके बारे में किसी ने ठोस मत नहीं दिया है लेकिन यह तो स्पष्टरूपेण स्वीकार किया जा सकता है कि इसका निशप प्रचलन महाकवि जायसी के पद्मावत के सृजन के बाद में ही हुआ। पद्मावत के कतिपय उल्लेखा से यह ज्ञात होता है कि इस रचना के पूर्व भी बहुत से सूफी कवि अपनी प्रेम की पीर सुना चुके हैं। 'फिर भी हम गाथा की परम्परा के प्रारम्भ होने का समय सतमत के आविर्भाव काल से पहले जाना हुआ नहीं दीख पड़ता। कम से कम हिंदी अथवा उर्दू में इस प्रकार की रचना करने वाले सूफी कवि विक्रम की १५वीं या १६वां शताब्दी से पुराने नहीं मिलते और सत परम्परा में अब तक मिलने जाने वाले प्रथम व्यक्ति जयदेव का जीवन काल विक्रम की १३वीं शताब्दी में पड़ जाता है'।^१ यही यह बताना देना विषयान्तर नहीं होगा कि निगुण मत के आदि प्रतिष्ठाता के बारे में विद्वानों में मतभेद से लगता है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी^२ को, डा० विनय मोहन शर्मा नामदेव को^३ डा० सावित्री शुक्ल रामानंद^४ को और परशुराम चतुर्वेदी जयदेव^५ को निगुण मत के आदि प्रतिष्ठाता मानते हैं।

सूफी साधना की अवस्थाएँ

सूफी मत में सबसे प्रमुख भावना प्रेम है। सूफिया की मुख्य साधना है क़ल्ब (हृदय) और रुह द्वारा नक्स। इन्द्रियो पर रोब गात्रिक करना आध्यात्मिक प्रेम इनकी पूँजी है। आलमलाहूत में आत्मा में आत्मा और परमात्मा का चिरंतन प्रणय, मिलन की उपलब्धि इनकी साधना का मुख्य उद्देश्य है। इस साधना में आत्मा आशिक है और परमात्मा मासूक। दोनों के मधुर सम्बन्ध में जीव को मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस साधना में साधक अपने को पुरुष और परमात्मा को स्त्री मानता है। दाम्पत्य के मधुर भावभूमि पर इसकी चार अवस्थाएँ हैं—

- (१) शरीयत
- (२) तरीकत
- (३) हकीकत
- (४) मारिफत

शरीयत—धर्म ग्रन्थों के विधि नियम का विधिवत पालन अर्थात् भारतीय सत्त्वज्ञान के अनुसार कर्मकाण्ड। यह हमारे यहाँ का कमकाण्ड है।

१ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरीभारत की सत परम्परा, पृ० ८०।

२ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ० ८०।

३ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ३१।

४ डा० विनयमोहन शर्मा हिन्दी को मराठी सता की देन पृ० ५५ ५३।

५ डा० सावित्री शुक्ल सत काव्य की सांस्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ० २६।

६ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ० ८०।

भक्ति का स्वरूप और उसका विकास

सरोक्त—यह उपासना काण्ड है। इसमें बाहरी क्रियाकलापों से परे होकर केवल शुद्ध हृदय से परमेश्वर का ध्यान करना बताया जाता है। हृदय की शुद्धता इसका प्रधान तत्व है।

हकीकत—अर्थात् भक्ति और उपासना के प्रभाव से सत्य का सम्यक् बोध, जिससे साधक तत्व दृष्टि सम्पन्न और त्रिबालन होता है। इसे नानकाण्ड की सत्ता दी जा सकती है।

मारिफत—यह अवस्था जब कठिन व्रत और मौनावस्था से साधक की आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है। इसे मुक्तिकाण्ड कहा जा सकता है।

सूफी साधकों की भक्ति

प्राचीन काल में सूफिया में बहुदेववाद की उपासना प्रचलित थी। कालक्रमानुसार इस उपासना पद्धति में बहुत मतभेद दिखाई पड़ने लगा। फनस्वरूप हजरत मुहम्मद ने एकमात्र अल्लाह में विश्वास करने का आदेश दिया। सभी से एकेवरवाद का सिद्धांत सूफी धर्म साधना के इतिहास में प्रचलित हो गया। वही जगत् का पालक एवं सहायक और नियामक है। इसलिये उसके प्रति आत्म-समर्पण की भावना का विकास हुआ। उनके अनुसार अल्लाह, सर्वशक्तिमान किन्तु पारशीय शासक है, जो अपने माग से विपन्न हो जाने वाला का कठोर दंड की व्यवस्था किये हुए है। दंड की व्यवस्था से भय की उत्पत्ति होती है, और भय में प्रेम के बीज सन्निहित हैं—

बिनय न मानत जलामि जह, गए लीन दिन बीति ।

बोले राम सकोप तब, भय बिनु हाय न प्रीति ॥

अतएव उसकी दयानुता में विश्वास कर उससे प्रतिभक्तिभाव प्रदर्शित करना और उसकी महत्ता सूचित करने वाले शब्दों में नित्य प्रायना करना वे इसे उत्पन्न आवश्यक और महत्वपूर्ण समझते थे। कहा जाता है कि हजरत मुहम्मद साहब ने उस अल्लाह के आदेशों को सदैवबद्ध ग्रहण किया और इसी आदेशों को मनुहीत कर कुरान की रचना की गई। कुरान इस्लाम धर्म का वेद है।

सूफीमत इस्लाम धर्म का जग होने के कारण प्रायः उन सभी मुख्य बातों को स्वीकार करता है जिनका वर्णन कुरान गरीफ में है। इस मत में भी माया, ईश्वर और जगत् के बारे में विशेष रूप से आलाइन बिलोइन किया गया है। एक परमात्मा के प्रश्न को लेकर ही सूफिया का तीन दलों में विभक्त हो जाना संभाव्य है। वे निम्नांकित हैं—

१—शुद्दिया

२—बुजुदिया

३—इजादिया

शुद्दिया परमात्मा का जगत् से सबंध पर मानते हैं। प्रतिगिम्ब की भाँति सारी चीजें दिख लायी पड़ती हैं। ऐसा उनका विश्वास है कि इस सृष्टि और ब्रह्म में विशिष्टाद्वैतवाद की भाँति जगत् अशी का सम्बन्ध नहीं बल्कि गिम्ब प्रतिगिम्ब का सम्बन्ध है। निम्बार्क भी इसे ही मानता है। बुजुदिया विचारधारा वाले परमात्मा के अनिरिक्त किसी और का अस्तित्व नहीं स्वीकार करते हैं। परशुराम चतुर्वेदी ने इस एक तत्ववादी शक्त का प्रयोग बतलाया है।^१ इजादिया विचारधारा के सूफी सत ईश्वर का अस्तित्व सृष्टि से भिन्न मानते हैं। अल्लाह या ईश्वर सर्वशक्तिमान है। मनुष्य उससे प्रेम नहीं करता बल्कि भय के कारण उसके प्रति श्रद्धा व्यक्त करता है। यह भय प्रारम्भ काल से ही उसमें

^१ गोस्वामी तुलसीदास 'रामचरित मानस', ज्योध्याकाण्ड, दो० ५७, पृ० ५००।

^२ परशुराम चतुर्वेदी सूफी साधकों की भक्ति, कल्याण, भक्ति अर्थ, वर्ष ३२, सं० १, माघ २०१४, पृ० ५६६।

व्यास था। इस मत में भय की भावना की प्रधानता के कारण ही ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है।

१. इस्लाम और सूफी धर्म के साधकों की भक्ति में यही अन्तर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। एक इस्लाम धर्म को मानने वाला अल्लाह से भयभीत होकर श्रद्धा उस परमात्मा के प्रति व्यक्त करता है। दूसरा वही अनुराग की मृष्टि करता है। सूफी परमात्मा का अपना परम आत्मीय सम्बन्धता है और अपने को उससे वियुक्त या बिछुड़ा भी अनुभव करता है। वह अपने के विरह में तड़फा करता है और उस प्राप्त करने के लिये आकुल और व्याकुल हो जाता है। यह साधना सन्ध्या से इसी तरह चली आ रही है। मिलन की आकांक्षा में वह पागल हो जाता है। जब तक उसकी यह आकांक्षा पूरी नहीं होती उसे शान्ति नहीं मिलती।

इस प्रकार हम सूफी साधकों की भक्ति को 'रागानुगा' की कोटि में रख सकते हैं। प्रेम की प्रधानता ही उसकी भक्ति की कुञ्जी है। परमेश्वर के प्रति परानुरक्ति की भावना से उसमें प्रेमलक्षणा भक्ति के लक्षण विद्यमान प्रतीत होते हैं। रागानुगा भक्ति के दो रूप भूषा भक्ति में निखलाई पड़ते हैं। रागानुगा भक्ति के बाह्य लक्षण उनके श्रवण एवं कीर्तन से स्पष्ट होता है तथा अन्त साधना के अभ्यास से जब पूर्णरूपेण हृदय का परिवर्तन हो जाता है तो हमारी मनोवृत्ति में आप ही आप परिवर्तन हो जाता है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप हम अपने इष्टदेव को पिता, मित्र, स्वामी, सखा और पति के रूप में देखने लगते हैं। लेकिन सूफी साधकों की भक्तिभावना में अर्चन, दास्य वन्दन, साध्य और पाद सेवन को कोई स्थान नहीं है। श्रवण का भी वह रूप नहीं है जिसका अध्ययन आपने नवधा भक्ति के प्रसंग में किया है। आत्मनिवेदन भी इस भक्तिभावना में यदि प्राप्य है तो वह केवल पति पत्नी या प्रेमी प्रेमिका के रूप में ही। इस तरह सूफियों की कुछ अपनी निजी विशेषताएँ हैं।

सूफी साधकों की भक्ति के भेद

सूफियों की भक्ति साधना में केवल अन्त साधना के ही विविध रूप हैं, जिनसे उनकी अन्तवृत्ति के एकान्त निष्ठ बनने में सहायता मिलती है। अन्त साधना के वैविध्य रूप के कारण इसे निम्न कोटियों में रखा जा सकता है—

१—तिलवत

२—अवराद

३—समा

४—जिक्र

तिलवत—यह श्रवण का ही रूप है। नवधा भक्ति के श्रवण और इस श्रवण में केवल इतना ही अन्तर है कि एक में सुनना से ही मतलब है चाहे वह प्रभु का गुण किसी प्रकार सुना जाय। लेकिन तिलवत में कुरानशरीफ का पुष्पानुवाद दूसरे से सुनना नहीं है बल्कि स्वयं धर्म ग्रन्थ का पारायण करना ही भाग्य है। साधक प्रभु की सत्ता में विश्वास कर उनके गुणा का नियमित पाठ करता है।

अवराद—तिलवत की भाँति ही अवराद सूफी भक्ति भी है। दोनों में पारायण को प्रधानता है। अवराद में चुने हुए भक्तों का दैनिक पाठ किया जाता है।

समा—सूफी भक्ति में कीर्तन को समा कहा जाता है। इसका शाब्दिक अर्थ सुनना है। इसमें श्रवण की भाँति केवल फर्ज अदायगी नहीं की जाती बल्कि तल्लीनता इसका प्रधान गुण है। इस्लाम ने सगीत का विराध किया था लेकिन सूफी-साधना में सगीतादि को सुनकर तल्लीन हो जाने को विशेष महत्व दिया जाता है। चिन्तिया और वादरिया सम्प्रदाय में इसका विशेष प्राधान्य है। मौलवी सम्प्र

दाय में इने प्रमुख साधना के रूप में अपनाया गया है। समा का आमोजन उसी के समय किया जाता है।^१ समा की प्रशंसा में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का मत है कि समा के अवसरों पर उठने वाली मधुर ध्वनि में लीन हो जाने वाला भी अन्तर्दृष्टि आप से आप खुल जा सकती है और वह प्रियतम के निकट भी चला जाता है।^१

जिज्ञा—सूक्तियों की भक्ति-साधना में जिज्ञा का स्मरण का भी विशेष स्थान है। जिज्ञा का शाब्दिक अर्थ स्मरण है। इससे दो वेद हैं—जिज्ञाजली जिज्ञा क्षीणी। जिज्ञा सूफी एक प्रकार का गुप्त जप है। जिज्ञा जली भक्तिभावना में आसन की विशेष महत्ता है। जिज्ञा जली के साधक गुप्त जप के समम दाहिने बायें मुड़ा करते हैं।

सगुण सम्प्रदाय

सगुण सम्प्रदाय का आविर्भाव

ब्रह्म सम्बन्धी गम्भीर चिन्तन का प्रारम्भ वेदों से ही देखा गया है। वहाँ यदि एक ओर उपा, ब्रह्म आदि प्राकृतिक तत्वों की स्थूल पूजा भावना है तो पुरुष की सूक्ष्म व्यञ्जना भी मिलती है। उपनिषद् में दोनों स्वर स्पष्ट हो गये हैं। सन्तों को यदि निर्गुण की भावनाएँ उपनिषदों तथा पुरवर्ती ग्रन्थों के विरासत रूप में मिली तो भक्ता ने भी उसी उद्गम स्थल से अपने सगुण वाद की स्रोतखिन्ती पाई। प्रश्न उठना है कि ब्रह्म है क्या? सगुण या निर्गुण? जिस प्रकार निर्गुण ब्रह्म का स्रोत वेदों से प्रवाहित है उसी प्रकार सगुण ब्रह्म का भी वही उद्गम स्थल है। ब्रह्म की सूक्ष्मता में विश्वास करते हुए भी वहाँ से उसे स्फारमक भूमिवा पर सडा करने की चेष्टा की गई है। इस प्रवृत्ति ने भगवान् की श्रिष्ठ शक्तियों के आरोप को सहज सुगम बनाकर उसे मानव जीवन के पग से, पगू मिलाकर चलने का सुन्दर अवसर दिया। रूपा के माध्यम से अरूप का परिचय दिया जान लगा और परमात्मा भव अवतार लेकर मानव लीलाएँ करने लगा।^२ इस प्रकार सगुण एक निर्गुण दोनों का उद्गम स्थल वेद ही है। यही से निर्गुण एक सगुण की धारामें प्रवाहित हुई। कालान्तर में जब भगवत् धर्म की भावभूमि पर अवतारवाद की कल्पना की गई तो उपासना विधि में अन्तर आ गया। यही अन्तर सगुणोपासना के उत्थान एक प्रसार प्रचार में सहयोग देता है। कृपाण वंशी राजाजी के युग में सगुणोपासना का पथ विशेष विस्तृत हुआ गया।

सगुण मत ने भक्ति के द्वितीय उत्थान काल में सम्प्रदाय के रूप में परिवर्तित हो गई। भक्ति की धारा दमिण से प्रवाहित होकर उत्तर भारत की शस्य श्यामलाम् भूमि पर कई एक धाराओं में अबाय गति से प्रवाहित हुई। इस भक्तिधारा के प्रवाह में आलवार और आचार्य भक्ती का योगदान विशेष प्रशंसनीय एक स्तुत्य है। आलवार सत्ता से यह धारा प्रस्फुटित होकर वैष्णव आचार्यों के साथ साथ अपने कई रूपों में विहाम पाती है। आचार्य शंकर का मायावाद ज्ञान का गम्भीर चिन्तन प्रस्तुत कर भगवद्भक्ति को उपलब्धि प्रदान करता था, परन्तु भक्ता न अनुपम रग से रजित अपनी मधुर

१ परशुराम चतुर्वेदी सूफी साधकों की भक्ति, कल्याण, भक्ति अक, वर्षा ३२, स० १, माघ २०१४, पृ० ५६८।

२ सिद्धिनाथ त्रिवारी निर्गुण वाक्य-अर्थ, अजन्ता प्रेस, पटना, प्रथम संस्करण १९५३, पृ० ६५।

३ लीलावतार २४ है—चतुर्जन नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नर-नारायण, वसिष्ठ, दत्तात्रेय, ह्यं शीर्ष, हम ध्रुव प्रिय, ऋषभ, पृथु गृसिह, कूर्म, धन्वतरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, राघवेन्द्र, व्यास, वत्सराम, बुद्ध और भक्ति।

४ सिद्धिनाथ त्रिवारी निर्गुण वाक्य-अर्थ, अजन्ता प्रेस, पटना, प्रथम संस्करण, १९५३, पृ० ८० ६६।

वाणियों में यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि, भक्ति सगुण ही सुलभ है और भवजनाहितकारी है तथा भक्ति हृदय मस्तिष्क और शरीर का त्रिवेणी मगम है। भक्ति मानव अतन्तल का वह तत्त्व है जो आत्मा (शरीर) परमात्मा (अशरीर) को निबट ला देता है। निगुण की बढोरता ही सगुण का आवाहन करती है। सती की सागना के सार तत्त्व भक्तों की भावना के भक्ति तत्त्व के सामने टिक न सके। इन भक्तों की भावुकता ने भक्ति के उदर में पान की उपस्थिति मानी। जाचाय विनोबा भावे तो भक्ति रूपी लता में ज्ञान के पुष्प खिलने की कल्पना करते हैं।^१ अतः वण्णव भक्ति साधना में भक्ति ज्ञान का चरम लक्ष्य है। यही वण्णव धर्म साधना का मूल स्रोत है जिसके ऊपर में विभिन्न सम्प्रदाय सगुण साधना के पुष्प की भाँति प्रस्फुटित हो रहे थे। वे निम्नान्वित हैं—

सम्प्रदाय	संस्थापक	काल
१ श्रीसम्प्रदाय	रामानुजाचाय	विशिष्टाद्वत बारहवीं शताब्दी
२ हंस या सनकादि सम्प्रदाय	निम्बार्काचार्य	द्वैताद्वत बारहवीं शताब्दी
३ ब्रह्म सम्प्रदाय	भम्बाचाय	द्वैतवाच चौदवीं शताब्दी
४ रद्र सम्प्रदाय	विष्णु स्वामी	शुद्धाद्वत " "
५ चैतन्य सम्प्रदाय	चैतन्य (बलदेव गोविंद)	द्वैताद्वत सोलहवीं शताब्दी
६ पुष्टि सम्प्रदाय	वल्लभाचाय	शुद्धाद्वत " "
७ रामानन्द सम्प्रदाय	हितहरिदास	" "

विष्णुस्वामी के रद्र सम्प्रदाय की परम्परा में ही वल्लभाचाय का प्रादुर्भाव हुआ था। उन्होंने सोलहवीं शताब्दी में पुष्टि सम्प्रदाय की स्थापना की।

श्री सम्प्रदाय

श्री सम्प्रदाय के संस्थापक वण्णव मत के आचार्यों के जिलामणि श्रीरामानुजाचाय थे। आपने भक्तिभावना को सुसंगठित एवं शास्त्र सन्मत साधना का रूप प्रदान किया। इनका जन्म मद्रास के निकट १०१७ ई० में तेण्डुदूर नामक गाँव में हुआ था।^२ इनके पिता का नाम केशव तथा माता का नाम कान्ति मती था। सर्वप्रथम ये शंकर मतानुयायी गान्ध प्रकाश की शिष्य थे लेकिन गुरु शिष्य में अद्वैतवाद के मूल सिद्धान्तों के सम्बन्ध में मतभेद हो गया। परिणाम स्वरूप आपने उनका शिष्यत्व त्याग दिया और यमुनाचाय जी का शिष्यत्व ग्रहण किया। उनके निघन के पश्चात् भारत की पावन भूमि के समस्त तीर्थों का भ्रमण कर श्रीसम्प्रदाय की स्थापना की। इन्होंने अपने मित्रताओं का प्रतिपादन करने के लिये अनेक ग्रन्थों का सृजन किया। आपका व्यक्तित्व बहुत ही प्रभावशाली था। आपने व्यक्तित्व के बारे में डा० नाहर ने लिखा है कि रामानुजाचाय का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि देखते-देखते दमिण

१ आचार्य विनोबा भावे जीता प्रवचन, अनुवाक हरिमाऊ उपाध्याय अपिल भारत सर्वसेवा सघ, वाणी, संस्करण १६, १९६०, पृ० १८०।

२ डा० रतिमान सिंह नाहर ने १०१६ माना है।

रतिमानसिंह नाहर भक्ति आंदोलन का अध्ययन, किताब महल, इलाहाबाद पृ० १७०।

भारत के कुछ भागों में प्राचीन आलवार भक्तों के युग का सा वातावरण पुनः सृजित हो उठा।^१ उस समय दक्षिण भारत शैव और वैष्णव भक्तों का प्रमुख स्थल था। रामानुजाचार्य को इस शैव और वैष्णव के द्वन्द्व का दण्ड भुगतना पड़ा। तत्कालीन चोल सम्राट कुल्लोतुग प्रथम वैष्णव भक्ता पर खूब अत्याचार करता था। वह वैष्णव भक्ति साधना के प्रचार में अवरोध उपस्थित करता था। रामानुजाचार्य के साथ भी उसका व्यवहार बड़ा कठोर रहा। अतः वे श्रीरंगम छोड़कर उत्तर भारत की तरफ बढ़े। रास्ते में वनारस का हायसल राजाने उनका काफी सम्मान किया।

प्रचार कार्य

भक्ति साधना के प्रचार के निमित्त आपने दो प्रधान कार्य किया—तीर्थ यात्रा और साहित्य सृजन। तीर्थ यात्रा का उद्देश्य था आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति। यही कारण था कि आपने उत्तर एवं दक्षिण के समस्त प्रमुख तीर्थों का पर्यटन किया। साहित्य सृजन का उद्देश्य था मायावाद का खण्डन पर भक्ति की मुद्रा सलिला को प्रवाहित करना। इसमें भाष्य टीकायें और मौलिक हैं जो वण्णन सम्प्रदाय के आधार गिला है। वे हैं—

- (१) वेण्णय संग्रह — शंकर तथा भेन्नेदेवानी भास्कार का खण्डन
- (२) वेदात सार — ब्रह्मसूत्र की टीका है।
- (३) गीताभाष्य — यह गीता का भाष्य है।
- (४) गीतान्ध — ईश्वर तथा प्रपत्ति का बणन है।
- (५) श्रीभाष्य — ब्रह्मसूत्र पर भाष्य है। यह बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

दार्शनिक सिद्धांत

रामानुज का मत है कि जगत् सत्य है, यह ईश्वर का अवित अंश है। अन्तर्दामी ईश्वर का यह शरीर है। ईश्वर का शरीर असत् कैसे होगा? समार पारमार्थिक दृष्टि में सत्य है।

ब्रह्म विजातीय सजातीय भेन्ने से शून्य है। ईश्वर के स्वगत तीन भेद हैं—

- १ चित्त — मोक्ष जीव
- २ अवित — मोक्ष जगत्
- ३ ईश्वर — सर्वान्तर्दामी

ब्रह्म सगुण और सविशेष है, वह सर्वशक्तिमान और सविशेष है। ब्रह्म को सृष्टि के सृजन में माया की आवश्यकता नहीं है, आकाश शंकर मायोपाधिक ब्रह्म को ही ईश्वर मानते हैं। ब्रह्म ही ईश्वर है, यह रामानुज का मत है। जीव जगत् उसके शरीर हैं। सृष्टि का उद्देश्य लीला है।

ईश्वर व जीवात्मा इस मत में दो पदार्थ मिश्र मिश्र हैं। ईश्वर प्राण है तो जीव अज्ञ। ईश्वर अनन्त और जीव स्वल्प है। जीव नित्य है पर शुद्ध नहीं। अज्ञान के पाश से अणुद्ध है। वह मुक्त नहीं बंधनग्रस्त है। जीवात्मा के तीन रूप हैं—

- (१) बुद्ध जीव — मातारिक जीव
- (२) मुक्त जीव — जो ससार में रहते हुए भी, भक्ति, आराधना व कर्तव्य का पालन करने वाले हैं।

(३) नित्य जीव — जो कभी ससार में न आया हो।

शरीर भी सत्य और जीवात्मा भी सत्य तथा नित्य है। आत्मा अणु है, वह नित्य होता है, उसकी

उत्पत्ति नहीं होती। यह ईश्वर का अंग है। शरीर और आत्मा दोनों ईश्वर का अंग होने के कारण सीमित होते हैं। आत्मा चैतन्य है, सर्वव्यापी नहीं।

कमराण्ड अतिशय है। कम जोर जान से भक्ति की प्राप्ति होती है। भक्ति केवल ब्रह्म श्रुति का साधन नहीं है बल्कि मुक्ति का साधन है। मुक्ति केवल अध्ययन और तप से नहीं होती बल्कि मुक्ति ईश्वर का कृपादृष्टि पर निर्भर है। तत्त्वमसि आचार्य शंकर और रामानुज दाना में यहाँ भी मत भेद है। शंकर के अनुसार महाशक्ति के श्रवण मात्र से उत्पन्न जान ही मुक्ति प्राप्त करता है। रामानुज के मतानुसार भक्ति ही मुक्ति का एक मात्र साधन है।

विशिष्टाद्वैतवाद

यह दो शब्दों के संयोग से बना है—विशिष्ट और द्वैत। विशिष्ट का अर्थ है चेतन और अचेतन विशिष्ट ब्रह्म और अचेतन या एवमव्यवहार का अर्थ है। अतएव चेतनाचेतन विभाग विशिष्ट ब्रह्म के अभेद या एवमव्यवहार का निरूपण करना ही इस सिद्धान्त का लक्षण है। यह बहुत प्राचीन सिद्धान्त है। कहा जाता है कि भगवान् श्रीनारायण ने श्रीमहात्म्य की उपलक्ष्य किया, दशमई माता से विश्व सेन, उनसे शठनाथ स्वामी, इनसे श्रीनाथमुनि को नाथमुनि ने पुष्करिका स्वामी को इनसे श्रीराम मिश्र से यमनाचाय जी का प्राप्त हुआ। यही तो श्रीरामानुजचाय के परम गुरु थे।^१

श्रीरामानुजाचाय की भक्ति

रामानुजाचाय ने एव अभेद प्रतिपादन तथा निर्गुण ब्रह्म एक सगुण ब्रह्म की प्रतिपादन दोनों ही प्रकार की श्रुति का प्रमाण और सत्य मानने हैं। उनका कहना है कि अभेद हीर अभेद प्रतिष्ठापन करने वाली श्रुतियों में परस्पर विरोध नहीं है। अभेदप्रतिष्ठापन ब्रह्म, जीव, प्रकृति का वर्णन एक ही भाव प्रस्तुत करते हैं और अभेद प्रतिष्ठापन हमारा अन्त अन्त। यहाँ निर्गुण है यहाँ प्राकृत गुण का अभाव है और जहाँ सगुण की बलना की गई है वहाँ ब्रह्म में अलौकिक गुण विद्यमान है। रामानुजाचाय ब्रह्म का पाँच प्रकार का स्वीकार करते हैं—(१) पर, (२) व्यूह, (३) विमल, (४) अतर्क्य और (५) अर्थात्। आप श्रुति के पाँच उपायों की बलना करते हैं—संयोग, भक्तियोग, प्रपत्तियोग, आचार्योपनिषत्तयाग। ये पाँच भक्ति के अंग हैं। आचार्योपनिषत्तयाग नये ढंग का भक्ति है जिसमें गुरु के चरण-संस्पर्श में आत्मा का समर्पण ही प्रमुख है।

योग विद्या का ही आप प्रपत्ति बताते हैं। अनुकूलता का मूल्य प्रतिफलता का त्याग भगवान् में सम्पूर्णतया ही आत्मगण ही प्रपत्ति है। प्रपत्ति का अर्थ भगवान् के शरण में आना है।

एक प्रकार आपने दक्षिण में वैष्णवभक्ति का वह मार्ग बताया है जिसे तट मैठन परवर्ती आचार्यों ने भक्ति का मूल्यधारण के विषय में एक सुत्र बना दिया। भक्ति साहित्य का इतिहास हमारे विषय विवेचना है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिन्दू धर्म के इतिहास पर उनका व्यक्त और विस्तृत प्रभाव पड़ा है तथा अद्वैतवाद के विरोध में भक्तिधारा का प्रचार परवर्ती वैष्णव आचार्यों पर विशिष्टाद्वैत पर प्रभाव स्पष्ट स्पष्ट होता है।^२

रामानुज के मतानुसार भक्ति परमानन्दमयिनी अनुरक्ति नहीं है, बल्कि उसका साधन ब्रह्म का निरन्तर स्मरण करना है। इसकी प्राप्ति में विभिन्न भोक्तृ विनियोग, पूजन, स्नान, दया, प्रह्लादा, सत्य

१ रामानुज गौड लिखित, ज्ञानमन्दिर प्रकाशन कार्यालय प्रथम सम्स्करण, १९६२, पृष्ठ ६४३।

२ दुर्गाचरित्र लिखित, विशिष्टाद्वैत के मूलभूत, भगवान् दशानन सनन, पृष्ठ ११४।

आणि सहायक होत है। परमेश्वर की प्राप्ति का साधन उसकी प्रीतिपूर्वक भक्ति तथा उपामना है। किन्तु ज्ञान इस भक्ति का सहकारी हो सकता है। परमेश्वर के दिव्य गुणों के ज्ञान से उसके प्रति भक्ति उत्पन्न हो सकती है। ज्ञानमूलक भक्ति दृढ़ होती है। इस मत में भक्ति ही मोक्ष का परम साधन है। इसके अतिरिक्त प्रपत्ति और ईश्वरानुग्रह प्राप्ति की योग्यता का साधन है, किन्तु प्रपत्ति इसका परम साधन है। प्रपत्ति का अर्थ शरणागत है। सब कुछ छोड़कर ईश्वर का आश्रय ग्रहण करना पूर्ण प्रपत्ति है।^१

इस प्रकार भक्ति ही रामानुज मत की आधार शिला है। ज्ञान भक्ति की प्राप्ति में सहायक है। ज्ञान की सहायता से भक्ति की प्राप्ति हो सकती है और भक्ति की प्राप्ति होते ही मोक्ष का अधिकारी हो जाना अति आवश्यक है। इसीलिये रामानुज ने निगुण की कल्पना नहीं की है। सगुण ही उनके मत का मूल है। सावर्तिलयाविहारी लाल बर्मा ने लिखा है कि 'निगुण वस्तु की कल्पना असम्भव है, क्योंकि सत्ता में समस्त पदार्थ गुण विशिष्ट ही प्रतीत होते हैं। यहाँ तक कि निर्विकल्पक प्रत्यक्ष के अन्तर पर भी सर्वोपेय वस्तु की ही प्रतीति होती है। रामानुज का इस सिद्धांत पर बड़ा आग्रह है। अतः ईश्वर सत् सगुण ही होता है। ईश्वर प्राकृत गुण रहित निखिल हेय प्रत्यक्ष, कल्याण-गुण गुणाकार, अनंतज्ञानानन्द स्वरूप ज्ञान भक्ति आदि कल्याण गुण विभूषित तथा सृष्टि स्थिति सहार करता है।^२ रामानुज के भक्ति सिद्धांतों का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि आप परमेश्वर के सतत ध्यान पर बल देते हैं, जो उपामना के क्षेत्र के अंतर्गत आता है। इनकी भक्ति में वामुदेव और नारायण नामों की प्रधानता है। ब्यूहा के साथ वामुदेव की कल्पना की जाती है, पर राधा और गोपालकृष्ण का इनकी भक्ति साधना में कोई अस्तित्व नहीं है। इस तरह असीम प्रेममान या माधुर्य भाव का अभाव है। इसलिये स्पष्ट स्वरों में कहा जा सकता है कि रामानुज की भक्ति बल्लभ और चैतन्य की भक्ति से बिल्कुल अलग रास्ता अपनायी है। कालांतर में इनके मतानुयायी दो दल में विभक्त हो गये—टैक्ले और वडवैली।

हंस सम्प्रदाय

हंस सम्प्रदाय बहुत ही प्राचीन है। आचार्यों का यह विश्वास है कि सर्वप्रथम इस सम्प्रदाय के आदि प्रवक्ता भगवान् हंसावतार हैं। हंसावतार भगवान् के शिष्य सनत्कुमार हैं, इनसे महर्षि नारद ने उपदेश ग्रहण किया। नारद जी से इस सम्प्रदाय के ऐतिहासिक प्रसिद्ध आचार्य श्रीनिम्बाक की उपदेश प्राप्त हुआ। इस सम्प्रदाय के आद्य प्रवक्ता भगवान् ने हंस का अवतार ग्रहण कर सनत्कुमार के योग विषयक कठिन प्रश्नों का उत्तर दिया था। यह कथा श्रीमद्भागवत के ११वें स्कन्ध के १२वें अध्याय में वर्णित है।^३ यही कारण है कि इस सम्प्रदाय का हम सम्प्रदाय (सनातन) देवर्षि सम्प्रदाय आदि विभिन्न नामों में भारतीय दर्शन के इतिहास में प्रसिद्धि प्राप्त होती है। निम्बाक ने इसे द्वैताद्वैतवाद या भेदाभेदवाद कहकर हंस सम्प्रदाय की नींव रखी।

निम्बाक

निम्बाक के जन्मस्थान और जन्मकाल के बारे में विद्वानों में मतभेद है। वे इनका जन्म

१ सरनाम सिंह अरण भक्ति दर्शन, कृष्ण ब्रह्म, अजमेर प्र० सं० १९५७, पृ० ८।

२ सावर्तिलयाविहारी लाल बर्मा सर्वज्ञान सग्रह, विहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना,

३ भा० गोविन्द त्रिगुणावत हिन्दी की निगुण वाक्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ३३८।

उत्तर भारत में मानते हैं। क्याकि यह सुना जाता है कि ये जात्या तैलग ब्राह्मण थे और दक्षिण के वे लारी जिला के निवासी थे, पर इनके सम्प्रदाय और अनुयायियों से दक्षिण सन्तों प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। ऐसी हानन में सन्देह का हाना अति आवश्यक है। दूसरी तरफ निम्बार्क मनावलम्बिया का अखाड़ा वृन्दावन है और वही गोवर्धन के निकटस्थ निम्ब ग्राम भी है इससे यह पता चलता है कि इनका जन्मस्थान वज्रमण्डल ही है। बलदेव उपाध्याय ने इनके जन्मस्थान और माता पिता के बारे में एक और विवदन्ति की चर्चा की है। वह यह है—कहा जाता है कि दक्षिण दक्ष में गोवर्धन के तीर स्थित वैद्वपुत्रन के निकट ऋष्याध्वय में अरुण मुनि की पत्नी श्रीजयन्ती देवी के यम स इनका जन्म हुआ था।^१ आज भी यह प्रश्न विवाद का बना है। इनके जन्मकाल के बारे में भी विद्वान सहमत नहीं हैं। कुछ लोग इसे कलियुग के प्रारम्भ में वेदव्यास के समकालीन मानते हैं, कुछ लोग १२ वां शताब्दी मानते हैं।^२ डा० मन्नाकर इनकी गुरु परम्परा के आधार पर इनका जन्म ११६२ ई० के आसपास^३ और डा० त्रिगुणायत १६१२ ई० मानते हैं।^४ इनका प्रथम नाम नियमानन्द था। रात्रि में निम्ब के वृक्ष पर सूर्य का दर्शन कराने के कारण उनका नाम निम्बाक पड़ा। डा० मुशीराम शर्मा इनके पिता का नाम जगताथ और माता का नाम सरस्वती मानते हैं^५।

प्रचार काय

आपने कृष्ण की उपासना के साथ साथ राधा की उपासना विषय ठहराया। इस मत के प्रचार में आपके ग्रन्थ का योगदान स्तुत्य है विशेषकर इनके अनुयायियों ने इस मत के प्रचार का काम सम्पन्न किया। इनके शिष्य सा चार वतलाये जाते हैं, लेकिन इस मत में आचार्यों की संख्या बहुत ज्यादा है जो समय समय पर इस क्षेत्र में घूमकर तथा साहित्य सृजन कर कृष्ण भक्ति का प्रचार किया कृष्ण भक्ति का प्रचार करने वाला सबसे पहला मत यही है। निम्बाकाय ने अपने सिद्धांतों के प्रचार के निमित्त निम्नांकित ग्रन्थों की रचना की—

१—पारिजात सौरभ—ब्रह्मसूत्र के ऊपर नितान्त स्वल्पकाय वृत्ति

२—दशश्लोकी —सिद्धांत प्रतिपादक दशश्लोका का संग्रह।

३—श्रीकृष्णस्तवराग—निम्बाक मत के प्रतिपादक श्रीकृष्ण स्तुति पर २५ श्लोकों का संग्रह।

४—मन्त्ररहस्य षोडशी—इसमें १८२ श्लोक हैं जिसमें १६ श्लोकों में निम्बाक मत के पूज्य मंत्र हैं।

दाशनिक सिद्धान्त

आचार्य निम्बाक ब्रह्म और जीव के सम्बन्ध में भेदाभेद या द्वैताद्वैत के प्रतिपादक हैं। इनकी अनुभूतिया से प्रभूत उद्भावनाओं पर गोता और उपनिषद् का प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है। आपके मतानुसार जीव नानमय है जो नित्य पाता तथा जानाश्रय है। जैसे सूर्य आलोकमय और आलोकश्रय है उसी प्रकार जीव नानमय और जानाश्रय है। माया के कारण ही उसका स्वभाविक गुण क्षीण होता है जिस वह भगवान के अनुग्रह से ही पुन प्राप्त करता है। जीव दो प्रकार के हैं—

१ बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, भा० प्र० सर्मा, काशी, पृ० ३१४।

२ वही, पृ० ३१५।

३ डा० गोविंद त्रिगुणायत हिन्दी की नियुक्तायपारा और उसकी दाशनिक पृष्ठभूमि, पृ० १३८।

४ डा० मन्नाकर वैष्णवजिन्म, जत्रिन्म, पृ० ८७।

५ डा० मुशीराम शर्मा भक्ति का विकास, चौसम्मा विद्यामवन, वाराणसी, पृ० ३६७।

(१) मुक्त जीव, (२) बद्ध जीव। दोनों प्रकार के जीवा में कृतृत्व की सत्ता वर्तमान है। प्रत्येक अवस्था में उसे ईश्वराधीन रहना पड़ता है। निम्बाक ने जीव को प्रभु का जग माना है और प्रभु को जगही स्वीकार किया है। बुद्धजीव के भी दो भेद हैं—मुमुक्षु और बुभुक्षु।^१ मुमुक्षु जो मोक्ष का इच्छुक रहता है तथा बुभुक्षु विषयानन्द का इच्छुक रहता है।

पन्था मोमासा के अतगत आप सृष्टि को मन्दी के जाल की भांति ईश्वर से उद्भूत मानते हैं। इसके अंतर्गत—(१) चित (२) अचित और (३) ईश्वर के रूपा की कल्पना की है।

आप रामानुज के मत के अनुसार ही चित्, अचित् और ईश्वर को मानते हैं। चित् ज्ञानस्वरूप है, वह बिना इन्द्रियों की सहायता से भी ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अतः वह प्रज्ञान धन कहा गया है। जीव परिमाण में अणु है तथा सरया में जनक है। इस प्रकार जीव भिन्न भी है और अभिन्न भी।

अचित्—निम्बाक अचित् तत्त्व का तीन प्रकार का मानते हैं—प्राकृत, अप्राकृत और काल प्राकृत प्राकृत पदार्थों में बुद्धि से लेकर स्थूल महाभूतों तक उत्पन्न समस्त जगत् की कल्पना की गई है।

काल—काल सत्तार का नियामक है पर स्वयं भगवान् के अधीन है।

ईश्वर—रामानुज और निम्बाक दोनों ने ईश्वर कल्पना एक ही की है। ईश्वर सगुण रूप है। वह जगत् के भीतर व्याप्त है। अतः केवल इतना ही है कि रामानुज लक्ष्मीनारायण की उपासना को स्वीकार करते हैं और निम्बाक मत में राधा-कृष्ण आराध्य माने जाते हैं। माध्वमत में राम और कृष्ण दोनों की आराधना स्वीकार कर ली गई है।

सृष्टि की कल्पना में दोनों में अन्तर है। रामानुज जीव-जगत् विशिष्ट ईश्वर को मानते हैं और निम्बाक जीव और जगत् को ईश्वर की भक्ति मानते हैं। जगत् को दोनों परिणाम मानते हैं। रामानुज विशेषणभूत को और निम्बाक शक्ति को प्रकृति का परिणाम मानते हैं।

भक्ति—रामानुज की भांति ही निम्बाक ने भी भक्ति की स्थापना शास्त्रीय ढंग से की है। रामानुज नारायण के साथ श्री की कल्पना ठीक उसी प्रकार स्वीकार किया जिस प्रकार निम्बाक ने कृष्ण भक्ति में राधा का प्राधान्य स्थापित किया। सर्वेश्वर कृष्ण की भांति ही राधा सर्वेश्वरी है। वे कृष्ण के वामांग विराजती हैं और सभी कामनाओं का पूर्ण करती हैं।^२

डा० नाहर ने लिखा है कि निम्बाक की कृष्ण भक्ति पाँच प्रकार की है।^३ (१) शान्त (२) दास्य, (३) सख्य, (४) वात्सल्य, (५) उज्ज्वल या माधुर्य। इस प्रकार निम्बाक ने कृष्ण भक्ति का प्रचार किया साथ ही राधिका की वामांग में प्रतिष्ठित कर दास्यत्व भाव की जो मृष्टि की है उससे यह स्पष्ट होता है कि माधुर्य या प्रेमभाव अर्थात् प्रेमलक्षणा भक्ति का ही आप प्रतिपादन करते हैं। बल्लभ और चैतन्य सम्प्रदायों की भांति इसमें (निम्बाक मत) भी मधुर भाव की उत्कृष्टता प्रदान की गई है। निम्बाक सम्प्रदाय के उपास्यदेव व्रजकृष्ण हैं जो अपनी प्रेम और माधुर्य की अधिष्ठात्री शक्ति राधा तथा अन्य आह्लादिनी गोपी स्वर्णा शक्तियों से परिवेष्टित रहते हैं। निम्बाकानाम ने युगल उपासना के साथ

१ बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, ना० प्र० समा, काशी, पृ० ३४४।

अग्रेलु वामे बुभुक्षानुजा मुन

विराजमानामनुष्य सीमाम्।

सखी सहस्रं परिवेष्टिता सन्

स्मरेय देवी सकलेष्ट-वामदाम्॥

दशमोदरी श्लो० ५।

२ डा० रतिमान सिंह नाहर भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, इलाहाबाद, पृ० १८५।

राधा की उपासना पर विशेष महत्व दिया है।^१ निम्बार्क रामानुज, बल्लभ और चैतन्य के बीच की कड़ी हैं जिन्होंने भेदाभेदवाद द्वारा यह स्पष्ट किया कि जनसाधारण में अपनी भेद बुद्धि के कारण ही सारी मूर्तियों की उपासना नहीं होती, इसलिए विग्रह का पूजन ही उत्कृष्ट भक्ति मार्ग का साधन है। प्रेमपूर्वक उन विग्रहों का ध्यान, स्मरण-कीर्तन और पूजन अति आवश्यक है। अतः में स्वामी परमानन्द दास के कथन को उद्धृत कर इस प्रमग की इतिथी की जाती है—

निम्बाक सम्प्रदाय के उपास्यदेव भगवान् श्रीकृष्ण होने पर भी निम्बार्कस्य वैष्णव गण उनकी सशक्तिक उपासना को ही फलप्रद मानते हैं। भगवान् के मुख्य विग्रहों में धैम श्रीकृष्ण मूर्ति प्रधान है, स्त्री मूर्तियाँ भी श्रीराधिकामूर्ति भी उसी प्रकार प्रधान है। श्रीराधिका श्रीकृष्ण की सबप्रधान शक्ति हैं। सशक्ति भगवान् मूर्ति की उपासना में जो महान् फल होते हैं, वेही के अतगत एक विशेष लाभ यह देखने में आता है कि उनसे शीघ्र साधक की कामबुद्धि निवृत्त हो जाती है भगवान् के साथ सयुक्त रूप में स्त्री मूर्ति की भक्तिपूर्वक भजना करने से स्त्रीमूर्ति के प्रति कामभाव तिरोहित हो जाता है और स्त्री पुरुष के मिथुनोद्भूत भाव का भगवत्त्वोला के रूप में दर्शन करते करते साधक सहज ही शिशा प्राप्त करके तद्विषय में निर्मलत्व लाभ करता है, अतएव उपास्य-स्वरूप का वर्णन करते हुए श्रीनिम्बाक स्वामी अपने वैदान्त कामधेनु ग्रन्थ में लिखते हैं—

स्वभावतो पास्तसमस्तनैप—

मशेष कल्याण गुणैक्यसिम् ।

व्यूहाङ्गि० न ब्रह्म पर वरेण्य

ध्यायेम कृष्ण कमलेशण हरिम् ॥

ब्रह्म सम्प्रदाय

ब्रह्म सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक ब्रह्मा जी हैं। मध्वाचार्य जी तो इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक नहीं बल्कि मध्ययुगीन प्रतिनिधि थे। माध्वमत का उद्गम स्थल दक्षिण भारत है और आज भी इसका वहाँ विपुल प्रचार है। गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय माध्वमत की ही एक शाखा है। इस मत की उत्पत्ति रामानुज की मृत्यु के सौ वर्ष बाद हुई माध्वाचार्य दार्शनिक दृष्टि से द्वैतवाद के प्रवर्तक हैं और धार्मिक दृष्टि से भक्तिवाद के समर्थक द्वैतवाद। भारतीय दशन में द्वैतवाद का समर्थक सांख्य दर्शन है। द्वैतवाद शब्द तत्त्वशास्त्र में उपयुक्त होता है। साधारणतः दो स्वतन्त्र सत्ताओं का अस्तित्व मानने के लिए द्वैतवाद को अपनाया जाता है। इस सम्प्रदाय से हिन्दी साहित्य का प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्पष्ट नहीं है।

मध्वाचार्य (११६६)

द्वैतवाद के मध्ययुगीन प्रतिनिधि मध्वाचार्य हैं। इनका जन्म दक्षिण भारत में बेलिग्राम नामक स्थान में एक मट्ट ब्राह्मण परिवार में ११६६ ई० में हुआ। इनके पिता का नाम मध्यगेह मट्ट तथा माता का नाम वदवती था। बचपन में वे वामुदेव के नाम से पुकारे जाते थे। बचपन से ही वैराग्य की भावना होने के कारण सयास की दीक्षा लेली। सयास की दीक्षा देने वाले अद्वैतवाद के आचार्य अच्युत प्रेस थे। इस समय इनकी अवस्था ११ वर्ष की थी। सयासी होने के बाद से आप पूण्यन के

१ उपा गुप्त हिन्दी के कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत, पृ० ६।

२ रामानुज श्री स्त्रीचरित्रे मध्वाचार्य चतुर्मुख।

श्रीविष्णुस्वामिन रदो निम्बान्तिय चतु सन ॥

दे० बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, पृ० १२२।

नाम से पुकारे जाने लगे। इसके बाद आप वेदान्त में पारंगत हो गये। आचार्य जी ने आपका नाम आनन्दतीर्थ रखकर मठाधीश बना दिया, लेकिन कुछ ही दिनों के बाद आप अपने अध्यवसाय और कमपरायणता से प्रेरित होकर सन्यास का परित्याग कर लोकसुख के साथ सम्बन्ध जोड़ लिया। फिर क्या था। द्वैतवाद की गङ्गा-यमुनी छवि भक्ति की भागीरथी के कूलों पर देखने लगी। श्रीसावलिया बिहारी लाल वर्मा ने लिखा है कि 'इन्होंने सन्यास माग का परित्याग कर लोकसुख के अनुकूल द्वैतवा तत्त्व युक्त द्वैतमत का प्रतिपादन किया। इन्होंने विष्णु को जगत् का नियन्ता और परमेश्वर बल्लभार्य' १' यथा—

एको नारायण ह्यासीत् न ब्रह्मा न च शिवर ।

आनन्द एक सदाप्र आसीन्नारायण प्रभु ॥

प्रचार काय

अपने मत के प्रचार में आपने साहित्य सृजन, तीर्थयात्राएँ और मंदिरों की स्थापना भी की। सन् १२२८ ई० में आरम्भ अपने गुरु के साथ दक्षिण भारत के समस्त तीर्थों की यात्रा की, इस यात्रा में आपने अद्वैतवाद के आचार्यों से शास्त्रार्थ कर भाषावाद का खण्डन किया। यात्रा करते हुए आपने जयपिनगर में विश्राम लिया, जहाँ पर प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गीताभाष्य' का प्रणयन हुआ। गीताभाष्य की रचना की पूर्णाहुति के अनन्तर उत्तरी भारत के तीर्थों का दर्शन करते हुए बनारसाश्रम जा वेदव्यास जी को अपना भाष्य दिखला उनसे अनुकम्पा और शक्तिप्राप्त की तीन भूतियाँ प्राप्त की।

इस प्रकार तीर्थयात्रा काल में आपने साहित्य सृजन, शास्त्रार्थ और मंदिरों की स्थापना की। आपके ग्रन्थों में गीताभाष्य, ब्रह्मसूत्रभाष्य, अनुव्याख्यान, दशोपनिषद्भाष्य, गीतातात्पर्य निणय आदि विशेष प्रमुख हैं। भाषावाद की कटु आलोचना के सम्बन्ध में भी आपने कई एक ग्रन्थ लिखा।

कहा जाता है कि समुद्रतल से निकाली गयी जो कृष्णमूर्ति इह वेदव्यास जी से प्राप्त हुई, उसकी स्थापना जयपि में की। यह स्थान भाष्यमहाबलम्बिया का मुख्य तीर्थ है। इसने अतिरिक्त आपने बड़े बड़े आठ मन्दिरों का भी निर्माण कराया। आपके हृदय में उमड़ती हुई भक्ति की पावनधारा इन रूपों में प्रवाहित हो जगत् का कलुष आज भी धो रही है।

वाशानिक सिद्धान्त

आचार्य बलदेव उपाध्याय न भाष्यमत को जानने के लिये एक क्लेश उद्बुत किया है^२ जिसमें उनके सभी वाशानिक सिद्धान्त समाहित हैं। श्लाक में भाष्यमत के ती सिद्धान्तों का उल्लेख है। वे य हैं—

(१) हरि परतर — श्री विष्णु ही सर्वोच्च एवं परमतत्त्व हैं।

(२) सत्य जगत् — जगत् सत्य है।

(३) तत्त्वभेद — भाष्याचार्य का यह प्रमुख सिद्धान्त है।

१ सावलिया बिहारीलाल वर्मा : विश्वधर्म दर्शन, पटना, पृ० २८५।

२ श्रीम-भाष्यमते हरि परतर सत्य जगत् तत्त्ववेत्ता।

भेदोजीवगणाहरेरनुचरा नीचोच्चभावगता ॥

मुक्तिनैजमुक्षानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्त्वार्थन।

ह्याद्यान्तिसीतय प्रमाणमखिलाभ्यायैववेधौ हरि ॥

—बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, पृ० २२४।

भेद पाँच प्रकार के हैं—

(क) ईश्वर का जीव से भेद (ख) ईश्वर का जड से भेद (ग) जीव और जड का भेद (घ) जीव जीव का भेद (ङ) जड का जड से भेद

(४) जीवगण हरेरनुचरा —समस्त जीव हरि के अनुचर हैं अर्थात् उनका प्रयत्न भगवान् के अधीन है।

(५) नीचोच्चमावगता —जीव सभी बराबर हैं। वह कम भिन्नता के कारण ऊँच नीच नहीं है। इनके तीनभेद हैं—

(ख) मुक्तियोग (ख) नित्य ससारी (ग) तपो योग्य।

(६) मुक्तिनैज मुखानुभूति —अपने सच्चे सुख की अनुभूति ही मुक्ति है। मोक्ष चार प्रकार का होता है—

(क) कमक्षप, (ख) उत्त्रान्ति (ग) अचिरान्ति मार्ग (४) भोग।

(७) अमलामक्ति—निर्दोष भक्ति। भक्ति बिना स्वाय की जो हो वही सच्ची और श्रेष्ठ है। स्वायपूर्ण भक्ति को हेतु भक्ति कहते हैं तथा स्वाय रहित भक्ति को अहेतु की। अहेतु की भक्ति का दूसरा नाम अनय भक्ति है।

(८) अज्ञानिप्रमाणनितयम्—माध्यमत में तीन प्रमाण हैं प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द। इन्हीं तीनों के सहयोग से समग्र प्रमेया की सिद्धि होती है।

(९) आम्नाय वेद्यो हरि —वेद का समस्त तात्पर्य हरि है। वेद में केवल हरिगुणगान ही वर्णित है। इस मत में विष्णु ही सर्वश्रेष्ठ देवता हैं।

भक्ति

श्रीमाध्वाचार्य ने भक्ति के बारे में अपने ग्रन्थों में जो विचार दिया है वे बहुत ही मुख्य हैं। अहेतुकी भाव की भक्ति को आप श्रेष्ठ मानते हैं तथा विष्णु की भक्ति में ही आपका विश्वास है। भक्ति को ही आप मुक्ति का साधन मानते हैं। आपने भक्ति साधना का निरूपण करते हुए बताया है कि अपने आराध्यदेव की प्रतिष्ठा की कल्पना कर अपने जी पुत्रादि परिवार की अपेक्षा भगवान् मनुष्य और अधिक स्नेह रखना ही भक्ति है। अमता भक्ति ही मोक्ष का सर्वोच्च साधन है। आपन गीतामाध्य में लिखा है—

यथाभक्तिविशोपो ना दृश्यते पुरुषात्तमे।

तथा मुक्तिविशोपोपि नानिना निष्कम्भेन ॥

योगिना भिन्नलिङ्गा नामाविभूतस्वरूपिणाम्।

प्राप्ताना परमानन्द तारतम्य सदैव हि ॥^१

भगवान् श्रीहरि के प्रति भक्ति जितनी होती है उतने ही प्रमाण से लिङ्ग देह का भग्न होते ही जानियों को मोक्ष अर्थात् आनन्द का अनुभव होगा। लिङ्गे के बाद ही स्वरूपानन्द प्राप्त योगिया को सदा तारतम्य ज्ञान और परमानन्द की प्राप्ति होती है। मोक्ष की प्राप्ति के लिये भक्ति आवश्यक है। इसलिये भगवान् विष्णु की भक्ति मुख्य कर्त्तव्य है। इस मत में दान तप सवा, यज्ञ, तीर्थ, स्नान आदि सत्कार्य भक्ति के अंग माने जाते हैं। इस प्रकार भक्ति की प्राप्ति के लिये बहुत साधन हैं पर मोक्ष की प्राप्ति के लिये भक्ति ही एक मात्र साधन है। अतः आध्वाचार्य की भक्ति में ज्ञान की महिमा का यशोवर्णन उप

लब्ध होता है। ज्ञान रहित भक्ति और भक्ति रहित ज्ञान दोनों से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। माध्वमत की भक्ति में भगवान् के बाद उनकी अर्द्धांगिनी उनका परिवार अथ देवतागण, गुरु और ज्ञान वयोवृद्धजन के प्रति भी भक्ति रखनी चाहिए।

इस प्रकार माध्वमत सत्सार के सभी जीवधारियों के प्रति योग्यतानुसार भक्ति की व्याख्या प्रस्तुत करता है। हिंदू धर्म-दर्शन की दिव्य भूमि पर माध्व मत की भक्ति की पवित्रतीव्रता प्रेमपथ-वा-भाग प्रगस्त कर सभी जीवों को योग्यताक्रम के अनुसार चलने को आमंत्रित करती है।

चैतन्य सम्प्रदाय

चैतन्य मत का विकास पूर्वमध्यकाल में जबकि बंगभूमि शाक्त, शैवी तथा बौद्धों की ब्रीडास्थली थी, माध्वमत के अंतर्गत हुआ। कालांतर में इसने अपना स्वतंत्र स्वरूप निर्माण कर गौणीय वैष्णव सम्प्रदाय के नाम से हिंदी दशन साहित्य के इतिहास में विख्यात हुए। इसके आदि अधिष्ठाता माध्वाचार्य की सोलबी पीढ़ी के आचार्य माध्वेन्द्रपुरी को बताया जाता है। माध्वमत के सभी प्रबल समयक बंगाल में हुए हैं।^१ चैतन्य इसी परम्परा के १८ वीं पीढ़ी में हुए जिन्होंने बंगाल में जन्म लेकर समग्र उत्तरी भारत का भक्ति से आप्लावित किया।

इसका आविर्भाव स० १५४२ में होली के दिन बंगाल के नवद्वीप नगर में हुआ। इनके पिता का नाम प० जगन्नाथ मिश्र तथा माता का नाम शची देवी था। बाल्यकाल में आपका नाम विश्वम्भर मिश्र था लेकिन माता पिता प्यार से आपको निर्माई कहा करते थे। कहा जाता है कि आप १३ माह तक अपनी माता के गर्भ में रहे।^२ अपने जीवन की विलक्षणता आपने गम से ही प्रकट करना शुरू कर दिया था। खेल खेल में ही आपने अपने पिता के सामने गीता उठा ली। इससे यह स्पष्ट होता है कि आपके हृदय में भक्ति का जो बीज था वह प्रकृति द्वारा विरासत में प्राप्त था। आप बड़े ही चंचल और सुन्दर स्वभाव के थे। बुद्धि आपकी बड़ी प्रखर थी। पण्डित समस्त शास्त्रों में पारंगत होने में विशेष समय नहीं लगा। सन् १५०७ ई० में आपने गया यात्रा की। इस यात्रा से आपके हृदय में भक्ति का जो अगाध स्रोत था तथा जो प्रपंचों के कारण प्रस्फुटित नहीं हो पाता था, वह सारे प्रपंचों को हटाकर भगवद्भक्ति की ओर स्वतः अग्रसरित हुआ। आपने यहीं केशवपुरी से सत्पास की दीक्षा ली। तद्वन पत्नी के जीवन और वृद्धामाता की दयनीय अवस्था का स्थान न कर कृष्णभक्ति के प्रचार में लीन हो गये। अब आपको कृष्ण चैतन्य के नाम से पुकारा जाने लगा। गया यात्रा का आपके जीवन में मृत्यु पूर्ण स्थान है। इसने आपको गृहस्थ न बनाकर भगवद्भक्ति के सच्चे प्रेम पथिक के रूप में आपके जीवन के साथ उम्र अध्याय को जोड़ा जहाँ से केवल बंग प्रदेश को ही नहीं समस्त उत्तरी भारत को भगवद्भक्ति का वह पुष्प मिला जिसकी सुरभि से समस्त सत्सार सुरमित है।

यात्रा एवं प्रचार

सन्त्यास की दीक्षा लेने के उपरांत आप घम से उन्मत्त रहने लगे। आप भक्ति में अहर्निश लीन रहने लगे। शाक्तों के समूहों में श्रोत्रिण्य की भक्ति और नाम कीर्तन का प्रचार करने लगे। कीर्तन की मधुर ध्वनि संसृता की अपार भीड़ ने तामसी प्रभुतिवालों के समस्त विरोध के बावजूद भी प्रेमपथ को अपना लिया। इस तरह भव, शाक्त और बौद्ध पथियों का सहयोग आपको प्राप्त हुआ। इन लोगों के

१ प० बलदेव उपाध्याय, माध्वमत सम्प्रदाय, स० २०१० पृ० २२८।

२ चैतन्य महाप्रभु, सत्सा साहित्य महल, दिल्ली, प्र० स० १९५४, पृ० ५।

सहयोग से कृष्णमक्ति और कीर्तन की ऐसी पावन धारा प्रवाहित की जिसमें अन्तर्गहन कर बंगीय जनता वृत्तकृत्य हो गई।^१ आपने आठ वर्षों तक समस्त उत्तरी भारत और दक्षिण भारत के तीर्थस्थानों की यात्रा की। इस यात्रा में बल्लभ से भुलाकात हुई। कृष्णतत्त्व पर आपने बल्लभ जी से वार्ता करते हुए अपार सुख का अनुभव किया। आप की यात्रा बड़ी ही सुखप्रद हुई। आप जहाँ गये मत्को की अपार मढली साथ लग गई। हरि बोन, हरि बोन की ध्वनि से आकाश को गुञ्जित कर दिया। 'आप जहाँ भी गये काशी, मथुरा, प्रयाग श्रीराम सब जगह भगवत् प्रेम के प्रवाह में योगदान मिला। प्रभुपाल मीतल ने लिखा है कि 'वे जहाँ भी गये उन्होंने प्रेममक्ति की पावन मरिठा बहा दी और हरि कीर्तन की मधुर ध्वनि गुंजा दी। वे साधारण सयासी और दीन विधु की भाँति विचरण करते थे। कृष्णमक्ति और कृष्ण कीर्तन का प्रचार इनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था। वे कीर्तन करते हुए प्रेमावेश में इतने तमय हो जाते थे कि इनको बाह्य जगत् का स्निग्ध भी जान नहीं रहता था।'^२

दार्शनिक सिद्धांत

माध्व संप्रदाय की शाखा होने के कारण माध्वमत की स्पष्ट छाप इस मत के सिद्धान्तों पर परिलक्षित होती है। दशन की न्यत्र भावभूमि पर विधि विधान की आवश्यकता इन्हें नहीं प्रतीत हुई। इसलिए इन्होंने किसी सिद्धांत का निरूपण प्रथम नहीं रचा। इनके रचे केवल १० श्लोक ही प्राप्त हैं। डा० नाहर ने लिखा है कि 'भगवान् कृष्ण की स्मृति में उनके कीर्तन में विह्वल हो मूर्च्छित तक हो जाने वाले महाप्रभु को अपने मत के लिये किसी भाष्य की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई—प्रेममार्ग में विधि विधान कैसा?'^३ फलतः इनके सिद्धांतों के निरूपण के लिए इनके द्वारा लिए हुए प्रवचना को ही आधार माना जाता है जिससे यह पता चलता है कि माध्व मत के साथ संबंध रखते हुए भी इसका स्वतंत्र विकास हुआ जो द्वैतवाद से सबंधा मित्र है। इसे अचिन्त्यभेदभेदवाद का सना से दार्शनिक जगत् में अभिहित किया जाता है। इसके सम्बंध में चैतन्य^४ महाप्रभु यह कहते हैं कि—

जीवदे स्वरूप ह्य कृष्ण रे नित्यदास

कृष्ण रे तदस्या शक्ति भेदाभेद प्रकाश।

श्रीकृष्ण का नित्य दासत्व ही जीव का स्वरूप है। यह भेदाभेद प्रकाश द्वारा श्रीकृष्ण की तदस्या शक्ति रूप है। श्रीकृष्ण विमुपति हैं और जीव अणुपति। दोनों का धर्म चेतनता होने से दोनों में अभेद है। श्रीकृष्ण विभु हैं और जीव अणु है इसलिये दोनों में भेद है। इस तरह जीवात्मा और परमात्मा का भेद अलग स्पष्ट किया गया है। इस मत में माध्व की भाँति ही ब्रह्म और जीव की भिन्नता स्वीकार की गई है जगत् को सत्य और ब्रह्म का परिणाम माना जाता है तथा प्रभु को सगुण सविशेष और जीव का अणुचेतन और भगवान् का सेवक माना जाता है। इनके लिये श्रीकृष्ण ही सर्वोच्च तत्त्व है। कृष्ण ही पूर्णावतार हैं, वे स्वयं भगवान् हैं, दूसरे उनके अशावतार हैं। कृष्ण ही एक मात्र उपास्य हैं। कालांतर में चैतन्य की ही चैतन्यमतावलम्बी कृष्ण का अवतार मानने लगे।^५ इस मत के अचिन्त्य भेदाभेदवादी होने का कारण यह है कि जब माध्व ब्रह्म और चिर जीव की भिन्नता मानता है तो चैतन्य वही गुण-गुणी

१ प्रभुपाल मीतल चैतन्यमत और ब्रज-साहित्य, मथुरा पृ० ५।

२ प्रभुपाल मीतल चैतन्यमत और ब्रज-साहित्य, मथुरा पृ० ६।

३ डा० रतिमान सिंह नाहर मक्ति आगेलन का अध्ययन इलाहाबाद, पृ० ३००

४ मक्ति अक (कल्याण विशेषांक) चैतन्य महाप्रभु का मक्तिप्रव, ले० हरिपद विचारल, वर्ष ३२, सन् १ — २०१४, पृ० २०२।

५ बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, काशी, पृ० ५०३।

भाव से जीव और ब्रह्म की भिन्नता के साथ अभिन्नता स्वीकार करता है। इस मत में देवताओं के श्रेष्ठत्व को स्वीकार न कर ब्रजगोपिकाओं की श्रेष्ठता स्वीकार न कर माधुर्य भाव की भक्ति की विशेषता मान शान्त, सख्य, वात्सल्य और दास्य के प्रभुत्व की सृष्टि की गई है। अतः श्रीकृष्ण को भक्ति के आधार पर तीन रूपों की कल्पना की गई है—(१) भगवान् रूप जब श्रीकृष्ण की अनन्त शक्ति प्रकट होती है, (२) ब्रह्म रूप जब शक्ति अप्रकट रहती है, और (३) जब प्रकट और अप्रकट दोनों शक्ति में का रूप दिखलाई पड़ता है। यह परमात्मा रूप है। डा० नाहर ने लिखा है कि तत्त्व भीमासा के दोन में इस सम्प्रदाय को कोई मौलिक देन नहीं है। किन्तु भक्ति आन्दोलन^१ में अपनी साधना पद्धति के लिये इस सम्प्रदाय का अपना पृथक् महत्वपूर्ण स्थान है।^२ इस प्रकार वायनिक सिद्धान्तों के आन्दोलन विलोडन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चैतन्य पर अपने पूर्ववर्ती भक्ति सम्प्रदायों का स्पष्ट प्रभाव है। उन्हीं से मार तच्छ ग्रहण कर उसके रूप में निखार ला लिया। हा कीर्तन आदि पद्धति में जो नृत्य का समावेश कर दिया उसमें इस मत का प्रचार अधिक हुआ और प्रेमाभक्ति का स्वयं भाग तैयार हो गया जो शव और शाक्त सम्प्रदायों के कठोर और अगम पथ से बिल्कुल ही भिन्न था। सर्वसाधारण लोगों में इसका प्रकार इसी कारण से हुआ।

भक्ति

चैतन्य महाप्रभु की शिष्याओं का अध्ययन करने से पता चलता है कि उनकी शिष्या का मूल तत्त्व है कृष्ण की भक्ति। कृष्ण के साथ ही उनकी आत्मादिनी शक्ति श्रीराधा की कल्पना की गई है। प्रस्तुत श्लोक में इस मत का सार सन्निहित है—

आराध्यो भगवान् ब्रजेश्वरस्तद्धान् ।

रम्याकाचिदुपासनां ब्रजवधूवर्गेण या कल्पिता ।

शास्त्र भागवत प्रमाणमल, प्रेमा पुमर्षो महान्

श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मै ताम् तत्रा दरो न पर ॥^३

ब्रजस्वामी नंद के पुत्र श्रीकृष्ण ही आराध्य भगवान् हैं। उनका धाम भुवनावन है। ब्रज गोपिकाओं द्वारा की गई उपासना ही प्रामाणिक उपासना है। भागवत निर्मल प्रमाण शास्त्र है और प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ है। यही प्रेम चैतन्यमत की आधार शिना है। प्रेमाभक्ति का विकास इसी प्रेम तत्त्व के आधार पर हुआ। इसमें चैतन्य की कीर्तन पद्धति भक्तिभावना को वाचन सा बना देती है। अतः इस मतमें भक्ति साध्य भी है और साधन भी। श्रीकृष्ण की रागादिभक्त भक्ति को ही इस सम्प्रदाय के मतबलम्ब मोक्ष मनाते हैं—'चैतन्य का मत है कि केवल भक्ति ही ईश्वर की प्राप्ति का एकमात्र उपाय है। हरि नाम ही हमारा जीवन है। कर्तव्य में कोई दूसरा उपाय ही नहीं है।'^४ अतः म डा० उपा गुप्त के कथन को उद्धृत कर इस प्रयोग की इतिथी की जाती है—'इस सम्प्रदाय में राधाकृष्ण युगल रूप के

छद्म सम्प्रदाय

छद्म सम्प्रदाय के प्रवक्त क विष्णुस्वामी थे। इनका जन्म दण्डिण भारत में मधुरा नगरी में हुआ

१ वही, पृ० ५०२।

२ डा० रतिमान सिंह नाहर भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, इलाहाबाद, पृ० ३०३।

३ बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, काशी, पृ० ५१६

४ हरिनमिक नामैव भ्रम जीवनम्।

कलीनारतेव नास्तेव, नास्तेव गतिरयथा।

प्रणय, जिल्द २० (संख्या १, २, ३, ४,) मितम्बर नवम्बर, पृ० ३२।

मर्यादा भक्ति —मर्यादा भक्ति वह है जो भजन-भुजन आदि साधनों से उपलब्ध हो। इसमें फल की अपेक्षा भक्ति की इच्छा अधिक होती है। यह भक्ति सायुज्य प्रदान करने में सहायता प्रदान करती है।

पुष्टि भक्ति —यह भक्ति साधा निरपेक्ष है। प्रभु का अनुग्रह ही इस भक्ति के लिये आवश्यक है। पुष्टि भक्ति द्वारा जीव को पूर्ण मोक्ष प्राप्त हो जाता है और पूर्ण मात्र ही वल्लभ सम्प्रदाय का परम लक्ष्य है। भगवान् की तीन शक्तियाँ हैं—(१) स्वरूप शक्ति, (२) तटस्थ शक्ति, (३) माया शक्ति। सत्त्व बिन्दु आनन्द से युक्त शक्ति को स्वरूप शक्ति, जीवों का आविर्भाव करने वाली शक्ति को तटस्थ शक्ति और प्रकृति और जगत् का जिस शक्ति से निर्माण होता है, उसे माया शक्ति कहते हैं।

सेवा तीन प्रकार की है—मानसी, वित्तज्ञा और तनुज्ञा। मानसी मन के द्वारा सेवा, तनुज्ञा तन से और वित्तज्ञा धन से या सम्पत्ति से की जाती है।

पूजा के आठ प्रकार हैं—(१) मंगला रीति, (२) शृङ्गार, (३) गोपाल, (४) राजभोग, (५) उत्थान, (६) भोग, (७) साध्य, (८) भजन।

इस प्रकार आचार्य बल्लभ ने भक्ति मार्ग का शिखान्यास साधारण जाता के लिए किया। आपने सयास धर्म का खडन कर यह बता दिया कि गृहस्थ रहकर भी भगवद्भक्ति सम्भव है। सयास धर्म का मार्ग अगम है। उसे सभी स्वीकार नहीं कर सकते हैं। गृहस्थ का सयासी की दीक्षा नहीं दी जा सकती। अत आचार्य जी द्वारा प्रतिपादित भक्ति मार्ग सयास धर्म से अधिक मायाजिक है। गृहस्थ का कृष्ण मन्दिर में जाकर पूजा की विविध विधियों में शारीरिक हाना पणतया सम्भव है। वह दैनिक पूजा में सम्मिलित होकर नीतन में हरिलीला श्रवण आदि द्वारा प्रभु के निकट जा सकता है। कातन एक सामूहिक पूजा है। यह अधिक सामाजिक है, क्योंकि यह सामूहिक साधन है। इस तरह आपकी भक्ति रागात्मिक भक्ति है जो सर्वसाधारण के लिये सुलभ और सहज है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्रीहितहरिवंश जी हैं। प्राचीन काल से इस सम्प्रदाय का कोई सबध नहीं है। आपको इस सम्प्रदाय वाले श्रीकृष्ण की मुरली का अवतार मानते हैं। इस मत का स्वतन्त्र विकास ब्रज की वैभवशालिनी भूमि में हुआ। इस सम्प्रदाय की उत्पत्ति में किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्ध नहीं है। इस सम्प्रदाय की जो साधना पद्धति है उसके अभ्ययन से हम इसी पिच्छ पर पहुँचते हैं कि न तो यह निम्बाक की बुन्दावनी शाखा है और न तो चैतन्य मत की उस पर मुहर ही है। दास निक दुष्टि से आज इसे सिद्धान्त के विषय में द्वैतवाद कहने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस मत के लिये इस मये शब्द का प्रयोग करने के लिये प्राचीन काल से नहीं बल्कि विगत चालीस पचास वर्षों से बुद्धि का व्यायाम किया जा रहा है।^१ गोस्वामी मुकुन्दबल्लभाचार्य जी ने सर्वप्रथम अपनी पुस्तक व्यास वाणी में विभिन्न भारतीय सम्प्रदायों के दार्शनिक तत्वों का निरूपण करते हुए लिखा है कि श्रीहिताचार्य जी के अनुयायियों का सिद्धान्त सिद्धाद्वैत है।^२ सिद्धाद्वैत का शाब्दिक अर्थ है सिद्ध + अद्वैत = सिद्धाद्वैत। सिद्ध है अद्वैत जिसमें। इसे ही राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण का जहाँ अद्वैत सिद्ध हो। इस प्रकार राधा और कृष्ण का अद्वैत स्वतः सिद्ध स्वीकार किया जाता है। यहाँ शंकर के अध्यास या किसी धर्म की प्रतीति नहीं होती है।

१ बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, काशी, पृ० ४२१।

२ व्यास वाणी (पूर्वाह्न), पृ० ८

हितहरिवंश जी के जन्म स्थान और जन्म सन्तु दोनो पर मतभेद नहीं प्राप्त हो पाया है। कुछ लोगो ने इह सहरनपुर के त्रिकट देवद नामक स्थान का निवासी माना है।^१ लेकिन ऐसी बात नहीं। इनका जन्म वृन्धवन के निकट यात्रा ग्राम मे हुआ था। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने प्रमाण में एक दोहा गोस्वामी जी के अनुयायी का उद्धृत किया है।^२ हाँ इतना तो अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि सहरनपुर से इनके कुल वालों का सम्बन्ध नहीं है। इनके कुल वाले सहरनपुर के ही रहने वाले थे। इनका जन्म सन्तु १५३० है।^३ आपने पिता का नाम केशवदास मिश्र और माता का नाम तारा बती था। हितहरिवंश जी एक गृहस्थ थे। माहस्थ्य धर्म को स्वीकार करन पर भी इनमे भक्ति की वह धारा बहती थी जो इन्हें तो सुधा स्नान करती ही थी साथ ही जनसाधारण भी इससे लाभान्वित होते थे। पूजा अर्चा में ये सदा मग्न रहते थे। कहा जाता है कि स्वप्न में ये श्रीराधिका जी से मग्न ग्रहण कर उनका शिष्यत्व स्वीकार किये थे।^४ अतः गुणल उपासना ही इनके सिद्धांत का सार था। य राधाकृष्ण की युगतमूर्ति के उपासक थे। यही कारण था कि अबके सभी सम्प्रदायों की अपेक्षा इनकी भक्ति भावना में प्रेम तत्व का समावेश अधिक था।

दार्शनिक सिद्धांत

हितहरिवंश जी का हिंदू धर्म के उपदेशक थे। आपके हृदय की अनुभूतियाँ बड़ी ही कोमल और सुखदायिनी हैं तथा हृदय के उन कोरों को स्पष्ट कर जाती हैं जहाँ शास्त्रीय उपदेशक की अनुभूति का प्रवेश नहीं हो सकता। यही कारण है कि आपके सिद्धान्त सम्प्रदाय जगत् में अपनी नूतनता लेकर उपस्थित हुए हैं। दार्शनिक जगत् की दिव्य भूमि पर आपके सिद्धान्तों की नवीनताएँ अपनी 'नूतनता' के लिये गुण-गुण तब प्रसिद्ध रहेंगी। श्री सम्प्रदाय, शिम्बाई और बल्लभ तथा चैतय की साधना में सयाग की मुरसिर का प्रवाह देखते ही बनता है, लेकिन संयोग के बाद वियोग की 'क्षरण कल्पना' से हृदय विचलित हो जाता है। हितहरिवंश जी ने संयोग और वियोग के 'समस्यल' से अपने सिद्धांतों का प्रचलन किया है। जहाँ नित्य ही संयोग और वियोग का क्रम चला करता है। यह हितहरिवंश जी के सिद्धांत की नवीन बड़ी है जिसके सामने सभी सगुण सम्प्रदाय बगलें झुकने लगते हैं। आप उस प्रेम पथ के राही हैं, जहाँ चर्च की दृष्टि में सारस का प्रेम^५ एकांगी न हो और न सारस की दृष्टि में

१ मिश्रबन्धु मिश्रबन्धु विनोद, लखनऊ (द्वितीय संस्करण), पृ० २५०।

२ धर्म रहित जानी सब दुनी। जहाँ बाद प्रगटे जग घनी ॥

बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, भा० प्र० समा, वाराणसी, पृ० ४२२।

३ मिश्रबन्धु मिश्रबन्धु विनोद, लखनऊ पृ० २५१।

४ बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, भा० प्र० समा, वाराणसी, पृ० ४२३।

५ चर्चई प्राण जु घट रहे पिय विछुरत निवृज्ज।

सर अतर अर काल निसि तरफ तेज घन गज्ज ॥

तरफ तेज घन गज्ज सज्ज तुव वदन न आवै।

जल बिहून करि नैन मोर बिहि भाव बतावै ॥

हितहरिवंश विचारि वादि अस कौन जु बनई।

सारस यह सन्नेह प्राण घट रहे जु चर्चई ॥

—हितहरिवंश

चर्चई का जीवित रहना प्रेम की 'यूनता' हो ।^१ सारस का प्रेमानुभव भी अधूरा और अपूर्ण ही है । इस तरह की जहाँ स्थिति हो वहाँ साधक की साधना की स्थिति बड़ा ही निराली हो जाती है । आचार्य हितहरिवंश जी ने इस विषय स्थिति से उबरने के लिये रास्ता निवाला लिये हैं ।^२

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने लिखा है कि 'स्वकीया-परकीया, विरह मिलन एव स्व-पर भेद रहित नित्य विहार रस ही श्रीहित महाप्रभु का इष्ट तत्त्व है ।'^३ इस प्रकार आपके सिद्धांत में रास की प्रधानता है जिसमें कृष्ण को इष्टदेव और श्रीराधिका को परकीया मानते हैं । परिणाम-स्वरूप रास मण्डल की स्थापना हुई । आप श्रीकृष्ण को इष्टदेव न मानकर श्रीराधा को अपना इष्ट मानते हैं । आप श्रीराधा को स्वतन्त्र पराशक्ति-रूपा मानते हैं । वह महासुख रूपा भी हैं । वही मरी सैव्या आराध्या हैं ।^४

आचार्य हितहरिवंश जी ने सिद्धांतों का सम्बन्ध सीधे हृदय से नहीं था । यही कारण है कि उनके ग्रन्थों में कहीं भी ब्रजकाण्ड की चर्चा नहीं मिलती । डा० विनयेन्द्र स्नातक ने लिखा है कि 'आचार्य जी ने अपने ग्रन्थों में बाह्य ब्रजकाण्ड को प्रधानता नहीं दिया है । वे सौंकिच कर्मों के प्रति प्रायः अनास्था बुद्धि से ही चलते रहे और जो कुछ उच्च कर्तव्य कर्म प्रतीत हुआ उस भी ब्रजकाण्ड की उल्लेखन में न पँसा कर सहज रूप से बचा ।'^५

हितहरिवंश जी ने ब्रह्म, जीव, जगत् और माया आदि के सम्बन्ध में विचार नहीं किया है । इनका धरातल दार्शनिक है और चिरकाल से इनका चर्चा होती आई है, फिर भी इस विषय पर मतभेद नहीं हो पाया । यही कारण है कि आचार्य जी ने सभी ओर से अपनी दृष्टि को मोड़कर प्रेमाभक्ति का प्रतिपादन किया । शुष्क विषया की विवेचना से शून्य इस सम्प्रदाय के सिद्धांत और मोहक है । आपने प्रेमाभक्ति का जो रूप प्रस्तुत किया है वह बिलकुल ही नवीन है । अन्य वैष्णव सम्प्रदायों की भांति केवल युगल सरकार की कल्पना न कर आपने विलम्बता, व्यापकता और मोहकता का त्रिवेणी सगम उपस्थित कर दिया है । रस की जिस धारा का यहाँ प्रवाह है वह अनंत भावों में अनंत रूप की कल्पना कर प्रेम सत्त्व को ही परास्पर तत्त्व सिद्ध करता है । इसे यदि रस-सम्प्रदाय कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी ।

श्री सम्प्रदाय में विष्णु को इष्ट मानकर दास्यभाव की भक्ति की कल्पना की गई है, तो बल्लभ सम्प्रदाय में बालगोपाल को इष्ट मान रति की सृष्टि ।

निम्बाक, मध्व और गोडीय इस रति से एक कदम और आगे बढ़ किशोर श्रीकृष्ण के साथ स्वकीया और परकीया भाव की भक्ति की भावना अपनी मोहकता से भक्तों के हृदय को आलोकित करती है । हरिवंश जी बाल रति और कैशोर्य रति में जो भक्ति के भाव हैं उच्च अपूर्ण बताते हैं । उनका

१ सारस सर बिछुरत को जी पलु सई सरीर ।

अग्नि अनग जु तिय भलै तो जानै पर पीर ॥—वह्नी

२ जी श्रीहितहरिवंश निचारि 'प्रेम विरहा' विनु वा रस ।

निवट कत नित रहत मरम कहीं जानै सारस ॥—वह्नी,

३ बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय ना० प्र० समा वाराणसी पृ० ४४० ।

४ ईशानी च शची महासुख तनु शक्ति स्वतन्त्र परा ।

श्रीबृन्दावन्तनाथ पट्टमहिषी राधैव सेव्या मम ॥

—राघामुषानिवि, श्लो० ७८ ।

५ डा० विनयेन्द्र स्नातक राधावल्लभ सम्प्रदाय और सिद्धांत, दिल्ली पृ० १३२ ।

कहना है कि स्वकीया में मिलन है पर विरह नहीं। उसी तरह परकीया में विरह है पर मिलन का पूरा सुख उपलब्ध नहीं होता। अतः प्रेम पथ के राहियों को स्वकीया और परकीया की भावनाओं में एकागी तथा एकदेशीय भावनाएँ ही विद्यमान हैं। अतः स्वकीया और परकीया की गंगा यमुनी छटा ही आपके मन की मोहक छटा है जिसमें न जाति है न वधन न रुदन है न मिलन। बल्कि अलण्ड प्रेम का सागर लहराता है जिसमें युगल सरकार विराजते हैं।

इस सम्प्रदाय में कविया की सख्या अधिका है। हरिवंश जी स्वयं ही एक भावुक कवि थे। उनकी कविता कामिनी भक्ति के भावा से लथपथ उस नायिका की भाँति है जिसका द्विरागमन नित्य होता है। आपकी कविता भावुकता तथा भक्ति की दृष्टि से उदात्त और ललित भावमयी है। कलापक्ष की कमजोरी से हृदयपथ का सौन्दर्य काफी सम्मोहक दीखता है। आपकी भावुकता ही उदात्त नहीं थी बल्कि आप स्वयं भावों के मूर्तिमान नग्न थे। आपके उपदेशों का सार निम्नांकित पद में है—

तनहि राखि सरसग म मनहि प्रेम रम भेव ।

सुख चाहत हरिवंश नित, कृष्ण कल्पतरु सेव ॥

सबसो हित निहकाम मन बुलावन बिश्राम ।

राधावरलम लाल को हृदय ध्यान मुख नाम ॥^१

इसे आचार्य बलदेव उपाध्याय ने हरिवंशी मत का चतुःसूत्री कहा है। हरिवंशजी की उपासना-पद्धति अर्थात् सम्प्रदायों की भक्ति पद्धति से बिलबुल ही भिन्न थी। इस कोई विरला ही जान सकता है। इन मत की प्रधान उल्लेखनीय बातें इस प्रकार हैं—

१—विधि नियम का सबका त्याग ।

२—विचारी और सखी भाव की प्रधानता ।

३—श्रीराधा चरण की प्रधानता ।

४—महाप्रसाद की निष्ठा

५—अनय दास भाव ।

हिंदी साहित्य में भक्ति की परम्परा

समाज और साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों का विकास एक दूसरे पर निर्भर है। मानव जीवन अनन्त शक्तियों का स्रोत है। साहित्य इसी स्रोत की बाढ़ है, प्रगति है। अतः जीवन के साथ लौकिक परम्पराएँ सघन करती हैं। यद्यपि सघन आदिलाल से चलता जा रहा है, और जनता ही कापला, बुद्ध का अन्त नहीं और न हेली को है। यही कारण है कि जीवन परम्परा का अनुसर है। इन परम्पराओं के सघन में ही जीवन का परिष्कार एवं परिवर्द्धन होता है। जिस प्रकार जीवन महान् परम्पराओं का अनुकरण करता हुआ प्रगति के कल्याणकारी पथ पर विश्ववधुत्व की भावना की सुरभि प्रदान करता हुआ पूर्णता को प्राप्त करता है उसी प्रकार साहित्य महान् परम्पराओं को सम्बन्ध से सौजन्य प्राप्त कर (सजीवता, ग्वेनशीलता प्रगतिशीलता मानवता, शाश्वतता जातीयता और धार्मिकता) जनहित की भावना का सञ्जन करता है। तभी तो उसे स हिताय साहित्य की उपाधि से विभूषित करते हैं। परम्पराएँ हमारे जीवन की पथप्रदर्शिका हैं, इनसे प्रेरणा प्राप्त साहित्य संपुष्ट होता है। इन परम्पराओं से जीवन में क्रांति की भावना भी जगती है। मानवीय रूढ़ियों के प्रति विद्रोह की भावना का परिचालन और परिपालन दोनों होता है। अतः परम्पराओं में जीवन के उत्कर्षोपत्य की कहानी विद्यमान है। परम्पराओं में साहित्य का सर्वोत्तम विकास स्पष्ट परिनिष्ठित है। भक्ति साहित्य

१ बलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय, भा० प्र० समा, काशी, पृ० ४२७ ।

मायनाओं का अपूर्व सम्बन्ध है, जिसे भविष्य की सचित्र निधि कहा जा सकता है।

परम्पराभूत और वर्तमान का वह संगम है जहाँ भविष्य नित्यप्रति अग्रगण्य की धवल ज्योति विद्यमान रहता है। परम्परायुक्त और वर्तमान का पार कर भविष्य के पथ का निर्णायक है। दूसरे शब्दों में तोरानुभूति का यह प्रवाह जो वर्तमान और भविष्य के बगारा के बीच बहता हुआ भविष्य के (जो आज और अना) अपाह सागर में बहता है। अतीत का ज्वल उमारा उद्गम स्थल है। परम्परा अतीत से भविष्य की ओर प्रगति की मूल धारा है जो ब्रम्हा चली आ रही है और यही उसकी जीवनशक्ति है।^१

हिन्दी भक्ति साहित्य की परम्परा सुनीय है, जिसमें अन्तर्गत आने वाले भक्त कवियों की संख्या भी अपार है। यह परम्परा वेद में ही निम्नित होती है। वेद ही भक्ति साहित्य के उद्गम स्थल है। यहाँ से इस परम्परा का विकास निम्न और सुगुण का धाराभा में प्रवाहित होता हुआ आज २१वीं शताब्दी में महान् भक्त आपार्य जिनोबा माने तक है। इस अर्थ में इस परम्परा ने कई पार नये मोड़ लिए और अपनी छोटी मोटी विशेषताओं के साथ भिन्न भिन्न रूपों में प्रवाहित हुई।

भक्ति साहित्य की परम्परा का स्रोत तो राज-मन्दिर है, न मन्दिर और न मस्जिद। इस परम्परा का आदि स्रोत तो प्रभु का आशीर्वाद है। इस शिवाल सत्कार सागर में प्रभु ने मानव के निर्माण में अपनी सारी शक्तों लगा दी हैं। यह उमरी शला की अन्तिम परीक्षा है। अतः मानव हृदय ही हर एक प्रकार की परम्पराओं का आदि स्रोत है। यही स हमारे प्रसन्न भाग का बही अवरोध होता है, ता बही प्रगति का पथ प्रगस्त भिन्नता है, जहाँ से यह प्रवाह चल पड़ता है आज चल जा रहा है। पता नहीं भक्ति कहाँ है और कब भक्ति पर पहुँचेगा। इस परम्परा में प्रभु सदा जात बालक की भाँति प्रतीत होता है। वह जन्म लेकर सगर में साँसारिक बचपन के बीच पैर अपने उद्धार का रास्ता डूँडता है। जीव हीन उसी बालक की भाँति साँसारिक मायापाल में निपट बानी पीटा गढ़ने हुए अगनी तरब तर पहुँचता है। अन्त में वास्तविक परमेश्वर की प्राप्त कर शिवात्मिका करने लगता है। इस प्रकार भक्ति की एक महान् परम्परा परमपिता परमेश्वर की गता में मिल जाता है। मानव जीवन का यही सत्य है। भक्ति साहित्य की सम्पूर्ण परम्पराओं की मूल धारा यही है। समस्त धारायें यही आकर विभक्त होती हैं।

१ डा० गादिनी शुक्ल भक्त साहित्य की सांस्कृतिक एवं सामाजिक शृङ्खला, दिल्ली, पृ० २४७।

2 our birth is but a sleep and a forgetting
The soul that rises with us, our life a star,
Hath had else where its setting,
And cometh from a far,
Not in entire forgetfulness,
And not in utter nakedness,
But trailing clouds of glory do we come
From God, who is our home
Heaven lies about us in our infancy
Shades of the prison house begin to close
Upon the growing boy
Odes on Intimation of Immortality from Recollections of Early Childhood
Golden Treasury, p 310, Line 57-68

(Contd.)

भक्ति का असली मर्म या स्तिरिठ यही है कि मनुष्य किसी शुद्ध व ऊँचे ध्येय के लिये अपने आपको समर्पण कर दे व तिन रात प्रेम अनुराग, उत्साहपूर्वक उसी की सिद्धि में लवलीन रहे । इससे उह भी भगवद् भक्त की तरह तुष्टि, पुष्टि व मुक्ति तीनों का लाभ होगा ।^१ प्राचीन काल ज्ञान, कम और उपासना तीनों की समन्वित धारा का सम था । भक्ति साहित्य का सृजन नाम मात्र का था, लेकिन उसकी परम्परा अक्षुण्ण थी । भक्त जन वैदिक भक्ति की भूमिका जिस मूल तत्त्वा का अन्वेषण किया है वे आज भी ब्राह्मण उपनिषद् और पाचरात्र साहित्य में वर्तमान हैं । भक्ति की महान् परम्परा वेद से नि सृत होकर उपनिषद् और ब्राह्मण के बगारो के बीच बहती हुई पाचरात्र साहित्य की धुनीती पर आज के जातीय साहित्य का परिष्कार और परिवर्द्धन कर रही है । ब्रह्म चिन्तन की धारा ने ही भक्ति का रूप पक्क किया । यह धारा वेदों से निकली और उपनिषद् एवं परवर्ती युगों के तट का स्पर्श करती हुई जन और बौद्ध काल में विस्तृत होती हुई चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी में सत्ता के नान क्षेत्र में सिमट गई ।^२ वैदिक युग में भक्ति साहित्य की जिन परम्पराओं का दिग्गजन होता है उनकी स्पष्ट छाप आज के साहित्य में है । कालांतर में सूत्रा की रचना हुई जिन पर किसी प्रकार का जातीय सम्कार नहीं है । गीता का स्पष्ट करारा प्रहार गुण कर्मों के बीच प्रवाहित होता है ।^३ क्या उसे भुलाया जा सकता है । जगन्निधत्ता भी धर्म की हानि होने पर उसके पुनरुद्धार के लिये अवतार ग्रहण करता है ।^४

इस प्रकार भक्ति साहित्य में हम सबप्रथम ही ज्ञान्ति के बीच दिखलाई पड़ते हैं । समस्त भक्ति साहित्य के प्रणेताओं ने रुढ़िया के विरोध में अपनी आवाज बुलन्द की । उन्होंने धार्मिक अंधविश्वास के प्रति अवास्था प्रकट की तथा नवीन आदर्शों की स्थापना के प्रति उनकी जागरूकता देखते ही बनती है ।

इस परम्परा की लहर समस्त भारत में व्याप्त है । उत्तर से दक्षिण एवं पूरब से पश्चिम वह अपनी धम ध्वजा को पहराये दीध काल से चली आ रही है । इस विशाल भू-न्वड के निवासी अपनी बोलियों के कारण अलग-अलग जान पड़ते हैं लेकिन भक्ति की परम्पराओं की एकसूत्रता में उह अपने विचारों के प्रकटीकरण के लिये हिंदी को ही आमंत्रित किया । इनके अलावा यहाँ एक और विभिन्नता की विनीपिका थी । यहाँ के भक्ता की जातियों भी विभिन्न थीं । वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र से लेकर अहीर, नार्, बमार, मोची, धुनिया व जुलाहे तक हैं । लेकिन ये जाति की भावनाओं की उपेक्षा कर शुद्ध मानव के रूप भक्ति साहित्य के परिवर्द्धन में जुट गये । परिणामस्वरूप इनसे प्राप्त समानता सुरभि की सुधा से जगत् खिल उठा । इनके आदर्श ऊँचे थे । इनकी भावनाओं में जन-वल्याण की भावना निहित थी । इनका निष्पट व्यवहार जन साधारण के मस्तिष्क को उद्देलित कर देता है ।

१ हरिभाऊ उपाध्याय भागवत धर्म, निल्ली, पृ० ५३ ।

२ सिद्धनाथ तिवारी निगुण बाव्य दर्शन, पटना, पृ० ११ ।

३ चातुर्व्यय भया सृष्ट गुणकर्मविभागश ।

श्रीमद्भगवद्गीता, ४ १३

४ यदा यदा हि धर्मस्य श्लान्निभवति भारत ।

यही, ४ ७

और विश्व बहुत्व का युग युग से मानव का सम्बन्ध है। मनुष्य शान्तिमय वातावरण की सृष्टि के लिये बराबर प्रयत्नशील रहा है वह संघर्षमय वातावरण को त्याग कर आध्यात्म के जल में स्थान लेना चाहता है। यही कारण है कि भक्ति साहित्य स्वात सुखाय और बहुजन हिताय की भावना से सराबोर है। भारतेन्दुयुगीन कवि भी स्वान्त सुखाय की भावना से बचे नहीं। विश्वबहुत्व की भावना तो उस युग की प्रबल धारा थी ही।

रीतिकालीन शृङ्गारधारा का भारतेन्दुकालीन भक्ति साहित्य पर प्रभाव

हिन्दी साहित्य में रीतिवाल का आगमन सामन्ती व्यवस्था की उपज है। यह भारतीय समाज और संस्कृति की हामीमुख विलासपूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति है। भक्तिकाल का मतन को कहीं सीकरी मो काम वाला सिद्धान्त विस्मृत हो गया। स्वात सुखाय का आग्रह अचरार में विलीन हो गया। सुरा और सुन्दरी का सौन्दर्य कविता को स्वान्त सुखाय से स्वामिन सुखाय की बेड़ी में बाँध लिया। कविता विलासियों के विलास का उपकरण बन गई। परिणाम स्वरूप प्रेम वामना में परिवर्तित हो गया। रीतिकालीन कवि की कला नवनिख वर्णन में कर्मान् उपस्थित करने लगी। इस प्रकार शृङ्गार के इस हाट में अनुप्रासप्रियता, चमत्कार प्रदर्शन, वाग्विदग्धता, उच्चात्मकता, वामना की बहार की छात्र गजब ढा देती है। लगता था कि भक्ति रीतिकाल से पलायन ही घर चुकी थी। लेकिन हाँ परम्परा का निर्वाह सूक्तियों के रूप में हुआ। विलास जजर मन भक्ति के लिये व्याकुल हो जाता था। जब लोग रसिकता से घबरा जाते थे तो राधाकृष्ण का अनुराग उनके घर्म भीरु मन को शास्त्रना देता था। डा० नगेन्द्र के शब्दों में रीतिकाल का कोई भी कवि भक्ति भावना से हीन नहीं है हो भी नहीं सकता था, क्योंकि भक्ति उसके लिये मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। भौतिक रस की उपासना करते हुए उसके विलास जर्जर मन में इतना भौतिक बल नहीं था कि भक्तिरस में अनास्था प्रकट करे अथवा सिद्धांत निषेध कर सके^१।

भारतेन्दु युग काव्य की दृष्टि से सञ्जाति का युग है^२। इस युग में प्राचीन काव्यधारा पूणता वेग से थी लेकिन नवीन काव्यधारा का सूत्रपात भी इसी युग में हुआ। रीतिकालीन वातावरण का प्रभाव पर्याप्त परिलक्षित होता है। शृङ्गार का अदम्य उत्साह नवीन भावनाओं के साथ मेल न खा सका और नवीन भावनाओं की धारा अनायास ही फूट पड़ी जिस के किनारा पर वर्तमान काल की काव्य क्यारिया पुष्पित हैं। भारतेन्दु बाबू जिस समय हिन्दी साहित्य में पदार्पण किये रीतिबद्ध शृङ्गार साहित्य का सजन प्रचुर हो रहा था। रीतिशास्त्र प्रस्तुत करके आचार्य पद प्राप्त करने के लिये लगे प्रयत्नशील थे। भारतेन्दु बाबू को इसी प्रकार के साहित्य से प्रेरणा प्राप्त हुई। रीतिकालीन कवि लक्षण ग्रन्थों के प्रणयन में दोहा, सर्वैया और कविता का सहारा लेते थे। वह लक्षण तो दोहो में और उदाहरण कवितो या सबयो में प्रस्तुत करते थे। इस युग में लक्षण ग्रन्थों की रचनाओं नहीं हुई लेकिन इस युग में कविता और सर्वैया की रचना अधिक हुई है जो रीति रचना के सफल उदाहरण हैं। भारतेन्दु बाबू तो इस युग के प्रवर्तक ही हैं। अतः इस युग में इनके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट मिलती है। भारतेन्दु ने सुन्दरी तिनक काव्य ग्रन्थ में रीतिकालीन नायिका भेद परम्परा का अच्छा निर्वाह किया है। यह सर्वैया का संग्रह है। इसमें नायिकाभेद का वर्णन शृङ्गाररस की मधुर भाँकी प्रस्तुत करने में किसी भी शृङ्गार काव्य से पीछे नहीं है। इस युग में रीतिबद्ध काव्य को भी एक नय मोड़ पर आने

१ डा० नगेन्द्र रीतिकाल की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृ० ११०।

२ डा० विश्वरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, काशी, पृ० ३२५।

के लिये भारतेन्दु ने आमंत्रित कर दिया था लेकिन हिन्दी के दुर्भाग्यवश वह मोठ दुर्मेध दुग की मॉनि आज भी अभेद्य ही रहा। अपने लक्षण प्रथा को दोहे वाली परिपाटी को खत्म कर पदा म प्रस्तुत करने की नूतन प्रणाली का आविष्कार किया पर भारतेन्दु के बाद किसी अच्छे उत्तराधिकारी की खोज में यह नई प्रणाली ज्यों की त्यों पड़ी है। तत्कालीन सभी कवियों ने भारतेन्दु के माय का अनुसरण किया।

भारतेन्दु युग के साथ हिन्दी कविता में एक नई क्रान्ति आ जाती है। इस क्रान्ति के बीज रीतिकालीन कविता के विलासप्रिय साज सज्जा में थे। इस युग में प्रेम, वासना का पर्याय बन गया था। रीतिकालीन कवि बाह्य सौन्दर्य का सच्चा पारखी था उसकी अन्तर्दृष्टि अन्तःकरण के सौन्दर्य का वर्णन करने में पूर्ण असमर्थ रहो। रीतिकाल का अधिकांश कवि सौन्दर्य की खोज में इधर उधर भटकता है। उसे बाहरी सौन्दर्य से ही मतलब है। प्रवृत्ति के साथ भी वह आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित न कर सका। वह उही षष्ठुओं का वर्णन करता है जिनसे प्रेम व्यापार में सहायता मिलती है। इस प्रकार भारतेन्दु युगीन काव्य साहित्य का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि इस काल में भी रीतिकाव्य रचने वाले कवियों की विशाल परम्परा है। डा० विनयेन्द्र स्नातक ने लिखा है कि स० १६५० तक ऐसे अनेक रससिद्ध कवि हुए जिन्होंने रीतिकाव्य शली को स्वीकार कर देती ही रचना की ऐसी रीतिकालीन कवि करते थे।

रीतिकालीन कविता धार्मिकता का जामा पहन कर अपने सौन्दर्य का निखार भारतेन्दु युग में देखने को प्रस्तुत हुई। उसके शृङ्गार सागर में यह युग अवगाहन तो करता है लेकिन उस जल को गंगा के जल के समान भस्मक पर नहीं चढ़ाता बल्कि जिस प्रकार बह उछालता है उसे बालक्रीडा का आभास मिलता है और कुछ नहीं। कारण यह है कि रीतिकालीन कवि राधा और कृष्ण के नाम की दुहाई देकर भक्ति परम्परा का स्थायित्व कायम करता है।

इस प्रकार भारतेन्दु युग एक विस्तृत मैदान में विचरण करता है, उसे न तो राज दरबार की फिक्र है और न सामन्ती प्रथा में विश्वास उसे तो लोक के निर्माण के लिये एक क्रान्ति की आवश्यकता है, जिससे नव निर्माण में वह देशभक्ति का स्वर बुलन्द कर देता है। वह रीतिकाल की शृङ्गार प्रथा रीति शली की कविता करने में लीन होने पर भी शृङ्गार को तत्कालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति बनाने में पूर्णतया असमर्थ रहा।

भारतेन्दु युग की प्रमुख काव्यधारायें और उनकी प्रवृत्तियाँ

भारतेन्दु युग

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु युग रीतिवादी और वर्तमान काल के बीच मध्यवर्तिनी बड़ी की मति है। यह युग नवीन चेतना का युग है। रामगोपाल सिंह ने इसे सन्न्यास का युग माना है^१। १८५० से १९०० तक के ५० वर्ष के समय को युग ने अपनी सीमा में घेरा है। भारतेन्दु का जन्म ई० सन् १८५० के ६ सितम्बर को हुआ था। विश्रन्ती है कि आपने पाच वर्ष की अवस्था में ही

‘ले ब्योडा ठाढे मये श्रीअनिरुद्ध सुजान ।

बाणा मुर की सैन को हनन लगे भगवान ॥

दोहे को रच डाला था। पर हमका कोई ठोस प्रमाण अब तक प्राप्त नहीं हो सका है। आपका साहित्यिक जीवन कवि वचन सुधा से प्रारम्भ होता है जिसका प्रकाशन सन् १८६९ ई० (स० १९२६) में हुआ^२। इसके प्रकाशन के एक वर्ष बाद ही मदन-सर्वस्व का प्रकाशन हुआ। यह आपकी पहली रचना थी, जो ब्रम्बद्ध रूप में प्रकाश में आई^३। इस प्रकार आपका साहित्यिक जीवन १९ वर्ष की अवस्था से शुरू होता है। ६ जनवरी, १८८५ ई० (माघ कृष्ण ६ स० १९४१) को इनका देहावसान हुआ। ३५ वर्ष के अल्पवय में ही आप इस मसार से विरल हो गये। केवल १९ वर्ष तक आप साहित्यिक जगत् के नेता रहे लेकिन आपकी साहित्य-साधना का प्रसून स० १९५० तक अपनी मुरमि सुधा से साहित्य जगत् को प्लावित करता रहा। डा० रामचन्द्र मिश्र के शब्दों में ‘यद्यपि भारतेन्दु जी का निधन सन् १८८५ में ही हो गया था तथापि उनके काव्य की प्रवृत्तियाँ १९०० ई० तक अपरिवर्तित रूप में चलती रही^४। जयकिशन प्रसाद ने १८६८ से १९०३ तक के समय को भारतेन्दु युग माना है^५। भारतेन्दु युग नूतन विचारों को लेकर साहित्य जगत् में प्रवेश करता है। डा० बैसरी नारायण शुक्ल ने इस युग की स्थापना के बारे में निम्नांकित तर्क देने हैं जो काफी प्रशंसनीय हैं। उन्होंने लिखा है कि जब आधुनिक काव्य रीतिवादी की भावना और मनोदृष्टि की पुरानी पद्धति त्याग कर नूतन पथ को ग्रहण करने की चेष्टा कर रहा था। आधुनिक काव्य का उद्धार ऐसा ही त्याग और ग्रहण में हुआ और भारतेन्दु युग आधुनिकता के प्रथम प्रयास के रूप में गिनाई पना। नूतनता विधायक इस प्रथम युग का नाम भारतेन्दु युग अनुपयुक्त न होगा। क्योंकि सभी हिन्दी प्रेमी जानते हैं कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और उन्हीं के रंग में रंगे हुए उनके सहयोगियों के सतत परिश्रम से ही इस युग का प्रवर्तन सम्भव हो सका। भारतेन्दु युग सन् १८६५ से १९०० ई० तक माना जा सकता है^६। डा० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल ने १८६५

१ रामगोपाल सिंह भारतेन्दु साहित्य आगारा, प० २५५।

२ कृष्णकिशोर मिश्र भारतेन्दु काव्यान्तः, पीयूष प्रकाशन, कानपुर, प० २७।

३ ब्रजलालदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग २, मदन सर्वस्व, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, मुखपृष्ठ।

४ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिंदी का पूर्व स्वच्छेदतावादी काव्य, दिल्ली पृ० ४६।

५ जयकिशन प्रसाद हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल, आगरा, प० ३०।

६ डा० बैसरी नारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा, नन्किशोर एंड ब्रन्स, वाराणसी, पृ० ३।

से १८६३ ई० तक भारतेन्दु युग माना है^१। कृष्णनारायण माधव ने १९०६-१९५० तक माना है^२ और आचार्य चतुरसेन शास्त्री १८६७ से १८८८ तक केवल २१ वर्ष को ही भारतेन्दु युग मानते हैं^३।

१. इस प्रकार उपयुक्त तिथियाँ में केवल पाँच सात वर्ष का ही अंतर परिलक्षित होता है। अतः हम कविचर्चासुधा के प्रकाशन से लेकर १९०० ई० तक की अवधि को इस युग के घेरे में आवद्ध करते हैं। डा० रामरतन भटनागर के शब्दों में, 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र न लगभग आधी शताब्दी के हिन्दी साहित्य की मिश्र मिश्र प्रवृत्तियों को इतना प्रभावित किया है कि इन पचास वर्षों को स्वभावतः उन्हीं का युग कह दिया जाता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य का सबसे पहला युग यही भारतेन्दु युग है। १८५० ई० में भारतेन्दु का जन्म हुआ और १८८५ में वह गोलोकवासी हो गये, परन्तु अठारह वर्ष के अपने लेखक जीवन में उन्होंने हिन्दी भाषा, हिन्दी कविता हिन्दी कथा-वार्ता सबमें नये प्राण डाल दिये। यही नहीं उन्होंने अपने युग की धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक चेतना को अपने समय के सब लेखकों और विचारकों से अधिक प्रगतिशील रूप में अपनाया। वे अधिक जिये नहीं, उन्होंने अपने जीवन से खेल किया और उसका फल पाया, परन्तु हिन्दी साहित्य में जिन नई शक्तियों को उन्होंने गति दी, वे शताब्दी के अन्त तक उन्हीं के दिखलाए हुए मार्ग पर चल प्राप्त करती रही।'^४

भारतेन्दु युग आधुनिक कविता का प्रवेश द्वार है। भारतेन्दु पूर्व कविता रीतिकाल की सक्ती गली में भ्रमण करती थी। भारतेन्दु के प्रयास से कविता ने रीतिकालीन दरबारी तथा शृंगार प्रधान वातावरण से निकल कर जनता से सीधा सम्पर्क स्थापित किया। रीतिकालीन कविता का जनता से सम्पर्क टूट चुका था। भारतेन्दुयुगीन कवियों ने इस सम्बन्ध को पुनः स्थापित किया। इस आलोच्यकाल के कवियों में प्राचीन और आधुनिक काव्य प्रवृत्तियों और धाराओं का समन्वय मिलता है। प्राचीन एवं नवीन का यह काल सगम है। यहाँ एक तरफ रीतिकालीन शृंगार भावना की पावन भागीरथी हिलोरे मारती है तो दूसरी तरफ रीतिकालीन शृंगार भावना की मन्थ छटा मन को मोह लेती है। साथ ही साथ राष्ट्रीयता हान्य और व्यर्थ सामाजिक जागरण और प्रकृति चित्रण का पुट आधुनिकता की ओर इंगित भी करते हैं। इस युग की कविता की महत्ता इस बात में विशेष है कि इसमें देश और जनता की भावनाओं और समस्याओं को पहली बार अभिव्यक्ति मिली है। इस काल के कवि देश की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक तथा सांस्कृतिक दशा के कर्णचित्र खींचे हैं। समाज-सुधार और देशभक्ति का स्वर बहुत प्रबल है। प्रायः सभी कवि राष्ट्रीयता की जाग में कूद पड़े हैं। डा० सुप्रमानारायण के शब्दों में 'भारतेन्दु युग राष्ट्रीय भावना के प्रादुर्भाव का युग था।'^५ भारतेन्दु और उनके युग के कवियों ने अतीत के सांस्कृतिक गौरव का चित्र प्रस्तुत करके लोगों में आत्म-सम्मान की भावना भरने का प्रयत्न किया।

भारतेन्दु युग नये उत्थान और मोड़ का युग है। इस युग की कविता में समाज और सामाजिक प्रवृत्तियों का स्वर मुखर है। यह मुखरित स्वर तत्कालीन राजनीति-चेतना, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति और साहित्यिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अवलोकन से ही प्राप्त होता है।^६

१ डा० रामेश्वरलाल खड्गेलवाल आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, दिल्ली, पृ० १८०।

२ कृष्ण नारायण माधव हिन्दी साहित्य युग और धारा भाग्यी भवन, पटना प्रथम संस्करण, २०२१, पृ० २३८।

३ चतुरसेन शास्त्री हिन्दी भाषा साहित्य का इतिहास, दिल्ली, पृ० ६३।

४ रामरतन भटनागर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रयाग, १९४६, पृ० १४।

५ डा० सुप्रमानारायण भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति, दिल्ली

अब हम भारतेन्दुवालीन प्रमुख साहित्यधाराओं का विवेचन करेंगे। वे इस प्रकार हैं—

राजनीतिक काव्यधारा

१८५७ ई० का विद्रोह, भारतीय राजनीति के रगमच पर प्रथम स्वतंत्रता संग्राम था। इस समय भारतेन्दु की अवस्था केवल सात वर्ष की थी। यह विद्रोह नवचेतना एवं जागरण का प्रथम प्रयास था। देश की सदियों से सोई राजनीति अंग्रेजों के सम्मुख आकर उदबुद्ध हो उठी थी, किंतु इस विद्रोह का अंत बहुत ही अमानवीय ढंग से किया गया। गांव गांव में पड़ा की डाली में फासी का काम लिया गया। स्वतंत्रता की भावना को बहुत बुरी तरह कुचला गया। लोगों में आतंक छा गया, अंग्रेजों का रोब सब पर हावी हो गया।^१

इस विद्रोह के पश्चात् देश इंग्लैंड के राजा के सीधे सम्मुख आ गया। ईस्ट इंडिया कम्पनी सत्ता के लिये तोड़ दी गई। उस समय सौमन्य से महारानी विक्टोरिया इंग्लैंड की रानी थी, इसीलिये भारतवर्ष की वही महारानी बनी। उनका घोषणापत्र पढ़ा गया और भारतवासी फूले नहीं समाये।^२ महारानी विक्टोरिया के शासन से नई व्यवस्था का जन्म हो जाता है और देश में 'राजनीतिक' जीवन का संचार होता है। विक्टोरिया की घोषणा का जनता ने अभिमान से स्वीकार किया और वह 'राजनीतिक' जीवन के प्रति उत्सुकता तथा उत्साह दिखाने लगी। देशवासियों को पूर्ण विश्वास हो गया कि घोषणा के बचन पूरे किये जावेंगे। फलस्वरूप वह आशावित होकर राजनीतिक सुविधाओं के स्वप्न देखने लगी।^३ किन्तु हुआ ऐसा नहीं। जनता का विश्वास अविश्वास में परिवर्तित हुआ और उसके विद्रोह का स्वर मुखरित होने का अवसर ढूँढन लगा। इस अविश्वास ने केन्द्रीय एकता के भाव का आह्वान किया। फलस्वरूप राष्ट्रीय भावना का बीज भारतीय राजनीति की सुपुष्ट प्रगति में पड़ गया।

राष्ट्रीय भावना

स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात् का हिन्दी साहित्य राष्ट्रीय भावना का प्रारम्भ इतिहास कहा जा सकता है। अब हिन्दी साहित्य निद्रा का मोह त्याग कर नवीन निशा की ओर मुड़ खड़ा। साहित्य का क्षेत्र में भारतेन्दु के उदय नवजीवन की शक्त ध्वनि मुखरित थी। तत्कालीन साहित्य न जीवन की परिस्थितियों का अनुगमन किया।^४ इस युग के साहित्य को सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण का साहित्य कह सकते हैं।^५ भारतेन्दु और उनके सहयोगी कवियों ने इस अवसर में लाभ उठाया। देश की प्रगति का प्रश्न सामने लाकर उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया तथा साहित्य का माध्यम बनाकर सुधार का व्रत लिया गया। देश, समाज तथा सस्कृति को नवीन दृष्टि से देखा।^६ भारतेन्दु इस आन्दोलन के नायक थे। डॉ० वाण्येय के शब्दों में उन्होंने देशभक्ति लोकोहित समाज सुधार, मातृभाषाभार, स्वतंत्रता आदि की वाणी सुनाई।^७

१ डॉ० विश्वरीलाल गुप्त, भारतेन्दु और उनके अथ सहयोगी कवि, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, काशी, २०१३ पृ० २०५।

२ डॉ० कैसरीनारायण शुक्ल, आधुनिक काव्यधारा, काशी पृ० २८।

३ डॉ० लक्ष्मीनारायण वाण्येय, आधुनिक हिन्दी साहित्य, हिन्दी परिषद् इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, द्वितीय संस्करण, १९४८ ई० पृ० १६।

४ रामगोपाल सिंह, भारतेन्दु साहित्य, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा प्रथम संस्करण १९५७,

५ डॉ० सुपमानारायण भारतीय राष्ट्रवाद के विनाम की हिन्दी-साहित्य में अभि व्यक्त, दिल्ली।

६ डॉ० लक्ष्मीनारायण वाण्येय, आधुनिक हिन्दी साहित्य, प्रयाग, पृ० २७७।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नृत्व म इस काल के साहित्य का पथ निर्दिष्ट होता है। भारतेन्दु ने राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। परिणाम स्वरूप उनके अथ सहयोगियों ने भी कर्म से कदम मिलाकर चलना सीखा। देश एवं नई सम्यता एवं सस्कृति के सम्पन्न में आ जाने के कारण अपनी प्राचीन सम्यता, सस्कृति और ज्ञान के नीव को हिलते हुए पाया। भारत के प्राचीन सस्कृति की आधार-शिला पर, पाश्चात्य सस्कृति घातक प्रहार कर रही थी। फलस्वरूप तत्कालीन कवियों का अन्तस्तल विसीम एवं रूढ़ि संपरिपूर्ण हो गया। इन्होंने प्राचीन गौरव-गाथा की कलात्मक अभिव्यक्ति से देशवासियों के सुप्त विचारों में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। अतीत के प्रति देश को सचेत कर वर्तमान अयोग्यता के चित्रण से उनकी घमनियाँ म गर्म सल्लाह का संचार किया। भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी प्रेमधन, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, अम्बिकादत्त आदि कवियों ने अपने साहित्यिक प्रयत्नों में रचित अतीत के गौरव को ओजपूर्ण शब्दों में वर्णित किया। भारतेन्दु ने अति आर्त स्वर में वर्तमान अयोग्यता का स्मरण कर अपन आप्यात्मिक धीर पुरुष का आह्वान किया है—

बह गये विजय भोज राम बलि कर्ष युधिष्ठिर ।
चन्द्रगुप्त चाणक्य कहा नास करिकै गिर ।
बह क्षत्रिय सब मरे जरे सब गय कितै गिर ।
कहा राज कोतौन साज जेहि जानत है चिर ।
बह दुर्ग-सेन धन-बल गयो धूरहि धूर दिखात जग ।
जागो अब तो खल-जल-दहन रह अपने आर्य मग ॥^१

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अतीत ही नहीं वर्तमान की दुर्दशा का अतीत गौरव के साथ क्षोभपूर्ण शब्दों में तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है जो बहुत ही मार्मिक और हृदयग्राही है—

रोनहु सब मिलिबै आवहु भारत माई ।
हा ! हा ! भारत दुर्दशा न देखी आई ॥
सबके पहिल जेहि ईश्वर धन बल दीनो ।
सबके पहिले जेहि सम्य विधाता कीन्हो ॥
सबके पहिले जो रूप रंग रस भीनो ।
सबके पहिले विद्या फल जिन गहि लीनो ॥
अब सब के पीछे सोई परत ललाई ।
हा ! हा ! भारत दुर्दशा न देखी आई^२ ॥

तदुद्युगीन अन्य कवियों ने भी अतीत गौरव गान के चित्र प्रस्तुत करने में पूणत सफलता पाई है। अतीत गौरवगान के साथ वर्तमान अयोग्यता के विसीम की भावना देशवासियों के अन्तस्तल में एक कसक सी पैदा कर देती है। डा० केसरी नारायण शुक्ल न लिखा है कि “अतीत के प्रति अनुराग से उद्भूत इनके उद्गार कही भारत की अव्ययता की ओर और लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हैं, कहीं प्रकट रूप से उज्ज्वल भविष्य बनाने का संकेत देते हैं और कहीं इन कवियों के अन्तर का क्षोभ प्रकट

१ बजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थाली, दूसरा भाग, काशी, पृ० ६८३ ८४ ।

२ बजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थाली, पहला खण्ड, प्रथम संस्करण, २००७ वि, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० ४६६ ।

करते हैं। इस प्रकार अतीत का अनुराग का य की प्रवृत्ति बन गई है^१। अतीत और वर्तमान के स्वर का सांनिध्य पाकर इस युग का कवि देशशान्ति के हृदय में राष्ट्रीय भावना का मय प्राप्ति देता है।

राजमक्ति

१८५७ के प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का प्रभाव भारत के आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा सामाजिक सभी क्षेत्रों पर पड़ा। राज्य मुसलमानों के हाथ से निश्चिन्त विजातिधो, विदेशी तथा विधर्मी अंग्रेजों के हाथ में पहुँचा। देश की राजनीति भी नीव अस्मात् हिन उठी। सभी इससे विच्युत थे। दयालु लार्ड कैनिंग का इलाहाबाद में दरबार हुआ। कैनिंग ने अपने ओगस्की भाषण में महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र को पढ़कर सुनाया। सबको समान रूप से नौकरी मिलेगी, रंगभेद नहीं किया जायेगा और किसी के धर्म पर हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा। भारतवासियों को और क्या चाहिये था। वे परम प्रसन्न हुए, उन्हें जैसे जी परमेश्वर प्राप्त हो गया और राजमक्ति का सागर उनके हृदयों में तरंगों में भरने लगा^२। यह भारतीय निष्प्राण जनता के सामने चारों फोरन का प्रयत्न था। जनता की राजनीतिक उत्सुकता को अनुष्ण रखन का प्रयास किया गया। भारतेदुयुगीन कवियों ने इसे बराबर ही सजीव बनाया। युग नियामक भारतेदु हरिश्चन्द्र तो खुल हाथान् अपनी राजमक्ति थे। उनमें राजमक्ति कूट कूट कर मरी हुई थी। अपना राजमक्ति प्रदर्शित करने का कोई भी मौका अच्छा नहीं छोड़ा है। भारतेदु जी अंग्रेजों की शासन व्यवस्था में काफी प्रभावित थे। उनके भारत वीरत्न के निम्नलिखित छंद में उनकी राजमक्ति दर्शनीय है—

जामु राज मुल बम्पो सग भारत भय ल्यायी ।
जामु बुद्धि नित प्रजा-मुज रजन मह पायी ॥१६॥
जान प्रजा तिय नित सपनेहुँ बित्त चलावे ।
जान प्रजा के धमहि हठ करि कबहुँ नसावे ॥२०॥
बाँधि सेतु जिन सुरत न्ये दुस्तर नद नारे ।
रची राख बेघटक पथिक हित सुख बिस्तारे ॥२१॥
ग्राम ग्राम प्रति प्रबल पाहुँ न्ये बिठाई ।
जिनके भय सा चोरगुप्त सब रहे दुराई ॥२२॥
नृप-मुल दत्तन प्रया कृपाकरि निज विर राखी ।
भूमिबोध को साम तज्यो जिन जग करि साखी ॥२३॥
करि वारड-मानून अनेकन कुलहि बचायो ।
विद्या-गान गान नगर प्रति नगर चलायो ॥२४॥
सबही बिधि हिन न्ये विविध बिधि नीति सिखाई ।
अमय बाँह की छाह सबही सुख न्यो सो आई ॥२५॥
जिनके राज अनक माँति सुख न्ये सगही ।
समरभूमि तिन सा दियानो बधु उत्तम नाही^३ ॥२६॥

१ डा० बेसरी नारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत, नन्दकिशोर एण्ड ब्रूम, काशी, पृ० ११२।

२ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेदु और उनके अग्र सहायोगी कवि, हिन्दी प्रचारन पुस्तकालय, वाराणसी, पृ० २०६।

३ शजरत्नदास (संपादक) भारतेदु प्रभावली, दूसरा खण्ड, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ७६३ ६४।

इसी तरह स्वर्गवासी श्रीअलवरत वणन, जन्तर्लापिका, श्रीराजकुमार सुखामत-पत्र काशी में ग्रहण के हित महाराजकुमार के आने के हेतु कवित्त, प्रोन्स आफ-वेल्स के पीडित होने पर कविता, राजकुमार शुभा गमन वणन, भारत मित्रा, मानसोपायन, मनोमुक्तमाला, रिपनाष्टक, विजय-वल्ली तथा अल्प स्फुट कविताओं में भी आपको राजभक्ति परिलक्षित होती है।

प्रेमघन जी भी भारतवासियों की राजभक्ति का वणन बड़े शव के साथ करते हैं—

राजभक्ति इनम रही जैसी अकथ अनुप।

वैसी ही सुम आज हूँ पहाँ पूरब रूप॥

सबै गुनन के पुज नर भरे सकल जग माहि।

राजभक्त भारत सरिस और और कहूँ नाहि॥^१

अम्बिकादत्त व्यास विकटोरिया का जय जयकार मानकर अपनी राजभक्ति प्रदर्शित करते हैं—

जयति धम सब देश जय जय भारत भूमि नरेश

जयति राजराजेश्वरी जय जय जय परमेश॥^२

भारतेन्दु युग के समस्त कवियों का स्वर राजभक्ति का स्वर था। डा० कैसरीनारायण शुक्ल के शब्दों में इस समय की अधिकांश राजनीतिक कविताएँ मुख्यवस्थित शासन की स्वीकृति और नवीन सुविधाओं की आशा से विकटोरिया वायसराय तथा गवर्नरों के प्रति प्रदर्शित राजभक्ति से ओतप्रोत होती थी।^३ आपने आगे लिखा है कि आज भले ही हमको ऐसी राजभक्तिपूर्ण उक्तियाँ कभी कभी खटवती हों, परन्तु य उद्गार सहेतु भी हैं और स्वाभाविक भी। विकटोरिया के शासन द्वारा अशांत परिस्थिति का अन्त और शांति एवं सुरक्षा के समय का आरम्भ होता है।^४

देशभक्ति

देशभक्ति की भजना समाजगन एवं जातिगत होती है। यह एक मनोभाव है जिसका उद्देश्य मातृभूमि की स्वतंत्रता और उसकी सङ्कति की रक्षा है।^५ आलोच्यकाल में देशभक्ति की भावना राजभक्ति के माध्यम में निर्युत हुई। सब प्रथम तद्व्युत्पन्न कवियों ने राजभक्ति की व्यञ्जना की है। वे राजभक्त पहले हैं देशभक्त बाद में। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स० १९३१ तक राजभक्ति के पालने पर झूल रहे थे। मैं वे गौरांग महाप्रभुओं को धर्म पाव और दया ना अवतार समझते रहे, किन्तु उनका व्यक्तित्व विशाल था और प्रातमा के मनस्वी पुत्र थे। जब उन्हें यह मालूम हो गया कि कोरी राजभक्ति से काम नहीं चलने को है। और वे विदेशी शासन के शासन के कट्टर आलोचक बन गये।

उनकी देशभक्ति दो रूपों में अभिव्यजित है। इसकी अभिव्यञ्जना उन्होंने राजभक्ति के साथ भी की है और स्वतन्त्ररूप में भी। जहाँ उन्होंने स्वतन्त्ररूप से देशभक्ति का वणन किया है, वहाँ तो उनके हृदय की कसक कमाले स्पष्ट दिव्य पड़ने हैं। लेकिन जहाँ पर उन्होंने देशभक्ति की व्यञ्जना राजभक्ति की आड लेकर की है, वही राजभक्ति पर देशभक्ति हावी है। उनकी राजभक्ति और देशभक्ति

१ प्रेमघन आर्यामिनन्दन, पृ० ६।

२ अम्बिकादत्त व्यास दीवपुरुष दृश्य - मन की उर्मंग

३ डा० कैसरीनारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा, काशी, पृ० २६।

४ वही, पृ० ३१।

५ वही, पृ० ५१।

साथ साथ चलती रहता है। उन्होंने इन दोनों में समन्वय स्थापित करने की भरपुर कोशिश की है।
यथा—

अतिहि । अन्धिन । भारत-वास ।
अतिहि छीन हिटन की आसा ॥
भूलि बूटिष बन धारि सनहू ।
भारत सुतन गोठ करि लहू ॥
कहि वृष्ण इह मति तुच्छ करो ।
नहि कीटहु तुच्छ विचार धरो ॥
इनहू कहै जीवन देह दया ।
इनहू कह पान सनेह मया ॥
इनहू कह साज वृषा ममता ।
इनहू कह क्रोध सुषा समता ॥
इनहू तन सोनित हाड चुषा ।
इनहू कह आलिर इस रचा ॥^१

आल महाप्रभुओं की साम्राज्यवादी नीति

राजपूत काल के उपरान्त देश में वैदेशीय शक्ति का अभाव हो गया। गुजराती के शासन के अन्तर्गत रहने के कारण भारतवासी मुगलों के आने के समय निष्क्रिय बैठे रह। वे उन्हें रोक न सके। देश में फूट का बीज पुष्पित एवं पल्लवित था। विदेशी आक्रमकों न सहज में यहाँ के राजाओं को कुचल दिया और उन्हें अधीनता स्वीकार करने के लिये बाध्य कर दिया। निर्बलता स्वामीनता का मूल्य खो बठी। इसी गलती की पुनरावृत्ति अग्नजा के आगमन के समय हुई। अंग्रेजी शासन के जमाने में निस्सन्देह पारस्परिक द्वेषभाव ने बहुत योग दिया और देश के दुर्भाग्य से बहुत जमीन और मीरजाफर भी जीतित थे, जिन्हें देश की स्वतन्त्रता बचाने में जरा भी भय और सज्जा न थी।^२

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम तब सम्पूर्ण देश पर अंग्रेजों की ध्वजा फहरा रही थी। स्वतन्त्रता के प्रति आकर्षण रखने वाले और जो अधीनता स्वीकार करने में अपनी अममयता प्रकट की मरणा के लिये कुचल दिये गये। क्योंकि अंग्रेजों ने विराघ बर्ताव नहीं किया।

संग्राम के उपरान्त इस आलोच्यकाल में लार्ड कैनिंग (१८५६ ई०) से लार्ड नार्थवुक (१८७६ ई०) तक देश में पूरा शांति रही। अंग्रेजी लाठ इस बीच पश्चिमोत्तर सीमा पर उलझे रहे। पश्चिम मोत्तर सीमा का प्रश्न बढ़त हो पेचीला बना गया था। अफगानिस्तान के अमीर दोस्त मुहम्मद की मृत्यु से उसके उत्तराधिकारियों के बीच असंतोष की आग उभर पड़ी थी। अंग्रेज इस बीच रूस के आक्रमण से भयातुर थे। परिणामस्वरूप उन्हें इस मामले में दखल देना पड़ा। सन् १८७६ ई० में लार्ड नार्थवुक ने उपरान्त लार्ड लिटन भारत के वायसराय बन कर आय। ये बहुत ही अनुभवी व्यक्ति थे। ये भारतीय नीति की सक्रियता को बनाने में असफल सिद्ध हुए। परिणामस्वरूप इनके ही समय में अफगान युद्ध शुरू

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० ८०६।

२ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिंदी का पूरा स्वच्छन्दतावादी काव्य, रणजीत प्रिंटस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९५६, पृ० ५०।

हो गया। पुनः यात्रा वहाँ द्वारा मचि हुई और बोहे ही दिना के बाद अंग्रेजों के राजदूत वेवेनगरी की हत्या कर दी गई। अफगाना में स्वतन्त्र भावना के कारण ही ऐसा हुआ। अफगान युद्ध शुरू हो गया। अंग्रेज शक्तिशाली थे। उन विजय उन्नी हुई। साईं निम्न के प्रतिश्रियावाणी शासन के परिणामस्वरूप^१ राष्ट्रीयता पाप उठी। श्री० दीनानाथ वर्मा के अन्त में साह लिटन के शासन काल की घटनाओं ने आप में भी बराबरी किया। उसके समय में कुछ ऐसी घटनाएँ घटी जिससे राष्ट्रीय असंतोष की ज्वाला प्रकट उठी। साईं निम्न के शासन काल को भारतीय राष्ट्रीयता का बीज बपन का समय कहा गया है^१।

साईं रोपन इन्हीं युद्धकाल में भारत के वासराय बनकर पधारे। साईं रोपन की शान्तिप्रियता काफ़ी प्रगट थी। भारतेन्दु 'राधाकृष्णदास', बन्दीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' आदि ने इनकी उन्नतता की भूरि भूरि प्रशंसा की। इनके उपरान्त साईं डफरिन से लेकर साईं बर्जेन तक पश्चिमोत्तर सीमा का विवाद चलता रहा। साईं डफरिन के समय में ही १८ नवम्बर १८८५ ई० को भारतीयों की एक सभा डा० ह्यूम ने बुनायी। इसी ने वायस का रूप धारण कर दिया। अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति के फलस्वरूप ही राष्ट्रीयता का जन्म हुआ।

उपयुक्त परिस्थितियाँ न भारतीय राजनीति को भूतभोर किया। डा० ह्यूम के सहयोग से नेम नल कांग्रेस की स्थापना की गई। सर्वप्रथम कांग्रेस का पहला अधिवेशन उमेश चन्द्र बनर्जी के सभापतित्व में हुआ। प्रारम्भिक काल में सुधार सम्बन्धी प्रश्न ही इनके सामने थे। बाद में दानामाई मीरोजी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, विरोजगह मेहता, गोपालकृष्ण गोखले और मन्मोहन मालवीय जी आदि नेताओं के सहयोग से शासन व्यवस्था में भी सुधार की माँग की गई। इन लोगों के सहयोग से यह राजनीतिज्ञ आन्दोलन जन आन्दोलन में परिवर्तित हो गया।

राजनीतिक अवस्थायें और साहित्य में उसका स्वर

राजनीतिज्ञ के समाप्त होने से पूरा ही सम्पूर्ण देश पर अंग्रेजों का एकाधिपत्य हो चुका था, परन्तु देश ने अभी पूर्णरूप से विदेशी शासन को स्वीकार नहीं किया। जनता में अन्तर्गत तथा क्षीम की अग्नि प्रकट रही थी, वह ब्रिटिश वास्तव को स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं थी। इसी के फलस्वरूप १८९७ ई० की राज्यक्रान्ति हुई। इस राज्यक्रान्ति का हिन्दी प्रदेश में घनिष्ठ सम्बन्ध था। कानपुर, लखनऊ, जिल्ला, जागरा, मरठ आदि इनमें मुख्य केन्द्र थे। इसे अंग्रेजों ने भारतीय फूस की मदद से कुचन किया। परन्तु राजनीतिक अवस्था में पूर्ण परिवर्तन हो गया। भारत का शासन बम्पनी के हाथ से निकल कर इंग्लैंड के राजा के हाथ में चला गया।

महाराजा विक्टोरिया के घोषणापत्र ने भारतीय राजनीति में अवस्था में जागरण के स्वर को रखा। उस पत्र में सहृदयता, उन्नतता और धार्मिक सहिष्णुता थी। उसे देशों राजाजी और प्रजा को आशासन मिला। उनका मय और असंतोष काफूर हो गया। अंग्रेजों के प्रति उनके अटल विश्वास ने तदनुगीन बहियों और लेखकों को राजमन्त्रि के मन्त्र प्रस्तुत करने को आशान्वित किया। बहियों ने गद्गद् कठ से अंग्रेजी राज का मुणगान किया^२—

१ १

१ दीनानाथ वर्मा। जाधुनिक भारत का इतिहास, नानदा प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण, १९६६, पृ० ६३।

२ डा० उदयमानु सिंह। महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग, विश्वविद्यालय लखनऊ, पृ० १।

परम मोक्ष फल राज-पद-परसन जीवन माहि ।

वृटन देवता राज सुत-पद परसहु चित चाहि ॥^१

अम्बिकादत्त व्यास ने तो महारानी विक्टोरिया की जय मनाई है—

जयति धर्म सब देश जय भारतभूमि नरेश ।

जयति राजराजेश्वरी जय जय जय परमेश ॥^२

महारानी विक्टोरिया जब भारत की साम्राज्ञी बनी तो दिल्ली दरबार बहुत ही शौक एवं शान से मनाया गया । उस समय वायसराय राजाओं की महती सभा में भडा और तगमा का वितरण करते हुए जो भाषण कर रहे थे उससे यही स्पष्ट होता था कि वे गुलामी का तमगा बाँट रहे हैं । उनके शब्द थे—'मैं श्रीमती महारानी की तरफ से यहां भडा खास आपके लिये देता हूँ जो उनके हिंदुस्तान की राजराजेश्वरी की पदवी सने की यादगार रहेगा । श्रीमती को भरासा है कि जब कभी यह भडा खुलेगा आपको उसे देखते ही केवल इसी बात का वा ध्यान न होगा कि इंगलिस्तान के राज्य के साथ आपके ऐश्वर्याह राजघराने का कैसा दृढ सम्बन्ध है, बरन् यह भी कि सरकार की यह बड़ी भीर इच्छा है कि आपके कुल को प्रतापी प्रारंभी और अचल देखे । मैं श्रीमती महारानी हिंदुस्तान की राजराजेश्वरी की आज्ञानुसार आपको यह तगमा भी पहनाता हूँ । ईश्वर करे आप इसे बहुत दिन तक पहनें और आपके पीछे यह आपके कुल में रहकर उम शुभ निन की याद लावे जो इस पर छाया है ।^३ यह तगमा दते समय वायसराय की यह धारणा थी कि गुग गुग तक महा गुलामी बनी रहे ।

यह गुग राजनीतिक परिवर्तन का गुग था । भारतीय जनता को पश्चिमी राजनीति के सम्पर्क में आ जाने के कारण एक नये ढंग का समाज, नूतन अथ व्यवस्था, नई शासन प्रणाली से परिचय हुआ । हमारा सम्पर्क अंग्रेजी साहित्य और संस्कृति से हुआ । परिणामस्वरूप समस्त प्राचीन का नव्य भूल्याकन होने लगा । समस्त प्राचीन स्थापनाएँ नवीन का आह्वान करने लगी । इस सब नवीन के सम्पर्क से हमारे देश जीवन के हर क्षेत्र समाज, उद्योगधर्म, राज्य, सम्पत्ता और संस्कृति एवं धार्मिक मान्यताओं में, सब में—एक सङ्क्रमण आरम्भ हो गया और देश एक सङ्क्रांति से गुजरन लगा ।^४ कवियों और लेखकों की वाणी मुखर हो उठी । उन्होंने देश की राजनीतिक अवस्था का चित्रण नवीन ढंग से किया । उनके स्वर में नवीनता का पुट है अतीत तो बेचल आचल के ओट से भौकता नजर आता है । राजनीतिक अवस्था के बिगड़ जाने से देश की दुःशा हो जाती है—

छाई जहाँ अति अपार दरिद्रता है ।

प्राचीन धाय धन का न कहो पता है ।

सुप्राप्य पेट भर नित्य जहाँ न दाना^५

क्या चाहिये धिगू दहा पर या सुदाना ॥

१ ब्रजवल्लभदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, ना० प्र० समा, काशी, भाग २, पृ० ७०३ ।

२ अम्बिकादत्त व्यास मन की उर्मग—देव पुष्प दुष्य, पृ० १६ ।

३ सप्लिमेंट टु द हरिचन्द्र मैगज़िन आव् द जनवरी १८७७, निली दरबार दफन, पृ० १० ।

४ रामगोपाल सिंह चौहान भारतेन्दु साहित्य, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा प्रथम संस्करण १९५७, पृ० २३ ।

५ आनन्द कादम्बिनी, माध-फाल्गुन, सं० १९६३ वि०, पृ० २०६ ।

अतः भारतीय राजनीति में मोड़ आ जाता है। हलचल मच जाती है और अतीत के आचल से नवीन आँखें मीचने लगती हैं, वह अब अंग्रेजों को पराया समझना है। उनकी वस्तु को परासी वस्तु समझना है और उसके त्याग की चेतावनी देना है—

हे देश विदेशन वस्तु छोड़ो,

सम्भव सर्व उनसे तुम जीघ्न तोड़ो।

मादो तुरत उनसे मुँह आत्र न हो

बल्याण जान अपना इस बात में ही ॥^१

डा० बेसरीनारायण शुक्ल ने लिखा है कि 'इन कवियों की रचनाएँ आरम्भ में राजभक्ति से जोत-धोत हैं, परन्तु क्रमशः मोह का पर्ण हटता गया और समय-एव दासता की बठोरता सामने आती गई जिससे बाद की रचनाओं में असंतोष की स्पष्ट भसक मिलने लगी।

भारतेन्दु के आदिर्भाव के साथ ही साथ भारतीय राजनीति में राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित हो उठा। सारा राष्ट्र और समाज अंग्रेजी राज्य प्रदत्त राजनीतिवत् अवस्था में ऊब उठा था। राष्ट्र की सारी समस्याएँ भारतीय राजनीति की परिधि में आ गई थी। भारतेन्दु अपनी मातृभूमि के सच्चे सपूत थे। वे अपनी मातृभूमि की परतन्त्र जनता को अत्याचारों और परित्राण दिखाने के लिये या राम और कृष्ण की पावन भूमि के उद्धार के लिये भारतेन्दु ने शब्दनाद किया। भगवान् को उन्हाने पुकारा—

यहाँ कल्याणार्थ के शिव सोये

जगत नेव न जदधि बहुत बिधि भारतवासी राये ॥

उन्हाने देश की भयंकर आर्थिक क्षोभण की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया—

अंग्रेज राज सुखसाज सजे अति सब भारी

पै धन विदेश चलि जाति इहे अति रसारा^२ ॥

सांस्कृतिक और धार्मिक धारा

भारतीय जनता की मूलतः भावना धार्मिक रही है। कयाकि देश धर्म प्रधान देश है। यहाँ के समाज राज आदि धर्म के आधार पर ही है। धर्म के विकास के इतिहास का आलोडन विलोडन करने से यह पता चलता है कि धार्मिक धारा के रुढ़ हो जाने पर उससे नई धारा का जन्म होता है लेकिन श्रोत वही रहता है। धर्म ही सस्कृति का मूल है। यह भारतीय सस्कृति की निजी विशेषता है। विश्व के विशाल पक्ष पर भारतीय सस्कृति प्राचीन ही नहीं अतिप्राचीन है। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय सस्कृति का समर्थ मुस्लिम सस्कृति से था, लेकिन अंग्रेजी राज्य स्थापना के फलस्वरूप भारतीय सस्कृति से नवजीवन और नवोल्लास से परिपूर्ण एक नूतन सस्कृति का प्रवेश हुआ। इस सस्कृति के प्रवेश पाते ही देश में पुनर्जागरण का स्वर गूँज उठता है और देश की सुपुस राजनीति राजभक्ति से, देशभक्ति और फिर राष्ट्रभक्ति की तरफ सकेत कर आगे बढ़ जाती है। यह थी पाश्चात्य सस्कृति। इसमें नवभक्ति और नवीन उत्साह था। देशजतान्वियों से पराधीनता की वेदी में पड़ा कराह रहा था।

१ आनन्द वादस्विकी, माध-कालगुप्त स० १९६३ वि०, पृ० २०६।

२ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१०, पृ० ६३३।

३ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१०, पृ० ७०५।

देश की सस्कृति की इसी कारण अधोगति थी। रामगोपाल सिंह चौहान के शब्दों में 'जब अंग्रेज भारत आये, उस समय जैसे राजव्यवस्था विष्ट खलि त हो रही थी, वैसे ही सांस्कृतिक तथा धार्मिक जीवन भी अधविश्वासों, रूढ़ियों सबी गली मायताओं, नुप्रथाओं से जकड़ा हुआ था'। भारतेन्दु तथा इस काल के हिंदी साहित्यकारों की दृष्टि में यह छिप न सका कि अंग्रेजी राज्य केवल राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं बरन् धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक दृष्टि से भी जमिशाप बन कर जाया है। उन्होंने सभ्यता, सस्कृति तथा ज्ञान के क्षेत्र में अति प्राचीन भारत की सुदृढ़ आधारशिला को हिलते देखा। इस युग के साहित्य को सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण का साहित्य कह सकते हैं।^१ तत्कालीन साहित्य में जीवन की परिस्थितियों का अनुगमन किया।^२ वस्तुतः भारतीय सस्कृति को पाश्चात्य सभ्यता एवं सस्कृति ने भ्रूणभोर डाला।

भारतीय सस्कृति सस्कृत भाषा में अनुष्ण बनी रही। क्योंकि भारतीय धर्म ग्रंथ सस्कृत में थे। अंग्रेजों के आगमन के साथ ही साथ सस्कृत की दशा खराब हुई। इसके आगमन के पूर्व सस्कृत की हिंदू समाज में विशेष मायता थी। अंग्रेजों ने मुगलशाहीन फारसी भाषा को हटाकर अंग्रेजी की शिक्षा का मायम बनाया। परिणामस्वरूप सस्कृत का विकास जवरुद्ध हो गया। डा० रामचन्द्र मिश्र के शब्दों में 'अंग्रेजी काल में अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम होने से सस्कृत के विकास का अवसर ही समाप्त हो गया'।

इस अलोच्यकाल में हिंदू धर्म बहुत सकीण हो चुका था। धर्म के नाम पर समाज में रूढ़ि प्रियता बहुदेवा, अधविश्वास आदि उत्कष पर थे। सभी उपासकों का कर्तव्य अपने अपने देवों की श्रेष्ठता सिद्ध करना था। शिव शक्ति और वैष्णव का आपसी मतभेद समाज को गुमराह बनाये हुए था। आपसी विद्वेष के कारण मीन मेघ तिमालना ही इनका कर्तव्य हो गया था। धर्म में आडम्बर इतना बढ़ गया था कि आध्यात्मिक विकास के शव स सहेपन की गंव जा रही थी। बाह्याडम्बर मिथ्याचार भ्रष्टाचार की आराधना में नगा नृत्य हो रहा था। उपासना में अश्लीलता का साम्राज्य था तथा उसके क्षेत्र भ्रष्टाचार के अड्डे बन थे। तीर्थों में यमिचार के अड्डे बने हुए थे। महत्ता के घर पापाचार के आश्रम थे और मूर्तियाँ को पुजवाने वाले पण्डे बिलास में डूबे हुए थे।^३ धार्मिक एकता बिल्कुल समाप्त हो गई थी। सभी अपनी अपनी डफली अपना अपना राय अलाप रहे थे। मंदिरों में बलि प्रथा थी। काला शक्ति और घड़ी के उपासना में हिंसा का मुख्य स्थान था। बिना बलि के पूजा अधूरी समझी जाती थी। उपासना और उपासकों की समस्या में नित्यप्रति वृद्धि हो रही थी। वे अपना प्रचार किसी भी प्रकार से करने में हिचकते नहीं थे। परिणामस्वरूप नये नये नामधारी मत इस अलोच्य काल में दुष्टगत हुए।

ब्राह्मण धर्म के उद्देश्यार्थ थे। अधिकांश में वे सभी वैष्णव धर्म के उपासक थे। इनसे मूर्तिपूजा

१ रामगोपाल सिंह चौहान भारतेन्दु साहित्य, आगरा, पृ० २३।

२ रामगोपाल सिंह भारतेन्दु साहित्य, पृ० ६।

३ डा० लक्ष्मीसागर वाष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ० १६।

४ डा० रामचन्द्र मिश्र श्वर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्टूडेंट काव्य, रणजीत प्रिंटर्स ऐण्ड पब्लिशर्स, दिल्ली १९५६ पृ० ५३।

५ रामधारी सिंह 'दिनकर' सस्कृति के चार अध्याय, पटना १९५६, पृ० २३८।

६ डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य, युगवाणी प्रकाशन कानपुर, २०२१, पृ० १०६।

अधविश्वास, धर्माघता और कमकाण्ड का पोषण हो रहा था। इनका समाज में अच्छा स्थान था और ये भी अपने को बहुत बड़ा मानते थे। डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल के शब्दों में वे अपने आगे किसी दूसरे को कुछ समझते ही नहीं थे। पुरानी परम्पराओं और रूढ़ियों का ही छाती से लगाये बैठे थे। इसमें बौद्धिकता नाममात्र को भी नहीं था, बस बाहरी दिखावा ही प्रमुख था^१। इनके मनमानी के व्यवहार से समाज में कुरीतियाँ जो फैली थी उनका वर्णन करना मुश्किल है। लोग अधविश्वास के कारण उनका विश्वास करते थे। जन्म से लेकर मृत्यु पयत गण्डे, पुरोहित, ज्योतिषी, गुरु आदि जैसे अशिष्ट और अशिक्षित ब्राह्मण हिन्दू समाज पर छाये हुए थे। उनके मुख से सुनी हुई गलत या ठीक बात को समाज वेदवाक्य मानकर तदनुकूल जावरण करने के लिये प्रस्तुत रखता था।^२ जनता का पूजा-पाठ, माय-वाद, अवतारवाद और तीथयात्रा पर पूरा विश्वास था। तद्बुद्धीन कवियों पर इस सांस्कृतिक एवं धार्मिक स्थिति का पूरा प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप उनकी लेखनी द्वारा जो उद्गार निःसृत हुए, वे द्रष्टव्य हैं—

‘विप्र वेद पढ़िबो तो, निर्दित कम करें धितलाई।

झूठ ज्ञान उपदेशत डोलें बने समाजी माई ॥’

× × ×

जहा देखो तहाँ सब उसटी रीति दिखाई।

सब भाति सनातन कथा सवरन बिसरई ॥

निज धर्म प्रतिष्ठा बैठे लोग नैवाई।

बनि रह नीच, कर नीचन की सबवाई ॥’

× × ×

मुख में चारि वंद की बातें मन पर धन पर लिय की धातें।

१ १ धनि बकुला भक्तन की करनी, हाथ सुमिरनी बगल बत्तरीनी ॥’

इस समय भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का प्रवेश हुआ। ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के उपरांत देश में ईसाई धर्म का प्रचार प्रारम्भ हुआ। लेकिन भारतीयों में धर्माघता और अधविश्वास का इतना प्रचार था कि ईसाई धर्म फूल फल नहीं पाया। यन्त्रि हुआ भी तो केवल अंग्रेजी शिक्षा के कारण भारतीय नवयुवकों में वे अंग्रेजी फैशन और नौकरी के लिहाज से काफी प्रभावित हुए। लेकिन उन लोगों में भी ईसाई धर्म की दीक्षा नहीं ली। पुराने लोग ईसाई धर्म को बड़ी घृणा से देखते थे। इनके आचार व्यवहार उन्हें पसन्द न थे। मांस भक्षण और शराब आदि से इन्हें बड़ी नफरत थी।^३ नवयुवकों का ईसाई धर्म की ओर आकर्षण होता बढ़ा ही धातक सिद्ध हुआ। हिन्दू समाज में मांस भक्षण शराब आदि से नाना प्रकार की कुरीतियों का प्रवेश या जाना सम्भव हो गया। भविष्य में हिन्दू धर्म पर बड़ा भारी खतरा था। समाज में बड़ी आशान्ति फैली और स्थिति बड़ी भयंकर हो गई। समाज में धार्मिक

१ वही, पृ० १०६।

२ डा० लक्ष्मीसागर बाण्येय आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० ८१।

३ प्रतापनारायण मिश्र भारत दुदशा रूपक, अङ्क १, दृश्य पहिला, १६०२ ई०

४ प्रतापनारायण मिश्र हमीर हठ नाटक, एक्ट ६, सीन पहिला (हस्तलेख)

५ विजयशंकर मल्ल (संपादक) प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्रथम भाग (शिव सवस्व), नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, २०१४ वि०, पृ० ६१७।

६ रामधारी सिंह ‘दिनकर’ सस्कृति के चार अध्याय, पृ० ४३७ ४३८।

जागरण की आवश्यकता महसूस होने लगी। अतः धार्मिक नेताओं ने एक क्रान्ति का बिगुन फूक ही तो दिया।

ईसाई धर्म बड़ी चालाकी से काम ले रहा था। वह हिंदू धर्म से किसी भी प्रकार मेल नहीं खा रहा था। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार तथा हिंदू धर्म की सक्तीयता, फूट, जातिभेद, जाडम्बरप्रियता आदि के कारण भारतीय नवयुवक इस नवीन धर्म के आगमन का स्वागत कर रहे थे। प्रचार काय मे ईसाई धर्म और हिंदू धर्म में संघर्ष ने क्रान्ति का रूप धारण कर लिया। विदेशी जातियों के आने से देश में मास भक्षण तेजी से बढ़ रहा था जिसके परिणाम स्वरूप गायों का वध अत्यधिक सहज में हो रहा था। चेतना के विकास के साथ ही भारतीयों की दृष्टि गोवध की ओर भी गई और गोवध बन्द करने के लिये अनक आन्दोलन प्रारम्भ हुए।^१ यह काल धार्मिक पुनर्जागरण का था। अतः अनेक संस्थाओं और नेताओं ने इस नवीन दृष्टिकोण को व्यापक, सुदृढ़ और सुसंगठित रूप प्रदान किया। इन काल के धार्मिक जागरण के इतिहास में ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, प्रायश्चित्तसमाज, ब्रह्मविद्या, रामकृष्ण मिशन, आदि का प्रमुख हाथ है। कल्पिप्रस्तता के विरोध में समाज का जागरूक होना अति आवश्यक था। शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में १९वीं सदी के कथमरश में इस परम्परागत समाज को भी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये रुढ़ियों में कुछ सुधार करने पड़े। यो कह कि कल्पिप्रस्त समाज अपने सामयिक उपचार में लगे। फलतः उसकी कल्पिप्रस्तता में एक स्वस्थ रुढ़िप्रियता का संस्कार उत्पन्न हुआ।^२

ब्रह्मसमाज आन्दोलन और नई दृष्टि

भारतीय सांस्कृतिक सुधार आन्दोलन के अग्रदूत बंगाल के राजा राममोहन राय (१७७२-१८३३) थे। वे संस्कृत, फारसी अंग्रेजी और अरबी के विद्वान् थे। इन्होंने ब्रह्मसमाज की स्थापना २० अगस्त १८२८ ई० को की।^३ यह एक धार्मिक संस्था थी जिसने बन्दे हुए ईसाई धर्म के प्रचार को रोककर नवचेतना का संदेश दिया। उस समय हिंदू धर्म खालसा हो चला था। अंग्रेजी सभ्यता के प्रचार, प्रसार एवं हिंदू समाज के कठोर विधि विधान से पीड़ित होकर बहुत से हिंदू ईसाई धर्मावलम्बी होते जा रहे थे। इसकी रोकथाम के लिये राजा साहब ने भारतीय दृष्टिकोण में पारिवारिक संस्कृति और सभ्यता की समीक्षा प्रस्तुत की तथा उसके गुणों का समर्थन किया। इस आलोचन बिलोडन में उन्हें तत्कालीन प्रचलित हिंदू समाज में मूर्तिपूजा, मतीप्रथा, बाल विवाह, छुआछूत एवं बहु विवाह आदि मुट्ठिपूण एवं पाषण्डपूण प्रतीत हुए। उनके हृत्प में भारतीय संस्कृति और सभ्यता के लिये उच्चतम स्थान था। अतः उन्होंने सांस्कृतिक जागरण के लिये एक ब्रह्म की सत्ता की स्थापना की। यही कारण है कि उन्हें आधुनिक भारत का जनक कहा जाता है।^४ उन्होंने वेदों और उपनिषद् का गम्भीर

१ सावरन्याविहारी लाल वर्मा विश्वधर्म-दर्शन, १९५३ पृ० ३३५।

२ शान्तिप्रिय द्विवेदी युग और और साहित्य, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, प्रथम संस्करण, १९४१, पृ० १४६।

३ रामकृष्ण सिंह उमाशंकर सिंह भारतीय धार्मिक पुनर्जागरण नन्किशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी, प्र० संस्० १९५७ पृ० ४५।

४ रामकृष्ण सिंह उमाशंकर सिंह भारतीय धार्मिक पुनर्जागरण, वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९५७, पृ० ४५।

अध्ययन किया। इनमें प्रेरणा लेकर, अपनी प्रतिभा द्वारा समाज में प्रसारित कुरीतियाँ, अंध विश्वासों, पाखण्डों आदि के उन्मूलन के लिये कर्मरक्त कर तैयार हो गये।

ब्रह्मसमाज पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं करता और सबव्यापी ब्रह्म को ही अपना इष्टदेव मानता है। यह एक ऐसी सत्ता थी जिसके रगमच पर तीन सांस्कृतिक धाराएँ—हिंदू, मुस्लिम और अंग्रेजी हिलोरेँ भारत की थी। रामबुध सिंह के शब्दों में, 'ब्रह्मसमाज तीन सम्प्रदायों—हिंदू, मुस्लिम तथा यूरोपीय एवं तीन धर्म—इस्लाम, हिंदू तथा ईसाई का संगम है।' विश्व के इतिहास में सर्वप्रथम एक स्थान पर ऐसा सम्मेलन हुआ था। इस समाज के मुख्य उद्देश्य थे—मूर्तिपूजा, जातिपात तथा छुआछूत का विरोध करना। राजा राममोहन राय ने अंग्रेजों शिक्षा, विदेश यात्रा, स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह इत्यादि का समर्थन किया और सतीप्रथा, बाल विवाह, बहुविवाह, बुरी प्रथाओं का विरोध किया। भारतीय कुरीतियाँ और अंधविश्वासों पर इस समाज ने कसकर प्रहार किया। सांस्कृतिक नवजागरण का यह पहला कदम था और राजा राममोहन राय ही पहले व्यक्ति थे जिनके दिल में वेदों तथा उपनिषदों के अध्ययन से इन सुधारों की आवश्यकता मान्य पड़ी। उनका ब्रह्म समाज एक सहनशील सत्ता थी, जिसमें धर्म, उन्नति तथा अन्तर्गत सभी धर्मों के विश्वस्त सिद्धांतों का समावेश था।^१

ब्रह्मसमाज का तत्कालीन कवियाँ, लेखक और साहित्यिक सत्ताओं पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा। उन लोगों ने खुलकर जात-पात, सती प्रथा, बहुविवाह आदि का वर्णन किया। डा० कैमरीनारायण शुक्ल के शब्दों में धार्मिक विवाह बालविवाह विधवा विवाह, जातिभेद, अंधविश्वास, समुदाय नियम आदि समस्याएँ हरिश्चन्द्र के सामने थीं। हरिश्चन्द्र ने यथाशक्ति इन समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया।^२ आपने स्त्री शिक्षा के बारे में लिखा है—

जो हरि सोई राधिका, जो शिव सोई शक्ति ।
जो नारी सोई पुष्प या मैं कछु न, निमित्त ॥
साता अनुसूया सती अरुचती अनुहारि ।
शील लाज विद्यादि गुण लही सकल जग नारि ॥
बोर प्रसन्निनी बुध-बधू हाई हीनता खोप ।
नारी-नर-अरघ्य को साचेहि स्वामिनि होय ॥^३

छुआछूत की तरफ तजर सर्वप्रथम इही की जाती है—

बहुत हमने फैनाये धर्म, बढाया छुआछूत का कर्म ॥^४

राजा राममोहन राय की मृत्यु के उपरान्त देवदत्तचरण ठाकुर और केशवचंद्र सेन के हाथ में नेतृत्व आया। इनके समय ब्रह्मसमाज की काफी प्रगति हुई। अब यह पंथप्रथा, अंतर्जातीय विवाह आदि के बारे में भी सोचने लगा। केशवचंद्र सेन के नेतृत्व में आयसमाज, ईसाई धर्म से काफी प्रभावित हुआ।

१ वही, पृ० ४५ ।

२ डा० रामचंद्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिंदी का पूर्व स्वच्छ दत्तावानी काव्य, पृ० ५४ ।

३ डा० कैमरीनारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा, पृ० ७० ।

४ भारतेन्दु हरिश्चंद्र बाला-वार्धनी, पृ० ३६ ।

५ बजरत्नदास (संपादक) भारत-दुःखावला, दूसरा सप्प, (भारत दुःखा), नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ६१६ ।

१८७८ ई० में उक्त समाज की तीन शखायें बनप उठीं। आर्य ब्रह्म समाज,' टैगोर परिवार इससे सम्बन्धित है, 'नवविद्यान—ईसाई धर्म की इसमें प्रमुखता है, 'साधारण भगवान्'—यह अधिक प्रभावशाली और क्रियाशील है। आदि समाज में भारतीयता प्रमुख है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ब्रह्मसमाज के धर्मोपदेशक हैं जिनकी गीताजलि विश्व साहित्य के रंगमंच पर रहस्यवाद् का प्रेरणास्रोत है। शांति प्रिय द्विवेदी ने लिखा है कि 'ब्रह्मसमाज ने मध्ययुग के रहस्यवाद को आर्य समाज के सहयोग से एक रोमैटिक रूप दे दिया। साथ ही मुस्लिम काल में जैसे एक मुगल कला आई थी, वैसे ही ब्रह्मसमाज के द्वारा हमारे जीवन और साहित्य में एक अंग्रेजी कला भी आयी। इस कला में भारतीयता वैसा ही है जैसी ठाकुर शली की चित्रकला में।'^१

आर्यसमाज आन्दोलन और पुनरुत्थान काल

सांस्कृतिक और धार्मिक क्षा में ब्रह्म समाज से क्रांति की आशाज बुलन्द करने का श्रेय आर्य समाज को है। सामाजिक क्षेत्र में तो आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं को देखकर यही कहा जा सकता है कि यह समाज तत्कालीन समाज के नये दैवी वरदान स्वरूप था। समाज जिस अधोगति की तरफ अग्रसर था आर्यसमाज ने मध्य मार्ग में खड़ा होकर चेतावनी का स्वर दिया। इस काल को यदि हम पुनरुत्थान काल कहें तो कोई अशुक्ति नहीं होगी। गतानुगतिकता के विरोध और बौद्धिकता के समावेश में आर्यसमाज और ब्रह्मसमाज दोनों समान हैं किन्तु जहाँ ब्रह्मसमाज के उच्चस्तर में बौद्धिक और आत्मिक चेतना का सत्ता बढा आर्यसमाज ने निम्नस्तर में भी जागरण को स्थान दिया।^२

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। इनका जन्म सन् १८२४ ई० में हुआ था। इनका पारिवारिक नाम मूलशर्मा था। आपने सत्य और ज्ञान के अवेषण में अपने जीवन के १५ वर्ष व्यतीत किये। इस अवधि में आपने समस्त सुख-साधनों को परित्याग कर अनवरत भ्रमण करते हुए व्यापक अनुभव अर्जित किये। आपके समाज में वेद की प्रधानता है। वैज्ञानिक सांस्कृतिक भावना के प्रचार में आपके सिद्धान्तों को पूर्णतः सफलता प्राप्त हुई। प्रमाण में आपको समाज की समस्त कुदृष्टियों का देखन का मजनीक स भोवा मिला। परिणाम स्वरूप आपके अतस्तन में त्रिपी क्रांति की अग्नि अनुबल हवा की तलाश में घूम रही थी, जिसे पड़िता के मिथ्या गान ने ममका दिया। अतः उन्होंने वेदों को और सौटने का सन्देश देने के लिये १८७५ ई० में आर्यसमाज की स्थापना कर दी। सत्यार्थ प्रकाश आप द्वारा प्रणीत ग्रन्थ है जिसका प्रकाशन १८७४ ई० में ही हो चुका था। इसमें ही आपके सिद्धान्तों का वर्णन है।

आर्य समाज ने हिन्दू जाति के अन्दर नवजीवन का संचार किया। आर्य समाज के पूर्व धर्मपति हिन्दू पुनः हिन्दू जाति में प्रवेश नहीं पा सकते थे। लज्जित आलोच्यकाल में आर्य समाज ने पुनः हिन्दू समाज में प्रवेश का द्वार खोल दिया। स्वामी दयानन्द के बताये उपदेशों के प्रचार पर आर्य समाज ने गंगा स्त्री गंगा हरिजनोद्धार, शुद्धि और वेद प्रचार के आन्दोलनों को चलाया। क्रिया की अवस्था में सुधार लाने के लिए आर्य समाज की ओर से बहुत से विद्यालय, अनाथालया, विद्याभ्युत्थान, इत्यादि की स्थापना हुई। आर्यसमाज को महत्त्वपूर्व देने हिन्दू भाषा का जनप्रिय बनाने में है। डा० रामचन्द्र के शब्दों में, 'हिन्दी न आर्य भाषा को जन धर्म बनाया और आर्य समाज ने हिन्दी का देश की सर्वोच्च जनप्रिय भाषा।'^३

१ शान्तिप्रिय द्विवेदी युग और साहित्य, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, पृ० १४५।

२ डा० सुषेन्द्र हिन्दी कविता में युगान्तर, लिस्ती, पृ० १६।

३ डा० रामचन्द्र सिंह भारतीय धार्मिक पुनर्जागरण, पृ० ७४।

आयसमाज का प्रभाव थोड़े ही समय में देश तथा विदेश में फैल गया। इसमें सिद्धांतों के प्रचार प्रसार में हिन्दी साहित्य का प्रभाव स्तुत्य है। तत्कालीन कवियों पर आयसमाज का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। आयसमाज की नवी सामाजिक रुढ़ि के विरुद्ध हैं। वे मूर्ति पूजा का तीव्र प्रतिवाद करते हैं। भारतीय पंडे और पुजारी भारतीय धर्म के ठेकेदार हैं। वे अपने कथन को वेद की प्रमाणित बात मानते हैं। फलस्वरूप समाज में फैले हुए इस ढांग से विधुव्यवहार भारतेंदु हरिश्चन्द्र इन्हें मला बुरा कहते हैं और इन्हें पोप की उपाधि से विभूषित करते हैं। यहाँ तक कि इनके व्यवहार से निन्दन इन्होंने हिन्दी साहित्य में पोप छन्द की रचना ही कर डाली। उदाहरण स्वरूप नीचे पोप छन्द उद्धृत है जिसमें मूर्तिपूजा के विरोध का स्वर गुञ्जित है।

ये चाल चलावें क्या उलटी जो पत्थर को पुजवाते हैं।
क्या पत्थर फिर भगवान मिले जब उनका ध्यान छुगते हैं।
सब नयी नाले बूँद चुके तब रैती पर हो बार करें।
ये गौर पुजवावें देवी को फिर रैती का भरमार करें।
क्या पंडे फेर में पोपों के तुम नाहक जन्म गँवाते हो।
जजाल तजो जगदीश भजो क्यों भटके भटके फिरते हो ॥^१

आयसमाज में वेद की प्रधानता थी। मूर्ति पूजा का विरोध करना आयसमान का आवश्यक सिद्धांत था। प्रतापनारायण मिश्र आहम्बरा से घृणा करते थे। एक दफा पंडितों ने आयसमाजों के मूर्तिपूजा के विरोध में मूर्ति पूजा का समर्थन किया। इस संधर्भ में वेदों पर बान्धविवाद चला। तर्कों की तुला पर ब्राह्मणों के विचार हल्के प्रतीत होने लगे। बाद में वेद की मांग हुई लेकिन किसी भी ब्राह्मण के यहाँ वेद नहीं प्राप्त हुआ। मिश्र जी ने लिखा है—

धोषी केहि के घर से आवे, कबहूँ इसपयो देखी नाहिं।
रिगविष्णु जुजविद साम, अथर्वन सुनियत आह्वय के माहि ॥
वेद न देखे हम कबहूँ हैं मोरे अनन्ता जगमान।
पेटु चलयत है कल्युग मा तुम्हारे धरन पाप के दान ॥
सब लगि सीला फिर उठि बोले कहना वेद मिले महाराज।
वेद बिना तुम पंडित कैसे दखिना लेत न आवे साज ॥
धरम के अगुआ ब्राह्मण देखता तिन घर वेद न निकरे हाथ।
इतना सुनते परलो परिण सब रहि गये सनाका व्याप ॥^२

जिन कवियों पर आयसमाज का प्रभाव पड़ा था उनकी रचनाओं में समान सुधार का स्वर बहुत ही तीव्र है। समान सुधार के उपायों का निर्देश तथा प्रचलित कुरीतियों के कुप्रभाव का वर्णन उनकी रचनाओं में प्राप्त होता है। नीचे की पत्नियाँ में बाल विवाह के कुप्रभाव का वर्णन स्पष्ट है। यथा—

बाल-व्याह जब कियो तज्यो सत्ताम भवत विधि
चार-पथ चित दियो तिया शुचि लाज सेन बुधि।
भये सुपूरख सरल विधि तियमय लागे जग लखन,
सब मर्यादा घम तजि लगे भातु पितु से लडन।

१ भारतेंदु हरिश्चन्द्र भारतेंदुशा, प्रवृत्तक खड ४ न० २।

२ नारायणप्रसाद अरोड़ा (संपादन) प्रताप लहरी, बानपुर १९४९ ई०, पृ० २०६।

याते करिय बिचार बाल-ब्याह नहिं कीजिये,
यम विद्या अनुहारि पूर्ण अवस्था व्याहिए ॥^१

भारते दु युग सुधारवादी युग था। मानवतावादी दृष्टिकोण के फलस्वरूप यह युग हर क्षेत्र में सुधार लाना चाहता था। आर्य समाज ने सुधारवादी आंदोलन में जागृति डाल दी। आम समाज के ही कारण तत्कालीन प्रचलित गोबध के विरोध में राजाजा प्राप्त हुई जिसकी सराहना तो अवश्य करनी पड़ेगी। राजाजा इस प्रकार है—

बगाल की गवर्नमेंट ने बिहार और बंगाल की सब म्युनिसिपैलिटिया को गोबध के विषय में यह सराहनीय आज्ञा दी है—

(१) जिन पशुओं को बध करना अभीष्ट है, ऐसे रास्ते से जाय जिससे सवसाधारण का ध्यान न पड़े।

(२) एकांत स्थान में घरा डालकर मारा जाय।

(३) गोमांस खुल्लम खुल्ला न बेचा जाय।^२

गोरक्षा का आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था। आयसमाजिया का सहयोग इस कार्य में चार बरस लगा रहा था।

आयसमाज ने भारतीय सांस्कृतिक उत्थापन के नियम प्रचार का सहारा लिया। इसने धार्मिक एकता से देश की राजनीतिर एकता के सूत्र में बाध दिया। मनुष्य के अतस्तल में बैठकर मानव मानव के बीच की खाई को पाटने का प्रयत्न आर्य समाज ने ही किया। पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव स्तुत समाज पर नहीं था, बल्कि भारतीय शिक्षा के गहन अध्ययन का सार रूप ही आय समाज का सिद्धान्त था। डा० केसरीनारायण शुक्ल के शब्दों में, 'वे चाहते थे कि हिंदू अपने रूप को पहचान लें जिससे उन्हें दूसरे बहनाकर अपनी सत्त्विति से विमुख न कर सकें'।^३ इसी तरह के उद्गारों से भारते दुयुगीन कविता ओतप्रोत है। उन पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष आय समाज का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। तदुयुगीन कविताएँ इसकी साक्षी हैं।

थियोसोफिकल सोसायटी और तबीन परिष्कार

यह एक प्रकार का संगठन था जिसने भारत में धार्मिक पुनरुद्धार का कार्य किया। कालांतर में इसके उद्देश्यों में कुछ परिवर्तन हुआ और उसमें कुछ राजनीतिर सुधार के तत्व सम्मिश्रित कर लिए गये। असल में भारतीय सुषुप्त सत्त्विति को जागृत करना ही इसका प्रमुख उद्देश्य था। प्राचीन हिन्दू और सत्त्विति के मूल्य तत्त्वों और विशेषताओं के गौरवमय स्वरूप को सामने रखकर इस संस्था ने अगरेजियत का दम भरने वालों को अपने अपने समाज के सत्त्वरूप को देखने और सोचने को बाध्य किया।^४ परिणामस्वरूप देश में पाश्चात्य सभ्यता के प्रति बढ़ती हुई प्रवृत्ति दम भरने लगी और अपनी सत्त्विति के गौरव को अक्षुण्ण रखने के लिये अनुराग की भावना प्रादुर्भूत हुई।

इस सोसायटी की स्थापना भारत में नवम्बर १८७५ ई० में इसकी स्थापना हुई। कालांतर में इसके संस्थापकों को भारत भ्रमण

१ शुभ चिंतक, खंड १, पृ० १।

२ नागरी नीरद, वष २, बिंदु १६, १८६४ स०, पृ० १।

३ केसरीनारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा, पृ० ७६।

४ केसरीनारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत पृ० ४४।

करने का सुखबसर मिला। भारत भ्रमण की अवधि में इन अमरातीय धार्मिक नेताओं को भारतीय कुरीतियों को नज़दीक से देखने का मौका मिला। तत्कालीन देश में प्रचलित बुराईयाँ अपने चरम उत्कर्ष पर थीं। भारतीय सुधारका का प्रयत्न भी इस तरफ था। इसी समय सोसायटी के संस्थापकों ने तत्कालीन प्रचलित बुराईयाँ के सुधार का उपदेश दिया।

भारत में इस सोसायटी के उपदेशों एवं सिद्धांतों का विशेष रूप से प्रचार एनीवैसेंट द्वारा हुआ। एनीवैसेंट एक आयरिश महिला थी। इनके हृदय में भारत के प्रति अगाध प्रेम था। २० मई १८८८ ई० को आप थियोसोफिकल सोसायटी की सदस्या बनी। भारत के प्रति असीम ममता और आदर में वह भारत आने के लिये बाध्य किया। वे जसल में हृदय से भारतीय थी। उनका विश्वास था कि अपने पूर्व जन्म में वे हिन्दू और भारतीय थी। इसलिये वे जीवन-व्यस्त भारत को अपनी वास्तविक मातृभूमि और भारतीयों को अपना देशवास्य मानती रही। भारतीयों को देखने का यह सुनहला स्वप्न १६ नवम्बर १८९३ ई० को साकार हुआ।

एनीवैसेंट का भारत में स्वागत हुआ। उनका काय केवल हिंदू धर्म तक ही सीमित नहीं रहा। वे जैसे जस भारतीयों के जीवन के निकट आती गई उनका क्षेत्र विस्तृत होता गया। राजनीति में होमरूल आन्दोलन उन्हीं की देन है। वे भारतीय प्राचीन गौरव से सहमत थी और पारश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृतियों को भारत के सामने नगण्य समझती थी। उनका यह कथन पूर्णतया सत्य है कि आप समाज तथा थियोसोफिकल सोसायटी के प्रसार से गरीब जाति की उन्नति का विश्वास रसातल की चला गया।

इस सामाजिक सिद्धांत का प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ा। भारतीय समाज में सांस्कृतिक जागृति की सहर फैल गई। यह एक सुधारवादी आंदोलन था। अतः तत्कालीन कवियों में आलोचना का स्वर विद्यमान है लेकिन इस भ्रत का स्पष्ट साहित्यिक प्रभाव दुष्टिगोचर नहीं होता है। हरिश्चंद्र प्रेमचंद, अम्बिका दत्त व्यास आदि कवियों में सामाजिक उन्नति के भाव सवालव भरे थे। राधाकृष्ण दास तो भारत से अविद्या का नाश करने के लिये प्रभु से अवतार लेने की प्रार्थना करते हैं। कवि प्रभु की प्रार्थना में भावमग्न हो जाता है—

प्रभु हो पुनि भू-तल अवतरिए ।

अपने या प्यारे भारत के पुनि दुःख दारिद हरिए ।

महा अविद्या राक्षस ने या देसहि बहुत सताये ।

साहम पुष्पारण उद्यम धन सब ही निधिन गवाये ।

जो बात हित की बात बहत तो कोपे सबही मारी ।

धरम-बहिरमुख मूरख नास्तिक कहि कहि देव मारी ॥^१

इस प्रकार भारतेन्दु युग सामाजिक जागृति का युग था। तत्कालीन कविता की वाणी में सुधार के शब्द ही मुखरित होते हैं। युग के भाव की पूर्ति आवश्यक थी।

१ डा० रामधुस सिंह भारतीय धार्मिक पुनर्जागरण, पृ० ६६।

२ "The undermining of the belief in the superiority of the white race is to be spreading Aryasamaj and Theosophical Society"—

डा० कैसरी नारायण शुक्ल आपुनिक काव्याधार का सांस्कृतिक सात, पृ० ४४।

३ श्यामसुन्दर दास (संपादक) राधाकृष्ण श्यामवली, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, १९३०, विनय

रामकृष्ण मिशन आन्दोलन और नवीन सम्बल

रामकृष्ण मिशन की स्थापना सन् १८६६ ई० में हुई। इसके संस्थापक रामकृष्ण के शिष्य स्वामी विवेकानन्द थे। रामकृष्ण परमहंस का जन्म बंगाल में हुआ था। अपनी एकान्त साधना के बल पर उन्होंने धार्मिक तत्वों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। आपन त्यागमय जीवन के बलवत्ता के शिक्षित नवयुवकों को आकृष्ट कर लिया। बालक नरेन्द्र नाथ दत्त इन्हीं नवयुवकों में से एक थे। कालांतर में यही स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए।

स्वामी रामकृष्ण ने धर्म और सेवा के क्षेत्र में भारत का नये विरे से पथ प्रदर्शन किया। आपने हिन्दू धर्म के प्राचीन और सर्वमान्य सत्यों को अपने जीवन में चरितार्थ किया। आपका जीवन तप-त्याग और सेवा का सधुर समन्वय है। दूसरों की सेवा को ही आप सच्चा धर्म समझते थे। इसके लिये आपका कहना था कि वासना और मोह का परित्याग करना होगा।

स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण के सिद्धांतों और उपदेशों को ग्रहण कर उनके प्रचार एवं प्रसार के लिए रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। मिशन भारतीय जागरण के इतिहास में क्रान्ति की आवाज बुलंद तो नहीं करता लेकिन नवीन जिज्ञा की ओर देश को जागृत अवश्य करता है। डा० रामचन्द्र मिश्र के शब्दों में "रामकृष्ण मिशन एब फियोसोफिकल सोसायटी के सिद्धान्तों ने देश में ईसाई धर्म के प्रचार को रोक। रामकृष्ण परमहंस के सिद्धांत भारतीय आध्यात्मिक जीवन के सम्पूर्ण थे।"

स्वामी विवेकानन्द एक महान् व्यक्तित्व थे। १८६३ ई० में उन्होंने विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लिया और विश्व में हिन्दू धर्म के गौरव की प्रतिष्ठापना की। विश्वधर्म सम्मेलन के रंगमंच में आपका यह परिवर्ण भाषण "अमेरिका की बहना तथा भाश्यो, भ्रातृत्व का सधुर सम्बन्ध पल भर में ही भारतीयता की ओर आकर्षित कर दिया। आपने अमेरिका वालों को भारत में जाकर भौतिक उत्थति एवं सगठन की शिक्षा देने और भारतीयों को पश्चिम में धर्म की शिक्षा देने के लिये आमन्त्रित किया।

आपका व्यक्तित्व बड़ा ही विद्याल था। आपके व्यक्तित्व के सामने अमेरिका का धर्म ज्ञान और गौरव धनमस्तक हो गया। यह बात इसी से स्पष्ट हो जाती है कि स्वामी जी का सम्मान जितना अमेरिका ने किया उतना देश नहीं कर सका। स्वामी जी सत्य पर पर्दा कभी नहीं डालते थे। किसी बात को कहने में उनके मन में हिचक शेष मात्र भी नहीं थी। विरोध के तुमुल चक्रव्यूह में आपका स्वर गूजता रहता। अंत में विरोधी आप ही आप चारों खाने चित्त हो जाते थे। एक दफा आपने अमेरिका वालियों से कहा कि 'यदि आप जीना चाहते हैं तो ईशु के सिद्धांतों पर चलें आप ईसाई नहीं हैं। आपका धर्म अब सांसारिक सुख का धर्म हो गया है। मैं भी विहम्बना। इस सबका परिवर्तन कर दीजिये। आप देव तथा दैत्य की साथ-साथ पूजा नहीं कर सकते। अंत में उन्होंने एक वाक्य में मिश्र नरियों के हिन्दू धर्म पर आक्रमण कर उत्तर दिया। यदि भारत हिन्द महासागर के समस्त कीवट को उठाकर पश्चिम के ऊपर पक तिस पर भी वह आप लोगों के कायों का एक शतांश भी नहीं हो सकता।^१ उनके व्यक्तित्व के बारे में उनमें ही शब्दों में सुने, मुझे एक सन्देश देना है। मेरे पास विश्व के प्रति मृदुल बनने के लिये अवकाश नहीं है मैं सड़खो बार मरना पसन्द करता हूँ चाहे वह देश हो अथवा विदेश।^२

१ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा दिल्ली का पूर्व स्वच्छन्तावादी काव्य, पृ० ५५

२ डा० रामकृष्ण सिंह भारतीय धार्मिक पुनर्जागरण, पृ० १२६।

३ वही, पृ० १२६।

स्वामी जी के सिद्धान्तों का प्रभाव भारतीय राष्ट्रीय जागरण के इतिहास में एक अध्याय के समान है। उन्होंने भारत को जगान के लिये भारतीयों को ही नहीं बल्कि पश्चिमी अनुयायियों से भी अपने आचार विचार तथा रहन-सहन में हिन्दू बन जाने का कहा। उनका विश्वास था कि भारतीय बनना ही भारत को जगा सन्ना सम्भव है। भारतीयों को एकांत साधना की ओर से मोड़कर अपने समाज सेवा करने की माँग की। इस प्रकार पुरातनता के प्रति अधिक मोह रखने वाला भारत का व्यक्तिवादी दृष्टिकोण परिवर्तित हो राष्ट्रीय धार्मिक सिद्धांत पर केन्द्रित हो गया। व्यक्तिगत मोक्ष की कामना देश की सेवा के रूप में मुखरित हुआ।

उपयुक्त धार्मिक सुधारों से देश की निद्रा भंग हुई। सदियों से सोया भारत जगा। उसे अपना अस्तित्व समझने का बल मिला। जो भारतीय पाश्चात्य शिक्षा एवं संस्कृति से प्रभावित हो भारतीय धर्म की रूढ़ि का अखाड़ा समझ रहे थे, उन्हें विश्वास हो गया कि अतीत पुण्य जो उनमें अभी अवशेष है—के आधार पर भारतीय जीवन का विकास हो सकता है। भारतेन्दु युग का यह धृष्टि मुनाया नहीं जा सकता कि तत्कालीन परिस्थितियाँ ही नये विकास और नवीन विचारधारा की प्रेरक हैं। इन धार्मिक आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप ही प्राचीन परम्परायें ध्वस्त हुई और अनेक नये आन्धों ने जन्म लिया। प्राचीन आदर्श जब नये के साथ मेल न कर सके तो अपने रूप को परिवर्तित कर स्वयं ही नवीनता में मिल गये। तत्कालीन कवियों में इस भाव की कमी नहीं है। युग विधायक कलाकार भारतेन्दु ने ही अतीत-औरव को युगानुरूप प्रस्तुत कर साहित्य को एक नया मोड़ दिया जिससे एक नवीनधारा ही प्रवाहित हो गई।

भक्ति-धारा

भक्ति धारा का विवेचन अगले अध्याय में विस्तार के साथ किया गया है।

सामाजिक जागृति

भारत मुगल शासन के उपरांत आगल महाप्रभुओं के हाथ विक गया। देश कम्पनी द्वारा शासित होने लगा। देश यूरोप का बाजार बना। भारतवर्ष ईस्ट इण्डिया क० के हाथ में बहुत दिना तक बंध था। ब्रिटिश सरकार ने उसे छोड़ा लिया, लेकिन दाम भारत को ही देना पड़ा। अंग्रेजी राज आर्थिक शोषण का चक्रव्यूह था। भारतेन्दु ने इस आर्थिक शोषण को स्पष्ट शब्दों में चित्रित किया है—

अंगरेज राज सुख-साज सजे सब भारी ।

पै धन बिदेस चलि जात यहै अति खारी ।^१

समाज का ढाँचा पूर्णतः विभ्रष्ट खलित था। जातिभेद का ज्वर समाज पर प्रचंड रूप से चला था। एक दूसरे की बुराई करना ही उनका लक्ष्य था। दृष्टिकोण में इतनी संकोचता आ गई थी। लोग निरंतर अधोगति की तरफ जा रहे थे। ब्राह्मण अतीत के गौरव के मंद में अंग्रेज जातियों की हेय समझते थे। वे अपने कुल के कारण भारतीय समाज में असंतोष फैला रहे थे। ब्राह्मणों की विभेद-नीति के कारण सभी निम्न जातियाँ अपने कामों के प्रति उदासीन होती जा रही थी। ब्राह्मण नवीनता के प्रतिद्वंद्वी थे। वे अपने प्राचीन मुख्य और पापाचार के संरक्षण में व्यस्त थे।^२ बालहत्या और नर

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, पहला खंड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ५६५।

१ डा० सुरेशचंद्र शुक्ल प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, २०२१, पृ० ६३।

बलि तब धम-सम्मत मानी जाती थी।^१ रामरत्नदास के शब्दों में देश की सामाजिक दशा का जो चित्रण उपस्थित है, उसमें आर्षे हवडवा जाती हैं। यथा—

बलियुग भारत घेर लियो है।

आपुस भाहि मेल नहि दोखत जह देखो तह बैर भयो है।

बेटा बाप भाइन भ जोरु ससम अनबोल कियो है ॥^२

घन के बारन बर स्यावत सोम सबन को घेर लियो है ॥

धम की बात कोई नहि जानत खान-भान पर ध्यान दियो ह ॥

छोटी वय में व्याह करत है आयुष्य को नहि चेत लियो है ॥

ये नहि जानत क्या करतो है, क्या कारण ये जन्म लियो है ॥

रामरत्न क्या सोच करत है तोही प्रभु ने ज्ञान दिणो है ॥^३

समाज खोखला हो गया था। धम के नाम पर ब्राह्मण वगैरे पाल रहा था। पेट पालना ही समाज का धर्म हो गया था। द्वेष, ईर्ष्या लाभ-व्यभिचार आदि स्वछ दैत्यचरण कर रहे थे। समाज में कुपोषितों का जितना प्रचार था उनकी गणना नहीं की जा सकती। रीतिकालीन वास्तव का पुट शृङ्गार की तरफ समाज को अभी भी आकर्षित किये हुए था। लोग कुत्सित शृङ्गार भावना से आत्मविमोह हो उठते थे। मुगल गय तो अंग्रेज कम नहीं थे। उनकी कमठसा भ शृंगार-साधना का प्रसून चद्रमा पर धब्बे की भांति प्रतीत होता था। तत्कालीन आत्म देशीय महिला के प्रति निम्नांकित विचार दश नीय है—

‘यदि अंग्रेज मिजाजी भेम ने तुम्हारे मस्तिष्क में निनी भ मौजूद मेधा शक्ति शस्य को सबधा चट कर सफाघट नहीं कर दिये हैं तो ठुक सोचिए तो कि मदिरा मदाद्य मनुष्य के अतिरिक्त और किसकी इस शृङ्गार की सुगन्धि पात होगी।’^४

भारते दु युग प्राचीनता के आवरण में नवीनता का स्वर देने वाला युग है। अतः इस युग के समस्त कवि समाज-सुधार के प्रति आस्थावान हैं। भारते दु और प्रेमधन तो प्रमुख हैं। अथ कवियों ने भी इस स्वर को अपनाया और सामाजिक जागृति विषयक कविता लिखकर देश में नवजागरण का सन्देश दिया। इन कवियों के दो दल थे। एक दल तो रुढ़िवादी था और दूसरा दल क्रांतिकारी था। रुढ़िवादी कवि उदार थे। उनका उद्देश्य था कि समाज में किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव नहीं। दूसरा दल उन नवयुवकों का दल था जो समाज में आमूल परिवर्तन की बात सोचता था। भारते दु जी इन दोनों दलों से परे थे। वे न तो क्रांतिकारिता ही चाहते थे और न रुढ़िवादिता को प्रशंसा देना चाहते थे। वे दोनों के बीच की कड़ी थे।^५ उनका विचार प्राचीनता के साथ नवीनता के चूल को पकड़ने का था। तभी तो उन्होंने दो रंगी परिस्थिति का चित्रण बड़े ही कुशल ढंग से प्रस्तुत किया है।

भारत में एहि समय भई है सब कुछ बिनाहि प्रमान हो दुइरंगी।

आधे पुराने पुरानहि माने, आधे भए किरिस्तान हो दुइरंगी ॥

१ डा० लक्ष्मीसागर वाण्य आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ८१।

२ आनन्द वादम्बनी, जनवरी १९४२, पृ० ५८।

३ आनन्द वादम्बनी, फाल्गुन १९६४, पृ० १०४।

४ डा० किशोरीलाल गुप्त भारते दु और अथ सद्योगी, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, पृ० २३२।

क्या तो मदहा को चना खग्यै कि होइ दयानन्द जाय हो दुइ रगो ।
क्या सो पढ़े बैची कोठिनलियै कि होइ बरिस्टर घाय हो दुइ रगो ॥
एही से भारत नास भया सब जहाँ तहाँ यही हाल हो दुइ रगो ॥
होउ एव मत भाई सब अब छाडहु चाल कुचाल हो दुइ रगो ॥^१

शिक्षा आन्दोलन

आधुनिक भारतीय शिक्षा के विकास का इतिहास भारतेन्दु के आविर्भाव के चार वर्ष बाद सन् १८५४ ई० से प्रारम्भ होता है। इसी वर्ष सर चार्ल्स उड वा 'डिस्ट्रिक्ट' प्रकाशित हुआ जिसके अनुसार प्रत्येक प्रेसीडेन्सी में शिक्षा विभाग की स्थापना हुई और विद्यापियों के लिये अंग्रेजी और प्रांतीय भाषाओं को जानना अनिवार्य कर दिया गया। इन आलोच्यकाल में शिक्षा का प्रचार एक आन्दोलन के रूप में हुआ। अंग्रेजी शिक्षा के प्रति भारतीय नवयुवक टिड्डी दल की भाँति दौड़ पड़े। सेवावृत्ति के मोह के कारण अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार का काफी बल मिला। अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिन्दी का प्रचार अकिञ्चिन्न गति से हो रहा था। अब प्रांतीय भाषाएँ भी उन्नति के रास्ते पर थीं। डा० चार्णोय के शब्दों में 'हिन्दी प्रचार आन्दोलन बड़े बग स फैला'।^२ अंग्रेजी शिक्षा से वास्तविकता की भावना का विकास हो रहा था। नवीन शिक्षा के कारण देश में प्राचीन धर्म सम्बन्धी अमिगता बढ़ने और सांस्कृतिक ह्रास होने के कारण देशभक्तों को समानता की पीड़ा हाती थी। नव शिक्षित युवक ज्ञान विज्ञान की ओर झुककर विद्योपाजन कर रहे थे, यह ठीक है, परन्तु विदेशी शिक्षा ने भारत के इन नवयुवकों को इतना मोहित कर लिया था कि वे स्वधर्माचारों से उदासीन और विदेशी पद्धतियों के गुलाम बन गये। वे अशिक्षित भारतीयों का उद्धार करने के बजाय उनसे धृष्टा करने लगे। यह शिक्षा उनके नैतिक जीवन के लिये भी अनुकूल विद्य न हुई।^३

अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार से भारतीय समाज में आर्थिक विकास एवं शासन व्यवस्था के फल स्वरूप एक क्रांति की लहर आ गई। मध्यम वर्ग का जन्म इसी का परिणाम है। डा० चार्णोय ने लिखा है कि सभी प्रकार के परिवर्तन इसी मध्यम वर्ग के कारण हुए।^४ इस वर्ग ने आंग्लशासकीय शासन व्यवस्था के कारण पश्चात्य सभ्यता के अधिक सम्पर्क में आने की चेष्टा की। नवीन विचारों से प्रेरित होकर मध्यमवर्ग ने भारतीय जीवन में अभूतपूर्व क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित किए। इसी वर्ग के माध्यम से भारत आधुनिकता की ओर अग्रसर होकर सत्तार के अनेक देशों से सम्पर्क स्थापित कर सका है।^५

तत्कालीन हिन्दी पत्रिका पर आग्न शिक्षा का काफी प्रभाव पड़ा है। इस प्रभाव के फलस्वरूप कई एक प्रतिनिधि संस्थाएँ स्थापित हुईं जिन्होंने द्वारा अंग्रेजी साहित्य और विचार हिन्दी भाषा भाषी प्रदेश में प्रचार पाये। शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार में जिनकी तत्कालीन समाज में क्रांति है उनका वर्णन नीचे किया जायगा।

१ भारतेन्दु प्रयागली, दूसरा खण्ड, नागरप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ५०० ५०१।

२ डा० लक्ष्मी सागर चार्णोय आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ६३।

३ वही, पृ० ६३।

४ डा० लक्ष्मीसागर चार्णोय आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ६१।

५ वही, पृ० ८६।

फोटोविलियम कालेज

इस कालेज की स्थापना ने भारतीय शिक्षा जगत् में बड़ा ही सराहनीय काय किया। हिन्दी साहित्य तथा भाषा को नया रूप इसने ही प्रदान किया। इस कालेज में अरबी, फारसी और हिन्दी की अनिवार्य रूप से शिक्षा दी जान लगी। योरोपीय कमचारियों को भारतीय भाषा की तथा इतिहास और दर्शन की शिक्षा के लिये सरफार न स्वयं ही बाध्य किया। हिन्दी विभाग के सर्व प्रथम अध्यक्ष डा० गिलक्राइस्ट हुए। इनके द्वारा हिन्दी और उर्दू का पुस्तका का जनता में विशेष समाचार हुआ, साथ ही इन्होंने खड़ी बोली में पद्य और गद्य की रचना के लिये मयेष्ट प्रोत्साहन दिया। सम्पूर्ण और कोश निर्माण का काय भी कालेज के माध्यम से सम्पन्न हुआ। फलतः भारतीय भाषाओं के प्रोत्साहन में फाट विलियम कालेज द्वारा महत्वपूर्ण काय सम्पन्न हुआ।^१ युग विधायाक भारत-दु हर्षिचन्द्र जी ने भी हिन्दी की उन्नति के लिये जी साठ परिश्रम किया। उनका सिद्धांत वास्तव था—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को मूल ॥^२

भाषा भी यही मूल मंत्र है और शिक्षा विकास पथ पर अग्रसर है।

बुड का शिक्षा पत्र (बुड्स एजुकेशन डिस्पच)

स्वनामधन्य भारत-दु के जन्म के चार वर्ष पश्चात् १८५४ ई० में फोटो पाठ डाइरेक्टम के शिक्षा-यन ने भारतीय जनता में यूरोपीय ज्ञान के प्रसार के हेतु अनक निश्चित योजनाएँ उपस्थित की। बुड के इस शिक्षा-यन ने कम्पनी राज्य के प्रत्येक प्रांत में मावजनिक शिक्षा का विभाग (पब्लिक इस्ट्रुक्शन डिपार्टमेंट) खोलने का प्रस्ताव रखा। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों, हाई स्कूलों और मिडिल स्कूलों की संख्या बढ़ाने का प्रयास किया गया तथा इन्हें उन्नतपूर्वक अनुदान (ग्रांट इन एड) देने का वादा किया गया। फलस्वरूप बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में विश्वविद्यालयों का संगठन काय प्रारम्भ हो गया।

इस प्रकार वर्तमान शताब्दी में शिक्षा का प्रसार सम्पूर्ण देश में हो गया।

ईसाई मिशन और शिक्षा

भारत में ईसाई प्रचारका का काय शिक्षा प्रचार में अत्यधिक सहायक मित्र हुआ है। इन्होंने ईसाई धर्म के प्रचार हेतु विद्यालय और मठों की व्यवस्था में युगान्तर उपस्थित कर दिया। भारत-दु के पूर्व ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने ईसाई धर्म के प्रचारका को भारत में अपना धर्म और प्रसार करने के लिये अनुमति दे दी थी। फलस्वरूप १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के अन्त में समस्त उत्तरी-भारत में ईसाई धर्म प्रचारकों ने अपना काय विस्तार कर लिया। जर्मन अंग्रेजों और अमेरिकन प्रकाशन संस्थाएँ ईसाई धर्म की पुस्तका का प्रकाशन करने लगी। हिन्दी भाषा भाषी प्रदेश के प्रमुख नगरों में ईसाई धर्म प्रचार के केन्द्र स्थापित हुए और अनेक ईसाई विद्यालय और महाविद्यालय खुल गये। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि आलोच्य काल में शिक्षा की प्रगति के लिये ब्राह्मणिकी कर्म उठाया गया। ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा शिक्षा सम्बन्धी प्रयत्न अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। रानी के काय में शिक्षा

१ डा० सुधीन्द्र हिन्दी कविता में युगान्तर, दिल्ली १९५५ प्रथम संस्करण, पृ० १०।

२ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारत-दु प्रयावली, दूसरा खण्ड नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ७३१।

का प्रचार जितना हुआ उससे हम आज श्रेणी हैं, क्योंकि सबकी उन्नति का मूल विद्या ही है। 'और वह धीमती के राज्य में जैसा हुआ वैसा भोज से इधर किसी राज्य में नहीं हुआ'।^१

विधवा विवाह समर्थन

सांस्कृतिक जगत् में अशुभान की चेतना तूफान की भाँति विदेशियों के आगमन से सजग हो गई थी, लेकिन व्यक्तिगत जड़ता का बंधन बढ़मूल होकर समाज के आन्तरिक सतह को जड़वत बना दिया था। यही बंधन समाज का स्वभाव बन चला था। समाज-बपट, ईर्ष्या-द्वेष, विरास-वासना, झूठ हत्या, बाल विवाह, सतीप्रथा और व्यभिचार, आदि अशुभित बुराइयों का घर है। समाज इन बुराइयों से जजरित हो गया था। चेतन मस्तिष्क उद्धार का मार्ग ढूँढ रहा था। शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में—'सामाजिक जीवन में पौराणिक स्वप्न चलते रहे, राजनीतिक जीवन में ऐतिहासिक सघर्ष। या वही कि जीवन बन्ता था किन्तु मरण राजनीति द्वारा परिवर्तन के पृष्ठ खोच रहा था।' समाज सुधार के प्रवेण द्वार पर था। उसे इस सुधार की शान्ति में अनपेक्षित वास्तविकता का सामना करना पड़ा।

१९ वीं शताब्दी में धार्मिक पुनर्जागरण का इतिहास सामाजिक बुराइयों की तरफ दृष्टि पत करता है। सुधार की लहर सामाजिक विधायिनी बुद्धि के व्यापार में तूफान का ऊपम मचा देती है। प्राचीनता के प्रति तिरस्कार की भावना और नवीनता के प्रति सत्कार की भावना का बीचोबीच इसी सघर्षकाल में होता है। सामाजिक सुधारों के प्रति आयसमाज का काय स्तुर्य है।

विधवा विवाह को पक्का समर्थन तो आर्यसमाज ने ही दिया। या तो तत्कालीन सामाजिक जगत् में जितने भी सुधारवादी आन्दोलन हुए उन सभी आन्दोलनों का प्रमुख विषय विधवा विवाह का प्रचार या प्रायना समाज के प्रमुख सिद्धान्तों में विधवा का प्रचार था।

विधवाओं की विकट समस्या थी। लाड बटिक में सती प्रथा पर कानूनी रोक लगा दी जिससे देश में विधवाओं की अपार बढ़ती हुई संख्या कलक सहन प्रतीत होने लगी। यह सच था पहले अधिक नहीं थी। १९ वीं सदी के समाज-सुधारक विधवा विवाह के लिये प्रयत्न करते लगे। फलस्वरूप देश का बुद्धिजीवी वर्ग इसे १८५६ ई० में वैध घोषित कर दिया। फिर क्या था? देश में विधवाओं के लिए अनेक संस्थाओं की स्थापना हुई। बढ़ता हुआ कलक धुन। कलक की कालिमा धुल गई। समाज में उन्हें आदर मिला।

इस युग के कवि और लेखक समाज की इस दुबलता को मिटाने के लिये अपनी लेखनी और वाणी द्वारा प्रबल प्रेरणा प्रस्तुत करते हैं। उनके विचारों में विधवा विवाह का समर्थन प्राप्त है। भारतेन्दु और प्रेमचन्द की वाणी में सामाजिक रुढ़ि के प्रति विद्रोह की भावना परिलक्षित होती है। भारतेन्दु ने स्वामी जी की प्रशंसा में जो लिखा उससे विधवा विवाह को समर्थन प्राप्त होता है—

दयानन्द हैं ब्रह्मचारी इन उत्तम एक विचारों

देशोन्नति के कारण समा बहु प्रचारी है।

पूर्व वद को पसारो मिथ्या पुराण को नकारो

व्याह विधवा की प्रचार्यो ऐस महत्त धर्माधिकारी हैं ॥^२

१ कविवचन सुधा, २३ अगस्त, १८८६ ई०, पृ० ५।

२ शान्तिप्रिय द्विवेदी युग और साहित्य, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, १९४१, पृ० ५५।

३ भारतेन्दु का, प्रवृत्तक सं० ३, न० ८।

प्रतापनारायण मिश्र सामाजिक मामलो के सम्बन्ध में बहुत ही उग्र तथा स्वच्छ थे। आप भी विधवा विवाह के समर्थक थे। आपका विचार था कि विधावाओं से समाज में व्यभिचार बढ़ता है, जिसका उत्तरदायित्व समाज पर है, उन्हीं के शब्दों में— पाच बरस की विधवा का जीवन काल में व्यभिचार एवं भ्रूण हत्या दुकुर दुकुर देखते रहता, वरच छिने का यत्न करना, पर विधवा विवाह का नाम लेने वालों से मुँह बिचवाना यदि भलमसी है, तो ऐसी भलमसी को दूर ही से नमस्कार है^१।

भारतेन्दु युग के अम्बिकान्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी, ठा० जगमोहन सिंह, लाला श्रीनिवास आदि ने सामाजिक मामलों में अधिक रचि नहीं ली। पलस्वरूप इनकी वाणों से विधवा विधवाओं को समर्थन प्राप्त नहीं हो सका। इनका रचनाओं में स्वात सुखाय की भावना प्रबल है।

बाल विवाह, वेमेल विवाह, आदि का विरोध

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व का भारतीय समाज ऋन्विद्ध एवं अशिक्षित था। अशिक्षा, कुरीतियाँ और कुसस्कार के कारण समाज में बाल विवाह वेमेल विवाह और बहु विवाह प्रचलित थे। बाल विवाह से समाज का नैतिक स्तर गिरता जा रहा था। नैतिक उत्थान से ही समाज का विद्वत् भक्तिक चेतन शील हो सकता था।

तत्कालीन कवियों और लेखकों ने इन कुरीतियों के विरोध में बड़े ही ओजस्वी ढंग से कहा है। धार्मिक पुनर्जागरण सचप्रथम इन्हीं कुरीतियों को परिलम्बित कर अपने भिदात्ता का निर्माण करता है। आयसमाजी कवियों ने अपने उद्देश्य में शीघ्र स्थान बाल विवाह विरोध को ही लिया है। उनका उद्देश्य प्रस्तुत कविता में स्पष्ट है—

बाल विवाह कुदान जडबड पूजा दहेज

औ शिक्षा दान याख्या आध समाज की।

मनुष्य को उचित सब आपस में मेल राखें

गृहस्थी को काम सब वदानुकूल करिबो।

मुरलीधर सुचित हूँ कवित्त का बनाय कहै

हम आपने को उचित देश उन्नति का करिबो।^२

बाल विवाह का विरोध ही नहीं बल्कि नीचे के पद में उसके कुप्रभाव का भी वर्णन प्रस्तुत है—

बालविवाह जब कियो तज्यो सकाम सकल बिधि

जार पथ चित लियो तिया बुधि लागेन बुधि।

भये सुमूरख सकन बिधि तियमय लागे जग लखन,

सब मर्यादा धम तजि लगे मातु पितु से लखन।

याते करिय बिचार बाल-ब्याह नहिं कीजिए,

वय विद्या अनुहारि पूण अवस्था व्याहिए।^३

इसी प्रकार कवियों ने भी बाल विवाह का विरोध किया है। बालकृष्ण भट्ट ने लिखा है कि 'दुहिता के जन्म दिवस के पाचवें दिन विवाह कर दिया करो ऐसा न हो कि क'या वही रजस्वला हो जाय नहीं तो धम नष्ट हो जायगा और इसकीस पुरखा नरक में पड़े-पड़े चित्लाया करेंगे।'^४

१ प्रतापनारायण मिश्र 'भलमसी' ब्राह्मण खण्ड ६, सख्या २।

२ शुभचिन्तक, खंड १ न० १।

३ वही, खंड १, न० १।

४ हिन्दी प्रदीप, मई १८७८ ई०, पृ० ४।

प्रेमघन जी बाल विवाह का विरोध इस प्रकार करते हैं— ऐसी अवस्था में ऐसी निदयता, कठोरता और अयाय के साथ जो विवाह वास्तविकता में हो किया जाता है, यद्यपि उससे जो जो आपत्तियाँ आती हैं, वगैरह उनका सवधा असम्भव है, पर तो भी यह तो प्रसिद्ध है कि ऐसे ब्याह से आपस की प्रीति और मेल कैसे उत्पन्न होनी सम्भावना हो सकती है। अयाय प्रवृत्ति का प्रतिकूल होना हर अवस्था में दुःख का विषय है, किन्तु इस स्थान पर धर्माधर्म तथा शास्त्राज्ञा का कुछ भाग विचार नहीं करते।^१

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जनता को समझाते हुये बाल विवाह के प्रति अपना विचार इस प्रकार व्यक्त करते हैं। 'लड़कों को छोटेपन में ब्याह करके उनका बल, बीज, आयुष्य, सब मत घटाइये। आप उनके माँ बाप हैं या सन्तु हैं। बीज उनके शरीर में पुष्ट होने दीजिये, बिद्या कुछ पढ़ लेने दीजिये, नोन, तैल, लकड़ी की चिन्न करने की वृद्धि सीख लने दीजिये सब उनका पैर काट मे डालिये'।

भारतेन्दु युग के लेखक और कवि सभी समाज के प्रति जागरूक थे। उनका ध्यान मस्तिष्क सामाजिक रुढ़ियाँ एवं कुरीतियों के प्रति प्रबुद्ध था। फलस्वरूप उन्होंने सामाजिक अभ्युत्थान के प्रति सजग होकर अपनी भाषा से समाज को प्रेरणा दी।

लोकदृष्टि का विस्तार

भारतेन्दु युग लोकदृष्टि के विस्तार का युग था। कवियों का दृष्टिकोण स्वान्त सुखाय न होकर बल्कि बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय था। सामाजिक मानसस्तर में अभ्युत्थान की मधुमय बेला बहोरे ले रही थी। साहित्य, कला, समाज, राजनीति, शिक्षा आदि में नवोत्थान के जागरण का स्वर सुनाई पड़ रहा था। शिक्षा के सार्वभौम विकास के निमित्त राजनीति के रणमंच से जो आदेश हुआ था जो भी प्रयास सम्भव थे हुए। अंग्रेजी शिक्षा से देश में अतीत के गौरव के प्रति नवजवानों का मस्तिष्क उर्ध्वलित हो उठा।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से ही उत्थान और उन्नति के प्रभात पवन का आघात से भारत के सभी भाषायी क्षेत्र अपनी अपनी अस्मिता लेकर जागृत हो गये थे। काश्मीर से कन्या कुमारी तक और अटक से कटक तक नवजागरण का सूय किरणें विकीर्ण कर रहा था। उत्तर भारत में वह भारतेन्दु के रूप में अपनी प्रतिमा की पल्लव्योति फैला रहा था तो दक्षिण में नमदा शंकर के रूप में, शंकर का ताण्डव नृत्य रचा रहा था।

कवियों और लेखकों ने नवजागरण के ढका को स्वतः बजन की प्रवृत्ति दी। वे देश का व्यक्तिगत कुरीतियों को समाज के स्तर पर ल जाकर उससे निवारण का रास्ता ढूँढने लगे। इसी से वे शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता के आकांक्षी थे। उन्होंने शिक्षा प्रसार का स्वागत किया और उनके विनाशकारी प्रभाव से बचने की चेतावनी दी।^२

भारतेन्दुवादी कवियों और लेखकों का आग्रह लोकदृष्टि के अग्रदूत के रूप में हुआ। यदि ऐसा न होता तो भारत के गान्धेयों में एक ही दफा जागरण का स्वर नहीं गूँजता और यदि गूँजता

१ प्रभाकेश्वर उपाध्याय प्रेमघन सवस्व, द्वितीय भाग, निघण्टु विपत्ति वर्ण, प्रयाग, प्रथम संस्करण, २०१७ वि०, पृ० १८७

२ भारतेन्दु ग्रन्थाली तीसरा खंड, काशी २०१० वि०, पृ० १६१।

३ लक्ष्मी सागर वाण्य बीमकी शताब्दी आधुनिक साहित्य अपूरे सन्ध, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९६६, पृ० १६४।

भी तो उसका नियामक कोई एक व्यक्ति होता। यहाँ तो एक ही आवाज का बुलन्द करने वाले बंगाल से बकिम, महाराष्ट्र से चिपलूणकर, गुजरात से नमदा शंकर और मध्य देश से भारतेन्दु आये। अतः देश में साहित्य के साथ ही समाज की उन्नति लोक दृष्टि के विस्तार के सम्मुख अंग्रेजी राज्य और भाषा के सम्पर्क से हुआ। कवि और लेखकों का चेतन मस्तिष्क समाज के अन्तर्गत को पहुँचाने का था। डा० बाण्य के शब्दों में “भारतेन्दुवालीन कवियों ने ह्यूेली को अनुवीक्षण यत्र में देखा और चक्र त्रिशूल मत्स्य आदि की परीक्षा की।”^१

आर्थिक प्रगति

अंग्रेजी राज भारत के घोर आर्थिक शोषण का हा दूसरा पार्श्व है।^२ अपन राजत्वकाल में अंग्रेजों ने घरेलू उद्योग घाघा को नष्ट किया। प्रतिदिन करो की वृद्धि होती रही। देशी रियासतों को लूटा खसोटा गया। अंग्रेज अपने देश की आर्थिक उन्नति में यहाँ से लूट के माल को पचाते थे। देश उनका बाजार बन गया था। उनकी व्यापारिक नीति लूट की नीति थी। भारतीय विद्रोह के प्रमुख कारणों में अंग्रेजों की अर्थ नीति भी थी। भारतेन्दु अपने देश से धन जाने के कारण बहुत ही दुखी प्रसीत होते हैं—

अग्रज राज मुलसाज सजे सब भारी।

यै धन विदेस चलि जात यहै अति ख़वारी ॥^३

भारतीय धन के विदेश चले जाने की कहानी एक अंग्रेज लेखक ने इस प्रकार कही है— ‘हमारी पद्धति एक स्पज के समान है, जो गंगा तट से सब अच्छी चीजों का चूस कर टेम्सतट पर ला निचोड़ती है।’^४

अंग्रेजों की अर्थ नीति भारत के प्रति उनके नैतिक पतन का इतिहास प्रस्तुत करती है। उन्होंने भारत के प्रति बहुत ही बेरहमी का रस जम्बित्यार किया। कहा जाता है कि सत्वालीन गुलाहा के अगुठे तक काट लिये जाते थे।

भारतेन्दु युग के कवि जिस प्रकार राजनीतिक और सामाजिक आवश्यकताओं की ओर आकर्षित हुए उसी प्रकार आर्थिक उन्नति के लिये भी मरपूर चेष्टा की। आर्थिक पराधीनता से देश को मुक्त करने के लिये उन लोगों ने सफल प्रयास किया। डा० केशरी नारायण शुक्ल के शब्दों में— ‘इस समय के प्रमुख कवियों ने देश की आर्थिक पराधीनता दूर करने और इस हेतु देशवासियों को जगाने के लिये कविता का सम्बन्ध जीवन की वास्तविकता से जोड़ लिया।’^५

१ वही, पृष्ठ २०२।

२ डा० सुधीन्द्र हिंदी कविता में युगांतर, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९५५ ई०, पृ० ३७।

३ ब्रज रत्नदास (संपादक) भारतेन्दु का यावली, पहला खण्ड नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० ४०६।

४ डा० सुधीन्द्र हिंदी कविता में युगांतर, दिल्ली पृ० ३७।

५ डा० केशरी नारायण शुक्ल आधुनिक काव्य धारा, वाराणसी, पृ० ३६।

देश में विदेशी मान की होइ सी लग गई थी। लोग विदेशी मलमल और मारकीन से अपने को सुसज्जित करने में अपना गौरव समझते थे। भारतेन्दु बाबू इनकी आलाचना करते हैं और देशी वस्तुओं के प्रयोग के लिये भारतवासियों से प्रार्थना करते हैं—

मारकीन मलमल बिना चलत कछु नही काम,
परदेशी जुलहान के मानहु भए गुलाम १
बदन बहुत मारे सबै जग की जेता जाति,
बलबुद्धि ज्ञान विज्ञान में तुम कह अबहुँ राति २।
परदेशी की बुद्धि अब करि वस्तुन की आस,
वरबस हूँ वै कब लो नहीं रहिहौ तुम हूँ दास ३।
, कामलिवाव सिताव सा अब नहिँ सरिहै गीत।
- तासो उठहुँ सिताम अब छाडि सबज भयमीत ४।

अम्बिकादत्त व्यास भी गौरांग महाप्रभुओं के प्रभाव में आए नवयुवकों पर तीखा व्यंग्य करते हैं। ऐसे नवयुवकों का उनके मलमल पर नहीं बल्कि मैनचेस्टर और लिबरपूल के मलमल पर ही बाग-बाग होने है—

पहिरि कोट पतलून वूट जर हेट चारि सिर
भालू खरवी खरवी लबड़न को लगाई फिर
निज भाइन के रचे बसन भूपन नहिँ भावत
मैनचेस्टर जर लिबरपूल से लादि मगावत ५

अग्रजा की शोषण नीति के विषय में प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा है कि—जिम भारत लक्ष्मी को मुसलमानों से सौ वर्षों में जन्म उत्पन्न करके भी न ले सके उसे उद्धान सौ वर्षों में धीरे धीरे ऐसे मजे के साथ उड़ा लिया कि हँसते खेलते विलायत जा पहुँची। १ जीर आगे भी लिखा है कि—

सबसे लिय जात अंग्रेज हम बैबल सेकधर के तेज।
श्रम बिन बात का बरती है कहूँ टटवन गाँव टरती है २।

देश दुखी था। अकाश और भूमी की महामारी से देश विकल हो उठा था। कवियों की 'वाणी देश-वासियों को जागृति के सन्देश सुना रही थी। वे आर्थिक दुष्स्थिति से श्लथ हो उठे थे। व देश की इस दयनीय दशा का उत्तरदायित्व सरकार के मथ्ये मन्ते थे। सचमुच सरकार दोषी थी। हरिश्चन्द्र, प्रेमचन्द, अम्बिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी, प्रताप नारायण मिश्र आदि ने भारतीय दुदशा के कर्ण चित्र खींचे हैं। प्रताप नारायण मिश्र की आँखें तो जलपूरित हो जाती हैं। उह होली, मुहरम सी प्रतीत हान लयती है। उनकी रचनाओं में भारतीय कृषक का जीता जागता चित्र उभर आया है—

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, पृ० ७३५।

२ वही, पृ० ७३८।

३ वही पृ० ७३८।

४ वही, पृ० ७३८।

५ अम्बिकादत्त व्यास भवन को उमग—भारत धम

६ ब्राह्मण पण्ड ४, संख्या २ (द)।

महंगी और टिक्स के भारे सगरी वस्तु अमोली है,
 बौन भाँति त्योहार भनैये कैसे नहिये होती है।
 सब धन ढायो जात विलासत रह्यो दलिदर छाई।
 अन्न वस्त्र वह सब जब तरस होरी कहाँ सोहाई।
 भूने भरत किसान तहँ पर कर हित उपट न थोरी है।
 गारी देत दुष् चपरामी सकति बिचारी छोरी है।^१

इस तरह का नग्न वर्णन भारतीय व्यवस्था के नस-नस के सहू को खोला देता है। आर्थिक शोषण का इससे भी कठण चित्र क्या सम्भव है।

भारतेन्दु युग के कविया का ध्यान अमीर और गरीब होना की तरफ अपनी सम-व्यवादी प्रतिभा के पुष्प की सुरभि बिखेरते जाता है। उनकी कलम से अमीर और गरीब दोनों के कठण चित्र उमरे हैं। अमीर यदि राजनीतिक शिम्जा से अंग्रेजों की अर्थनीति के चगुल में है तो गरीब उनकी दुष्टता से अपने जीवन की कहकहा लिखने को प्रेरित करता है। दोनों अंग्रेज की अर्थनीति से पागल और बेकरार है। तत्वानीन कथियों की धाणी में अर्थ नीति की जो आलोचना हुई है उससे समग्र देश जाग उठा। आज उसी का फल और फूल हम उपलब्ध है। डा० केसरीनारायण शुक्ल के शब्दों में—
 'आज की आर्थिक चेतना का बहुत कुछ श्रेय भारतेन्दु युग के कवियों को भी है।'^२

प्रकृति विषयक दृष्टि

मानव एक सजग चित्तशील प्राणी है। उसका प्रकृति के साथ विरातीत सम्बन्ध है। उसी के कारुणिक क्रोध में वह जवाब गति से, उससे सघष करते हुए उससे नूतन भावों की प्रेरणा लेते हुए अपने जीवन को सगारता और सतत गति से विकास करता चला आ रहा है। प्रकृति उसके जीवन और विचारों में सत्कार और परिष्कार लायी। वह उसी के नित नवीन मोड़ पर प्रभाव प्रसूना का सग्रह करता है। प्रकृति उसे राज नई खेल पढती है। नूतन भावनाओं के साथ प्रकृति की नूतनामा गजब की छवि ढा देती है।

परिवर्तन जगत् का शाश्वत नियम है। वह प्रतिपल परिवर्तित होता है। चित्तशील प्राणी होने के नाते कवि युग के साथ, समाज के साथ अपने पथ में अग्रसर होता है। युग की बदलती हुई परिस्थिति और मादशा का अनुकूल अपन आगम में परिवर्तन भी करता जाता है। युग के स्पर्श तथा सवेदन उसे आन्दोलित करते रहते हैं—वह बच नहीं पाता मानुष हृदय युग की छाप लिये बढता ही जाता है।

भारतेन्दु युग परिवर्तन का प्रवेश द्वार है। इस युग के पृष्ठ पर काल के प्रकृति निमग्न की परम्परा मुक्त रीतिवालीन शृंगारपरव धारा थी।^३ भारतेन्दु तथा उनके मण्डल के कवि इस धारा के प्रवाह से कैसे बच सकते थे। भारतेन्दु जी तो दरबारी सत्कारों में पले थे ही। अतः उनका बचन तो नितांत असम्भव था।

भारतेन्दु पूर्ण प्रकृति भौतिक जीवन की उपयोगिता के साधन प्रस्तुत करती थी। रीतिवालीन प्रकृति की बसन सज्जा से कवि अपने आश्रयताओं के मन को लुभाता था, उससे वह प्रेरणा ग्रहण

१ प्रताप नारायण मिश्र लोकोक्ति शतक, १८६६ ई०, पृ० २।

२ डा० केसरीनारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा, पृ० ५०।

३ रामगोपाल सिंह भारतेन्दु साहित्य, पृ० २५१।

नहीं करता था, बल्कि अश्लील पदों की रचना कर रोटी का प्रश्न हल करता था। रोटी का प्रश्न प्रमुख था। कविता व्यवसायिक थी।

भारतेन्दु युग आगमन की सूचना क्रान्ति से देता है। उसके हर दृष्टिकोण और प्रवृत्ति में क्रान्ति का स्वर गूँजता है। भारतेन्दु और उनके सहयोगी प्रकृति चित्रण की गति परम्परा पर चलते हुए उन्होंने प्रकृति के नवीन चित्रण को भी प्रस्तुत किये हैं। प्रकृति चित्रण में नई चेतनापरक दृष्टि की सूक्ष्म रूप में मिलती है परन्तु पुरानी परिपाटी के चित्रण का पलड़ा मारी है।

अध्ययन की दृष्टि से हम दोनों का विश्लेषण अलग अलग ही प्रस्तुत करेंगे।

परम्पराभक्त प्रकृति चित्रण

भारतेन्दुयुगीन कवियों का परम्पराभक्त प्रकृति चित्रण उद्दीपनकारी पाया जाता है। भारतेन्दु जी तो प्रकृति के उद्दीपन रूप को प्रस्तुत करने में निबद्ध हैं। प्रकृति उनके नायक-नायिका कृष्ण राधा के संयोग वियोग प्रभूत रामविरागों की चिरमगिनी है। चन्द्रावली नाटिका में यथा चन्द्रावली कृष्ण वियोग-वन के वृक्षा एव लताआ से अपने प्रियतम के बारे में पूछती है। कवि के इस उभरते हुए उद्दीपन रूप को देख कर ही सहज ही ध्यान जायसी के नागमती, तुलसी की राम और सूर की गोपियों की तरफ चला जाता है—

अहो अहो वन के रूप, कहूँ देख्यो पिय प्यारी।

मेरो हाथ छुड़ाव, कही वह किते सिधारी।^१

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि उनकी रचनाओं में प्रकृति वर्णनों का अभाव बराबर पाया जाता है। वस्तु-वर्णन में उन्होंने मनुष्यों की कति ही की ओर अधिक रुचि दिखायी है।^२ उन्होंने गया के वर्णन का उदाहरण प्रेषित किया है—

मग उज्ज्वल जलपार हार हीरक सी सोहती।

बिच बिच छहरत बूँ मध्य मुक्ता मनु पोहति।

सोल लहर सहि पवन एक पै इक इति आवत।

जिमि नरगन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत ॥^३

प्रतापनारायण मिश्र आदि मण्डल के सभी कवियों में प्रकृति का चित्रण कम पाया जाता है। प्रकृति चित्रण देश भक्ति के भाव में मनाहर तथा सजीव नहीं हो सके हैं। मिश्र जी प्रकृति वर्णन करते करते ईश्वर की ओर उन्मुख हो जाते हैं। परिणामस्वरूप भक्तिभावना का पक्ष प्रबल हो जाता है और प्रकृतिवर्णन फीका पड़ जाता है—

बरसान्ध्रु सबको सुखकारी, प्रकटति महिमा नाथ तिहारी।

नाचि उठ बन मोर मुदित मन लखि उमड़े धन गगन मझारी।

चहुँदिशि तब वैभव बिलोकि कै, ज्यो सज्जन अति होत सुखारी।

बरसत नीर उमग भरि सरिता, मिलन चलहि सागर कह सारी।

तब करुणा बल पाव हृष भरि ज्यो तब शरणहोत सुविचारी ॥^४

१ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र चन्द्रावली नाटिका, सपादक, व्यथित हृदय, स्टूडेण्ट्स फ्रेंड्स, प्रयाग, प्रथम संस्करण १९५७, पृ० २७।

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि, भाग २, वाराणसी, पृ० १६८।

३ बजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु चन्द्रावली, पहला खण्ड, काशी, पृ० ५६५।

४ नारायण प्रसाद अरोड़ा (सपादक) प्रताप लहरी, १९४९ ई०, पृ० १५०-१५१।

प्रकृति के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण

भारतेन्दु युग के जन-जीवन की नई चेतना प्रकृति चित्रण के प्रति भी नवीन दृष्टि का आह्वान कर रही थी। मानव जीवन के साथ प्रकृति की उपादेयता ही प्रकृति चित्रण का प्रगतिशील दृष्टिकोण था। अब प्रकृति नायक-नायिका के संयोग एवं वियोग जय-श्रीढा-कल्पना के कारणार स मुक्त हो जीवन के विशाल एवं विस्तीर्ण क्षेत्र का शिला-यास कर रही थी। प्रकृति के प्रति यह नया दृष्टिकोण आलम्बन और प्रकृति से उपमाएँ दे जीवन की तत्कालीन यथाथ का चित्र प्रस्तुत करने में पाया जाता है। आलम्बन के रूप में कवि यमुना छवि में पाठक को मग्न मुग्ध कर देता है—

सरनि सनूजा सट समाल, सखर बहु छाए।

भुके कूल सो जल परसनं हित मनहुँ सुहाए ॥^१

आगे कवि ने प्रकृति के माध्यम से देश की तत्कालीन दुदशा का वर्णन ही कारुणिक चित्र प्रस्तुत किया है—

भारत में मची है होरी।

एन जोर भाग अभाग एक निसि होय रही भय-होरी।

अपनी अपनी जय सब चाहत होइ परो दुहु आरी ॥

दुःख सति बहुत बढ़ारी।

घूर उडत सोइ अविर उडावत सबको नयन भरोरी।

दीन दसा असुवन पिचकारिन सब खिलार मिजयो री।

भीजि रहे भूमि सटोरी ॥

मई पतभार तत्व कहूँ नाही सोइ बसन्त प्रगटो री।

पीरे मुख मई प्रजा दीन हूँ सोइ फूली सरसो री।

मिमिर को अत मयो री ॥^२

इस प्रकार भारतेन्दुयुगीन प्रकृति-चित्रण स्वच्छ रूप से नहीं हो पाया है। यदि एक तरफ इस वर्णन में कवि को देशभक्ति या ईश्वर का दबाव मिला है तो दूसरी तरफ मानवीय यथार्थ का दिग्दर्शन कराने में समस्त हिंदी साहित्य का वैदग्ध्यल भी है। प्रकृति के प्रति प्रगतिवादी दृष्टिकोण की भलक हमें इसी युग में मिलती है।

१ श्री व्यपित हृदय (संपादक) चन्द्रावली नाटिका, स्टूडेंट्स फेण्डम, प्रयाग, १९५७, पृ० ५८।

२ ब्रजरत्नवास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० ४०५।

भारतेन्दुकालीन भक्तिकाव्य-धाराएं और उनकी विविध विशेषताएं

विषय प्रवेश

भाव जगत् में विकार प्रभुत्व करने का उत्तरदायित्व कालगत परिस्थितियां पर है। विश्व के विनाश फल पर महान् से महान् परिवर्तन एवं जातिमा के मूल में परिस्थितियां ही हैं। साहित्य एवं अन्य ललित कलाओं के परिवर्तन भी इन्हीं परिस्थितियों से अनुप्रेरित रहे हैं। परिस्थितियां परिवर्तन की जननी है।

उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध भारतेन्दु युग है। इस अर्द्धशताब्दी का प्रतिनिधित्व भारते, जो ही करते हैं और उनकी मृत्यु के बाद भी युग चिह्न पर उनकी छाप अमिट बनी रहती है। इस युग के पृष्ठभूमि में रीतिकाल का रसविलास विमुग्धकारी वातावरण को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। रीतिकाल की सखी गरी में सानो-सुरा और सौन्दर्य का स्वर ही प्रबल था। भारतेन्दु ने शताब्दियों से इस बहते प्रवाह को एक मोड़ दिया। शृङ्गार की प्रबल धारा के अवरोध में तत्कालीन और कवि भूषण की लेखनी भी समर्थ नहीं हो पायी, कि तु सरस्वती के बरद पुत्र भारतेन्दु न कविता के प्रवाह को रोक ही नहीं दिया बल्कि एक नया रास्ता खिलताया। डा० श्यामसुन्दरदास ने लिखा है कि 'रीतिकविता की शताब्दियां से चली आती हुई गन्दी गली से निकल शुद्ध वायु में विचरण करने का श्रेय हरिश्चन्द्र को पूरा-पूरा है।' फिर भी रीतिकालीन कविता के प्रवाह की स्पष्ट छाप आलोच्य काल की भक्तिकाव्य धाराओं पर परिलक्षित होती है। वर्तमान काल अपने भूतकाल का पोषक और प्रादुर्भूत होता है।

भारतेन्दु काल ने रीतिकालीन वातावरण का पोषण तो नहीं किया लेकिन वह उससे अनुप्रेरित अवश्य ही रहा। साहित्य जगत् में रीतिकालीन भाव जगत् का प्रारूप कवि मानस को प्रेरित करता रहा। अतः रीतिकाल के प्रभाव से सदा अछूता रहना, कोरी कल्पना है।

भारतेन्दु युग का भाव जगत् अपने पिछले तीन युगा-वीरगाथा काल, भक्तिकाल एवं रीति काल से अनुप्रेरित रहा। धार्मिक परिस्थितियां मानव भस्तिष्क के चित्त पर जाग्यात्मिक प्रभाव डालती हैं। इस युग की स्थिति में धार्मिक प्रभाव का स्वतन्त्र रूप प्रायः स्पष्ट नहीं होता है। पूर्व की ही भांति विष्णु शिव, देवी, देवताओं आदि का भक्ति के दशन मिलते हैं। अवतारवाद, मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड का परम्परागत रूप ही दृष्टिगोचर होता है। नवधा भक्ति के आधार पर उपास्यदेव के प्रति श्रवण, कीर्तन आदि का भावना शुद्ध हृदय से पाई जाता है। धार्मिक जगत् की भावनाओं में नवीनता तो नहीं दिखाई पड़ती लेकिन रुझित धार्मिक प्रवृत्तियों में सत्यता का समन्वय सराहनीय है।

काव्य जगत् कबीर मूर, तुलसी आदि से प्रभावित है। घनानन्द, देव, बिहारी, पद्माकर से भी प्रभाव ग्रहण करने में सकोच नहीं था। परिणामस्वरूप रीतिकाल और भक्तिकाल की समन्वित धारा ही भारतेन्दु युगीन कविता का प्रेरणा स्रोत है।

भारतेन्दु जी स्वयं वैष्णव थे। लेकिन अन्य धर्मों से उन्हें घृणा नहीं थी। उनका भाग था प्रेम का, सच्चाई का और सच्चरित्रता का। अतः युग की घमनिया में इसी त्रिवेणी का पुनीत जल प्रवाहित होता है। धार्मिक उदारता का समावेश प्राचीनकाल से अधिक था। जनता अविश्वास से शक्ति हो चली थी। धर्म का बाह्य आढम्बर यद्यपि पूर्णरूपेण लुप्त नहीं हो गया था फिर भी धार्मिक कट्टरता में मनुष्यता दबल देने लगी थी। अतएव स्पष्ट रूप से स्वीकारा जा सकता है कि तत्कालीन काव्य जगत् पर मक्तिशालीन परम्परा का अधिक प्रभाव था।

कविता के कमनीय नगर में कवि की भाव पशुडिया प्रम्पुटित होती हैं। वह उस नगरी से भाव नहीं ग्रहण करता बल्कि प्रभाव ग्रहण करता है। प्रभाव ग्रहण करना ही तो कवि-कर्म को उत्कृष्ट प्रान्न करता है। डा० किशोरी लाल गुप्त के शब्दा में—‘परन्तु भाव-ग्रहण एक बात है और प्रभाव-ग्रहण बिल्कुल दूसरी बात।’^१ यदि शरीर हवा, पानी मिट्टी, अन्न आदि में सञ्जावनी शक्ति प्राप्त करता है, तो भस्मिष्क प्रभाव ग्रहण कर मानसिक जगत् को चित्तन शक्ति प्रदान करता है। भारतेन्दु युग प्रभाव ग्रहण करने में हिचक नहीं रखता। पूर्ववर्ती कवि इस युग के प्रेरक रहे हैं। डा० किशोरीलाल गुप्त ने भारतेन्दु जी के बारे में लिखा है कि ‘अप्य कवियों का प्रभाव ग्रहण करता उन्हें अस्वीकार नहीं था, प्रत्युत वे अपने पूर्ववर्ती कविता की रचनाओं से पूरा लाभ उठाने के पक्षपाती थे।’^२

निर्विवाद रूप से यह स्वीकार किया जाता है कि भारतेन्दु युग परम्परागत मक्ति एक रीति की पद्धतियों में अपने को लगाये रखना समय के साथ खिलवाड़ करना समझता था। इन कवियों ने समझ लिया था कि रीतिकाल अपने मोहजाल में युग चेतना को आवद्ध नहीं कर सकता है अतः नवीनता का सन्देश ही मुखरित होता रहा। हा, युग प्रभाव से वंचित रहना अस्वाभाविक सा रहता है। क्योंकि प्राचीन प्रवृत्ति ही तो नवीन प्रवृत्ति की मिति का आधार है। अतः भारतेन्दु एवं उनके मंडल में प्राचीन परम्परा-पालन का आग्रह है। डा० रामचन्द्र मिश्र ने लिखा है कि ‘वह पूर्णरूपेण अपने को परम्परागत साहित्य से दूर न ले जा सके, यह इसलिये अस्वाभाविक न था कि एक साथ ही किसी प्रवृत्ति को नहीं बदला जा सकता। यह साहित्य का अमर सत्य है। क्योंकि साहित्य का प्रवाह अविच्छेद होता है।’^३

‘उस सचिवालय के कवियों में ध्यान देने की बात यह है कि यह प्राचीन तथा नवीन का योग इस ढंग से करते थे कि कहीं जोड़ नहीं जान पड़ता था, उनके हाथ में पढ़कर नवीन भी प्राचीन का ही एक विविध रूप जान पड़ता था।’^४

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि भारतेन्दु युगीन काव्य-साहित्य प्राचीन एवं नवीन का अप्रुब सामंजस्य था। प्राचीन परम्परा-पालन में भारतेन्दु-युग में हम भारतेन्दु और समकालीन कवियों में

१ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके पूर्ववर्ती कवि नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वष ५५, २००७, पृ० २१।

२ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके पूर्ववर्ती कवि नागरी प्रचारिणी पत्रिका वष ५५ सं० २००७, पृ० २१।

३ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दावादी काव्य पृ० ७०।

४ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रेमघन सर्वस्व (भूमिका), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९६६ पृ० ६।

रीतिपरक रचनाओं के प्रणयन में अधिक मिलता है। भक्तिपरक रचनाओं में कृष्णकाव्य में मधुर उपासना का बहुलाश है। कृष्ण की माधुर्य लीला का रसास्वादन सम्पूर्ण भारतेन्दु युग करता है। कृष्ण ही भारतेन्दु युगीन भक्ति साहित्य के प्रमुख नायक हैं। सम्पूर्ण काव्य साहित्य उनकी ही रासलीलाओं का मौलिक उद्घाटन करता है। शृंगार की शुद्ध सरिता में कृष्ण का पावन चरित्र निखर उठता है। कविकर्म की रुचिवादिता एवं सजीवता कृष्ण की मधुर लीलाओं का अंकन करने में लाज के बंधन को खोल आत्मविभोर हो उठी है। द्विवेदी युग जो भारतेन्दु युग का ही परिपूरक है राम और कृष्ण तथा अन्य पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथावृत्ता को लेकर सामने आया, इसमें भारतेन्दु युगीन प्राचीन परंपरा पालन की भक्ति एवं रीतिपरक रचनाओं का अपूर्व सहयोग ही दृष्टिगोचर होता है।

कवि अपने कवि-कर्म में बड़ा रुचिवादी और सजीव होता है। भारतेन्दु एवं उनकी गोष्ठी में यही रुचिवादिता सूर, बिहारी देव, पद्माकर, यमानन्द जति से प्रभाव ग्रहण कर अनुप्राणित रही। सूर की भाँति ही भारतेन्दु भी बल्लभ सम्प्रदाय में सीमित थे। वे अपने साहित्यिक जीवन के उपाकाल में ही सूर के प्रभाव का निम्नोक्त पद में डिङ्गोरा पीटने लगते हैं—

बावरी प्रीति करो मति बौध ।
प्रीति किए बोनै सुख पायो मोहि सुनाओ साय ।
प्रीति बियो गोपिन माधव सो लोक लाज भय खोय ।
उनको छोड़ गए मधुरा को बड़ि रही सब रोय ॥
प्रीति पतन करत दीपक सौ सुन्दरता कहैं जोय ।
सा उलटो तेहि दाह करत है पच्छ नसावत दोय ॥
जानि ब्रूहि के प्रीति करी हम कुल मरजादा थोय ।
अब तो प्रीतम रग रही मैं होनी होय सो होय ॥^१

प्रस्तुत पद पर सूर की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। उनका प्रेरक पद यह है—

प्रीति करि बाहू सुख न लह्यो ।
प्रीति पतन करी दीपक सौ जाये प्राण दह्यो ॥
अलि-सुत प्रीति करी जल सुत सौ सपुट भाग गह्यो ।
सारग प्रीति करी जु ना सौ, समुख बान सह्यो ॥
हम जो प्रीति करी माधव सौ, चलत न बधु बह्यो ।
सूरदास प्रभु विनु दुख पावत, नैननि नीर बह्यो ॥^२

इस युग में कृष्णकाव्य की अपेक्षा रामकाव्य का प्रणयन कम हुआ है। कलस्वरूप रामकाव्य के शीघ्रस्थ कवि गोस्वामी तुलसीदास का प्रभाव इस युग की चेतना को उतना प्रभावित नहीं कर सका है। भारतेन्दु जी तो बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। अतः उन्हें रामनगर की रामलीला से प्रेरणा प्राप्त कर 'रामलीला' नामक एक चपू का प्रणयन किया। उसमें कवि न बाल एवं अयोध्याकाण्ड की कथा को अभिव्यक्ति दिया है। यहाँ तुलसी का प्रभाव पूर्णरूपेण तो स्पष्ट नहीं होता, लेकिन विनय सम्बन्धी पदां पर यह प्रभाव अस्वीकारा भी जा नहीं सकता। यथा धार्तिक स्नान के निम्नांकित दोहे पर तुलसी का प्रभाव स्पष्ट है—

१ ब्रजवल्लभ (सम्पादक) भारतेन्दु प्रभावली, गाँव २, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० ल
२ नन्ददुलारे वाजपेयी (सम्पादक) सूरसागर, दूसरा खण्ड, पृ० ३६०६ ।

कृष्ण नाल मनि-दीप जो, हिय घर मे न प्रकास ।

दीप बहुत बारे बहा हिय-तम मयो न नास ॥^१

यही नाम का मनि-दीप यहाँ भी है—

राम नाम मणि-दीप घर जीह देहरी द्वार ।

तुलसी बाहिर भीतरहु जो चाहसि उजियार ॥^२

भारतेन्दु जी को जीवन के दुःख वातावरण पर अत्यन्त ग्लानि है क्योंकि यह सम्पूर्ण जीवन ही रोते रोते बीता फिर भी शान्ति का स्निग्ध वातावरण उपस्थित नहीं हो पाया—

बैम मिरानो रोजत रोजत ।

सपनेहु चौकि तनिह नहि जागो बीती सबही सोयत ॥

गई कमाई दूर सरी छन रहे गाठ को खोजत ।

भोरहु कजरी तन तन सपानी मन जानी हम धोयत ॥

स्वा मिली न मजुरी को सिर दूटयो बोधा दोयत ।

‘हरीचंद नहि भरयो पेट पै हाथ जरे दोउ पोयत ॥^३

प्रस्तुत पद की प्रेरणा कवि को तुलसी के निम्नोक्त पद से मिली है—

ऐसहि जनम समूह मिरान ।

प्राणनाथ रघुनाथ से प्रभु सजि सेवत चरन विरा ।^४

भारतेन्दु युग के प्रमुख कवि बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ ने मधुराभक्ति के द्वारा भगवान के मधुर प्रेम का आस्वादन भगवान् की प्रिया के रूप में किया है। भारद्वाज ने उक्त प्रकार की भक्ति के सर्वोत्तम उदाहरण उपलब्ध होते हैं। लेकिन प्रेमघन जी के प्रस्तुत पद में ‘याय’ की रसौनी पर यदि कसा जाम तो क्या भजाल कि वह उससे पीछे रहे। प्रेमघन जी का वह पद यह है—

बसो इन नैनन मे नन्दन ॥देव॥

मुगल जलज सारग सोमित बच राहु सहित मुखचन्द ।

चित्रक गुलाब बिम्ब अघराघर मुख को सरस अम ॥

उर बनमाल मृणाल बाहु युग चान रसाल गप ॥

बदीनाथ मिलो अब प्यारे छादि सकल छन छन्द ॥^५

भारद्वाज का प्रेरक पद यह है—

बसो मेरे नैनन मे नन्दन ।

मोहनी मूरत सावरी मूरति नैना बने विसाल ।

अघर सुधारम मूरली राजति उर बजती माल ॥

१ ब्रजरत्नदास (सम्पादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड (कार्तिक स्नान), पृ० ३८० ।

२ गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ० ४८ ।

३ ब्रजरत्नदास (सम्पादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड, पृ० १४२ ४३ ।

४ गोस्वामी तुलसीदास विनय पत्रिका, गीताप्रेस, गारुडपुर, तेरहवा संस्करण, सं० २००६, पद २३५, पृ० ३७१ ।

५ प्रभाकेश्वर (संपादक) प्रेमघन सवस्व, पृ० ४४० ४४१ ।

छुट्टिवा नटि तट सोमित नूपुर सबद रसाल ।

भीरा प्रभु सतन सुखदाई भक्त बछल गोपाल ॥^१

रीतिवालीन कविता का गारगारा से भी भारते दु और उनकी गोष्ठी के कवियों ने प्रेरणा प्राप्त कर सृजन किये । वही शृंगार की सुलभ सजगता है तो कही भक्त हृदय के स्फीत उद्गार हैं । कवि कही-कही सद्य स्नाता बालिका के मोन सोड्य का उद्घाटन करता है ता कही मुग्धा-नायिका मे मनोमुग्धकारी सौन्दर्य का उद्घाटन करता है, प्रस्तुत करता है । इन तरह रीतिवालीन वातावरण से प्रेरणा शृंगार सबलित माधुर्य भक्ति की भीनी भीनी गध से समस्त भारते दु युग सुरमित है । युग विधायक भारते दु जी स्वय ही रसखान, बिहारी, देव, प्रतिराम और पद्माकर से प्रभावित रहे हैं । कवि परम्परा का निर्वाह करने में पूरणपण सफल प्रतीत होता है । रसखान का एक सवैया है—

॥

सस महेश गनेस दिनेस प्रजेस सुरेश घनेस मनाओ ।

कोक भवानी भजौ मन ही सब आस सबै विधि जाय पुराओ ।

कोक रमा मजि लेहु महाधन कोक कहूँ मनवाछित पाओ ।

पै रसखानि बही मेरी साधन और तिलोक रही कि नसाओ^२ ।

यही तुक, शैली, अय और ध्वनि भारते दु के प्रस्तुत पद से अमिष्यजित होता है । निश्चय ही भारते दु जी का आदर्श रसखान का सवैया है । भारतेन्दु जी न रसखान को प्रेमवाटिका से प्रेरणा प्राप्त कर प्रेम-सरोवर लघुकाव्य का प्रणयन किया ह । भारतेन्दु जी का सवैया यह है—

पूजि के कालिहि सन् हतौ कोक सखी पूजि महा धन पाओ ।

सेइ सरस्वति पठित हाउ गनेसहि पूजि कै विघ्न नसाओ ।

तयौ 'हरिचंद जू' व्याइ गिवै काक चार पदारप हाथ ही लाओ ।

मेरे तो राधिका-नायक ही गति लोक दोऊ रही कै नसि जाओ ॥^३

कविवर बिहारी गारग म सागर के प्रसिद्ध कवि थे । भारतेन्दु जी राधावर के चाकर हैं^४ । उन्होंने 'बिहारी सतसई' के ८५ दोहो पर कुण्डनिया लगाई हैं जो 'सतसई' शृंगार के नाम से हिन्दी जगत् में विख्यात हैं । इनमें बिहारी के दोहा से अधिक दोहो की रचना की है । लेकिन एक सच्चे दोहा कार के रूप में आप नहीं हैं । डा० किशोरीलाल गुप्त ने लिखा है कि इन दृष्टि से बिहारी तो दूर, उनकी तुलना कबीर तुलसी, रहीम आदि से भी नहीं की जा सकती ।^५ भारतेन्दु जी की पदावली में सरलता है, लेकिन बिहारी के दोहो में अलंकारिता । बिहारी का दोहा है—

१ परशुराम चतुर्वेदी (सपा०) भीराबाई की पदावली, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम सस्करण, २०१२, पृ० ६६ ।

२ लल्लुभाई ध्यान लाल देसाई (सपा०) महानुभाव रसखान, अहमदाबाद, १९४१ ई०, पृ० २८ ।

३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खंड, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० ७६ ।

४ हम तो मोल लिए या घर के । दास दास श्रीवल्लभ कुल के, चाकर राधावर के । ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, पहला खंड, पृ० ५६ ।

५ किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके पूर्ववर्ती कवि, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५५, अंक १२, सं० २००७, पृ० २६ ।

मेरी भव बाधा हरी राधा नागरि सोय ।

जा तन की भई परे, क्याम हरित दुति होय ॥^१

इससे प्रेरणा ले भारतेन्दु का दोहा यह है—

जय जय श्रुतिपदवदिनी कीर्ति ननिनी बाल ।

हरि मन परमानन्दिनी भवमय जाल ॥^२

मादो बनी चौथ का चन्द्रमा बड़ा ही कलकित है । जन विश्वास है कि इस ग्लि का चन्द्र जो देखता है उसे फला लगाता है । इस जन विश्वास का वणन भारतेन्दु जी और घनानन्द दोनों ने सफलतापूर्वक किया है । दोनों के काव्य में चौथे के चन्द्रा के बारे में नायिकाओं के मुख से यह भाव बड़ा ही हृदयग्राही प्रकट हुआ है । घनानन्द की नायिका की अभिव्यक्ति यह है—

चौथ को चंद लखें ब्रजचंद सो लागै कलक ती उजरे हुई ॥^३

भारतेन्दु की नायिका बाकी बाचाल है, वह एक पग आगे बढ़ कर कहती है—

सुनो है पुरानन में द्विज के मुखन बात,

तोहि देख अपजस होत ही अचूक है ।

ताओ 'हरिचंद' कीर दरसन तेरो जिय

मट्या थाहे कठिन मनोमय की हूक है ।

ऐसी करि मोहि सब प्यारे नन्दनन्दनू सो

मिली कहै लान' मुख सौमिन के नूक है ।

मोकुल के धद धू सो लागै नू कलक ती तू

साओ चौथचंद ना तो बानर की हूक है ॥^४

कवि पद्माकर रीतिवाल के रमभव पर अपनी सबैया जीर कवित्त की सफाई और सुन्दरता के लिये गौरवान्वित होते हैं । भारतेन्दु जी अपन युग में ठीक उनकी बराबरी का स्थान प्राप्त करते हैं । यदि पद्माकर राधा के तिल का वणन करते हुए साटपाट हो जाते हैं तो भारतेन्दु का भक्त हृदय वृष्ण के कपोल पर लग चुबुके का वणन करते भावनाओं का मागरीषी में सन्देह-मुग्ध का सृजन कर शोभायमान होता है । कपोल स्थित काल तिल ॥ पद्माकर की बाणी विदग्ध है तो कपोल स्थित प्रवेत बुझके से भारतेन्दु की बाणी पद्माकर से प्रेरणा प्राप्त कर बमिसाल उदाहरण प्रेषित करती है ।

पद्माकर कपोल स्थित काल तिल का वणन करते हुए लिखत है—

कैथी रूप रासि में सिंगार रस अकुरित,

सकुरित कैथी नम ललित पुन्हाई ।

कहे 'पद्माकर' त्या किथी काम वारीगर,

नुकता दियो है हेम फरद सुहाई मे ।

कैथी अरबिन् म मलिन-मुत सोयो आनि,

ऐसो तिल सोहत कपोल की कुनाई मे ।

१ साता भगवानदीन (टीकाकार) बिहारी बोधिनी, बनारस, आठवा सस्करण, सं० २०१३, पृ० ८० ।

२ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु प्रभावली, दूसरा खण्ड, पृ० ७८

३ विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (संपादक) घनानन्द और आनन्द घन, सं० २००२, पृ० ४३३ ।

४ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु प्रभावली, दूसरा खण्ड, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० १७३ ।

कैशो पर्यो इदु मे कलिदि-जल बिदे आइ,
 गरव गुबिंद बिघो गोरी की गुराई म^१ ॥
 भारतेन्दु जी ने होली के समय कण्ठ के कपोल में लगे बुझके का वणन करते हुए लिखा है—
 आबु वृषमानु राय पोरी हीरी होय रही,
 दोरी हैं किसोरी सब जोवन चढ़ाई में ।
 खेलत गोपाल 'हरिचंद' राधिका के साथ,
 बुझका एक सोहत बपाल की लुनाई में ।
 कैशो मयो उदित मयक नम बीच कैशो,
 हीरा जरयो बीच नीलमनि की जराई में ।
 कैशो परयो कालिंदी के मोर छोर बिन्दु कैशो,
 गरव सु गारी भई स्याम भुंदराई में ॥^२

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि भक्ति की भागीरथी में शृंगार धारा का कल-कल मिनाह पूरा शास्त्रीय पद्धति पर परम्परा का अनुमोदन कर रहा था। भारतेन्दु युग के कवियों में जहाँ तक भक्ति-गाथा का चित्रण है, उसके पीछे सत काय, राम और विशेष कर कण्ठकाव्य की धारा का शृंगार सवलित प्रवाह ही है। कवि मगवान के साथ प्रिया प्रियतम, सखी-सखा और गोपी भाव से ही निकटता प्राप्त करता है। उनके द्वारा लौकिक प्रेम के गीत में शृंगार-कालीन कण्ठकाव्यधारा का सगुम्फन ही प्रबल रहा। इस प्रकार भक्ति की धारा मानव मस्तिष्क की सम्पत्ति है। उसे कही भी किसी काल में प्रस्फुटित किया जा सकता है। यही कारण है कि भारतेन्दु युग शृंगार के प्रबल प्रवाह में उसे साधुर्य^३ रूप में व्यक्त होना पड़ा।

निगुण काव्यधारा

'धर्म का प्रवाह कम, पान और भक्ति इन तीन धाराओं में चलता है। इन तीनों के सामंजस्य से धर्म अपनी पूरा सजीव दशा में रहता है। किसी एक के भी अभाव से वह विकलांग रहता है। कर्म के बिना वह लूला-लंगड़ा, ज्ञान के बिना जघा और भक्ति के बिना हृदय बिहीन क्या निष्प्राण रहता है।' धर्म की भावनात्मक अनुभूति या भक्ति जिसका सूत्रपात महामात काल में और विस्तृत प्रवर्तन पुराणकाल में हुआ था, कभी बही दबती, कभी उभारती, किसी प्रकार बली भर जा रही थी।^१ 'भक्ति का यही बहिराल प्रवाह दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित हुआ। राजनीतिक अशान्ति के रहते भी जनता के हृदय में इसको फूलने फलने का पूरा स्थान मिला। बबीर दास ने इसका हृदय से स्वागत किया। उन्होंने इस प्रवाह को उत्तर भारत की पवित्र भूमि पर रोक रखा और उसने अव्यवस्थित रूप को सँवार कर एक नय साचे में ढाल दिया। यही व्यवस्थित रूप निगुण पथ के नाम से भक्ति जगत में विख्यात हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में यह सामान्य भक्ति मार्ग एकेश्वरवादा का एक

१ पद्माकर प्रधावली संपादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण, स० २०१६, पद ३७, पृ० ३१३।

२ ब्रजलालदास (संपादक) भारतेन्दु प्रधावली, दूसरा खंड, स्फुट कविताएँ, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० ८२२।

३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० ५१ ५७।

अनिश्चित स्वरूप लेकर खड़ा हुआ, जो कभी ब्रह्मवाद की ओर ढलता था और कभी पैगम्बरी धृगवाद की ओर। यह 'निगुण पथ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।^१

हिन्दी काव्य जगत में कबीरदास जी ने भारतीय वेदांत से उपासना तत्त्व और सूक्तियों से प्रेम तत्त्व लेकर जनता के शुष्क हृदय को भक्तिरस से आप्लावित किया। बाद में सत्ता ने अतस्साधना में रागात्मिका भक्ति और ज्ञान का संयोग किया, लेकिन कर्म की स्थिति में कोई नवीनता का आभास नहीं हो पाया। कर्म तो आधुनिक युग में प्रवेश के समय अपनी गहरी निद्रा से उठा। अब वह हाथ खलान लगा। भारतेन्दु ने इस नवजात शिशु को छुट्टन चलना सिखाया। उसने अपनी तुलसी बोली में कबीर के निगुण पथ की तरह युग के चपल चरण को सकेंतित किया। फलस्वरूप कबीर का निगुण पथ रीतिकाल के रूपहूले पर्व से उबक कर भारतेन्दु युग के भव्य भारती के भवन में आया। यहाँ उसका भारतेन्दु मण्डल ने स्वागत किया। भारतेन्दु जी स्वयं ही इस युग में निगुण काव्यधारा के प्रवर्तक हैं। उनकी रचनाओं में निगुण परम्परा का निर्वाह ही नहीं हुआ है बल्कि उन्होंने निगुण सम्प्रदाय की शुष्क बन्धुपत्नी की हरी मरी लतिकाओं से सुसज्जित किया। अब हम भारतेन्दु युगान्त निगुण काव्यधारा के प्रमुख सिद्धान्तों पर दृष्टिपात करेंगे।

सिद्धांत की नींव पर साधना के भव्य भवन का निर्माण होता है। कवि के विश्वासा को ही साहित्य जगत सिद्धांत के नाम से अभिहित करता है। विश्वास धर्म का अभिन अंग है। विश्वास की अत्यधिक और अनिवार्य रूप से आवश्यकता धर्म के क्षेत्र में है। भाव जगत सदैव विश्वास के सम्बन्ध का श्रेणी रहा है। कारण कि उससे एक प्रकार की प्रेरणा, बल या स्फूर्ति पैदा होती है। साधक जब साधना के क्षेत्र में प्रवेश करता है, तो सर्वप्रथम वह श्रद्धा और भक्ति के अनन्तर विश्वास के बाद ही प्रवेश पाता है।

साधना का क्षेत्र विस्तृत है। साधक के हृदय में भक्ति एक श्रद्धा के विकास होने पर एक अदल विश्वास जन्म जाता है। तब साधक अपने प्रिय के मुखछत्रि का अवलोकन जानूँ या सुपुष्पावस्था में करने लगता है। इन तरह श्रद्धा और प्रेम दोनों के संयोग से सामाजिक भावना की उत्पत्ति होती है। फिर तो विश्वास की नींव पर साधक अपनी साधना का भव्य खड़ा कर देता है।

१ विश्वास तीन प्रकार का होता है। मनसा, वाचा एवं कर्मणा। तीनों के संयोग से साधक ब्रह्म में लीन हो जाता है। वह ब्रह्ममय हो जाता है। उसकी समस्त भावनाएँ केद्रीभूत हो जाती हैं। इस तरह ब्रह्म के प्रति मन में दत्ता, चित्त में एकाग्रता और भक्ति में बल प्राप्त होता है।

निगुण काव्यधारा के कवियों के विश्वास दो प्रकार के हैं। प्रथम व्यक्तिगत विश्वास तथा द्वितीय सामाजिक विश्वास। वनस्पति को ब्रह्म पर सदा आश्रित रहना चाहिये, यही व्यक्तिगत विश्वास है। सामाजिक विश्वास तो समाज साधन है। इसे हम तीन रूपों में (दार्शनिक सामाजिक एवं साधनात्मक) स्वीकार करते हैं।^२

दार्शनिक सिद्धांत

निगुण काव्यधारा के कवियों के सिद्धान्त का आधार है, व्यक्तिगत साधना। इनकी साधना

१ वही, पृ० ६१।

२ डा० सावित्री शुक्ल तथा डा० बडय्याल का भी यही विचार है।

डा० सावित्री शुक्ल सतकाव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० १६५।

डा० पीताम्बर दत्त बडय्याल हिन्दी काव्य में निगुण सम्प्रदाय, पृ० १५०।

का मूल-स्रोत हृदय है। इस वा-यधारा के कवियों का मगवत्प्रेम शुष्क सिद्धांत नहीं है, अपितु स्थायी प्रवृत्ति है। सिद्धांत अनुराग मापेद्य होता है। अनुराग की अनुमति ही सच्चे सिद्धान्त की कसौटी है। निगुण पथ में व्यक्तिगत साधना की महत्ता का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः इस साधना के अनुसार निगुण काव्य के निम्नलिखित सिद्धान्त हैं^१—

१—अद्वैत ब्रह्म

२—सद्गुरु

३—आत्मा

४—सत्संग

५—नाम महिमा

अद्वैत ब्रह्म

निगुणकाव्य धारा के प्रवक्ता और प्रणेता सत् कवि ही हुए हैं। उनके ब्रह्म निगुण निर्विकार निराकार और अद्वैत हैं। भारते-दु युग में भी इस निराकार निर्विकार ब्रह्म का स्थान ऊँचा है। कविवर श्रीधर पाठक ने तो उसे अलक्ष, अनादि, अजेय और अगम्य आदि कहकर उसकी उपासना की है। उनका ब्रह्म अनुपम ही नहीं बल्कि अखिल भुवन का भरतार है। कबीर के राजा राम तो केवल उसके ही भरतार हैं।^२ कवि सत्तकाव्य परम्परा से एक पग आगे ही है। यथा—

अलक्ष, अनादि, अमध्य, अनन्त, अचिन्त्य मते,
अमित, अभेद, अमान, अजेय, अगम्य-मते।
अनिश्य, अनश्य, अनान, अनूपम, ईश हरे
अनघ अमोघ, अजोग अमोग अनिष्ट भरे
अमर, अवेप, अभेद्य, अदेख्य, अक्षय्य खरे।
अमिल, अमेल, अमोल अतोल अनन्द भरे
अजर, अपर, अज आद्य अनाश्रय आश्रय है।
अखिल भुवन भरतार अमाम दयामय है ॥^३

वह ब्रह्म निराकार निगुण और ससार का आधार है—

परब्रह्म निगुण निराकार तू

स्वयम्भूत ससार आधार तू ॥^४

परमात्मा की समुण भावना, भावात्मक है और निगुण अभावात्मक। भक्त के निमित्त उसका विग्रह होता है। वह केवल अखिल भुवन का कर्ता अजेला है। अपनी उपासना के निमित्त चाहे हम

१ डा० ब्रह्मपूजन ने निगुण संप्रदाय के दस सिद्धांतों की चर्चा की है (एकेश्वर पूर्ण ब्रह्म परात्पर परमात्मा आत्मा और जडपदार्थ, अस्वाति सम्बन्ध जीवात्मा और जड-जगत, सहजज्ञान उपनिषद्—मूल स्रोत, निरजन अवतारवाद) वही, पृ० १५० २२५।

२ कुलहिन गावड़ मंगल चार। हम घरि आये हो राजा राम भरतार।

डा० श्यामसुन्दर दास (सपा०) कबीर ब्रथावली, भा० प्र० समा, काशी पृ० ८७।

३ श्रीधर पाठक मनोविनोद, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९१७, पृ० ३४।

४ वही, पृ० २।

उसे त्रिम नाम से पुकारे फिर भी वह उससे परे रहेगा। सम्बन्ध भेद के कारण ही वह केवल एक से अनेक हो जाता है। वह यत्र तत्र सबत्र वास करता है। पृथ्वी के कण-कण में अलख निरजन होता है—

माया बीच में जाकर बैठ देखत सबल तमासा है,
देखो वह है अजब खिसाही समझे म नहीं आता है।
पंच बयारि सगे मन ढाले तिहूँ लोक भरमाता है,
जह जह मनुआ खेल करत है तह तह खेल खिलता है।
चित्त माया दोऊ नाच नचावत कुल परिवार बनाता है,
अस रहत चहुँ ओर स मन को ता बिच आप न आता है।
है यह सदा सबन ते भ्यारा छाया कर दरसाता है।
मन फिर करके देखहु मगल आपँ आप ससाता है ॥^१

भारतेन्दु जी प्रसिद्ध बल्लभानुयायी हैं। बल्लभ ही उनके परमात्मा हैं। फिर भी भगवान के परात्पर में उनका विश्वास है—

परब्रह्म परमेश्वर परमात्मा परात्पर।
पर पुरष पद पूज्य पतित पावन पद्मावर ॥
परमानन्द प्रसन्न बन्धु प्रभु पद्मविलोचन
पद्मनाभ पुण्डरीकाक्ष प्रनतारति-भोचन ॥^२

प्रतापनारायण मिश्र अपने बहू के बारे में समस्त मत-भेदान्तरों और मस्जिद गिरजा आदि को भूला समझते हैं, उनका साहब कबीर की भक्ति ही है। वह घट के भीतर बठा है। बिना प्रेम के पोथी के उसका मर्म नहीं जाना जा सकता। कवि की इस उक्ति में एवेश्वरबाण की ही आभा का उज्ज्वल रस प्राप्त होता है—

मनुआ बाहे इत उत धावै।
मतवालेन की चाल सीखि के नाहरु बुद्धि गवावै ॥
मसजिद मन्दिर औ गिरजै भ दोरत पाव धावै ॥
घट के भीतर साहब बठा तेहिने लो न लगवै ॥
अपने हाथन अपनी महिमा लिखि लिखि दुनिया गावै।
बिना पढ़े एक प्रेम की पाथी बबहुँ भ्रम न जावै ॥^३

जीवात्मा और परमात्मा

त्रिगुण काव्य परम्परा में जीवात्मा और परमात्मा का वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया गया है। परमात्मा को पिता और साहब छाना स सम्बोधित किया जाता है। भारतेन्दु जी ने भी इस तरह का विवाह सम्बन्ध स्थापित किया है—

१ अजरलगास (संपादन), भारतेन्दु प्रभावली, दूसरा सप्प, नागरीप्रचारिणी सभा, (अपवगदाष्टक) पृ० ७३६।

२ मिश्रबधु मिश्रबधु विनोद, भाग ४ (बनवारीलाल मिश्र), गंगा पुस्तकमाला, लगनऊ पृ० १०४।

३ नारायण प्रसाद अरोड़ा (संपा०) प्रताप सहरी, कानपुर, १९४६, पृ० १४५।

द्वारहि पै लुटि जयगी बाग औ आतिसबाजी छिन भ जरंगी ।
ह्व हैं विदा टका लै हय-हाथिनहु छाया पकाय बरात फिरंगी ।
दान दै मातु पिता धुटि है 'हरीचंद' सखीहु न साथ करंगी ।
गाय बजाय जुदा सब ह्व हैं अकेली पिया के तू पाते परंगी ॥^१

यहा आत्मा और परमात्मा का विवाह सम्बन्ध कराया गया है । विवाह हो जाने पर सब विदा हो जाते हैं । माता पिता सभी का संग छूट जाता है । केवल दुल्हन और दुल्हे अकेले रह जाते हैं । यहाँ आत्मा पिया परमात्मा के साथ अकेली हो जाती है ।

आत्मा और परमात्मा का वियोग भी बड़ा ही कष्टदायक होता है । आत्मा परमात्मा को एक क्षण भी छोड़ना नहीं चाहती । भगवान् रूपकला ने एक पद में आत्मा से परमात्मा के वियोग का बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है । यहा पिय कबीर के पिय की याद दिला देता है—

सुधि न लीन्हि पिय बिरहिनि हिय की ।
सखि ! मोहि कत दिन तरगत बोले, सुधि न लीन्हि पिय बिरहिनि की ।
बाह धुमा मुख हिय बिरहगो, ठाडि जरौ जैसी बाती दिय की ।
अधिक दाह चित्त चातक कोकिल बिरह अनल जिमि आहुति धिय की ॥^२

सद्गुरु

गुरु ब्रह्मा गुरु ब्रह्म गुरु देवी महेश्वर ।
गुरु साक्षात् पर ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥
शिव कुल गौरव श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने इन शब्दों में गुरु की महत्ता दर्शायी है
बदज गुरु पद पदुम पराग । गुरुधि सुवास सरस अनुराग ॥
श्री गुरु पद नख मनि गन जोती । सुमिरत नित्य दृष्टि हिय होती ॥
गुरु पद रज मृदु मजुल अंजन । नयन अमिय दुष दोष विमजन ॥

श्री० तुलसीदास बाल काण्ड

भारतीय संस्कृति में गुरु की महिमा की विपद् व्याख्या हुई है । गुरु का स्थान भारतीय समाज में बहुत ही महत्वपूर्ण है । गुरु भारतीय समाज का पथप्रदर्शक है । गुरु ही माता, पिता, ईश्वर है । अतः भारतीय समाज सेवा, मन, वचन एवं कर्म से करते हैं । उसकी कृपा से क्या नहीं सुलभ है—

गुरुपिता गुरुमाता गुरुदेवा न सशय ।
कर्मणा मनसा वाचा तस्मात्सर्वं प्रसेव्यते ॥
गुरुसादत सध लभ्यते शुभ मात्मन ।
तस्मात्सेव्यो गुरुर्नित्यमप्या न शुभ भवेत् ॥

हिन्दी साहित्य के इतिहास का आलोचन विलोचन करने पर पता चलता है कि आदि काल से लेकर नाथ-सम्प्रदाय तक गुरु-महिमा का वर्णन कम मिलता है लेकिन भक्तियुगीन साहित्य तो गुरु गाथा से परिपूर्ण है । राहुल साठ्वत्यायन ने लिखा है कि मिड और जैन ग्रन्थों में गुरु महिमा का सूत्र

१ प्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, भा० प्र० सभा, पृ० ५४५ ।

२ शिवपूजन सहाय (सपा०) हिन्दी साहित्य और बिहार, पटना, २०२०, पृ० ६२ ।

गान हुआ है।^१ पग पग पर गुरु की आवश्यकता की ओर ध्यान दिया गया और उसके पथ प्रदर्शन पर प्रकाश डाला गया। भारते-दु युग ने भी सद्गुरु की महत्ता स्वीकार की है। गुरु ही सच्चे ज्ञान का उपासक होता है। उससे प्राप्त ज्ञान से सभी सशय दूर भाग जाते हैं। इसी से बालमुकुन्द गुप्त उसके हुकुम के निमित्त खड़े हैं—

गुरु जी सच्चा ज्ञान सुनाया।
ज्ञान सुनाया मन को भाया सशय भागे दूर।
जो कुछ कहिय सो ही करे हम हाजिर खड़े हुजूर ॥
कहौ सो हुकुम बजावें^२।

भारतीय समाज स्वार्थ से पूर्ण है। सभी लोग मतसब के समी हैं। केवल गुरु ही सच्चा है। उसके बिना ससार में कोई है, सभी लोग तो झूठने वाले हैं। अतः गुरुदेव की शरण की ही पुकार कवि करता है। स्वामी मगनदेव को जब पंचमहार जाकर छूटने लगते हैं तब वह गुरु की अंतिम समय में पुकारते हैं—

सतगुरु बिना कोई न हमारा।
हित नाता सब कुल-परिवारा, मतसब के साथी ससारा।
यहि तन त्यागि जतन बियो कोटिहु साउ धोखा दिया बीच बजारा।
पाँच जना मिलि नूट मचायो अवधी बार गुरु करहु सहारा।
स्वामी जगु अरज सुनि लहु मोरा भजन देख को सरन पुकारा ॥^३

वल्लभ सम्प्रदाय में गुरु भक्ति एवं गुरु महिमा की भूरि भूरि प्रशंसा की गई है। भारते-दु जी की रचनाएँ गुरु भक्ति एवं गुरु महिमा पर अधिष्ठित हैं। उन्होंने गुरु की महिमा में अध्यानुकरण नहीं किया है। सूरदास तो केवल अपने गुरु के चरणों का दृष्ट मरोसा ही रखते हैं।^४ लेकिन भारते-दु जी तो अपने को गुरु कुल की ही दास मानते हैं। कबीर यदि गुरु को गोत्रिण से बना बताते हैं तो भारते-दु जी अपने गुरु को भगवान् का अवतार मानते हैं। उनके गुरु अपनी अज्ञात सीलाओं को प्रकट करने के लिये कलि में कृष्ण न वल्लभाचार्य का रूप धारण किया है।^५

गुरु का महिमा से हम मवसागर से छुटकारा मिल जाता है। पापों का नाश हो जाता है, गुरु ससार के पाप को दूर करने वाला तथा वह पतित समाज तारा है—

१ राहुल सांकृत्यायन (संपादक) हिन्दी-वाङ्मयधारा, पृष्ठ ३०५

२ बालमुकुन्द गुप्त स्फुट कविता, भारत मिश्र प्रेस, बलबत्ता, द्वितीय संस्करण, सं० १९७६, पृ० १४७।

३ आचार्य शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, बिहार राष्ट्रमाथा, पटना, पृ० १४१।

४ मरोसो दृष्ट इन चरण कैरी।

नन्दलाल बाजपेयी (संपादक) सूरसागर, दूसरा खण्ड नागरीप्रचारिणी सभा, काशी पृ० ३१४२।

५ वज्ररत्ननाथ (संपादक) भारते-दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, (प्रेम मालिका), पृ० ५४।

जयति जयति तैलम मुल रत्नदीप द्विजराज ।

श्रीवत्सलम जग अघ हरन तारन पतित समाज ।^१

सद्गुरु की महिमा अपरम्पार है । उसके बिना तीर्थ, व्रत, जप तथा नाना प्रकार के देवताओं की उपासना व्यर्थ है । भक्त कवि श्रीगुरुसहाय लाल ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

पूज्या जो नाना देवता औ व्रत तीर्थ भी किया । ।

सतगुरु सरन पाया नहीं रच पच मुआ तो किया हुआ ।^२

ठाकुर जगमोहन सिंह गुरु की माया और उसकी कृपा के कायल हैं । वे उसे छोड़ कर और के शरण की इच्छा नहीं करते—

तुअ किरपा सो गुरु मोहि जासी ।

अजहुन शई सुमिरत भासी ॥

सब कुछ बौसों सुनिहु साइ ।

तपबल मोही दुख न जनाई ॥

असुर मारयो करि करि चूरो ।

अग्नि जरायो करि करि भूरो ॥

तबहुन भोको सवि तिन मारी ।

तुम बाबन माया गुरु अति मारी ॥^३

आगे आप गुरु से उम ब्रह्म परम व्रत का बरदान मागते हैं—

तुम मम प्रभाव गुरु देहु बरदान यह ।

सहस बरस अनुभाव ब्रह्म परम व्रत करि रहूँ ॥^४

गुरु के प्रति निगुण एवं सगुण भक्त कवियों की भावना एक ही है, दोनों ईश्वर के सन्निकट पहुँचने में गुरु की सहायता का वरण करते हैं । लेकिन सच्चा गुरु भी ईश्वर की कृपा से ही मिलता है ।

आत्मा

भारतीय द्शन आत्मा को अजर और अमर मानता है । आत्मा का विनाश नहीं होता, विनाश शरीर का होता है । ब्रह्म तो नास्वरूप नित्य सत्य और अविनाशी है शरीर अनित्य और असत्य है । कठोपनिषद् उस अजन्मा, शाश्वत और पुरातन मानता है—

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नाय कृतश्चिन्त बभूव चश्चित् ।

अजो नित्य शाश्वतो य पुराणो न ह्ययते ह्ययमाने शरीरे ।^५

आत्मा चेतन है, निष्क शक्ति है । उसके पीछे-पीछे ममता धूसा करती है । बच्चूराम ने भी कहा—

१ ब्रजवल्लभास (सपा०) भारते दु प्रयावली, दूसरा खण्ड, (भक्तसर्वस्व) पृ० ५ ।

२ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पटना, पृ० ६१ ।

३ ठाकुर जगमोहन सिंह देवयानी, भारत जीवन प्रेस, बनारस, पृ० ३१-३२ ।

४ वही, पृ० २० ।

५ कठोपनिषद् १।२।१८,

श्रीमद्भगवद्गीता २। २०

भूलि रह्यो भ्रम के वश में मति नीच कुबुद्धि पक्षड भरी है ।
 ज्ञान विवेक को लेश नहीं पर पानी गुरु से घमड करी है ॥
 देह औ गेह सत्ता परिवार न भाया सहाय बखड धरी है ।
 आत्म चेतन कैस राखे भमता जेहि पीछे प्रचड धरी है ॥^१

स्वामी निरञ्जनन्त तीर्थ आत्मा का ही परमात्मा मानते हैं । उनके परमात्मा का निवाम आत्मा में है । आत्मा में ही परमात्मा है ।

आत्मा में परमात्मा लखहु सुमिरि आवार ।

ज्योति स्वरूप हिय ध्यान करि उत्तर जाय सब पार ॥^२

भारत-दुषुगीन भक्त कवियों ने आत्मा पर सूत्ररूप से दृष्टिपात नहीं किया है । आत्मा का वगन एक दम नहीं हुआ है ।

सत्सग

निर्गुण काव्यधारा में सत्सग का महत्वपूर्ण स्थान है । हमारे प्राचीन सत्-महात्माजी और धनीपियों का विश्वास है कि सत्सग से जीवन का अण भर में ही सुधार हो सकता है । सत्सक रंग के पावन जल से भी थोड़ा है । गंगा तो बाह्य मन्द्या को ही दूर करती है । सत्सग से अन्तरंग निर्मल हो जाता है । पाप प्रवृत्ति का ही निशान नहीं हूना बल्कि सज्जना की सति से पाप के स्वरूप का नाश हो जाता है । सत गुलाब राव जी ने लिखा है कि उनकी अमृत बाणी का रसस्वाद करें—

हे जग माहि बडो सत्सग ।

जैसे सज्जन पाप मिटावत तैमि न टारत गंगा ।

गंगा बाहर पाप मिटावत नहि शोवन अतरंगा ।

पाप अरु पाप प्रवृत्ति को हरत साधु जन चंगा ॥^३

भागवतनारायण सिंह जी सत्सग हो की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

राम सुवर्ण सुठि गाइये सतन सो कर प्रीति ।

छल बल सबको छाडिये यहि सज्जन की रोति ॥^४

सत्सग भी भगवान् की कृपा का ही प्रसाद है ।^५ इन्हीं से हरिचरणास ने इन्हीं दुर्लभ बताया —

अय, धम्म अरु वाम सुख पापिहु के घर होय ।

सत-समागम ताप धन, दुर्लभ नर को दोय ॥^६

१ बच्चूराम, रसिक मित्र (मासिक पत्र), पृ० ४ ।

२ सतवाणी अंक (कल्याण विशेषांक) पृ०, ५७४

३ प्रयाग दत्त शुक्ल हिन्दी साहित्य को विन्म की देन (सत गुलाब राव महाराज), विदर्भ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागपुर, प्रथम सत्र २०१७, पृ० ७१ ।

४ शिवपूजा सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पटना, पृ० १४३ ।

५ विष्णु सत्सग त्रिवेक हार्द । रामरक्षा विष्णु सुख न होई ॥

—गोस्वामी तुलसादास रामचरितमानस बालकाण्ड, १।३६

६ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पटना, पृ० १७८ ।

इस तरह भारतेन्दुश्रीन कविया ने सत्सग को अच्छा माना है। सत्सग से अच्छी बुद्धि की प्राप्ति होती है। असल में सत्सग ही सब कुछ है। अर्थ, धर्म, काम आदि तो पापियों के घर होते हैं।

नाम की महत्ता

निगुण मत में नाम की विशद् विवेचना हुई। क्योंकि साधना के क्षेत्र में नाम जप का अपना एक विशिष्ट स्थान है। श्रीमद्भागवत में यह स्पष्ट स्वीकार किया गया है कि—

सकौर्यमानो भगवाननन्त
श्रुतानुभावोव्यसनं हि पुताम् ।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेष
यथा तमो बोमिवातिघातः ।^१

अर्थात् जिस प्रकार सूर्य, तम तथा प्रचण्ड वायु, बादलों को छिन्न भिन्न कर देते हैं, उसी प्रकार नाम-कीर्तन समस्त पापों को विध्वंस कर देता है। कलिकाल में तो नाम के अलावे और कोई अय उपाय है ही नहीं।^२ भारतेन्दुश्रीन कविया ने भी नाम जप की महत्ता को स्वीकार किया है। उनका कहना है कि चतुराई से राम का मिलना सम्भव नहीं। राम तो सत्यनाम के जाप में प्राप्त होता है। समस्त कार्यों का सम्पादन उसी के द्वारा होता है। यथा—

चतुराई बूढ़े पड़े बाहि न मिलि हैं राम ।
सत्यनाम रटता रहे सब सरिहैं सब काम ॥^३

नाम-जप के बारे में निगुण पथ के प्रवर्तक कबीरदास जी से होड़ लेती हुई कवि हरिचरणदास की उत्क्रिया बड़ी ही ममस्पर्शी हैं। उस तो नाम जप इस प्रकार करना है कि बाहर के लोग ओठ का फटाना भी देख न सकें। उसका सुमिरन तो मीन और जल के समान एक पल भी वियोग को स्वीकार नहीं करता। कवि के शब्दों में—

सुमिरन के सुधि यो करा जैसे जन अरु मीन ।
एक पलक बिछुरे नहीं राति दिवस ली-लीन ॥
गुप्त जाप सुमिरन करे बाहर लखे न कोय ।
आठ न फरकत देखिये, अन्दर राखी गोप ॥
× × ×
मन माता जो नर जपै नि अक्षर निजनाम ।
साहब सो परिचय करे सब पाये वह ठाम ॥^४

गुप्तहाथ सात रामनाम की धुनि के आगे समस्त वाद्ययन्त्रों द्वारा प्रसारित सुरीली आवाज़ को तुच्छ समझते हैं, उनका कहना है कि—

१ श्रीमद्भागवत, १२।१२।४७

२ हरेनमि हरेनमि केवलम्, कलौ नास्त्येव नास्त्येव गतिरयथा ।
नारदपुराण, १।४।१।१५

३ शिवपूजन सहाय द्विती साहित्य और बिहार, भाग २ (कवि हरि चरणदास), बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, पृ० १७८ ।

४ शिवपूजन सहाय द्विती साहित्य और बिहार, भाग २, पटना, पृ० ६१ ।

अनहद में सुरती जा लगी आनन्द में जीता पगी ।
निज राम की धुन की गम नहीं बाजा धजा तो क्या हुआ ॥^१

इस तरह भारतेन्दु युग के कवियों ने भा नाम सकोर्तन का गुणगान किया है। भारतेन्दुजी ने भा नाम-जप की महत्ता स्वीकार की है, लेकिन उनके नाम-जप में बलनाम सम्प्रदाय है, सगुण साम्प्रदायिक सुगम है, अतः उसे हम निगुण परम्परा में नहीं ले सकते हैं।

अशांशी सम्बन्ध

भक्तों के अनुसार जीवात्मा का निवास परमात्मा में है। परमात्मा अज्ञा है और जीवात्मा अज्ञ। इस तरह मूलरूप में दोनों एक हैं। जीव ब्रह्म से मिलकर ब्रह्ममय हो जाता है जिस प्रकार सरिता सागर में मिलकर अपना अंश को खा देती है, उसी प्रकार जीव का ब्रह्ममय हो जाना सम्भव है। प्रेमधन भी न लिखा है—

सरिता सागर मिलि गई सागर भेद मिटाय ।
सधा जीव यह ब्रह्म सो मिलत ब्रह्म बनि जाय ॥
घटकास घट फूटत ही महाकास मिली जात ।
जीव ब्रह्ममय होत था माया सो बिलगात ॥
मनमंदिर में लखि अलख सोई जीति जनाति ।
जाकी आमा अस लहि यह सब सृष्टि विभाति ॥^२

सामाजिक सिद्धान्त

निगुण काव्यधारा के कवियों ने समाज को समुन्नतबाल बनाने के लिये काफी उपदेश दिये हैं। उनका विश्वास है कि क्षमा, दया, त्याग, विश्वव्युत्पन्न करनी जैसी आदि से समाज का समग्र विकास होगा। निर्गुनिये कवि बहुलाश में निम्न श्रेणी के थे, अतः उनके अंतस्तर में विद्रोह का स्वर गूज रहा था। प्रगट रूप से उनके सिद्धान्तों से समाज में विद्रोह की आग प्रज्वलित होती, लेकिन सार रूप में उनके ग्रहण से समाज का विकास ही सम्भव है।

भारतेन्दु युगीन काव्य में निगुण परम्परा के सामाजिक सिद्धान्तों का विवेचन बहुत ही कम है। काव्य में सत्कालीन समाज का चित्रण बहुलाश में होता है। परिणामस्वरूप भारतेन्दु युग के समस्त कवियों ने सगुण परम्परा का ही विचार प्रस्तुत किया है। निगुण की धारा सुप्त नहीं थी, यही अल है। यहाँ पर हम उसका सन्निहित रूप प्रस्तुत करेंगे।

क्षमा और दया

क्षमा गुणा का सरताज है। उसके बिना ससार में निर्वाह होना असम्भव है। भारतेन्दु जी न लिखा है—

मात पिता गुरु स्वामी राजा जो न छमा उर लावे ।
तो सिसु सेवक प्रजा न कोऊ बिधि जग में निबह न पावे ॥^३

१ प्रभाकेश्वर (संपादक) प्रेमधन सबस्व, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ३३३ ।
२ प्रभाकेश्वर (संपादक) प्रेमधन सबस्व, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ३३३ ।
३ ब्रजरत्नवास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थाली, दूसरा खण्ड, (प्रेमप्रलाप), नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० २७४ ।

ससार की निस्तारता

मानव समाज दुःख से पीड़ित है । दुःख सतस ससार की सेवा करना मानव का धर्म है । सेवा और विनम्रता में निकटता का सम्बन्ध है । विनम्र मानव भ ही सेवा की भावना जागृत होती है । सामाजिक गुणों में सेवा का महत्वपूर्ण स्थान है । समाज में सुख शान्ति स्थापित करने के लिये सेवा भावना की नितात आवश्यकता है । अतः प्रेम से सभी की सेवा करनी चाहिये, क्योंकि ससार क्षणा भंगुर है । सभी निगुणियों ने ससार की निस्तारता की ओर लक्ष्य किया है ।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने ससार की असारता की ओर बार-बार दृष्टिपात किया है । स्वयं भारतेन्दु जी, जिनका समग्र जीवन विलासपूर्ण रहा, समता है कि उन्हें अपने लघु जीवन के अन्तिम दिनों में इस ससार से वैराग्य हो गया । स्वार्थियों ने उन्हें खूब लूटा । वे ऋणग्रस्त हो गये । जेल जाते जाते बचे । ऐसी परिस्थिति में उनमें विराग की भावना का आ जाना अति आवश्यक था । अतः उन्होंने ससार की निस्तारता की ओर लक्ष्य किया । उनका कहना है कि 'ससार में बलाचली का व्यापार है । प्रतिमण यहाँ से बलाचली का बाजार गर्भ है । यथा—

हथ चले, हापी चले, रप चले, प्यादे चले,
ठट चले, रेस चली, तार छाप के चली ।
सूर चले, चन्द चलो, तारा चले, दिन चलो,
रैन चली, दिन चले, पल-पल में टली ।
बाप चलो, बेटा चलो, नारी चली, मीत चले
'हरीचंद' चली देव-दानव की मडली ।
प्रति जुग, प्रति वष, प्रति मास, प्रतिदिन,
प्रति धरी प्रति तिन लागी है चलाचली ॥^१

उक्त पद में कवि ने ससार की चलाचली का चित्र सरलतम शब्दों में अंकित किया है । चलना शब्द यहाँ कवि ने बार-बार 'प्रयोग किया है लेकिन वह कणवदु नहीं प्रतीत होता है । प्रस्तुत सवैया में भाव तो निगुण परम्परा का है, लेकिन माया का प्रयाग कवि ने सता का भाव नहीं किया है । क्योंकि सता के भाव व्यक्त करने का साधन एकमात्र दोहा पद्यति था । इस हम केवल सत सुन्दरदास की शैली में मान सकते हैं ।

कवि अपने एक पद में यह भी कहता है कि ससार की असारता के बारे में सभी लोग जानते हैं कि एक दिन मरता है । फिर भी वे अमृत, विष का खाते हैं । यह बड़ी ही आश्चर्यजनक बात है ।

अहो यह अति अचरज की बात ।

जानि वृद्धि के विष के फल को क्यों मूल्यो जग सात ॥

भारतेन्दु जी ने अन्यत्र भी कहा है—

अतिहि अभी अति हीन निज अपराधी लखि दीन ।

अपि शमा के जीने नहि तऊ दवा अति कीन ॥

वही (उत्तरराई भक्तमल) पृ० २२४ ।

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु प्रयागवासी, दूसरा खण्ड (प्रेम प्रताप), नागरोप्रचारिणी समाज, काशी, पृ० २३० ।

सब जानत मरनो है जग मे झूठे सुतपितु भात ।

‘हरीचंद’ तो फिर क्यों नित नित याही मे लपटात ॥^१

श्रीधर पाठक ने लिखा है कि ससार में आने वाले सभी लोग जाते हैं। वे जैसे आते हैं वैसे ही चले हैं। मूल में मनुष्य कभी भी सृष्टि के सार को समझ नहीं पाया—

समझ के सारे जग को मिट्टी मिट्टी जो कि रमाता है ।

मिट्टी धरके सबसे अपना मिट्टी में मिल जाता है ।

कभी-कभी ऐसा मूर्ख नर सार सृष्टि का पाता है,

जैसा ही आया था जग में वैसा ही वह जाता है ॥^२

उक्त पद में भाव निर्गुण का है, लेकिन भाषा खड़ी बोली है। भारतेन्दु जी भाषा के उत्कृष्ट कलाकार थे। उनकी भाषा भावों से तरंगित होती थी ससार को असारता के बारे में पशु-पक्षी, पत्तों और हमारी हसीं ह्लाईं आदि से भी शब्द नि सृज होते हैं। मौत ही सब है और सब झूठा है—

साम सबेरे पढ़ी सब क्या कहते हैं कुछ तेरा है ।

हम सब एक दिन उड़ जायेंगे यह दिन चार बसरा है ॥

× × ×

पत्ते सब हिल हिल कर पानी हर हर धरके बहता है ।

हर के सिवा कौन तू है वे यह परदे में बहता है ॥

× × ×

रोकर गाकर हँसकर लड़कर जो मुह से कह चलता है ।

मौत-मौत फिर मौत सच्च है ये ही शब्द निक्सा है ॥^३

चेतावनी

मन बड़ा चंचल होता है। उसका स्वरूप सत्त्व विकृतपात्मक है। वह बराबर किसी न किसी सचेष्ट वृत्त में लगा रहता है। कभी भी थप नहीं रहता। अतः भारतेन्दुयुगीन कवियों ने मन को बाधने का बार-बार सचेष्ट ठीक उसी प्रकार किया है जिस प्रकार मध्ययुगीन कवियों ने किया है—

आठ बेर नौबत बज-बज कर तुम्हको याद दिलाती है ।

जाग जाग तू देख घड़ी यह कैसी खोली जाती है ॥

× × ×

आँधी चलकर इधर उधर से तुम्हको यह समझाती है ।

चेत चेत जिंदगी हवा सी उड़ी तुम्हारी जाती है ॥

× × ×

दिया सामने खड़ा तुम्हारी करनी पर सिर धुनता है ।

एक दिन मेरी तरह “बुभुधे” बहता तू नहीं सुनता है ॥

× × ×

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, पृ० १४१ ।

२ श्रीधर पाठक जगत सचार्द सार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वितीय संस्करण, १९१६, पृ० २ ।

३ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, पृ० १४१ ।

तेरी आँख के आगे से यह नदी बही जो जाती है ।

यो ही जीवन बह जायेगा यह तुझको समझाती है ॥

×

×

×

खिल खिलकर सब फूल बाग में कुम्हला-कुम्हला जाते हैं ।

तेरी भी गति यही है, गाफिल यह तुझको दिखाते हैं ॥

×

×

×

इतने पर भी देख औ सुनकर क्या गाफिल हो फूला है ।

‘हरीचंद’ हरि सच्चा साहब उसको बिलकुल भूला है ॥^१

यहाँ कवि ससार की निम्नारता की ओर संकेत कर चेतावनी देता है और यह बताता है कि दिया, नहीं और फूल सभी से हम चेतावनी का स्वर सुनने को मिलता है । इस पर भी गाफिल फूल की तरह रहता है, वह सच्चे साहब से नेह नहीं लगाता । कवि का यहाँ सच्चा साहब निर्गुण परम्परा से ही संबध रखता है । मारकण्डेय लाल के अनुसार यह घाम, ग्राम, आराम और हाथी घोड़ा की बात कौन बड़े यह सोने जसी बेह भी मिट्टी बन जायेगी । अतः तू चेत जा और राम नाम का सुमिरन कर । यदि तू बहना नहीं मानता है तो अपनी आँखों से देख ले—

छूटि जहँ घाम ग्राम अपर आराम सारी

बैन यह हमारी उर-अंतर में छारि लै ।

रहि जहँ हुयाई हाथी घोड़े औ खजाना सबै,

एको नहि जहँ सग भले तू बिचारि लै ।

मानुष मरीर पाप राम साँ लगाय नेह,

‘चिरजीव’ माहि बिधि जीवन सुधारि लै ।

सोना ऐसी देह यह भारी होय जहँ,

प्यारे बहो जो न मानै तो तू नैनन निहारि लै^२ ॥

भारतेन्दु बाबू ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में निर्गुण काव्य परम्परा में नवीन-नवीन प्रसूनों को उगा दिया है ।^३ ‘डवा कूच का मजा मुसाफिर’^४ ‘हरिमाया भटियारी’^५ ‘मृषु नगाडा बजि रहा’,^६ ‘क्यों वे क्या करने आया’,^७ ‘तुझ पर काल अचाकन टूटंगा’,^८ ‘यारो इक दिन मौत

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड (प्रेमप्रलाप), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० १४१ ।

२ शिवपूजन सहाय (संपादक) हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० २७६ ।

३ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, विनय प्रेम-पचासा, छ० ४३, प० ५५१ ।

४ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, विनय प्रेम-पचासा, छ० ४२, प० ५५१ ।

५ वही, विनय प्रेम-पचासा, छ० ४४, प० ५५२ ।

६ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, विनय प्रेम-पचासा, छ० ४६, पृ० ५५३ ५४ ।

७ वही, विनय प्रेम पचासा, छ० ४०, पृ० ५५१ ।

जहर'¹ और 'चेत चेत रे सोवन वाले'² आदि पदों में कवि की चेतावनी का स्वर ही झुलद है।

अन्त में वर जब कहते कहते बक जाता है, ससार के लोग नहीं सुनते हैं तो वह ठीक कबीर की भांति ही खुलेआम बाजार में खड़ा हो कर लाठी लेकर हमको तुमको सबको धुर, अघा, मगरूर और गन्हा तक कह जाता है। उसे तनिक भी परवाह नहीं है कि ससार के लोग इन विशेषणों से मर्महित होंगे या नहीं, स्वीकार करेंगे या नहीं कवि के शब्दा में ही देखिए—

अपने को तू समझ जरा क्या भीतर है, क्या भूला है ।
 तैरा जसली रूप क्या है तू जिसके ऊपर फटा है ॥
 हड्डी चमड़ी लहू मांस चरबी से देह बनाई है ।
 भीतर देखो ता पिन आवै ऊपर बिजनाई है ॥
 लार पीप मन मूत पित्त कफ नकटी खू और पोटा है ।
 नीलो पीला नस कीडो में भरा पेट का लोटा है ॥
 सनिक बही खुल जाय तो धू धू कर सब नाक सिकोड़गो ।
 जरा गलै या पचै भरै ता देख समी मुंह मोड़गा ॥
 भरी पेट में मल की गठरी ऊपर हाइ सुघरता है ।
 तिसको धू कर वायु चलै तो नाक बंद सब करता है ॥
 मल से उपजा मल में लिपटा मति मचीन तू धूरा है ।
 इस शरीर पर इतना फूला रे अबे मगरूरा है ॥
 जिसके छुत्ते ही तू गदा मिलने ही से सजता है ।
 'हरीचंद' उस परमात्म को, गढ़े क्या नहीं भजता है ॥³

प्रेम

सच्चे प्रेम से ही प्रिय की प्राप्ति हो सकती है। यदि प्रेम नहीं है तो प्रिय भी नहीं है। निगुण सात कविया ने प्रेम के बारे में बहुत कुछ लिखा है। सूफिया के प्रभाव से यह प्रेम तत्त्व आया। भारतेन्दु युग में यह प्रेममत्त्व अपने रूप में मौजूद है। कबीर पंथी हरिवरण दास ने लिखा है कि जहाँ प्रेम नहीं है उसे मसान ही समझना चाहिये—

जो घट प्रेम न सवरे नही नाम का ध्यान ।
 साधु सेवा नाहि घर जीवत जानु मसान⁴ ॥

और भी

रटत रटत रसना थके प्यासे कण्ठ सुवाय ।
 प्रेम न छाड़े पपिहरा नित नव बडे सवाय⁵ ।

पतिव्रता धर्म एवं नारी निन्दा

समाज की अव्यवस्था से सन्त कवि अधिक प्रभावित थे। कनक कमानी का मोह जाल समाज

१ वही, विनय प्रेम-पचासा, छ० ४६, पृ० ५१२ ५३

१ बजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु स्यावली, दुमरा खण्ड, विनय प्रेम-पचासा, छ० ४८, पृ० ५१३

२ वही, छ० ५०, पृ० ५१४ ।

१ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और विहार, भाग २, पृ० १७८ ।

२ वही, पृ० १७८ ।

को विलासी बना रहा था । ऐसी स्थिति में सन्तो ने एक तरफ नारी की निन्दा की और दूसरी तरफ पतिव्रता धर्म का उपदेश दिया । पतिव्रता नारी की प्रशंसा तो कामनी के परम निन्दक कबीरदास जी ने भी की है^१ । भारतेंदु युग में बालमुकुन्द गुप्त पतिव्रत धर्म को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि नारी के लिए मन बचन और कम तें पतिव्रत धर्म ही एक मान धर्म, नेम, व्रत है । यथा—

एक हि धर्म एक व्रत नेमा, काय बचन मन पतिपद प्रेमा ।

यै पति सो जो मन बह भावे, रोम रोम भीतर रम जावे ॥^२

ठाकुर जगमोहन सिंह ने नारी की निन्दा करते हुए लिखा है कि नारी नरक की सोपान है, इसमें शक नहीं है । इनसे जीते जी तकलीफ तो होती है, मरने के बाद भी दुःख का ठिकाना नहीं रहता । एक ही पद में कवि शम्भु और हरि को भृगनयनी का दास बनाकर नारी स्तुति का स्तुत्य प्रयास भी करता है, । यथा कवि के शब्दों में—

पड़ि यह स्वप्न विचारि लीजिए कितन दुःख की खानी ।

नारी अहे जगत् पुरुषन का कहिए कथा बखानी ॥

शम्भु स्वयम्भू हरिहू जाके बल प्रभाव रख हेरे ।

ते इन भृगनैनिन के घर के दास अह चरे ॥

यै घामे काटु शक नहि रचक नारि नरक सोपाना ।

जियत देय दुख दारन देनिन मरे न कछु ठिकाना ॥^३

यासो बार बार कर जारे कहहुँ देखि सब रगा ।

विपपूतरि सम बाहि तरविए तजि बाको पर सगा ॥^४

भारतेंदु जी पतिव्रत धर्म के अलावे ससार में और धर्म को स्वीकार ही नहीं करते । नारा के लिये ससार में दूसरा धर्म नहीं है । अनुसूया, सीता, सावित्री के चरित्र से इसी बात की सिद्धि होती है और वेद, पुराण भी इसे स्वीकार करते हैं—

जग में पतिव्रत सम नहीं आन ।

नारि हेतु कोठ धर्म न दूजो जग में यामु समान ॥

अनुसूया सीता सावित्री इसके चरित प्रमान ।

पति देवता तीय जग धन धन गावत वेद पुरान ।

धन्य देस कुल जह निवसत हैं नारी सती भुगान ।

धन्य समय जब जन्म लेत ये धन्य व्याह असधान ।

सब समर्थ पति वरता नारी इन सम और न आन ।

याही ते स्वयहूँ धन इनको करत सबै भुनगान ॥^५

काम, क्रोध, लोभ

पंच महाविकार (काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह) सामाजिक जीवन के लिये अभिशाप है ।

१ पतिवरता मैली मली वाली बुचिल बुरूप ।

पतिवरता के रूप पर, वारों कोटि स्वरूप ॥ कबीर प्रभावली, पृ० २० ।

२ यशोदानन्द अलौरी (सपात्क) बालमुकुन्द गुप्त, स्फुट कविता, पृ० १२३ ।

३ डा० जगमोहन सिंह व्यामाम्बन्ध सपात्क डा० श्रीकृष्णलाल, भूमिका, पृ० २७ ।

४ रामनरेश त्रिपाठी कविता कौमुदी २, दिल्ली रत्नमाला कार्यालय, प्रयाग, पृ० २८ ।

इनसे व्यष्टि और सम्प्रष्टि दोनों का विनाश होता है। इनसे सामाजिक हतप्रभ हो जाता है। सत्तो को भाँति भारतेन्दु युग के कवियों ने भी इससे दूर रहने का उपदेश दिया है। इनकी जितनी निन्दा प्राचीन युग में हुई है, उतनी कमी भी नहीं। रीतिकाल के रगमल पर तो पचत्रिकार पूरा जवानी पर थे। फिर भी भारतेन्दु ने उनकी निन्दा की है। भारतेन्दु ने कहा है कि यह मानव भूल कर भव भोगन में रमता फिरता है। इसी मुख इसे जहाँ-जहाँ मिलता है भ्रमण करता है। यथा—

भूलि भव भोगन भूमत फिरया ।

खर कूबर सूकर लो इत उत डालत रमत फिरयाँ ।

जह जह छूट लहौ इद्री-मुख तह तह भ्रमत फिरयाँ ॥

बबहुँ न दुष्ट मनहि करि निज बस कामहि दमत फिरयाँ ।

‘हरोचद’ हरि पद पकज गहि बबहुँ न नमत फिरयाँ ॥^१

योग

भारतीय दर्शन और धर्म का योग प्रमुख अंग है। महर्षि पतञ्जलि ने योग के आठ अंग बतलाए हैं—यम नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। योग साधना की शली में और सत्य में तर्क और विज्ञान की गुंजायश नहीं है। दार्शनिक और अर्थ विचारको ने मोक्ष प्राप्ति हेतु योग साधना को सर्वश्रेष्ठ ठहराया है। मोक्ष प्राप्ति के निमित्त भारतीय साधको ने जिन तीन साधनों (योग, भक्ति, ज्ञान) का उल्लेख किया है उनमें योग प्रथम है और भारतीय धर्मसाधना में प्राचीनतम साधन है। इसके अवलम्बन से साधक ससार सागर के त्रिविध तापा (दैहिक, दैविक, भौतिक) से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त होता है। कबीरदास ने योग की साधना को स्पष्ट स्वीकार किया है। भारतेन्दु जी ने कबीर के योग के संयोग से साधना का स्पष्ट संकेत किया है—

कुम्भ बुच परस, हृग-मीन को दरस तजि

तुच्छ सुख मिथुन को हिय बिचारे ।

छैन मकर छाडि सब तानि बैराग धनु,

सिंह ह्वै जगत के जाल जारे ॥

कण्ठवृषमानु-क्या सहित मजन करि,

कलि कुवृश्चिक समुझि दूर टारे ।

छाडि अन आस विस्वास हिय अतुल धरि,

करम की रेख पर मेल मारे ॥^२

निर्गुण सम्प्रदाय में कबीर की खेचरी मुद्रा का महत्वपूर्ण स्थान है। इस मुद्रा में योगी जीम को उलट कर कपाल मुहर में प्रविष्ट करता है और उसकी धृष्टि युवा में निबद्ध हो जाती है। गुरु-सहायता के एक पद में इसी का प्रयास परिलक्षित होता है। पद प्रस्तुत है—

तत्त्वो को देखा स्वास में स्वर ले गये ब्रह्माण्ड में ।

नि तत्त्व पद पाया नहीं स्वरोदय रुचा तो क्या हुआ ॥

१—ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रेम प्रताप, पृ० २५४ ।

२ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खण्ड नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, स्फुट कविताएँ, पृ० ८२७ ।

कोई नासिका हिय तिकुंटी ब्रह्माण्ड हू जा जा धुसे ।
 कुछ भी भयम अनबूम ना अनुभव हुआ तो क्या हुआ ॥
 अनहद मे सुरती जा लगी आनन्द मं जोती पगी ।
 निज राम की धुन को गम नहीं बाजा बजा तो क्या हुआ ॥^१

उक्त पद पर कबीर^२ परम्परा का स्पष्ट प्रभाव है । यहाँ यह अनहद और सुरती कबीर का का ही तो है ।

भक्तिपथ

भारतीय दार्शनिक जगत् में भक्ति पथ का महत्वपूर्ण स्थान है । यह मार्ग ब्रह्म से अनुराग एवं सादात्म्य स्थापित करने का सर्वोत्तम साधन है । भक्तिपथ ब्रह्मापघना का सर्वमुलम साधन है । ईश्वर के प्रति सच्चा अनुराग ही भक्तिपथ है । भारतेन्दु जी ने भक्ति के बारे में अपने तीन पदों में सूक्ष्म-
 तम विचारों का संकेत किया है । उनके अनुसार सब मार्गों के बीच भक्तिमार्ग विलक्षण है—

सफल मारगन सो भक्ति मारण बीच
 अति विलक्षण सु अनुभवहि मानै ।
 पयक कहि मारण को मार्ग उपदेस करि
 कण के हृदय की बात जानै ॥^३

भक्तिपथ की स्थापना हेतु कवि आगे कहता है—

एक साकार परब्रह्म स्थापन-करन
 चारहू वेद के पारगामी ।^४
 हरन भाषावाद बहुवाद नास करि
 भक्ति-पथ-कमल को दिवस स्वाभी ।^५
 × × ×
 भक्ति आचार उपदेस नित करत मुनि
 कर्म मारण प्रवर्त्तन सु कीनो ।
 सदा योगानि मे भक्ति मारण एक
 करहु साधनहि उपदेश दीनो ॥^६

मन और विकार

अन्य सभी भक्ता की भाँति ही 'भारतेन्दुकालीन कवियों' का मन के प्रति दृष्टिकोण है । मन अत्यन्त चंचल है । इसकी चंचलता से मजन भाव में बाधा उपस्थित होती है । इसी से वे चाहते हैं कि कल्याण प्रेम में जाकर यह स्थिर हो जाय—

१, शिवपूजन सहाय हिन्नी साहित्य और बिहार, भाग २, पटना, पृ० ६१ ।

२ पदम आसन करै, पवन परिचै करै । गगन के महल पै मदन जारै ॥

कहत कबीर कोई सत जन जोहरी । करम की रेख पर मेख मारै ॥

म्यामसुन्दर दास (सपा०) कबीर प्रभावती, ना० प्र० सभा, काशी, पृ० ७० ।

३ अजरतदास (सपा०) भारतेन्दु प्रभावती, दूसरा खंड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, श्रीसर्वोत्तम-स्तोत्र (भाषा), ख० १७, पृ० ७१६ ।

४ वही, पृ० ७१४ ।

५ ब्रजलाल (सपा०) भारतेन्दु प्रभावती, दूसरा खण्ड, पृ० ७१६ ।

- १ यह भन पारद हूँ सो चञ्चल ।
 २ एक पलक में ज्ञान विचारत दूजे में तिय-अंचल ॥
 ३ ठहरत कतहुँ न डोलत इत उत रहत सग बौरानो ।
 ज्ञान प्यास की आन न मानत याको सपट मानो ॥
 तासा या कह^१ कृष्ण बिरह-तप जो कोउ ताप तपावे ।
 'हरीचन्द' सो जीति याहि हरि भजन रसायन पावे ॥^१

शरीर के बारे मे उनका यह विश्वास है कि यह मल-मूत्रादि का पात्र है, वह समस्त अवगुणों की खान है, उसकी सहज गति निम्नगामिनी^१ है। मनुष्य के मन की समस्त कुटिल भावनाएँ (राम, क्रोध, ईर्ष्या, मोह, लोभ आदि) अपनी अपनी सुट्टि और पूर्ति चाहती है। इस प्रकार मनुष्य का उद्धार कहीं सम्भव है। भारते-दु जी ने उपनिषद् का सहारा लेकर कहा है—

अथ आसरे चलयौ अथ के
 ११ कहो कहाँ सौ आय १२

सत कविया की भाँति यदि एक तरफ वह अवगुणों पर विचार करता है, तो दूसरी तरफ उनके उद्धार के बारे मे भी सोचता है। यहाँ वह उद्धार का एक ही उपाय बतलाता है और वह है भगवान की कृपा—

नर तन कहो सुदसा कैसी ।
 जितनहुँ धाजो पीछो बाहर भीतर सब दिन पैसी ॥
 कारन जाको मूत रही मल ही में लिपटि अनैसी ॥
 हाको जल सो सुद करत तिनको ऐसी की वैसी ।
 दैहिन करमन सो न बने कछु ता गति सहजमले सी ।
 हरीचन्द^१ हरि-नाम भजन बिगु सब वैसी की वैसी ॥^१

सगुण काव्यधारा

नवधा भक्ति

भक्ति के प्रधान दो भेद हैं—एक साधन रूपा जिसको वैध और नवधा भक्ति नाम से पुकारा जाता है, और दूसरा साध्य रूपा जिसे प्रेम-संश्लेष के नाम से पुकारते हैं। इनमे सेवा साधन रूप है और प्रेम साध्य है। सगुण-काव्यधारा मे इन दोनों प्रकार की भक्तिया की महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। यही हम सर्वप्रथम भारते-दुयुगेन नवधा भक्ति की चर्चा प्रस्तुत करते हैं।

भगवान् विष्णु के नाम, रूप, गुण और प्रभावार्ति का श्रवणकीर्तन और स्मरण तथा भगवान् की चरण सेवा, पूजा और वदन एव भगवान् मे दास्यभाव, सत्ताभाव और अपने को समर्पण कर

- १ वही, कृष्णचरित छ० ४३, प० ६१८ ।
 २ वही, दीपप्रलाप, छ० ३, पृ० ६१०
 ३ श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पान्सेवनम् ।
 अर्चन वदन दास्य सख्यमात्मनिवेदनम् ॥
 श्रीमद्भागवत, ७।१।२३ ।

देना, यह नौ प्रकार की भक्ति है ।^१ इन सबके मूल में सेवा भावना निहित है । इनमें किसी एक का भी सच्चे हृदय से अनुष्ठान करने पर मनुष्य परम पद को प्राप्त हो जाता है ।

। भारतेन्दुगुणन भक्ति की भूमिका में श्रृंगारभक्ति का पावन खोन सहारा रहा था । उहाँ नवधा भक्ति श्रृंगार सबलित हृदय की ह्वास थी । फिर भी भारतेन्दु युग में नवधा भक्ति का बीज प्रस्फुटित हुआ, पल्लवित और पुष्पित हुआ । नवधामभक्ति नवीन सुगन्ध से समस्त भारतेन्दु मण्डल सुरभित है । भले ही नवधा के नय मयन पर नवीन विचारों की प्रेयणीयता की सम्भावना न हो ।

श्रवणभक्ति

श्रवण भक्ति उमे ही प्राप्त होती है जिसके हृदय में श्रद्धा और प्रेम का वास हो । श्रवण भक्ति को प्राप्त करने के लिये महापुराणों की समस्त आवश्यक है । श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् ने अजुन से कहा है कि हे अर्जुन तत्त्व को जानने वाले ज्ञानी पुरुषों से भले प्रकार दण्डवत प्रमाण तथा सेवा और निष्कपट ज्ञानी भाव से ब्रिये हुए प्रश्न द्वारा उस ज्ञान को जान, वे भर्म को जानने वाले ज्ञानी जान तुझे उस ज्ञान का उपदेश करेंगे । अतः श्रवण भक्ति बिना सत्सग के नहीं प्राप्त हो सकती ।^२

भारतेन्दु युग के कवि ज्ञानसुख मिश्र ने श्रवण भक्ति का उदाहरण प्रपित किया है । आप भारतेन्दु युग में रामकाव्य धारा के प्रमुख कवि हैं । कवि के अनुसार सीता, अशोक वाटिका में भगवान् को सुधि में छोड़ छोड़ सी पयी है । वह विगत जीवन की सुधि से वतमान जीवन के दिन काट रही है । अब उन्हें भगवान् के मिलने की आशा नहीं है । इसी बीच विजय का पहरा उल्टा है । हनुमान प्रवेश करते हैं । हनुमान द्वारा अगूठी का गिरा देना । सीता को रामनाम मिल जाता है । फिर क्या हनुमान से सारी कहानी का श्रवण करती है । यथा—

सीता की सोच मारी, रोने लगी बेचारी ।

भूले मुझे खरारी, सुधि वा लिया हमारी ॥

अब प्राण ही को छोवे, मितने की आस धोवें ।

भर नौद नाथ सोवें, हम बाट कबला जोवें ॥

विजय ने देख पाई सपना तुरत सुनाई ।

पहरा तुरत उठाई बैठी किनार जाई ॥

हनुमान ने विचारा, कैसे कहूँ सहारा ।

परतीत हूँ हमारा, क्यों मुद्रिका किनारा ॥

अगूठी तुरन्त द्वारा मानो गिरा अगारा ।

सीता करे विचारा, टूटा सरग से तारा ॥

मन में विचार आई, अगूठी तुरत उठाई ।

तहें राम राम नाम पाई, कैस यहाँ प आई ॥

१ तद्विबुद्धिं प्रणिपातेन परिप्रसूयै न सवया ।

उपदेस्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः

—श्रीमद्भगवद्गीता, अ० ३४

२ बिनु सत्सग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग ।

मोह गए बिनु । राम पद होइ न दूढ़ अनुराग ॥

—गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दो० ६१, पृ० ६२६ ।

वनवास की गहानी, हनुमान ने बषानी ।

यह बात मैंने जानी, तू ही है रामरानी ॥^१

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के अनुसार कृष्ण नाम मनि दीप है जो ह्रिय रूपी घर में प्रकाश फैलाता है । यह घर ऐसा है, जहाँ बहुत दीप बारले पर भी उजाला नहीं होता है । कृष्ण नाम का श्रवण ही श्रेयस्कर है । इसके श्रवण से ह्रिय घर में प्रकाश की किरणें विकीर्ण हो जाती हैं—

कृष्ण नाम मनि दीप जो ह्रिय घर में प्रकाश ।

दीप बहुत बारे कहा ह्रिय-तम भयो न नाश ॥^२

कीर्तन

भगवान् के नाम, रूप गुण, प्रभाव चरित्र और रहस्य आदि का श्रद्धा और प्रेमपूर्वक उच्चारण करते करते शरीर में रोमांच, कण्ठावरोध, हृदय की प्रफुल्लता अधुपात आदि का होना कीर्तन भक्ति का लक्षण है ।

कीर्तन भक्ति भी महानुभावा की कृपा से ही प्राप्त हो सकती है । भक्ता द्वारा भगवान् के प्रेम, प्रभाव श्रुति और रहस्य की बातों को सुनने या शास्त्रों के पन्ने से भगवान् में श्रद्धा होती है, और तब मनुष्य कीर्तन भक्ति को पाता है । इस प्रकार भगवान् के प्रति अनन्य प्रेमभाव की उत्पत्ति होती है । गीता में भी यही भाव व्यक्त किया गया है कि यदि कोई पुराचारी भी अनन्यभाव से मेरे को निरन्तर भजता है तो वह साधु ही है । वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और उसे वासति की प्राप्ति होती है ।^३

भारतेन्दु जी ने कीर्तन भक्ति का वर्णन किया है । उनकी ब्रज-वनिता कृष्ण के प्रेम में पागल हो गई है, उसे भगवान् के कीर्तन में अपने तन की सुधि भी नहीं रह गई है । आँचल खुला है, सट सटकाए हैं । अंग में घूँस गयी है । कभी यहाँ और कभी वहाँ, कभी वह रोती है, कभी गाती है और कभी हँसती है । अतः उसके हृदय में कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम भाव की जागृति हो गई है । यथा—

आँचर खोले सट छिटकाए तन की सुधि नहि स्थावति ही ।

घूर घूसरित अंग सब कछु गुद-जन की नहि पावति ही ।

‘हरिचंद’ इत सा उत व्याकुल बबड़ें हँसत बड़ें गावति ही ।

कहा भयो है पागल ती क्यों काहू काहू गोहरावति ही ॥^४

कीर्तन भक्ति में भक्त भगवान् के लिये पागल हो जाता है । वह उसके लिये इतना बेचैन हो जाता है कि समाज के लोग उसे पागल छोड़ कर और कुछ कहना मजूर ही नहीं करते । तमयता की उत्कण्ठता इतनी और जगह नहीं मिलती ।

१ शिवपूजन सहाय (सपा०) हिंदी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ६३ ।

२ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु प्रभावती, दूसरा खण्ड, नागरीप्रचारिणी समा, काशी, वातिव स्नान, दो० १८, पृ० ७८ ।

३ अपि चैत्सुपुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।

साधुरेव स मतव्यः सम्यक्प्रवसितो हि स ॥

निर्भ्रं भवति धर्मात्मा शश्वन्ध्रान्तिं नियच्छति ।

वैन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तं प्रणश्यति ॥

—श्रीमद्भगवद्गीता ६।३० ३१ ।

४ ब्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु प्रभावती, दूसरा खंड पृ० ६७१ ।

‘चन्द्रावली नाटिका’ में चन्द्रावली कृष्ण भगवान् के चिन्तन में आत्मविमोह है। उसे अपने शरीर की सुष-नुष नहीं। शरीर में रोमांच हो उठा। वह कृष्ण ही कृष्ण रट रही है। अचानक आँखों में आँसू का प्रवाह उमड़ पड़ता है। वह नयनों को साधु पाकर उनकी भर्त्सना करता है। प्रस्तुत पद में प्रेमा-धिय है, लेकिन भक्त के त्रिमा-नसापा से कीनत पदति की भक्ति ही परिलक्षित होती है। वह नयना से पूछती है कि बताओ किससे पूछ कर तुम श्रीकृष्ण से दोड़कर मिली थी। जिसने तुम्हें इस तरह की सलाह दी थी। क्षण में ही लोहलाज छोड़ दी। अब धैर्यधारण करो। रोने घबने से क्या होता है। अपनी करनी का फल भोगो। यथा—

पाइकें आगे मिली पहिले तुम,
कौन सो पूछि कै, सो मोहि भासी ।
रयो सब साज तजी छिन मे
बेहिके एसी बियो अमितासी ॥
बाज बिगारि सवै अपनो,
‘हरीचन्द’ जू घोरज क्यों नहि रासी
क्यों अब रोइकें प्रान तगो,
अपुने किए को पल क्यों नहि बाली ॥^१

स्मरण

भगवान् के नाम, गुण, प्रभाव, लीला तत्त्व और उनकी रहस्यमयी कथाओं का ध्वन तथा पठन और मनन करना ही स्मरण भक्ति है। जयदयाल गोयदका ने लिखा है^२ कि जहाँ तक हो सके एकान्त एवं पवित्र स्थान में सुखपूर्वक स्थिर सरल आसन पर बैठकर इन्द्रिया को विषयो से रहित करके कामना और सकल्प को त्याग कर प्रशान्त और वैराग्य युक्त चित्त पर अपना चलाते फिरते, उठते बैठते, खाते पीते, सोते सभी काम करते हुए भी स्वार्मात्र बुद्धि और सरल भाव से समुण निगुण, साकार निराकार के तत्त्व को जानकर गुण और प्रभाव सहित भगवान् के स्वरूप का चिन्तन करना भगवान् का नाम का मन से स्मरण करना भगवान् की लीलाओं का स्मरण करके मुग्ध होना, भगवान् के तत्त्व और रहस्य को जानने के लिये उनके गुण, प्रभाव का चिन्तन करना तथा विषय स्तोत्र और पदों से मन के द्वारा स्तुति और प्रार्थना करना, इस तरह स्मरण के बहुत से प्रकार शास्त्रों में बतलाए गये हैं।

भारतेन्दु तथा उनकी गोष्ठी के भक्त कवियों ने स्मरण भक्ति का उत्प्रेष किया है। कविवर रामबिहारी सहाय ने अपने एक पद में ‘नीको’ कहकर सुमिरन की महत्वपूर्ण प्रशंसा की है। यथा—

सतन् सो भाव नीको, दाव नीको दुजन सा,
बधु सो बनाव नीको भाव नीको राम को ।
गीता को जान नीको, खवन पुरान नीको ॥
दीनन को दान नीको, गाठन को दाम को ।

१ व्यपित हृदय (संपादक) चन्द्रावली नाटिका, स्टुडेन्ट्स फ्रण्ड्स, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण,

१९५७, पृ० २४।

२ जयदयाल गोयदका नवधा भक्ति, गीताप्रेस, गोरखपुर, २०२०, पृ० १६-२०।

सेवा पितु-मातु नीको सायक सो मत नीको

कहत 'बिहारी' बात, नीको परिनाम को ।

भगा-जल पानी नीको गुरुजन को मान नीको

सुमिरन सदा ही नीको, राधा के नाम को ॥^१

यहाँ नीको शब्द दस बार आया है । लेकिन क्या भगवत की भावा में किसी प्रकार की गडबडी हो, या मान सकोच की स्थापना हो । राधा नाम का सुमिरन ठीक उसी प्रकार अच्छा है जिस प्रकार माता पिता की सेवा, गुरुजनों का मान वह भगा जल के समान पावन पवित्र है ।

स्मरण से मानक भवसिंधु को पार कर जाता है । राधा और राधारमण के चरण कमल जुग पोत हैं । इनके सुमिरन से समार सागर को तुरंत ही पार किया जाता है । यथा—

राधा राधा रमन के चरण कमल जुग पोत ।

सुमिरत ही भव सिंधु से पार तुरंत ही होत ॥^२

कविवर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी कृष्ण के अनन्य भक्त हैं । उन्हें गोपाल के बिना एक क्षण रहना भी मुश्किल है । उनके गोपाल देवी-देवता, माता पिता, सखा और मित्र सभी हैं । अतः वे यदि रीझते हैं तो गोपाल से ही और क्रोध भी करते हैं तो गोपाल से । गोपाल के सिवा अन्ध कोई उनके अतस्तल में निवास नहीं करता । कवि कहता है—

भजौ तो गुपाल ही को सेवै तो गुपालै एव,

मेरो मन लाग्यो सब भाँति गोपाल सो ।

मेरे देव देवी गुरु माता पिता बधु इष्ट,

मित्र सखा हरि नाता एक गोपाल सो ।

'हरीचंद' और 'सो न मेरो सम्बध कछु,

आसरो सदैव एक लावन बिसाल सो ।

मार्गों ता गुपाल सो न मार्गों तो गुपाल ही सो,

रीझौ तो गुपाल पै औ खीझ तो गुपाल सौं ॥^३

यहाँ कवि को गुपाल का ही भरोसा है । उसके नेत्रों के आगे ही रह उसी से माँगना भी चाहता है और नहीं भी माँगना चाहता है । कवि को लगता है कि यदि गोपाल कुछ नहीं भी देगा तो कोई शिकायत नहीं । किसी पापिब शरीर के सामने हाथ तो नहीं फैलाया । वह बड़े गर्व से गोपाल का आसरा लिये बैठा है ।

पादसेवन

पादसेवन का मतलब भूति उपासना है । ऊपर वर्णित भक्ति (ध्वज, कीर्तन, स्मृ २) ॥^४ महिमा के अंतर्गत है । यह भक्ति भगवान् के चरण कमलों का सेवा से संबंधित है । प्रभु की दिव्य भूति की स्थापना कर या मानस भूति मनोहर के चरण कमलों में एकाग्र चित्त हो जाना ही पाद सेवन भक्ति है । भगवान् के चरण कमलों की सेवा से आत्मा पवित्र हो जाती है, क्या नहीं हा ? इन्हीं के चरण

१ शिवपूजन सहाय (संपादक) हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २ पटना, पृ० ६६ ।

२ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (संपादक) कविवचन सुधा, २६ नवम्बर, १८८३ ई०, (मासिक), पृ० २ ।

३ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ५४४ ।

भारते दुकालीन भक्तिकाव्य धारायें और उनकी विशेषताएँ

प्रक्षालन जल से निकली गंगा के पावन जल को पा भगवान् शकर भी शिवत्व को प्राप्त हुये। भक्तिकाल में पाद-सेवन की महत्ता बहुत ही अधिक थी। रामायण में तो सीता^१ आदर्श ही हैं, अगद और हनुमान^२ भी कम नहीं हैं। निपाद राज^३ तो अपने चातुय से समस्त रामायणकालीन जगत् को पवित्र कर देता है।

भारते दु जी भगवान् के चरण चिह्नो का वर्णन कर नवधा भक्ति की एक अलग धारा हो बहा देते हैं। अब तक भगवान् के पदाम्बुजों की सेवा ही भक्त को अलग थी। यहाँ भारते दु जी उनके चरण चिह्नो का घणन कर अपनी वाणी का पवित्र करते हैं।^४ उनका कहना है कि भगवान् के चरणों के स्पर्श से मनुष्य इन्द्रतुल्य हो जाता है, क्योंकि उनके पद कमला में बज्र का चिह्न है—

चरण परस नित जे करत इन्द्रतुल्य ते होत ।

बज्र चिह्न हरिपद-कमल येहि हित करत उदोत ॥^५

भगवान् के चरणों में जो एकाग्रचित्त हो जाता है, वह परम अमय पद प्राप्त कर लेता है—

परम अमय पद पाइहो याकी सरनन आइ ।

^६ भनहुँ चरण यह कहत है शल बजाइ सुनाइ ॥^७

कवि अपने मन को वृथा बहवने पर चेतावनी देता है और कहता है कि तू क्या जगत् जाल^८ में पँसता जाता है। तू वेदान्त-वन में वृथा ही भटकता फिरता है। एकमात्र उपाय है, राधा-माधव चरण भजु और कुछ नहीं।

बिनु^९ हरि-पद राधा भजन नाहिन और उपाय ।

क्या मन तू भटकत वृथा जगत जाल कैसे थाप ॥^{१०}

मयि कै वेद पुरान बहु यहै सहो इक सार ।

राधा माधव चरण भजु तजु जप जोग हजार ॥^{११}

भ्रमि मत तू वेदान्त-वन वृथा अरे मन मोर ।

बलु कलिंदजा-बुज-तट लखु धनश्याम किशोर ॥^{१२}

१ छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी । रहिहुँ मृन्ति दिगस जिमि कोकी ॥

—रामचरितमानस, अयोध्याकांड, २।६६।८, पृ० २७१

२ बडभागी अगद हनुमाना । चरण कमल चपित बिधि नाना ॥

—भोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस, लकाकाण्ड, ६।१०।८, पृ० ५१२

३ पद पक्षारि जनु पाव करि आपु सहित परिवार ।

पितर पाव करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेई पार ॥

—वही, अयोध्याकाण्ड, २।१०।१ ।

४ ब्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, (भक्तमवस्व) पृ० ३ ।

५ वही, पृ० ११ ।

६ वही, पृ० ७ ।

७ वही, (कार्तिक स्नान), पृ० ७७ ।

८ वही, पृ० ७७ ।

९ वही, पृ० ७७ ।

ठाकुर जगमोहन सिंह भारतेन्दु मण्डल के प्रमुख कवियां से हैं। उन्होंने एक पद में अपने गुमया के पत्र पर गिरकर अपनी परखीति के बारे में यहाँ तक कह डाला है कि 'सब छोड़ि तुम्है हम पायो अहो, तुम छोड़ि हमें कहो पायो कहाँ।' कवि की बिनती पैरो पर गिर कर भक्ति जगन् में अपना अत्यंत स्थान रखती है। कवि के शब्दों में—

परि पैया मुतैया सरीस करी बिनती बहु जोर के हाथ गहा ।

तुमहूँ पहले बहु बात दर्द 'नहिं छोड़हिगी हम कहूँ कहा ॥

जगमाहन ॥ तिमि ध्याय तुम्है परतीति करी पतिया बिनहा ।

सब छोड़ि तुम्है हम पाया अहो तुम छोड़ि हमें कहो पायो कहाँ ॥^१

कवि पत्नी में जो मग्न निवेदन करता है वह भाव की दृष्टि से बड़ा ही सुंदर बन पड़ा है। उसकी दीनता और भगवान् की चतुराई का अच्छा मुकाबला हो गया है। भक्त और भगवान् दोनों से काम ही पड़ा है।

अर्चन

अर्चन भक्ति का भी सम्बन्ध मूर्ति उपासना से है। भगवान् की मूर्ति या मानस मूर्ति अर्थात् किसी भी प्रकार के हृदय का रुचिकर लगने वाले भगवान् के स्वरूप को यथायोग्य नानाविध उपचारा से श्रद्धा भक्तिपूर्वक उनका सेवन-पूजन करना अर्चना भक्ति प्रभु की प्रतिमा की पूजा घूप-दीप नैवेद्य आदि से करता है। धी के दिये जलाता है, उन्हें प्रसाद चढ़ाता है। भगवान् उसे स्वीकार करते हैं।

गीता में कहा गया है कि परम श्रद्धा और प्रेम के साथ भगवान् की पूजा की जाय तो वे स्वयं अपने लिये मंगल विग्रह-स्वरूप में प्रकट होकर भक्त के अर्पण किये हुए पदार्थों को खाते हैं।^२

भारतेन्दु युग में अर्चन भक्ति की ही श्रेष्ठता स्वीकार की गई है। समस्त युग में सम्प्रदाय का मुनहला सचेत था। भारतेन्दु मण्डल के सभी कवि किसी न कि सम्प्रदाय में दीनित थे। अतः अर्चन भक्ति की बहुलता है। भारतेन्दु जी स्वयं ही बल्लभ सम्प्रदाय में दीनित थे। बल्लभ सम्प्रदाय में प्रतिमा पूजन की महत्वपूर्ण व्याख्या हुई है। भारतेन्दु जी की गायिकां साथ समय भगवान् कृष्ण की भारती उतारती हैं—

सौम्य समय आरति करत सब मिलि गोपि ग्वाल ।

कबहुँ अवेले ही मिलत पिय नदलाल दयाल ॥^३

भारती के साथ भगवान् को भोग की भी आवश्यकता है, अतः एक दूसरे पत्र में कवि घूप, दीप से भारती करने के बाद विविध भांति के पटरस व्यंजन की भी व्यवस्था करता है—

हरि को घूप-दीपालि कीजे ।

पटरस बीजन विविध भांति के नित नित भोग धरोजे ॥

१ ठाकुर जगमोहन सिंह श्यामास्वप्न, संपादक डा० श्रीकृष्णलाल, पृ० १६५ ।

२ पत्रं पुष्प फल त्राय यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तद्धं भक्त्युपहृतमस्नामि प्रयतामन ॥

—श्रीमद्भगवद्गीता, ९।२६

३ बजरत्नानाम (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, वाणी, - उत्तरार्ध भक्तमान, छं० १६, पृ० २२४ ॥

दही मलाई घी अरु माखन तातो पै ते दीजै ।

‘हरीचन्द’ राधा-माधव छवि देखि बलैया लीजै ॥^१

भारतेन्दु जी ने कात्तिक स्नान एवं वैशाख माहात्म्य में अपनी भक्ति के दिव्य उदाहरण प्रेषित किये हैं। कवि गंगा स्नान करने के बाद दान देने की बात जो कहता है उससे अचन पद्धति की भक्ति का भाव ही झलकता है। इस तरह भगवान् की उपासना से मानव बैकुण्ठ लोक को प्राप्त होता है। कवि के शब्दों में—

पुन्य भास वैशाख मे हरि सो राखि सनेह ।

मनमायो ताको मिले यामे बधु न सन्देह ॥^२

मधुसूदन पूजन करै तप व्रत सह दै दान ।

पाप अनेकन जनम के दाहै तूत समान ॥

माधव थापै पौसरा करै चढाई दान ।

छत्रञ्जन जूता छरी अरु सूक्ष्म परिधान ॥

चदन जल-घट पुष्प ग्रह चिन् वस्तु अंगूर ।

देवहि दीज प्रीति सो केला फल करपूर ॥

माधव में जो पित्र हित करत अबु घट-दान ।

सक्तु व्यञ्जन मधु फल सहित प्रीति करत भगवान ।

माधव हित जे देत घट या माधव के माहि ।

भोजन के सह बिप्र की ते बैकुण्ठहि जाहि ॥^३

अन्त में कवि उन आलसिया को भी वैशाख के अंतिम तीन दिना तक स्नान का उपदेश देते हुए अचन भक्ति की महत्ता की प्रतिष्ठापना करता है—

होइ सकै नहि मांस भर जौ विधिवत् स्नान ।

कर अत के तीन दिन तो फल होइ समान ॥^४

भारतेन्दु युग में अचन भक्ति की परम्परा का पूर्ण निर्वाह हुआ है। कवि श्रीसीतारामचरण तो ठाकुर जी का भोग लगाया हुआ प्रमाद प्राप्त करने के लिये बचन हो जाते थे। वे पटना में रहते समय बाबा भीष्मदास की ठाकुर बारी (बाकलगब) का ही भोग लगाया हुआ अन्न पाया करते थे।^५

भारतेन्दु जी अक्षय तृतीया के दान के बारे में लिखते हैं—

छाता जूता आदि सब ग्रीष्म सुख की वस्तु ।

द्विजन देइ या तीज को नहि कुष्णापणमस्तु ॥^६

१ वही, स्फुट कविताएँ, छ० ४, प० ८२६ ।

२ वही, वैशाख माहात्म्य, प० ६१ ।

३ बजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, वैशाख माहात्म्य, छ० २० २४, पृ० ६१ ।

४ वही, छ० २५, पृ० ६१ ।

५ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ५६ ।

६ बजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग २, प० ६३ ।

वन्दन

वन्दन भक्ति का सम्बन्ध भी मूर्ति उपासना से है। भगवान की धातु जाति की मूर्ति, चित्र शास्त्रवर्णित स्वरूप या मानसिक मूर्ति को शरीर जगता श्रद्धा से सात्त्विक प्रणाम करना या समस्त चराचर भूतो का भगवान का स्वरूप समझ कर श्रद्धा से प्रणाम करना बन्ना नहीं है। बन्ना भक्ति की महत्ता कविवरुण कलाधर गदाधारी तुलसीदास ने समस्त समार या सीयरामय जगत्तर की है।^१ भारतेन्दुवालीन वज्रिता म वन्दन भक्ति के तत्त्व पर्याप्त मात्रा में है।

प्रतापनारायण चौधुरी प्रेमधन भगवान के मानव रूप की उपासना करते हुए राधा माधव की युगल जोने की मूर्ति को हिय में स्थापित कर सते हैं। इस तरह मानव मूर्ति की धरना करना वन्दन भक्ति है। कवि युगल सरदार की उपासना करते हुए उन्हें सत् अनुकूल होने का प्रायना करता है—

जयति सच्चिदानन्द धन जगपति भगवन् भू।
दयाधारि बरसत रहा सत् होय अनुकूल ॥
जय जय मानव रूप धर सज्जन जगत भरतार।
जयति सुष्ट दलन श्रीकृष्ण तरन भूभार ॥
जय जय जगजीवन करन भक्तन को प्रतिपाद।
जय राधारानी रमन सदा बिहारीमाल ॥
नवल नील नीर रविर रवि मोहत मन मोर।
दामिनि दुति कामिनि सहित केरि दया दुख कार ॥
बसहु सदा धनश्याम हिय सादमिनी सख ॥
जय राधा-माधव मिसी जारी युगल अनूप ॥^२

प्रतापनारायण मिश्र से ठीक तुलसीदास की भांति ही समस्त समार के पुंवर श्रद्धा को ईश्वर की प्रतिवृत्ति मानते हैं। उनका प्रह्लाद ससार में व्याप्त है। अपनी प्रायनापरक भक्तियों में यहाँ मात्र देते निखाई पढ़ते हैं—

सुमीन्य जो पुण्य का सत्त्व है, सुमान्य तो प्रेम का सत्त्व है।

जि निसरा यही सत्त्व आकार है उन ही हमारा नमस्कार है ॥^३

भगवान का प्रणाम करने में कवि साकार और निराकार के पक्ष में नहीं पड़ता। वाक्य 'नमस्कार' तो निराकार का आधार है, और दया का विशाल भंडार उससे उमरा अहंकार मिट जाना ०। जा उन वह नमस्कार करता है। प्रतापनारायण मिश्र की यह श्रद्धा सत्य है—

निराकार है या नि साकार है गुणधार या निगुणधार है।

निराकार का तो नि आधार है, उम ही हमारा नमस्कार है ॥^४

सभी ज्ञान का तो कि आकार है, क्या का बन्ना जो नि भंडार है।

मिटाना सत्त्व जो अहंकार है उमे ही हमारा नमस्कार है ॥^५

१ भीयरामय सब जग जानी। बरुं प्रणाम जोरि जुग धानी ॥

२ रामचरितमानस बांनवण्ड १।१।२ पं० ३६

३ प्रम केशवर उगाधाय (मपाक) प्रेमधन सवस्व (नालित्य लहरी) पृ० ३२६।

४ नारायणप्रसाद अराध (सपादक) प्रताप लहरी १६४६ ई०, पृ० २५६।

५ वही पृ० २५६।

५ वही, पृ० २५६।

भारतेन्दु जी ने बचन के एक पद लिखे हैं। एक पद में तो कवि चार नामों की गिनती कर उह एक शरीर मान बतना करता है। कवि के अनुसार भगवान के नाम अनेक हैं। वह लीला के निमित्त अनेक शरीर धारण करता है और भिन्न नामों से पुकारा जाता है, पर जगत् में वह एक ही है। अतः भिन्न भिन्न नामों वाले निरन्तर शरीर एक ही हैं कवि उनके पदों की वदना करता है—

राधावल्लभ बल्लभ वल्लभ वल्लभ तू है।

चार नाम वपु एक पद बहत सोस नवाई ॥^१

दास्य भक्ति

भगवान के रूप, गुण, तत्त्व, रहस्य और प्रभावों को जानकर थड़ा एवं विश्वासपूर्वक उनकी सेवा करना तथा आज्ञा का पालन करना दास्य भक्ति है। भक्त अपने को भगवान का दास समझ कर उनकी सेवा करता है और उनकी आज्ञा का शिरोधार्य करता है। दास्यभाव की भक्ति से ही भगवान् अनन्य प्रेम की प्राप्ति होती है। गान्धारी तुलसीदास ने लिखा है कि बिना दास्यभाव के भक्तानगर से पार उतरता मुक्ति है।^२

यह भक्ति थड़ा सबलित है। अपने आराध्य के प्रति थड़ा की भावना विशेष होती है। ठाकुर जगन्नाथ सिंह ता सुत, पिता, माता और भ्राता को तज कर भगवान के चरण कमल में बिना माल का धामत्व स्वीकार करते हैं। कवि में स्वाधरता नाम का भी नहीं। वह निस्वार्थ भगवान से नेह गगाता है—

हम नह बियो तनि गेह सब सुत भापु पिता अरु भ्रात जहाँ।

बिनु मोल क दाम भए तबही जब कीन्हा कृतारथ मोहि अह ॥

अब ता उनकी नहि चाह करो जगमोहन-दुख अनेक सहा।

सब छानि तुम्है हम पायो अहो तुम छोडि हमे कह्यो पायो कहा ॥^३

दास्यभाव की पूर्ण उत्कृष्टता ता वहाँ है जहाँ भक्त अपने को छोटा, नीचा, अवम और ईश्वर को बड़ा उच्च और पवित्र समझता है। भक्त का लक्ष्य ही उसका गुस्त्र है। कवि प्रतापनारायण ईश्वर की शरण तन अर्पण जाने को स्वीकार नहीं करते। ईश्वर ही उनका एकमात्र आधार है—

मेरो दूसरा नहि द्वार।

दीनवपु कृपायतन। भ सबहि भाति तुम्हारे ॥

कीन शरणगत सुखद तुम सरिस सब प्रकार।

गहहु जानी आन तुम बिन है दया आधार ॥^४

कवि ने यहाँ तुलना से हान लगा दी है। उसके दास्यभाव में उसका दाय बग प्रवृत्त है।

भारतेन्दु जी अपने को दास ही नहीं बल्कि आसन्नानाम कहते हैं। उनके ज्ञान में दाय की प्रवृत्ति जगत् में है। भारतेन्दु का जीवन ही इसके बिना अपूर्ण है। उनका कहना है—

१ प्रजयन्तांग (मगदर) भारतेन्दु ग्रन्थालय, दूसरा खण्ड, 'नागरी प्रचारिणी सभा', काशी उत्तराखण्ड, भक्तमाल छ० १, पृ० २२३।

२ संवत् सेव्य भाव बिनु भव न तरिख उरगारि।

महज राम पद पकज अम सिद्धांत विचारि ॥

गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस उत्तरकाण्ड दो० ११६ (क) पृ० ६७०।

३ ठाकुर जगमोहन सिंह श्यामा स्वप्न, सपा० थोड्ढणाल, (विनय) पृ० १६४।

४ नारायण प्रसाद अंग्रेज (म०) प्रताप सहरी, पन्नापुर कानपुर, मन् १६४६ ई०, प्रमुद्रा वला, पृ० १५४।

हम तो मोल लिए या घर के ।

दास-दास श्रीवल्लभ कुन के चाकर राधावर के ।

माता श्रीराधिका पिता हरिबन्धु दास गुन-वर के ।

‘हरीचन्द’ तुम्हरे ही बहावत नहि विधि मे नहि हर के ॥^१

या

सखा प्यार कृष्ण के गुलाम राधा रानी के ।^२

मे उनका दासत्व स्पष्ट परिलक्षित होता है ।

कवि की दास्यभावना मे उसके आत्म समर्पण का पक्ष प्रबल है । वह अपने को तुलसी^३ और सूर^४ की भाँति ही पतित पति और पतिवन के सरदार कहता है । वस्तुतः अपने को सबसे बड़ा पापी और तुच्छ समझना भक्ति का पहला सोपान है । भारतेन्दु जी को इस सोपान पर बढ़ने मे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है । कवि अपने को पतितपति की सभा से अभिहित करता है—

हम मे कौन बसर पिय प्यारे ।

अजामेल मैं का अवगुन जे नहि तन माहि हमारे ॥

जानी और पतित के माये सीग रही हूँ भारो ॥

ता बिन हमहि देखि नहि । तारत बुला बिबिन बिहारी ॥

जो पापहि करिबै माँ जग मैं जीव पतित कहवावे ।

तो हमसो बड़ि के कोड नाही को मरी सरि पावै ॥

बधु तो बात होइहै जासो तारत हम कह नाहीं ।

नाही तो ‘हरिचन्द’ पतित-पति हूँ हम किन्तु बचि जाही ॥^५

कवि अपने को ‘पतितन के सरदार’ कहकर वैय प्रकट करता है—

बलिहारी या दरबार की ।

बिधि निषेध मरजाद शास्त्र की गति नहि जहाँ पुकार की ॥

मेमी घरमी शानी जोगी दूर किये जमि नारकी ।

पूछ होत जह ‘हरीचन्द’ से पतितन के सरदार का ॥^६

इसी तरह भारतेन्दु गुप्त के अन्य कवि सत्सारनाथ पाठक,^७

१ ब्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु प्रयागवासी दूसरा खण्ड छ० ३५, पृ० ५६ ।

२ वही, पृ० ५३६ ।

३ गोस्वामी तुलसीदास विनयपत्रिका, पद स० ५२ ।

४ सुरदास सूरसागर, १११४५, ११३८, ११३६, ११४१, ११४४, ११४६ ११४६, ११४७ ११४८

५ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु प्रयागवासी दूसरा खण्ड छ० २७, पृ० ८३६ ।

६ वही, छ० ७८, पृ० ६८ ।

७ मैं हरि पापिन नर सरदार ।

सुरपुर नरपुर नाग तिहँपुर छावि गई असवार ।

आवत छोके नीक बातनि सुनि अवगुन केर अमार ।

छापा तिलक माल गर डारयो विषय बिहगम जार ।

सुन्यो अजामिस ब्राह्मण पापो सो सुई वह फार ।

राधाकृष्णदास^१ सुमेर सिंह साहव जादे, प्रेमधन, आदि ने भी अपनी दैयभावना के भाव पुष्प से युगचेतना को पुष्पित किया है।

सत्य भक्ति

श्रीमद्भागवत में लिखा है कि 'उन नन्द गोप के ब्रज में वास करने वाले लोगों का भाग्य धन्य है, जिनका मित्र परमानन्द परिपूर्ण सनातन ब्रह्म है—

अहो भाग्यमहो भाग्य नन्दगोप व्रजोरुसाम् ।

यमित्र परमानन्द पूष ब्रह्म सनातनम् ॥^२

भगवान् के रूप, गुण, प्रभाव और महिमा को समझकर उनमें विश्वास पूजक मित्रभाव से उनकी स्तुति करना, उनकी रचि के अनुसार कृतव्य करना तथा उनमें जन्य प्रेम करना, सत्य भक्ति है।

भारतेन्दु जी अपने को 'सखा प्यारे कृष्ण के' कहकर सत्य भक्ति का परिचय देते हैं। आपने बाललीला सम्बन्धी पद्यों में सत्यभक्ति का उत्कृष्ट एवं पूर्णरूपेण अभिनव उदाहरण प्रेषित किया है। उनके कृष्ण गोप सखाओं के साथ गोचारण के निमित्त वन-वन घूमते हैं। वहाँ मध्याह्न में सबके घर से भोजन जाता है। सभी एक साथ मिलजुल कर खाते हैं। भोजन की आलोचना करते हैं। कृष्ण का सखाओं के साथ बठकर खाना तथा उनके भोजन की आलोचना बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह आलोचना ऐसी नहीं है, जिससे कृष्ण का कृष्णत्व जाहिर होता हो, बल्कि इससे कृष्ण का सखामावश्यक होता है।

सुदामा तेरी फीकी छाक ।

मेरी छाक रोहिनी पठई मोठी और सु-पाक ॥

बलदाऊ को कोरी रोटी भोके धी की दोनी ।

सो सुनि सुबल तोक उठि बठे मेरी बहुत सलोनी ॥

जैसी तेरी मैया मोटी तैसी मोटी रोटी ।

मेरी छाक मली रे मैया जाने रोटी छोटी ॥

बोलत राम पतीका से से बैठो भोजन कीजे ।

बन्धो बचायो अपनी जूठन 'हरीचंद' को दीजे ॥^३

नन्न निगोह भीड़ि मुख भागे सुनतहि माक हमार ।

हमसे तुमसे दाव पड़ी हैं को जीतो को हार ।

दास रमायन को जीतहुये सो जानो खेलवार ॥

शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पटना, पृ० १०२ ।

नित उठि दास कहै सिय प्यारी हृदय पछान पसीजै ।

इतनी अरज 'दास' की सुनिये निज जन क्या करीजै ॥

१ सादिली ऐसी भाँति माहि दीजै ।

चरन छोड़ि नहि जाऊँ अनत बहूँ सरन आपनी दीजै ।

डा० श्याममुन्दरदास (सपादक) राधाकृष्ण ग्रथावली, इण्डियन प्रेस, प्रयाग १९३० ई० पृ० ६५ ।

२ श्रीमद्भागवत, १०।१।३२

३ प्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, स्फुट कविताएँ स० ५, पृ० २२६ ।

घन में बालसडला मँघाहू में भोजन पर जुटी है। सभा गंगाट जीकण ने कहा सुनमा तेरी छाक फीकी है, मरी सुपाक और मोठी है। मेरे घर स घो की दातो भी जाई है बलराम 'क' घर से कारी सूखी रोटी। बाल मण्डली में सबका स्थान बराबरी का होता है, बला कण और राम कहा, चरवाहे चरवाहे हैं। सुबल और तोक का कणमुरारी की यह आत्मवश्या बटु लगी। वे कब तक वर्णित करते। वे उबल पडे कहेया, मेरा छाक बहुत ही सत्तानी है। तेरी राटी ता तुम्हारी माता जैसी मोटी है। सुबल और तोक न जितना सुंदर और सटीक उत्तर दिया। उपमा तो लाजवाब है, जमी तेरी मैया मोगी, तभी मोगी राटी'। कण का भुन बढ़ हो गया। यह पद मखा पौदय का उत्कृष्टतम उदाहरण है।

मित्र मित्र के बारे में सोचता है। एक दूसरे का अनन्य सम्बन्ध हाता है। एक का दुख में दूसरा दुखी हाता है। एक के सुख में दूसरा सुखानुभव करता है। ऐसा नहीं करता तो वह पातकी है। उन देखने में भी पाप लगता है।^१ भारतेदु जी कृष्ण के सत्त्वामान के उपामन हैं। उनके कृष्ण जब उनकी बात नहीं सुनते तो बाल सखाया की भाँति ही वे उ ह बहलान हैं फुमलाते हैं। उनमें रहते हैं कि सुनो मैं तुम्हारे हित की बात कहता हूँ। जबकी बार मुझे तार ला, नहीं तो प्राण चले जायगे। इसमें भक्त की बड़ा शिकायत नहीं है, भगवान् की शिकायत विशेष है। अतः वह अपने मित्र को चेना देता है जिसमें वह समान की तबरा में दापी न ठहराया जा सके। नहा, तो ममा के उच्चतम गायानय में क्या जवाब देगा। इस तरह का कार्य कोई मित्र ही कर सकता है—

तुम्हारे हित की भाखत बात।

कोउ शिवि अबकी तार देहू भाहि नाही तो प्रन जात ॥

बूद चूकि किरि घट ठरकावत रहि जैहा पछिजात ॥

भात गए कट्टु हाथ न ऐहे क्यो इतनो इतरात ॥

चुसया समय फेरि नहि पैहो यह जिय धरि कै तात ॥

तारि लीजिए 'हरीचंद' को छाडि पाव जर सात ॥

आत्मनिवेदन

यह भक्ति तबका भक्ति परिवार की नतिम भक्ति है। इसमें भक्त मनुष्य मन वाणी और शरीर सब प्रकार से प्रभु के चरणा में अपने को 'बबझावर कर देता है। वह भगवान् के तत्व, प्रमाण रहस्य तथा महिमा को हृदयस्थ कर जहकार रहित हो अपने तन मन धन तन महिन अपन आपनों प्रभु चरणा में समर्पण कर देता है। इस तरह वह ब्रह्ममय हो जाता है। भक्त प्रह्लाद और राजा बलि आदि में यह भावना विशेषरूप में निदमान थी।

भारत दु युग में आत्मनिवेदन की भावना का विराम पयास रूप में हुआ है। देश में अशांति या यवना के आक्रमण से जनता कहा करुणानिधि केशव सोय की जनि स परमपिता परमेश्वर को याद कर रहा थी। सिवा भगवान् के और सहारा था भा नहीं। कवि भारतेदु जी अत्यन्त उत्फुल्ल

१ जे न मित्र दुख हाहि दुखारी। तिन्हहि त्रिलोकन पानक मारी। गोस्वामा तुलसीदास राम चरितमानस, मिथिलाकाण्ड, ४१६।१, पृ० ४४६।

२ बजरत्ननाम (सपात्रक) भारतेदु श्रयावती, दूसरा छांड, प्रमकुलवारी पृ० ५७६

मारते दुबालीन भवितव्य-धाराएँ और उनकी विशेषताएँ

लेकर आशा करते हैं कि जगमाता श्रीरात्रिका कब मुझे चरणा में बिठावेंगे।^१ अतः वह अनन्त प्रतीक्षा में व्याकुल होकर पुकार उठता है—

अहो हरि कम अब बहुत भई ।
अपनी निसि बिलोकि कलानिधि कीजै नाहि नई ॥
जो हमरे दोहन का देखा तो न निवाह हमारी ।
करि सूरत अजामिल गन की हमरे करम विसारी ॥
अब नहि सही जात कोऊ बिबि धीर सबल नहि धारी ।
हरीचंद को बेगि घाइ कै भुज भरि सेहु उबारी ॥^२

यह आत्मसमर्पण करि की अनन्य श्रद्धा का परिचायक है। वास्तव में वह अपने उपास्य में इतना तल्लीन हो चुका है कि उसका अपमान उस स्वयं अपना अपमान लगता है।

श्रीधर पाठक अपने प्रभु से आत्मनिवेदन करते हुए उनसे इस तरह की बुद्धि मागत हैं जिसका कमी भी विनाश न हो। अतः उस सव्यक्तित्वमान कल्याणित्वान का ध्यान करता है, क्योंकि यह दुनिया तो उमी खिलाडी का खेल मात्र है—

पहले तू ध्यान कर उस करगनिधान का,
सब का विद्यमान उस मन शक्तिमान का ।
ससार उस खिलाडी का एक खेल मात्र है ।
जिसका मनुष्य आदि से निबुद्धि छान है ॥
दुःखभाव, सत्प्रमाण वे मिलाव हो ।
दीनार्ति दुःख दाह दयालु स्वभाव हो ॥
कीजै कपा, न कपानिधान । नित्य ही बिभो ॥
दीजै सुबुद्धि, सबदा छीजै कमी न जो ॥^३

मित्र को तो अपने प्रभु के नित्य विचन हो जाते हैं। इस तरह रवि की साकुलता में दाम्पत्यभाव हिन्दोरे मारन लगता है। उसकी स्थिति एक विरहिणी की भांति हो जाती है—

कम बस बहुत भई अब आओ ।
हा हा सहि न जात दुख कैसहु बगिहि मुख निम्बराओ ॥
प्राणहि निरौ चहत ही प्यारे, और जुगुति ठहरावो ।
विरह बाण सा बेधि दयामय, निज नामहि न सजावो ॥
कै निज हाथ निपहि नहु के अघर सुधारस प्यावा ।
काहू बिबि अपने प्रताप का जरत जीव जुडवावो ॥^४

१ श्रीरावे माहिं अपने कब करिहो ।

जुगल रूप रस-अमित-माधुरी कब इन गैरनि भरिहो ॥

कब या दीन हीन निज मन पै अज को वास बितरिहो ।

हरीचंद कब भव छूडत त भुज भरि घाइ उबरिहो ॥

ब्रजरत्नदास (संपादक) मारते दुःखावली, दूसरा खण्ड, नाशी,

प्रेम फुलवारी, छ० १, पृ० ५७७ ।

२ वही, पृ० ५७७ ।

३ श्रीधरपाठन मनाविनो पृ० २ ।

४ प्रतापनारायण मिश्र ब्राह्मण, खंड ३, सख्या ११, प्रेमप्रमाद, ८०

यहाँ मित्र जी का आत्मनिवेदन विरहिणी के रूप में चरम सीमा पर पहुँच गया है।

भारते दुगुण मे यद्यपि भक्ति परम्परा का निर्वाह ही हुआ है, फिर भी नवधा भक्ति की साहित्यता समस्त युग चेतना पर हावी है। यदि एक तरफ़ कबीर की-सी प्रेमाकुलता है, तो दूसरी ओर तुलसी और सूर की-सी तमयता और अनयता भी, और कहीं-कहीं तो इन दोनों के प्रभाव क्षेत्र से बाहर जाकर भी भारते दुगुणीन कवि ने दूर की कौड़ी सा उपस्थित कर दी है। समस्त काव्य जगत में भक्ति गंगा किलोनें बरती है।

रामकाव्यधारा

सगुण काव्यधारा की दो शाखाएँ हैं—(१) रामकाव्यधारा और (२) कृष्ण काव्यधारा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे रामभक्तिशाखा और कृष्णभक्तिशाखा के नाम से अभिहित किया है। रामभक्ति शाखा के सबसे प्रमुख कवि गोस्वामी तुलसीदास जी हैं। तुलसीदास के पहले रामकाव्यधारा का कोई रूप स्थिर नहीं हो पाया था। जगद्गुरु श्रीकृष्णराय ने भक्ति के क्षेत्र में अद्वैतवाद का निरूपण किया। इससे सगुण मतवाद की चर्चा थी फिर भी सामान्य जनता में सम्यक प्रसार के लिए एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी, जो भक्ति को सरल एवं रोचक आधार दे सके। स्वामी रामानुजाचार्य जी के विशिष्टाद्वैतवाद ने यही कार्य सम्पन्न किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि जगत्प्रसिद्ध स्वामी शंकराचार्य जी ने जिस अद्वैतवाद का निरूपण किया था, वह भक्ति के सन्निवेश के उपयुक्त न था यद्यपि उनमें ब्रह्म की व्यावहारिक सगुण सत्ता का भी स्वीकार था, पर भक्ति के सम्यक प्रसार के लिये जैसे दृढ़ आधार की आवश्यकता थी, वैसा दृढ़ आधार स्वामी रामानुजाचार्य जी ने खड़ा किया।^१

स्वामी रामानुजाचार्य जी सगुण मतवाद के आदि प्रवर्तक हैं। इन्हीं की शिष्य-परम्परा में रामानन्द जी हुए। सबसे प्रथम इन्होंने ही रामनाम की महिमा का गुणगान किया। 'भगवद्भक्ति' में वे किसी भेदभाव को आशय नहीं देते थे। कम के क्षेत्र में शास्त्र मर्यादा इन्हें माय थी, पर उपासना के क्षेत्र में किसी प्रकार का लौकिक प्रतिबंध वे नहीं मानते थे। सब जाति के लोगों को एकत्र कर रामभक्ति का उपदेश वे करने लगे और रामनाम की महिमा सुनाने लगे।^२

स्वामी रामानन्द जी के शिष्यों में बहुतेरे ने रामभक्ति धारा के प्रवाह को निरन्तर प्रवहमान किया, लेकिन हिन्दी साहित्यकाश में गोस्वामीतुलसीदास जी की सेखनी ने इसे विशेष प्रकाश में लाया। इनके पहले लोग फुटकल पदों में ही रामभक्ति गाथा को गुनगुना रहे थे। असल में सुनियोजित एवं सुनिश्चित ढंग से रामभक्ति का परम विषय साहित्यिक सदन का ध्यानगेष इन्हीं भक्तशिरोमणि से सम्पन्न हुआ। गोस्वामी तुलसीदास का युग रामभक्ति धारा की प्रौढ़ता का युग था। ऐतिहासिक के रंगमंच पर यद्यपि रामकाव्यधारा में रसिकोपासना की महत्ता अधिक थी, फिर भी वह धारा अभी तक लुप्तप्राय नहीं हुई है। भारते दुगुण राष्ट्रभक्ति का युग था। इसलिये रामभक्ति का विशद विवेचन नहीं हो पाया है। लज्जिन राम को अजस्र प्रतिमा का परिष्कार समस्त युग की धमनियाँ सर्जित है।

स्वयं भारते दुगुण ही रामकाव्य से कम प्रभावित नहीं थे। यद्यपि उनकी काव्य प्रतिमा का पूर्ण विकास कृष्ण की मधुर लीलाओं के समुष्म में हुआ है। उन्होंने रामनगर की रामलीला देखकर वही से अनुप्राणित एवं प्रेरित होकर श्रीरामलीला नामक एक लघु चम्पू का सृजन किया। यह एक

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा काशी, बारहवा सस्करण, स० २०१५ प० १०७।

२ वही, पृ १०६।

अत्यन्त छोटी सी रचना है। इसमें अत्यन्त संक्षेप में बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड की कथा पिरोई गई है। कवि ने अयोध्याकाण्ड की कथा को बहुत ही संक्षिप्त कर दिया है। इस काण्ड में अहल्या तरण, जनक-नगर-दर्शन, पुष्प-वाटिका भ्रमण, धनुषयन, धनुषखण्डन और विवाह के प्रसंगों की कथा सबैये छन्द में प्रणीत हुई हैं। कुल दो काण्डों की कथा कवि ने केवल ३५ छंदों में अभिव्यक्त की है। गद्य का अंश बहुत ही कम है और जो है भी वह केवल दो भावात्मक प्रसंगों के योजक का काम करता है। कवि ने प्रस्तुत ग्रंथ की भूमिका स्वरूप निम्नांकित पद को प्रेषित किया है—

हरि लोला सब विधि सुखदाई ।

बहुत सुनत देखत जिय आनत देखि भगति अधिकारी ॥

प्रेम बन्त अथ नसत पुन रति जिय में उपजत आई ।

याही सा 'हरीचंद' करत सुनि नित हरिचरित बढाई ॥^१

कवि की दैन्य भावना रामकाव्य के प्रणयन में भी प्या की ल्यो है। उनकी दीनता अहल्या-तारण प्रसंग में चरमोत्कर्ष को प्राप्त करता है। यहाँ कवि ने सात दोहा में अपनी दीनता प्रकट की है, जो अपनी भावसबलता के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध है—

मो ऐसो को तारिबो सहज मैं दीन-दयाल ।

आहन पाहन बखहूँ सा हम कठिन कृपाल ॥

परम मुक्तिहूँ सो फलद तुम पद-पदुम मुरारि ।

यहै जतावन हेतु तु तारो गीतम-नारि ॥

एहो दीनदयाल यह अति अचरज की बात ।

तो पद सरस समुद्र लहि पाहनहूँ तरि जात ॥

कहा पछानहुँ तैं कठिन मो हियरो रघुबीर ।

जो मम तारन मैं परी प्रभु पर इतनी भीर ॥

प्रभु उदार पद परसि अड पाहनहूँ तरि जाव ।

हम नेतय कहाइ कथा तरत न परत सखाव ॥

अति कठोर निज हिय कियो पाहन सो हम हाल ।

जामैं बबहूँ मम सिरहूँ पद रज देहि दयाल ॥

हमहूँ कछु लघु सिल न जा सहजहि दीनी तार ।

सगिहैं इत कछु बार प्रभु हम तो पाप-महार ॥^२

रामकाव्यधारा में तुलसी की कवितावली का विशेष महत्व है। भारत-दु जी के अयोध्याकाण्ड की कथा—जो केवल दो पात्रों में लिपिबद्ध है—उसमें काव्य की कोई छटा नहीं दिखाई पड़ती। हाँ, कवि कवितावली का स्मरण दिलाने की कोशिश करता है, लेकिन उस सफलता नहीं मिलती। कवितावली के काव्य सौन्दर्य के सामने इस टिप्पटमाते दाप ज्योति शिखाका वीन हृदयङ्गम बर सकता है। उदाहरण स्वरूप एक छंद फुलवारी प्रसंग का प्रस्तुत किया जा रहा है—

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारत-दु भगवावली, दूसरा खण्ड, काशी, रामलीला, पृ० ७७० ।

२ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारत-दु भगवावली, दूसरा खण्ड, काशी, रामलीला, सं० ५११, पृ० ७७१-७७२ ।

जाहूँ मैं जाहूँ न कुजन मैं उत
 नाहिँ तो नाहूँ लाजहिँ छोलिहौ ।
 देखिँ जो लोहो कुमारन को
 अबहीँ भट लोच की लोचहिँ छोलिहौ ॥
 भूलिहै देह-दत्ता सगरी
 'हरिचन्द' कछु को कछु मुख बोलिहौ ।
 लागिहै लोग तमासे इहा
 बलि बावरी सी हूँ बजारन डोलिहौ ॥^१

रामलीला परम्परा में लोला समाप्ति के पूव जनक सली की आरती आवश्यक है। यहाँ भी बालकाण्ड में कवि जेवनार के वाच्य बारात लोटा ले आता है, पश्चान् जनकसली की आरती सम्पन्न होती है और तब बालकाण्ड की कथा समाप्त हो जाती है। आरती का पद उदाहरणार्थ उद्धृत है—

आरति कीजै जनकसली की राममधुप मन कमल कली की ॥
 रामचन्द्र मुख चन्द्र चकोरी अन्तर सावर बाहर गोरी ।
 सफल सुमंगल सुफल फली की ।
 पिय दुग मृग जुग बधन डोरी । पीय प्रेम रस रासि किसोरी ॥
 पिय मन गति विश्राम यली की ॥
 रूप रासि गुन निधि जग-स्वामिनी प्रेम प्रवीन राम अभिरामिनि ।
 सरबस धन 'हरिचन्द' अली की ॥^२

रामकाव्य के प्रणयन में कवि की काव्य प्रतिभा का विकास अचरित सा हो गया है। फुटकर पदों में ही रामकाव्यधारा इस युग में प्रवहमान हुई है। कवि ने राग सप्रह के दो पदों में राम का कीर्तन किया है। चैतन्य की स्पष्ट छाप इस पद में परिलक्षित होती है। यह भारतेन्दु प्रणीत समस्त रामकाव्य में विनय का अकेला पद है। लगता है कवि ने इसे दशहरा और रामनवमी के अवसर पर कीर्तन करने के लिये रचा हो।

जयति राम अभिराम धनि धाम ।
 पूरन काम श्याम बपु बाम सीता बिहारी ।
 चढ को दण्ड ग्रहा खड-कृत दनुज बल ।
 अनुज सह सहज सुम रूपधारी ॥
 रस नुल अनल बल प्रबल पजय सम ।
 धन्य निज जन पक्ष रक्षकारी ॥
 अवध भूपन समर विजित दूपन ।
 दुष्ट विगत दूपन चतुर धर्मधारी ॥
 खर प्रखर अग्नि तक दुद दुग ।
 दल दल मतन बाहु मारीच भारी ॥
 वैद्यवन अनुज घट धवन रावन शमन ।
 शमन भय-दमन हरिकन्द वारी ॥^३

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, पहला खण्ड, रामलीला, छ० १४, पृ० ७७३ ।

२ वही, छ० २७ पृ० ७७६ ।

३ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, काशी, रागसप्रह, छंद ३६, पृ० ४५१ ।

प्रस्तुत पद की रचना पद्धति तुलसी की विनयपत्रिका के समान ही सस्कृत और समस्त पदावली में हुई है। राग सप्रह मे ठीक इसी तरह की कोत्तन पद्धति मे एक और पद संगृहीत है^१। वह पद्य बिलकुल कृष्ण केलिकला का रूपव मात्र हो गया है। कहीं राम का मर्यादापुरुषोत्तम रूप और कहीं कृष्ण की बेलिवला का रूपक।

श्री सीता-वल्लभ स्तोत्र नाम की ३० श्लोको मे लिपिवद्ध एक रचना भी रामकाव्यधारा के अन्तर्गत है। इसमे कवि ने जानकी, माण्डवी, जमिला, श्रुतिवीरिणी, सुनयना, जनक, विश्वामित्र, शता नन्द, कुशध्वज, लक्ष्मीनिधि आदि की स्तुति की है। इनके साथ ही साथ जनकपुरी की बन्दना भी की गई है, क्योंकि यहाँ रचना मिथिला यात्रा के समय लिखी गई थी।

भारतेन्दु जी मे वैकल्य का भाव अचिक् है। रामकाव्य हा या कृष्ण-काव्य या फुटकल ही क्या न हो, कवि का दीयभाव बरबस भल्लरु मारता है। यत्रतत्र सत्रत्र कवि अपनी दोनता को विरदावली कह सुनाने मे अपने को मस्त समझता है। यहाँ रामकाव्य मे भी वह कल्या का समुद्र बहा देता है। अयोध्याकाण्ड की सीला का प्रारम्भ होता है, और कल्या का वेग उमड़ता है। राम-वन-गमन को प्रस्तुत, दशरथ के प्राण इस विरह को न बर्णित करने को आतुर। वस क्या था, सारा हृदय ही विरह व्याप से छिन्न जाता है। पुरवासी राम के वियोग को सहने मे पूणतया असमर्थ हैं। कवि हम विरहो दगार को पन्ना में लिपिवद्ध करता है—

राम बिना सब जग लागत सूनो ।

देखत जनक मवन बिनु सिय पिय होत दुसह दुख दूनो ॥

लागत घोर मसानहूँ सो बड़ि - रघुपुर राम बिहूँ ।

कहि 'हरिचन्द' जनम जीवन सब धिक धिक सियबर ऊनो ॥^२

और भी

जीवन जो रामहि संग खीतै ।

बिनु हरि-भक्त रति और बादि सब जनम गवावत रीतै ॥

नगर नारि घन घाम काम धिक धिक रिमुख जौन मिय पीतै ।

'हरीचन्द' चलु चित्रकूट भजु भव मृग बावह चीतै ॥^३

गीतावली पद्धति मे प्रणीत इन पदो का काव्य सौन्दर्य अच्छा बन पडा है।

१ मानगढ़-सक पर विजय की मालिनी

आज ब्रजरज रघुरज बनि कै चढ़े ।

भृङ्गटि धनु नयन-भार विकट संधानि कै

मुकुट की ढाल करवाल अलखन बड़े ॥

बोहिल बड़िक उगरत बढैत ही

बदत बदी बिरद भँवर आगे बडे ।

कोक की नारिका बानरी सैन ले

दास 'हरिचन्द' रति विजय आनन्द भड़े ॥

ब्रजरत्नगस (सपा०) भारतेन्दु-प्रयावली, दूसरा खंड, पं० ४७० ।

२ यही, रामलीला छं० ३३, ३४, पृ० ७८० ।

३ ब्रजरत्नदाम (सपा०) भारतेन्दु-प्रयावली, दूसरा खंड, काशी, रामलीला, छं० ३४, पृ० ७८० ।

तपस्वीराम भारतेन्दुशुशीन गक्त कवि हैं। इनका हृदय भक्तिरस से आप्लावित है। फुटकल पदों में रामकाव्य का प्रणयन आपने किया है उसमें विनय का स्वर प्रधान है—

जय जयपि जय सीता रमन, जय जय रमापति सुख सदन ।
जय राम ससृति दुखसमन, भवभय हरन असरन सरन ॥
जय अवधपति रघुकुलमनी, निजदास वग निमुनधनी ।
आनन्दवन्द कृपायतन भवभयहरन असरन सरन ॥
अव्यक्तभैरवमोचरथ, विज्ञानघनघरनीचरम् ।
मण्डनमही निश्चरदमन भवभयहरन असरन-सरन ॥
सावण्यनिधि राजिवनयन, कलिमल पहन-मंगलमदन ।
'तपसी' सुखद कलना-अयन, भवभयहरन असरन सरन ॥^१

कवि ने यहाँ प्रभु सत्ता का वर्णन बड़ी ही अच्छी तरह से प्रस्तुत किया है।

कृष्ण मधुररस के विषय हैं और उनकी बलमाएँ इस रस का आश्रय हैं इस तरह का विश्वास किया जाता है।^२ दोनों मिलकर रस के आनन्दजन हैं। रामचरण ने अपने एक झूलन प्रसंग पद में रामकी रस का विषय ठहराया है और जनक राजकिशोरी को रस का आश्रय। दोनों झूलते पर हैं। सीता के कमनीय अंग की सुपमा के सामने अनग भी बगलें भौंकने लगती है। कवि का नयन मन रसिक भाव भक्ति के दर्शन के निमित्त सरयू के तट को एकाग्रचित्त देवता है—

ये दोनों रसिक झूलन पर जायो है।

दशरथ कुंवर श्रीजनक कुमारी अथ अंग सुपमा अनग लगायो है ॥
प्रीतम के संग प्यारी झूलतु है भजे भजे मिया पिया वीण बाजायो है ।
विपिन सितोमनि श्रीप्रमोद वन हरे हरे महि सावन दरनायो है ।
रामसरन श्रीअवध निकाई लखि सरयू के तीरे तीरे मेरा मन भायो है ।

सावन के शीतल मन्द समर के स्पर्श से सिया पिया वीणा वादन कृष्ण के वीणा की सहज ही में याद दिला देता है। कवि को मधुरा भक्ति उद्घाटन करने में पूण सफलता प्राप्त हुई है।

अप्रेमों के अत्याचार से पीड़ित प्रताड़ित मानवता के श्राण के लिये रामसनेहीनास भगवान् राम को याद करते हैं। कवि को केवल प्रभु के चरण कमल का ही आस है। वह सीतापति रामचन्द्र से विनत होकर कहता है—

सीतापति रामचन्द्र नौशन रघुराई ।
बै-विप्र धेनु सत झुलित सजस जीव-जत ।
मैथिली-मृग चानवत विपति घटा छाई ।
द्विदिश राजवरत पाप जनमण त्रिज बल दाय ।
आवि आव हरहु ताप सत्वर सुखदायी ॥

१ डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र भाषव रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्रथम संस्करण, १९५७, पृ० २३ ।

२ डा० भगवती सिंह रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, अवध साहित्य मन्दिर, बलरामपुर, प्रथम संस्करण २०१४ वि० पृ० ४६१ ।

सबल भुवन भेल मंद देशक दय फटक पद ।
मुँह बान करें बन्द गारा कटकापी ॥
बहुत 'रामस्नेहितास' मारहु खण्ड श्रीनिवास,
हरहु आस एक आस चरण केरि साई ॥^१

श्रीरामलोचन मित्र श्रीराम के अनन्य उपासक हैं। वे आठोयाम रामनाम को भजने को हो कहते। हैं जहाँ भी रहो रामनाम ही तुम्हारे जीवन का आधार है। रामनाम का प्रभाव चारों युग में है—

राम नाम कहा करो पाप स डरा करो तू
भरा करो बान में सदा ही राम नाम को ।
घर में रहा को गिरि-दर बसो तू जाय,
बिना रामनाम मुख चाम कौन काम को ।
नाम को प्रभाव चारों युग में प्रचण्ड जान,
बलि में प्रधान रामनाम तरु-काम को ।
बहे रामलोचन दुखमोचन रामनाम ही है,
साते रामनाम में बितायो आठो याम को ॥^२

कवि प्रमुराम का अनन्य उपासक है। वह रसखान की भाँति ही भगवान् राम में लीन हो जाने की कामना करता है। भारतीय दर्शन पुनर्जन्म को मानता है। कवि इसकी पुष्टि में भगवान् से याचना करता है—यदि पिता पुत्र भाई एव माता दुनिया के जितने भी पारिवारिक नाते हैं, राम से ही यथा—

पिता यदि दीजें तो श्रीदशरथ महाराज ऐसी
बधु यदि दीजें तो श्रीराम चारों सैया सो ।
माता यदि दीजें तो श्रीकौसल्या सुमित्रा जी सो
भार्या जो दीजें तो अक्षयती सुकन्या सो ।
पुत्र यदि दीजें तो सुपुत्र श्रीधरवर्ण ऐसी
मित्र यदि दीजें तो सुगमा जो कन्हैया सो ।
बहो रामलोचन जीने ही मोनि जन्म दीजें
रामभक्ति दीजें अहं प्रीति रघुरेखा सो ॥^३

कवि का यही आत्मनिवेदन चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया है। भारते-दु युग में असयकुमार राम-काव्यधारा के एक प्रसिद्ध कवि हैं। आप बचपन ही स्फुट पने में राम-यत्न गया करते थे। आपका एक रसिक विलास रामायण भी बिहार बधु प्रेस बाँकीपुर से छपा है। आप दीय भाव के उपासक हैं। कवि श्रीराम के जनकपुर गमन पर वहाँ की कुलकामिनियों की विनम्रता एवं रघुवीर नयन शर का अद्भुत पराक्रम बहुत ही सुन्दर ढंग से खींचा है। कवि को अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है—

१ शिवपूजन सहाय हिंदी साहित्य और बिहार, भाग २, पटना पृ० १६० ।

२ रामलोचन मित्र श्रीरामनाम महिमा, हस्तलिखित प्रति, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के संग्रहालय में सुरक्षित ।

३ वही ।

कामिनी को सन आज जुरयो है विदेह नगर,
 चितवन को तीर चढ़े भृकुटी बमाना पर ।
 सीस-फूल आदि बहु भूपत्य सवारे सिर,
 सारी जरतारी सहरा रही निशानो पर ॥
 चाहती है वार करन देखति सब दाव घात,
 खचति बमान ताकि थोष्ट बानो पर ।
 जैसे ही रघुवीर की छुटी एक नैन बान,
 घायल सी घुमी गिरी अपने ठेकानो पर ॥^१

कवि माधुय के अथाह समुद्र में शीघ्र की चुटकी बड़ी मजेदारी से सेता है। विदेह नगर में कामिनियों का सीय समूह एक तरफ, दूसरी तरफ श्रीराम का दुलहारूप। दाना और नयन धर की करामात दिखायी जाती है। कामिनियाँ अपन दाव घात में है कि इतने में ही श्रीराम के नयन बाण छूट ही तो पड़ते हैं। बस क्या था? 'घायल-सी घुमी गिरी अपन ठेकानो पर' कवि को रूप-जलकार के माध्यम से वस्तु-स्थिति का चित्राकन करने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

भगवान् राम जनकनन्दिनी और अपने प्रिय अनुज लखनलाल जी के साथ वन-पथ पर है। सामने सुरसरि का प्रबल प्रवाह है। बिना नौका के पार जाना मुश्किल है। सामने जलबाहन है। प्रभु पार उतर कर उत्तराई देने की चेष्टा करते हैं। केन्ट उह ऐसा उत्तर देता है कि भगवान् को निस्तर हो जाना पड़ता है—

कह केवट क्यों अनरीति करो हवा उतराई में जो बधु देही ।
 कहूँ लेत हूँ नाई से नाई बज्रमोहि जाति के पातिन ते निवसही ॥
 भवसिंधु अमाध कि घाट तुम्हें यहां घात कि जो उत्तराई चुकै हो ।
 जब जब तुम्हारे घाट प्रभु तब तो हमरे मुँह में मति लेही ॥^२

प्रस्तुत पद में कवि तुलसी के निवास्त्राज की कल्पना तो नहीं करता लेकिन उसका अनुवर्ती आवश्यक है। तुलसी के केवट में वाक्य चातुर्य की कुशलता थी, लेकिन प्रस्तुत कवि का केवट एक सीधा साग्य मल्लाह हो प्रतीत होता है। हाँ जाति की दुहाई देने में वह कम नहीं है। उसका यह तक अकाट्य है।

दास्य भक्ति में अजनि-पुत्र हनुमान का नाम अग्रगण्य है। दास केवल सेवा करना जानता है वह उसके बदले में कुछ नहीं चाहता। सेवा करना ही उसका पुष्पतम फल है। हनुमान में सेवामावना बूटबूट कर भरी है। सीता की मुग्ध में प्रभु विवश है। बानारी का मूष उनकी सहायता में दूढ़ पड़ा है। फिर भी सीता के नजदीक, पहुँच जाने की आशा हनुमान से ही की जाती है। इसीलिये राम-नाम अकित अगूठी हनुमान को ही दी जाती है। हनुमान को भी आशातीत सफलता मिलती है।

हनुमान ने विचारा कैसे करू सहारा ।
 पातीत हूँ हमारा त्यो मुद्रिका किनारा ॥
 अगूठी तुरन्त डारा मानो गिरा अगर
 सीता करे विचारा दूटा सरण से तारा ॥

१ अक्षयकुमार रसिक विलास रामायण, बिहारबन्धु प्रेस, बाकीपुर द्वितीय संस्करण १९३६ ई० पृ० ४ ।

२ अक्षयकुमार रसिकविलास रामायण, बिहार बन्धु प्रेस, बाकीपुर, द्वितीय संस्करण, १९३६ ई० पृ० १५ ।

मन मे विचार आई अगूठी तुरत उठाई ।

तह रामनाम पाई, कैसे यहाँ पै आई ॥^१

प्रस्तुत पद की भाषा, भाव एवं शैली में कहीं भी सौन्दर्य नहीं है। केवल रामनाम की महिमा गाकर कवि अपने कवि कर्म की इतिथी कर देता है। हाँ, इतना स्पष्ट परिलक्षित होता है कि मत्त के मस्तक पर भगवान् का यदि वरद हस्त है, तो कठिना से कठिन काय भी सहज ही हो जायेगा।

चन्दा भ्रम भारते दु गुम की सीमा से बहुत पहले हो गय है। आपने अपने स्फुट पदों में राम काव्य की सुरसरि बहायी है। उदाहरण के लिये एवं एवं प्रेरित है—

सीता अरपल रामक हाथ राम जलधि जवें समान ।

लक्ष्मण का निज बना देल, नाम उमिला हृषित भेल ॥

विपत्ता श्रुतिकोति कुमारि, देल भरल का जनक विचारि ।

माण्डवि प्रस्थित कयल जमाय, श्रीशत्रुघ्न समय शुभ पाया ॥

बाह कुमार दार सम्पन्न लोकपाल सन लोक प्रसन्न ।

जनक कहल हरपित तहि ठाम, सीता लाम जे नएहि घाम ॥

मुनु वशिष्ठ मुनि दिश्वामित्र अहस्तछी बना क बरिन्न ।

भूमि विशुद्धि यन करबाक, नृपतिहुँ का भेव हर घर बाक ॥

देखल तत हम जोत इह भूमि, बहराइल कन्या को भूमि ।

चारि बारस वय सक परमान, बना एहन देखल नहि आन ।

के इ पिकवि बोना के जान, हत भेल शान दिनक लेस ध्यान ।

आनल घर में पुत्री भाव उपमा दिनक आन के पाव ॥^२

कवि मैथिली-साहित्य का अच्छा ज्ञाता है। वह राम के चारों भाईयों और सीता चारों बहनों का सम्बन्ध बड़े ही सुन्दर ढंग से सम्पन्न करता है। कवि ने मैथिली रामायण की रचना करके एक बड़े अभाव की पूर्ति की है।

भारते दु मण्डल के प्रमुख कवि श्रीराधाकृष्णदास जी ने भी स्फुट पदों में राम काव्य की धारा प्रवाहित की है। राम जगल जा रहे हैं। सीता भी जाने को प्रस्तुत हैं। श्रीराम वन की भयकरता, दु ख और सिंह की गजना की बात कहकर सीता को राजमहलों में रखना ही चाहते हैं। सीता इसके लिये तैयार नहीं हैं। यह रामायण का बड़ा ही भाविक प्रसंग है। कवि इसी प्रसंग के उत्तर में जनकिशोरी के मुख से कहलवा देता है कि प्राण वही रहता है, जहाँ बाया हो। सीता अपने भाग को जगल में जा छोड़ती है। कवि प्राकृतिक दृष्टि का बखान करते हुए रामकाव्य की कमनीयता को सवारन में किसी प्रकार का सकोष नहीं करता है—

कहौ पिय साचै बाके बैन ।

तुम भाव्यों घर रहो जहाँ है सब ही बिधि सुख बैन ।

यह मन्दानिनी ठीर गिरि गुहा यह सुख मन्द समीर ।

यह एकांत कुंज बिरहन यह सुन्दर श्याम शरीर ।

फूलन के अमरन मनोहर निज रवि सो पहिरावन ।

उरके बार जटा के निज कर प्रेय सहित सुरभावन ॥^३

१ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पटना, पृ० ६३ ।

२ शिवपूजन सहाय हिन्दी और साहित्य और बिहार, पटना, भाग २, पृ० ३५ ।

३ भयामसुन्दरदास (सपादक) राधाकृष्ण ग्रायावली, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, १९३० ई०, पृ० २५

जह राजा तह राजमहल अरु जह धूप तह छाया ।

जहाँ धनो धन रहत तहाँ हो जहा प्रान तहँ काया ।^१

रामकाव्य में फुलवारी की महत्ता बहुत है। इसने बिना राम काव्य का सौन्दर्य हा फोका पड़ जाता है। प्रायः सभी राममत्तो ने फुलवारी प्रसंग की कथा को मनायोगपूर्वक लिखिबद्ध किया है। कवि गंगा प्रसाद अवस्थी ने प्रस्तुत प्रथम या चित्रण बड़े ही सुनियोजित ढङ्ग से प्रस्तुत किया है।

मर्यादापुरुषोत्तम भगवन् श्रीराम शीलशक्ति-सौन्दर्यनिधान हैं। वे फुलवारी में अपने अनुज लक्ष्मण के साथ घूम रहे हैं। पुष्पा की मीना मीनी मढ़क उनके अतीव सौन्दर्य को अनवरत सौन्दर्य में परिवर्तित कर देती है। परिणामस्वरूप वे वितचोर बन जाते हैं। यही कारण है कि वहीं फुलवारी में उनकी आत्मादिनी शक्ति सीता जब अपने मणियों के साथ प्रवेश करती हैं तो भावविमोह हो जाती हैं। भगवन् श्रीराम भी सीता के कमनीय सौन्दर्य को देखकर ललन से बार बार कहने लगते हैं— 'हेरि हाय हियरा छ दूक दूक कै गई। कवि को सौन्दर्य की सार्वज्ज्वा मिट्ट करने में पूर्ण सफलता मिली है। उदाहरण दृष्टव्य है—

जनक दुलारी सजि फूलन के लेन हित

सखिन बुलाय बाटिका के बीच लै गई ।

उत से प्रसून लेन लगिमण राम चले

मध्य फुलवारी भेंट दोउन से हू गई ॥

भाषन गंगाप्रसाद तवि रघुवीर ओर,

मिया निब नैन मैन भरी दै गई ।

अवधविहारी कहै ललन सो बार बार,

हेरि हाय हियरा छदूक दूक कै गई ॥^२

समस्यापूर्ति में रघुवक्ता पाठक का एक भी फुलवारी प्रसंग की कथा में कड़ी का काम करता है। लेखिन भावगाभीय में कवि फुलवारी की बात छोड़कर प्रेमलक्ष्मणशक्ति की स्तोतस्विनी बह्मा देता है। कवि जनकदुलारी फुलवारी स्थित रूप का वर्णन करते हुए भवानी वरदान लेने की बात भी चुपके से कह देता है—

जनकदुलारी पगुधारी बीच,

मोतिन सवारी माँग चित्त चोर कै गई ।

भलक लिखाय मुख आभर उजागर की,

मोहनी ललाय प्रेम फद म फँस गई ॥

परम सयानी रसखानी को बिलोको भात,

पूजिकै भवानी चित्त चाहो कर लै गई ।

सहज सुभाव 'रघुवक्ता' नैन कोरन ते,

हेरि हाय हियरा छदूक दूक कै गई ॥^३

१ वही, पृ० २५ ।

२ रसिक मित्र प्र० भाग, सख्या २, १८९७, रसिकसमाज, वानपुर पृ० २ ।

३ वही, पृ० २१ ।

भारतेन्दु युग मध्य और आधुनिक युग के संचिस्थल पर खड़ा था । उसकी मेधा में द्वन्द्व उलभ रही थी कि प्राचीन परिपाटी को ही आक्सीजन देकर खड़ा किया जाय या नवीनता की शक्ति को टटोला जाये । स्पष्टतः प्राचीन परिपाटी के पथ का निर्वाह किया गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि इस आलोच्य काल के कवि ने नवयुग के तार को झूट करने में ही विशेष सफलता प्राप्त की । वे प्राचीनता के उपासक पद्धति की श्रेणी में बैठाने में न जा सके । रीतिकाल और भक्तिकाल के स्वर पुराने पड़ चुके थे, रामकाव्य की धारा क्षीण पड़ती जा रही थी । ब्रजभाषा के समापवत्तन समारोह में अक्षयकुमार, चतुर्भुज मिश्र बनादास, लीलादास, जगन्नाथप्रसाद मानु और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र रामकाव्य धारा को जीवित रखने में पूणतया सफल रहे । स्फुट पदां में रामकाव्य का प्रवाह कई धाराओं में होकर प्रवाहित हो रहा था । प्रबन्धात्मकता के पुट का निर्वाह करने में अक्षयकुमार का रसिक विनास रामायण, मानु का अध्यात्म रामायण और ब्रजनाथ कुरमी का रामायण तथा महारघुराज सिंह का रामस्वयंवर का विशेष स्थान है । इस तरह आलोच्यकाल में सत काव्य की भाँति रामकाव्य का स्थान गौण है । आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने लिखा है कि राम के पौराणिक चरित्र के आधार पर कुछ रचनाएँ हुईं । नई बात यह हुई कि रामचरित्र को शृङ्गार में अतिरंजित करके कुछ रचनाएँ की गई ।^१ रीतिकालीन अश्लीलता को स्पष्ट छाप र मकाव्य के शीलत्व पर परिलम्पित होती है ।

ऐश्वर्य भाव

एक अनिवार्य सच्चिदानन्द स्वरूप शाश्वत सत्ता विभु रूप प्राप्त है । उसके दो रूप हैं— (१) निर्गुण निर्विकार निराकार स्वरूप और (२) निखिल ऐश्वर्य माधुर्य आनन्द सौन्दर्य, अचिन्त्य अनन्त सद्गुणों का परम धाम स्वरूप । एक ही रूप के सगुण स्वरूप अनेक हैं । उनके नित्य चिन्मय धाम अनेक हैं । उनकी अगजगमोहिनी दिव्य लीलाएँ अनेक हैं । एक ही निगुण ब्रह्म सगुण स्वरूप होकर नित्य श्रीदा करता है । निगुण स्वरूप विभु है और सगुण स्वरूप सवर्ण है । सभी सगुण स्वरूप तथा सगुण स्वरूप की समस्त लीलाएँ देश काल की कल्पना से परे होकर सदा सत्त्व व्याप्त हैं ।

सगुण स्वरूपों में दो स्वरूपा की विशेष महत्ता है । इन्हें ईश्वरावतार की सत्ता से अभिहित करते हैं । एक अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र ज्ञान शक्ति सौन्दर्य निधान हैं और दूसरा शृङ्गार रस राज-सम्राट् चित्तचोर श्रीकृष्ण कहैया हैं ।

वह पूर्ण ब्रह्म अनन्त ऐश्वर्य माधुर्यमय है । कारण यह है कि उपास्य में दो प्रमुख गुण वर्तमान होते हैं—(१) परस्व और (२) सौलभ्य । परस्व की ऐश्वर्य कहते हैं और सौलभ्य माधुर्य के नाम से पुकारा जाता है । कहीं ऐश्वर्य का प्रकाश समस्त जगतातल पर ध्याया है ता कहीं माधुर्य के सौंदर्य की कमनीय पताका फहरा रही है । ऐश्वर्य में भगवान् अपनी महामहिमा मण्डित रूप में विराजमान हैं और जीवन अपनी लघुता में सिमटा है । विभु है और अणु है—दोनों का सम्बन्ध चिरकालिक सेवक और स्वामी का है । यहाँ सेवक की उपासना का मूलाधार वैधी भक्ति है । वह वेद शास्त्राणि के निर्देश के आधार पर नवधा भक्ति से उपासना करता है ।

ऐश्वर्य भाव का मतलब है परमपिता-परमेश्वर के प्रभुत्व एवं ईश्वरत्व । जहाँ पर वह विभु जीव का नित्य के कम स्वीकार कर अपनी लीला ईश्वरता के भाव की दक्षिणें हुए करता है, उस लीला को ऐश्वर्यभावपूर्ण लीला स्वीकार करते हैं । नवधा भक्ति में यद्यपि कि स्वामी और सेवक भाव का

१ चतुरसेन शास्त्री हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, गौतम बुक डिपो, दिल्ली, द्वितीय संस्करण १९४९ ई०, पृ० ७९४ ।

सम्बन्ध है, लेकिन ऐश्वर्य मान परव' लीलाओ म प्रभु का केवल परत्व और सेवक का 'नित्य शरणागति' की स्वीकार्य है। यहा सखामाव की कोई गुजायश नहीं है। अत ऐश्वर्य भाव लीला नवधा भक्ति की नीमा से कुछ दूर चला जाती है। जहा केवल ईश्वरता ही है, वहाँ प्रभु के बाल-सखाआ का क्या ध्यान है। इस प्रकार की लीला म मानव भावना की उपेक्षा तथा वैभव और अलौकिकता का प्राधायन हुटिगत होता है।^१ अत इस प्रकार की लीला से सामान्य जनता का रस प्राप्त कर सकना संभव नहीं है। रस अथवा जानद की प्राप्ति तो मानसिक रमण स सम्भव है जो भगवान् के अतिमानवीय रूप से संवया त्याज्य है। मानसिक रमण तो भक्त भगवान् से आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करके ही पा सकता है। वह भगवान् के अतिमानवीय या ऐश्वर्य रूप को देखकर उनके प्रति जो अनुराग भाव उसके हृदय म उत्पन्न होगा उसमे मय का भाव समाहित होगा। डा० रूपनारायण पाण्डेय ने लिखा है कि भगवान् के ऐश्वर्य रूप को देखकर भक्त के हृदय म उनके प्रति जो प्रीति होती है, वह आत्मीयता की भावना स उत्पन्न प्रीति स विल्कुल भिन्न है। यहाँ भक्त भगवान् के ऐश्वर्य एवं विभूति को देखकर आश्चर्य चकित रह जाता है और मय मिश्रित-अट्टा से उसका सिर नत हो जाता है।^२ इस तरह भक्त और भगवान् के बीच प्रेम म सकोच की खाई सदैव बनी रहती है। लेकिन जब भक्त भगवान् को अपना सखा, पुत्र आदि समझता है तो वहाँ सकोच का संवया अभाव पाया जाता है। इस तरह की उपासना की पुष्टि गोस्वामी तुलसीदास ने निम्नांकित वाक्य से होती है—'मय बिनु होय न प्रीति।' राम और कृष्ण दोनों की लीलाएँ इस तरह की हैं।

भारते दु युग यद्यपि अपनी नवीनता के लिये शल ध्वनि कर रहा था, फिर भी भक्ति शिक्षा की ज्योति अपने अन्तःस्थल म द्विपाय भक्ति परम्परा की याद दिला रहा था। ऐश्वर्य भाव की लीलाएँ तत्कालीन कवियों की वाणी स वर्णित हैं। भगवान् के ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए राधावल्लभ जी जरा सा भी सकोच नहीं रखते। वह समुद्रमंथन से लेकर नदरानी के गोत्र की बात भी उसी लहजे मे कह जाते हैं। यथा—

उदधि मयैया कालीनाथ का नयैया प्रभु,
द्रुपद सुता को वर और बढवैया हैं।
ब्रज उवैया कर छिगुनी धरैया गिरि,
हृद्र को भरैया मद बल को सुमया है।
मुरली ररैया मोर मुकुट लसया सोस,
पाप को हरैया, धर्मपुर को धरैया है।
नन्द को कहेया नन्दरानी को पियैया दूध
विश्व को भरैया विप्रवल्लभ सहैया है॥^३

कवि अपने एक पद मे मयानी जगन्मूखा के प्रभाव का वर्णन करता है। जगन्मूखा प्रभाव इतना है कि मुर भी उनके विकर बने हुए हैं—

१ ऐश्वर्यनु नरलीलात्वस्यापेक्षितत्वे सति ईश्वरत्वाविष्कारः ।

विश्वनाथ चक्रवर्ती भक्ति प्रयावली, रागवर्मचन्द्रिका पृ० ७६ ।

२ डा० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णराय मे माधुर्य भक्ति, हिन्दी अनुमधान परिपद लिखा विश्वविद्यालय दिल्ली प्रथम संस्करण, १९६२ प० १२६ ।

३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और विहार, भाग २, पृ० ४२ ।

गणिमय मंदिर में विद्रुम कपाट लसै,
 पुंजर बितान मध्य मुक्ता लरे रहै ।
 ता मध्य सिंहासन बिराजै मध्य जगदम्ब जहाँ,
 खासी दिव्य दासों छत्र चामर धरे रहै ॥
 किंकर समान सुर सिंह सनवादि जहाँ,
 तहा विप्र बल्लभ के दुगहूँ तरे रहै ।
 खरे हैं सुधाकर से धाकर से हार सदा,
 धाकर से बाहर प्रसाकर परे रहै ॥^१

भगवान शंकर का रूद्र रूप तो ऐश्वर्य भाव का द्योतक है। उनके रूप को देखकर समस्त जग-जग भय प्रसूत हो जाता है। डमरू, त्रिशूल, बाघम्बर गले में सर्प आदि का व्यवहार शरीर काति की भयावना बना देता है। किन्तु उनके ऐश्वर्य का वर्णन करते करते भी तत्कालीन युग परम्परा के निर्वाह स्वरूप ही मनाने लगता है—

हाथ लसै तिरसूल धने डमरू उमके सुनि पातर भाये ।
 हाविन शाविन भूत पिशाचन बीर अनेकन नाचत आये ।
 सोचन काल महा विकराल निहारत ही दुख वारिद भाये ।
 पादुका शब्द त्रिलोचन के सुनि सोचन मोद म पाये ॥^२

वामनाचाय भी शिव के ऐश्वर्य भाव की कल्पना करते हैं—

आस पास जोरि कर ब्रह्मा विष्णु ठाढे रहै,
 ठाढे चीर इन्द्र को कुबेर हूँ हिये रहै ।
 गाव वेदबानी द्वारपाल नित नेति भाखी,
 नृत्य देवतान को बधूँ सी लिये रहै ॥
 धामन भनत चन्द्र चूर के जटा पै छाये,
 चन्द्र की छटान क्यों घटान ता दिये रहै ।
 मानो इस सीस रजनीस हूँ प्रकास भोर,
 मजुल मरीचिका की छत्र सो लिये रहै ॥^३

इसी तरह अन्य कवियों की वाणी में ऐश्वर्य भाव से उपासना कर पुनीत पद को प्राप्त हुई है। युग रीतिकाल से प्राप्त मधुर संवेदन में ही मस्त था। इसलिए ऐश्वर्य भाव की कविता नाममात्र को प्राप्त है। कविवर भारतेन्दु जी तो प्रेमी रसिक जीव थे। उनसे ऐश्वर्य की कामना ही व्यर्थ है। हाँ कहीं कहीं कवि ऐश्वर्य की वर्णना करता है, लेकिन वहाँ भी अंत में वह मधुर रस-स्नात वाणी में भाव विमोह हो जाता है। अतः उन भावों को हम ऐश्वर्य की परम्परा में नहीं रख सकते।

कृष्ण काव्यधारा एवं भक्ति साधनाओं का प्रभाव

सौलभ्य उपास्य का प्रमुख गुण है, इसे ही माधुर्य, मधुर, मधुरा रसिक या रसि भक्ति कहते हैं। अवतारी भगवान् में जहाँ माधुर्य प्रधान होता है, वही रागमूला प्रवृत्ति या रागमयी भक्ति का

१ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (संपादक) कविवचनसुधा, २६ नवम्बर, १८८३ ई०, पृ० २।

२ हिन्दी प्रदीप, १९०५ ई०, संख्या १, पृ० २।

३ हरिश्चन्द्र चौमुदी, चैत्र सं० १९५१, भाग १, संख्या २, पृ० १६।

प्रादुर्भाव होता है। भक्त भगवान् के अतिमानवीय रूप को विस्मृत कर मानवीय रूप में उनकी शृङ्गार-परक मधुर लीलाओं का आस्वादन करता है। मधुर लीलाओं में प्रेम की पराकाष्ठा परिलक्षित होती है। डा० रूपनारायण पाण्डेय ने लिखा है कि 'इसमें सरसता के फलस्वरूप भावोद्रेक और तदुपरान्त आनन्द की प्राप्ति सहज है। और इसीनिम्ने माधुर्यभाव प्रेमी भक्त के लिये अधिक स्पृहीय है।' इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि माधुर्य भाव में भगवान् की उपासना का तात्त्विक भाव परक मधुर लीलाओं से अत्यधिक सहज है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे स्वीकार करते हुए लिखा है कि 'इस श्रेणी के भक्तों के अनुसार भगवान् के साथ जितने भी सम्बन्ध हो सकते हैं, उनमें मधुरभाव या कान्ता रति का सम्बन्ध सर्वाधिक मनोरम है।'^१ वस्तुतः यह सम्बन्ध विशेष निकटता का है। अर्थात् भावों में भक्त को भगवान् के कैक्टय का आस्वादन नहीं हो सकता। अतः इस आनन्दप्रदायिनी भक्ति का विषयात्मकत्व है, स्वयं लीला पुरुषोत्तम राम या शृङ्गार सम्राट् श्रीकृष्ण। अतः महाभारत, वीर-कथा, हितहरिवंश, स्वामी हरिदास आदि भक्ति के आचार्यों ने इसे प्रेमा भक्ति के रूप में स्वीकार किया है, बालात्तर में इसे ही माधुर्य भक्ति की संज्ञा दी गई।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आत्यंतिक स्नेह ही माधुर्य का स्वरूप है। भक्त भगवान् के मधुर प्रेम का आस्वादन करने के लिये जिस उपासना को स्वीकार करता है, उसे माधुर्य भक्ति, रसिक भक्ति, प्रेमलक्षणा भक्ति या रागानुगामभक्ति के नाम से पुकारा जाता है। इस उपासना में भक्त को उतने ही भगवद्विषयक आनन्द की प्राप्ति होती है जितनी की पति-पत्नी में लक्षित होती है। डा० माधव ने लिखा है कि पाप रहित शुद्ध अन्तःकरण में भगवत् धर्म के अनुष्ठान से भगवत्स्वयं द्वारा साक्षात्कृत वस्तुओं की प्रति तीव्र वैराग्य, सत् असत् पदार्थों का एव निज स्वरूप पर स्वरूपादिक 'अर्थ पंचक' का यथाथ ज्ञान प्रकट होता है, तत्पश्चात् भगवच्चरणारविन्दों में अन्तर्गत अविचल अनुरागपूर्वक स्नेह स्वरूपा भक्ति का स्वतः अन्तःकरण में जो उदय होता है वही भक्ति रागानुगा या प्रेमाभक्ति के नाम से पुकारी जाती है।'^२

माधुर्यभाव से प्रभु की आराधना की चार कोटियाँ हैं—

- (१) कान्ताभाव
- (२) गोपीभाव
- (३) सतीभाव, और
- (४) मजरीभाव

(१) कान्ताभाव

कान्ताभाव की उपासना में भक्त अपने को प्रिया और भगवान् को प्रिय के रूप में स्वीकार करता है। यह वह स्थिति है जब भक्त अपने भगवान् को नायक के रूप में स्वीकार करता है। लौकिक नायिका अपने नायक के मधुर ससंग से जो आनन्दानुभूति प्राप्त करती है वही आनन्दानुभूति भक्त अपने

१ डा० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कण्ठकाव्य में माधुर्य भक्ति, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९६२ ई० पृ० १३२।

२ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी मध्यकालीन धर्म-साधना साहित्यमयन प्रा० लि० इलाहाबाद, तृतीय संस्करण १९६२ ई०, पृ० १८०

३ भुवनेश्वरनाथ मिश्र भावत्रय रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० ३।

हृदय में अनुभव करता है। वह प्रभु के साथ समस्त सयोग वियोगपरक लीलाओं का रसास्वादन करते में सफल होता है। इसमें समयता की भावना विशेष होती है, जिससे प्रभु हो भक्त का सब कुछ हो जाता है। प्रभु के सिवा भक्त और कुछ नहीं चाहता। कान्ताभावपरक 'मधुराभक्ति' नियुग एव सगुण सबमें उपलब्ध होती है, लेकिन निर्गुण भावना में इसका आदर्श नहीं है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'निर्गुण मार्गी भक्तों ने जब तब प्रेमावेश में आकर भगवान् के प्रति मधुर भाव के पद कहे हैं। उनकी साधना का प्रधान और प्रथम वस्तु यह नहीं है। क्योंकि दादू आदि भक्ता ने और बातों के बीच इस मधुर प्रेम सम्बन्ध की भी चर्चा की है।^१ अतः यह एक स्वर में स्वीकारा जा सकता है कि इस तरह की उपासना सगुणोपासक स्त्री भक्तों द्वारा ही विशेष सम्भव है।

(२) गोपीभाव

भगवान् की मधुर लीलाओं की सगिनी गोपियाँ हैं। भक्त भगवान् की मधुर लीलाओं का ध्यान, स्मरण अथवा गान-इन्हीं गोपियों के माध्यम से प्राप्त करता है। वह गोपियाँ की सी समयता और आत्मीयता इसी के द्वारा प्राप्त करता है। अतः गोपीभाव से भक्त भगवान् के निकट का रसाद्रव प्राप्त करता है। वह गोपी रूप की प्राप्ति की कामना कर भगवान् की मधुर लीलाओं में प्रवेश पाना चाहता है। बल्लभ मतानुयायी प्रायः सभी कवि इसी भाव की उपासना में मस्त दीख पड़ते हैं।

(३) सखीभाव

सखीभावपरक 'मधुराभक्ति' कान्ताभाव और गोपीभाव दोनों से अलग है। इसमें भक्त न तो भगवान् की प्रेमिका बनना चाहता है और न गोपी के रूप में उनकी रसलीलाओं में प्रवेश ही पाना चाहता है। वह तो केवल कृष्ण प्रिया राधिका के पदों का सेवन करना चाहता है। वह राधिका के सखी पद को प्राप्त करना ही अपने जीवन का लक्ष्य समझता है। इस प्रकार वह राधा-कृष्ण की केलि में सहायता प्रदान कर उन मधुर लीलाओं के दशन से ही अपने जीवन को धन्य समझता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'भक्त लोग राधा और कृष्ण के परस्पर प्रेम की भावना द्वारा मधुररस में लीन होते हैं—ठीक उसी प्रकार जैसे किसी नायक-नायिका के प्रेम व्यापार को पढ़-सुनकर पाठक या श्रोता शृङ्गाररस में मग्न होता है।'^२

(४) मजरीभाव

सखीभावपरक 'मधुराभक्ति' में सखीभाव और मजरीभाव दो प्रकार के प्रीति विधान हैं। सखीभाव की उपासना में सखी राधा की समजातीया या समवयस्का सेवा से श्रीकृष्ण प्रीतिविधान करता है। लेकिन सखियों में एक अन्य प्रकार की सखी का भी वर्णन मिलता है जो केवल राधाकृष्ण के मिलन आदि की व्यवस्था करना अपना लक्ष्य समझती है। सखी का सम्बन्ध केवल राधा से रहता है, लेकिन मजरी श्रीकृष्ण राधा दोनों से सम्बन्ध रखती है। गौडीय सम्प्रदाय में मजरी भाव की उपासना अत्यन्त सहज है।

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी मध्यकालीन धर्म साधना, साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद, सन् १९६२, पृ० २०५।

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सूरदास, संपादक विश्वनाथप्रसाद मिश्र सरस्वती मन्दिर वाराणसी पंचम संस्करण, १९६१ ई०, पृ० ७६।

भारतेन्दुकालीन कृष्णकाव्यधारा और भक्ति सम्प्रदाय

निम्बाक सम्प्रदाय

कृष्ण भक्ति का सर्वप्रथम साम्प्रदायिक रूप देने का श्रेय इसी सम्प्रदाय को प्राप्त है। ऐसा नहीं कि इस सम्प्रदाय के पूर्व कृष्ण भक्ति का प्रचलन नहीं था। कृष्ण भक्ति का प्रचलन इसके पूर्व भी था लेकिन इस कृष्ण भक्ति का कोई रूप नहीं था। आचार्य निम्बाक ने कृष्ण भक्ति का प्रचार ही नहीं किया बल्कि इसे एक साम्प्रदायिक रूप भी प्रदान किया। श्रीराधा सर्वेश्वर शरण देशाचार्य ने लिखा है कि श्रीराधा की उपासना श्रीनिम्बाचार्य से पूर्व भी प्रचलित थी और उन्हें परम्परागत रूप से ही प्राप्त हुई थी जिसका फिर इनके द्वारा विशेष प्रचार हुआ।^१

उपासना का स्वरूप

उप-समीपे आसना स्थिति उपासना। अर्थात् जिस त्रिया के द्वारा हम अपने को इष्ट के साथ विराजमान कर सकें, उसी का नाम उपासना है।

यह सम्प्रदाय अपनी प्राचीनता के लिये विशेष महत्वपूर्ण है। आचार्य निम्बाक ने अपनी उपासना का स्वल्प निम्नांकित श्लोक में दर्शाया है—

अगे तु वामे युपमानुजा मुना,
विराजमाना अनुरूप सोमगाम्।

सखी सहस्र परितेजिता सदा,
स्मरेत् देवी सरलवट वामदाम् ॥^२

आचार्य निम्बाक ने इस श्लोक में कृष्ण के उस स्वरूप का स्मरण एवं ध्यान के लिय कहा गया है जिसके वाम भाग में राधिका जी अपनी सहस्र सखियों के साथ विराजमान हैं। सखियाँ अलंकार, वस्त्र, ताम्बूल, माला चामर व्यञ्जन आदि लेकर सेवा में तत्पर हैं।

इस प्रकार इस सम्प्रदाय में राधा कृष्ण की युगल उपासना स्वीकार की गई है। इनका पारस्परिक सम्बन्ध प्रिया प्रियतम का है। इस सम्प्रदाय के भक्त कवि युगल सरकार की मधुर लीलाओं की रचना करते हैं और सखी भाव से उनकी उपासना करते हैं। इन प्रेमलीलाओं में शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर इन पाँच रसों का स्वच्छ प्रवाह प्रवाहित होता है। इन रसों की अपनी अपनी भावना में अलग अलग प्रधानता है लेकिन प्रत्येक रस की उपासना में इन सबका थोड़ा बहुत पुट अवश्य रहता है। साथ ही अपनी अभिरुचि के अनुसार इन पाँचों में से किसी भी एक भाव को अपना सकता है। ये रस भाव के विकास के साथ साथ परिवर्तित होते जाते हैं। अर्थात् शान्त, दास्य में, दास्य सख्य में, सख्य वात्सल्य में और वात्सल्य मधुर भाव में विवसित हो जाता है।

निम्बाक सम्प्रदाय की मधुर लीलाओं में राधा कृष्ण का विवाह और उनके बिहार आदि का विशेष महत्व है। भारतेन्दु जी ने राधा-कृष्ण का विवाह ११ पदा में सविस्तार वर्णित किया है। इन कुसुमित पदों में कवि की भावधारा अगम्य सरिता की भाँति प्रवाहित होती है। यद्यपि इस प्रकार है—

द्वलह श्रीकृष्णराज पुलि बैठे कुञ्ज आन।

फूलन को सेहरो फूलन के जमन फूलन के सब साज ॥

१ कल्याण, उपासना विशेषांक, वर्ष ४२, संख्या १, २०२४, पृ० २७।

२ आशुलोकी, श्लो० ५।

फूल सखि गीत गाव देव फूल बरसावें फूलों सबल समाज ।

फूली श्रीराधा प्यारी देखि फूली वृजनायी ।

हरीचंद फूलों अति आज ॥^१

मधुर भाव की लीलाओं का बे-द्रस्थल वृन्दावन है । वृन्दावन को इस सम्प्रदाय में विशेष महत्ता है । राधाकृष्ण की लीलाओं का उल्लेख प्रायः वृन्दावन सम्बन्धी प्रत्येक पदो में हुआ है । वृन्दावन इस सम्प्रदाय का परम धाम है । भारते-दुकालीन कवियों ने वृन्दावन की महत्ता को स्वीकार किया है । प्रायः सभी कवियों ने वृन्दावन को मधुर लीलाओं का वर्णन किया है । भारते-दु को उसे धाम की संज्ञा देते हैं—

गंगाबाद-मतन मद हरत गरजि हरि-नाम ।

जयति कोऊ सो केसरी वृन्दावन जन धाम ॥^२

वृन्दावन धाम में विरक्त होकर निवास करने का इष्ट सम्प्रदाय में अत्यधिक महत्व है । भक्त बल्लभ किशोरी जी वृन्दावन धाम की वामना रखते हुए युगल रूप रस के व्यासे हैं—

श्रीवृन्दावन-वास दीजिये यही हमारी आशा है ।

जमुना तीर सुधाय माधुरी जह रसिका का बासा है ॥

सवानुज मनोहर सुन्दर इक रस बारी भासा है ।

‘सलितकिसोरी’ का दिल बेकल जुगुल रूप रस व्यासा है ॥^३

कवि की भक्ति भावना में वृन्दावन की विशेष महत्ता है । वह केवल वृन्दावन की ही नहीं बल्कि वहाँ के कण-कण से भी प्रेम करता है । वह उसे ही अपना प्रिय समझता है, जो वृन्दावनरज का दर्शन कराता है । वह श्रीकृष्ण राधा का दम-भाषिलापी है । उसके हृदय में वृन्दावन धाम से बहने वाली तरनि-तनूजा के मधुर जलपान कराने वाले के प्रति भी विशेष अनुराग है । वह उसे अपना उपकारी समझता है । वृन्दावन के प्रति इतनी श्रद्धा भारते-दुकालीन अथ किसी कवि में नहीं पाई जाती । कवि की उर्जा बड़ी ही अनूठी है—

श्रीवृन्दावन रज दरसावै सोई हितु हमारा है ।

राधा-मोहन-छग्री छकावै सोई प्रीतम प्यारा है ॥

बालिनी जलपान करावै सो उपकारी सारा है ।

‘सलितकिसोरी’ जुगुल मिलावै सो अश्वियों का सारा है ॥^४

कवि मगधानुप्रसाद ‘रूपकला’ वृन्दावन की महत्ता बतलाते हुए कहते हैं, वह तदुत ही भावगम्य है ।

धनि वृन्दावन धाम है धनि वृन्दावन नाम ।

धनि वृन्दावन रसिक जन धनि श्रीश्यामा श्याम ॥^५

१ ब्रजवल्लभदास (संपादक) भारते-दु प्रभावती, दूसरा खण्ड, रागसमूह, पृ० ४१३ ।

२ वही, मन्तसप्तस्व, छं० १२, पृ० ६ ।

३ डॉ० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के वृष्णकाव्य में माधुर्यमन्त्रि, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९६२, पृ० २३५ ।

४ वियोगी हरि ब्रजमाधुरी सार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, आठवाँ संस्करण, २००६, पृ० २७२ ।

५ आचार्य निवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ६२ ।

ललित माधुरी जो भा वृन्दावन के आनन्द पर बलि जाते हैं। वहाँ का आनन्द अपूर्व है। एक तो वृन्दावन की अपनी सुषमा ही अजीब है दूसरे राधा माधव का वह मधुर लीलाओं का वैदस्थल है। इस लिये वृन्दावन की छवि और भी अपूर्व हो जाती है—

देखो बलि वृन्दावन आनन्द ।

नवल सरद निसि नव वसत रितु नवल सु राकाचन्द ॥

नवल मोर पिक कीर कोमिला वृजत नवल मलिन ।

रटत थोरावे रावे माधव भाग्य सीतल मदा ।

नवल बिसोर उमगन खेतत नवल रास रसकद ।

ललित माधुरी रसिक दोऊ बर निरतत दिये करवद ॥^१

कवि नवल शब्द की बार बार आवृत्ति कर भाव में भी नवीनता प्रदान कर देता है।

उपास्य का स्वरूप

इस सम्प्रदाय के उपास्य श्रीकृष्ण तथा वृषगानुनन्ति हैं। इन्हें प्रिया प्रियतम या श्यामा श्याम की सजा से अभिहित किया जाता है। इनका पारस्परिक सम्बन्ध स्वकीया भाव का है। भारत-तंडु जो बल्लभ सम्प्रदाय के थे, लेकिन उनकी उपासना में 'अने तु नामे वृषमानुजा भुदा' की स्पष्ट छाप है। वे उसी कृष्ण की उपासना करते हैं जिसके दायें हाथ में चन्दावली नामक सखी है और बायें हाथ में उनकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधिका जी विराजमान हैं—

दक्षिण दिसि च दावली श्रीराधादिसि वाम ।

तिनके मधि नट रूप घर जै जै श्रीधनश्याम ॥^२

अतः इस सम्प्रदाय में उपास्य का स्वरूप युगल रूप है। यहाँ भक्त उसे चेतना चेतनात्मक इस दृश्यमान जगत् को उही का रूप समझता है। वह केवल रिझाने के निमित्त इस प्रकार चौरासी लक्ष-योगि का रूप पकड़ता है।^३ इस युगल सरकार का रूपावयव अनुपम है, जिसे देखकर नयन मन खूबत हो जाता है। राधा-कृष्ण दोनों वास्तव में एक प्राण हैं, किंतु सीला के लिये उन्होंने दो विग्रह धारण किये हैं।^४ जल तरंग बुधि प्राण पुनि दीप प्रकाश समान

जुगल अभिन्न हु दोय वपु जय राधा मगवान ॥^५

उपासक का स्वरूप

^१ निम्बाक सम्प्रदाय में मधुररस की पयस्विनी प्रवाहित होती है। मधुररस भावना में सभी स्त्री पुरुषों का अधिकार है। उपासक अपने को उपास्य प्रिया प्रियतम श्रीयुगलविशार की सहवरी मानकर उनकी आराधना करता है। वह अपने को काता नहीं मानता। काता मानने में उसे कठिनाई है, क्योंकि वान्ता भाव में स्व-सुख-सुखित्व की भ्रमक आ जाता है। और किशोरो जी के साथ स्पर्धा के

१ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, वर्ष २६, २०११ पृ० ४३८ ।

२ ब्रजरत्नदास (संपा०) भारतेन्दु प्रवावली दूसरा खंड, भक्तिसर्वस्व, पृ० ५० ।

३ तुमहि रिझावन हित सज्या लख चौरासी रूप ।

रीझि देहु गति लोझि नै बरजहू मोहि ब्रज भूप ॥

—वहाँ, पृ० ७८ ।

४ डा० रुपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में माधुर्य भक्ति, पृ० २३० ।

५ ब्रजरत्नदास (संपा०) भा० ग्र० २, बले नातिक सं० १३, पृ० ७७

स्थान पर ईर्ष्या भावना की सृष्टि हो जाती है। अतः यही उपासक अपने उपास्य की लीलाओं को देखकर प्रमुदित होता है। इस प्रकार इस सम्प्रदाय में उपासक तत्सुख सखी का रूप प्राप्त करता है। वह अपने उपास्य को सुखी देखकर सुखी होती है। उनका अपना सुख प्रिया प्रियतम का सुख है। कवि भारतेन्दु जी अपने सेज पर बनवारी को बुलाकर सुरति सुख का अनुभव करते हैं—

भूरी सेजा आवो जू लालबिहारो ।
रंग रंगीली सेज सवारी लागी छै आशा धारी ।
बिरह बिधा बाढ़ी घणी हो मैसो नहि जात समारी ।
'हरीचन्द' सौ जाय न्हो कोऊ तलफै छ पारे बिन प्यारी ।^१

निष्कर्ष

उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतेन्दुकालीन कविता पर निम्बार्क सम्प्रदाय की मधुर लीलाओं की स्पष्ट छाप है। भारतेन्दु जी यद्यपि बल्लभ मतानुयायी थे, फिर भी उनकी कविता पर इस सम्प्रदाय की प्रेमलीलाओं की स्पष्ट छाप है।

चैतन्य सम्प्रदाय

उपास्य का स्वरूप

इस सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण उपास्य हैं। भक्त इनकी उपासना गोपी भाव और मजरी भाव से करता है। राधा का परकीया रूप ही इस सम्प्रदाय में माय है। इस सम्प्रदाय के भक्त कवि इनकी मधुर लीलाओं का रसास्वादन गोपी रूप में या मजरी के रूप में करते हैं। ये युगल स्वरूप अपने भक्तों की तुष्टि के लिये प्रकट और अप्रकट लीलाएँ करते हैं। प्रकट लीलाओं की इस सम्प्रदाय में विशेष महत्ता है। इन लीलाओं का ध्यान इस सम्प्रदाय का भक्त कवि बड़ी सुगमता से कर लेता है।

भारतेन्दुकालीन कविता में श्रीकृष्ण का स्थान विशेष है। वे उनका रूप स्वभाव शील-भाष्य आदि इस प्रकार का है कि भक्त का मन-मन सहज ही में लोभायमान हो जाता है। कवि कृष्ण के नृत्य का वर्णन करते हुए प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ भाषा और भाव का इतना सुन्दर साम्य उपस्थित करता है कि ब्रजराज के नटराज साज हो देखकर धन भी रीझ जाता है। शब्दों में नृत्य की सी छटा सन्निहित होती है।

नाथत ब्रजराज आज साजे नटराज-साज,
पावस सौ बनि बदि कै होड सी लगाई ।
कोकिल कल बसी धुनि नृत्य कला मोर गटनि,
पीत बसन चपला दुति छीत चमकाई ॥
ज्यो ज्यो बरसत सुवेस त्यों त्यों रस बरसत,
हूरि धन गरजत उत इत रहै मृदग बजाई ।
हरीचन्द जीति रंग रहौ आनु ब्रज अखारै,
हारे धन रीझि देव कुसुमन भर लाई ॥^२

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्रेम मालिका, छ ३१, पृ० २५ ।

२ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रेमाश्रु-वर्षण, छ० ४६, पृ० १२८ ।

राधा-कृष्ण की मधुर लीलाओं का ध्यान एवं गान भारतेन्दु जी की उपासना है। उन्होंने गोप-
दासजी के साथ श्रीकृष्ण के नृत्य का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है—

सरन सुवन्ता सग गोपी बाल ॥

बजत भाभ भग आवाज चङ्ग बीना ताव ।

जात बलि 'हरिचन्द' छवि सखि मुमग्ध्याम तमान ॥^१

गौडीय सम्प्रदाय में साधक राधा-कृष्ण की सेवा के लिये शुद्ध अतःकरण से मजरी का अनु-
गमन करता है।^२ मजरी युगल स्वरूप की उपासना के नित निजी सुख का स्थल नहीं करती। वह
भगवान् श्रीकृष्ण की मधुर लीला के निमित्त उनको आह्वानि शक्ति श्रीराधा का माज शृङ्गार करती
है। वह वेपथूरा, केस वियास तथा अथ साधना से राधा का शृङ्गार करके उसे रज्ज के साथ रमण
करने के योग्य बना देती है। यहाँ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जो मजरीभाव के रूप में राधिका का शृङ्गार
दुलहिन के रूप में करते हैं। प्रज्जमूमि अपनी प्राकृतिक छत्र के लिये अपूर्व है। अतः व्रज की लताओं
से राधा का शृङ्गार बड़ा ही मनमोहक हो गया है। वरि को राधिका के नवल दुलहिन का रूप अत्यन्त
सुवन्द है—

सखियन आज नवल दुलहिन को फून सिंगार बनायो हो ।

फून के आभरन मनोहर रवि रवि के पहिरायो हो ॥

फूलनि धनी गुह्री मनोहर फूनन मौर मुद्रायो हो ।

फूनन के बगना कर बांधे फूलनि मध्य धायो हो ॥

फूलनि चोली फूलनि सारी फूलनि सह्या भायो हो ।

दुलहिन दुलहा गाँठि जोरि के एक पास बैठायो हो ॥

फूली फूली सब सखियन मिलि फूल्यो मगस गायो हो ।

फूली जोरि देखि नयन सो 'हरीचन्द' सुख पायो हो ॥^३

अष्टकालीन लीला

भारतेन्दुश्रीन कविता की कृष्णाश्रयी शाखा पर चैतन्य की अष्टकालीन लीलाओं का प्रभाव
अस्वीकार नहीं किया जा सकता। स्वयं भारतेन्दु जी भी उक्त प्रभाव से वंचित नहीं हैं। उनकी
कविताओं में इन अष्टकालीन मधुर लीलाओं का चित्रण बहुत ही सरस एवं सरल भाषा में भावपूर्ण
हुआ है। वरि को पूणत सफलता मिली है। ये लीलाएँ दो प्रकार की हैं। एक सयोगपरक और
दूनरी वियोगपरक। सयोगपरक लीलाओं में रास, वसीचोरी, जलकेलि, होली भूलन, चौरहरण, धृत
झीड़ा जादि सभी प्रकार की लीलायें हैं। वियोगपरक लीलाओं में पूर्वराग मान और प्रवास का वर्णन
किया जाता है। गौडीय सम्प्रदाय में सयोगपरक लीलाओं में जो अष्टकालीन लीला का वर्णन किया
जाता है वह निम्नांकित है—निशांत लीला, प्रातःकाल की लीला, पूर्वाह्नकालीन लीला, मध्याह्नकालीन
लीला, अपराह्नकालीन लीला, सायंकालीन लीला, प्रदोषकालीन लीला, निषेधकालीन लीला।^४

भारतेन्दु जी राधिका के साथ श्रीकृष्ण का तेज पर केलि वर्णन करते हुए निशांत लीला का

१ प्रजरत्नदाम (सपा०) भारतेन्दु ग्रन्थावली स्फुट कविताएँ छ० २१ पृ० ८३४ ।

२ डा० हनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में माधुर्य भक्ति पृ० २८० ।

३ प्रजरत्नदाम (सपा०) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड राम सग्रह, छ० ११८, पृ० ४७७ ।

४ डा० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में माधुर्य भक्ति पृ० २७५६ ।

अनुभव करते हैं। माता और भाव दोनों से रस की वर्षा के छँटे अच्छे लगते हैं। कवि राधिका को गिरिधर के साथ सेज पर पाकर अपूर्व आनन्द की प्राप्ति करता है—

रसिक गिरिधर सग सेज साईं मली ।
 रीम्कि पिय देत सुखदान कीरति-लली ।
 उभकि भुज भूमि मुख छूटि रस अर-सुख ।
 मेदि जिय दुसह दुख करत नव रगरली ।
 भुजन सो भुजवधे अग प्रति अग सधे ।
 वसमतक कुम्हिलात सेज कुसुमन-कली ॥
 अग उभगे रग पिया प्यारी सग प्रेम रति ।
 अग पद मदन मद दलमली ।
 सली 'हरिचद' रही रीम्कि तन-मन-वारि ,
 करत गुनगान रसमत चहुँ दिसि अली ।^१

कवि राधिकारमण का वर्णन करते अघाता नहीं। जैसे रस बस में रात का पता युगल स्वरूप को नहीं चलता ठीक उसी प्रकार कवि रस वर्णन से भागता नहीं। वह अपने एक पद में रसबस में निसि जात में जानो की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत करता है। गोडीय सम्प्रदाय की निशात सीला में इस प्रकार का पद अत्यन्त दुर्लभ है। यथा—

रस में निसि जात न जानी ,

बहुत सुनत कुद हसत हसावत कुगजोरत छन सरिस बिहानी ।
 आलस बिबस जम्हात परस्पर कहि बलिहार मयुर मुर बानी ,
 रुद लालची दुग नहि मयकत जागत ही निसि सखल सिरानी ।
 अरुके प्रेम-फद नहि सुरभस मुख चूपत हरिराधा रानी ,
 'हरिचद सलि-मन-सोइ गावत जुमल प्रेम की अरुप बहानी ।^२

धीरहरण सीला मगवान् कृष्ण की सयोगपरक सीलाओं का एक अंग है। कवि उनके धीर-हरण सीला का वर्णन अपनी वाणी को पवित्र करता है। यह सीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण समी गोप बालाओं का धीर लेकर कुश पर चला गया है। वे श्रीकृष्ण से आरजू करती हैं। बहुत आरजू मिश्रित के बाद उन्हें धीर प्रदान कर देते हैं। गोप बालाएँ धीर पहन कर कुजो पर चढ़ जाती हैं और कुजो पर बैल की कहानी शुरू हो जाता है। इस तरह अद्भुत माधुर्य सीला विधि और हर को भी सुनम नहीं है। कवि इस तरह की माधुरी भूति को हृदय में बिठा लेना चाहता है—

देखी सोमिमत तरु पर नट-वर ,

भोर मुकुट कटि पीत पिछोरी मुरली हाथ सुधर वर ।
 बोने हरि बाहर हूँ आओ हे वन-गाल चतुर-तर ,
 नाभी होइ जमुन में पैठी पूजहु आइ दिवारर ।

१ प्रवरलगाव (सफाक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, नागरीप्रचारिणी समा, वासी, राग सग्रह, पृ० १०४, पृ० ४३२ ।

२ वही, पृ० १०४, पृ० ४३२ ।

सुनि पिअ वचन निक्सि सब आई दीनो चीर गुजघर,
 पहिरि चीर यजनारि-नवेली केलि बरी कुजन पर।
 'हरीचद' हरि की यह सोला नहि पावत बिधि अरु हर,
 कोमल मजु सावरी भूरति नित्य बिराजौ हिय पर।^१

भारतेन्दु जी ने रासलीला सम्बन्धी पदा की रचना बहुत कम की है। चैतन्य सम्प्रदाय में रास लीला की विशद व्याख्या की गई है। भारतेन्दु जी का रासलीला सम्बन्धी छेष्ठ पद प्रस्तुत किया जा रहा है—

बुन्दावन उज्जल बर जमुना-तट मदलाल
 गोपिन सग रहस रह्यो सरद जामिनी।
 निरतत गोपाललाल सग में वृज-बाल बनी
 अद्भुत गति लेत कोक-कलित जामिनी।
 लाग डाट सुर-बधान गावन अबूक तान
 ततयेइ ततयेइ येइ गति अगिरामिनी।
 गोपिन सग क्याम सुन्दर मडल मयि सोमित अति
 बिहरत बहु रूप मानो मेष दामिनी।
 पाषयो नम चद देखि रैन गति निधिल भई
 लखि हरि गजपति सग गज-गामिनी।
 'हरीचद' सोमा लखि देव-मुनि नम बिपक्षित
 मानी हरि साथ सबै ब्रज गामिनी।^२

प्रस्तुत पद में मूल्य और संगीत के शास्त्रीय शब्दा की प्रवृत्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

जलक्रीडा में नौका बिहार का विशेष स्थान है। राधा-कृष्ण में यमुना पुलिन पर प्रायः बिहार करते दृष्टे जाते हैं। भारतेन्दु जी की बिनासी प्रवृत्ति नौका बिहार के बिच को कब भूलनी। सरिस-तरण उह अत्यन्त प्रिय था। अतः राधाकृष्ण को नौका पर बैठा कर बिहार कराते हैं। नौका बिहार दृश्य का अकन बहुत मनोहारी हुआ है—

नाव चदि दोऊ हत उत डोल।
 धिरवत कर सो जल सचित करि, गावत हसत बलोल।
 करनधार ललित अति सुन्दर, सजि सब खेवत नाव।
 नाव हलनि मैं पिपा बाहु मैं, प्यारी उरि सपटावै।
 जेहि दिसि करि परिहास भुकावहि सबही मिलि जल-यानै।
 तेहि दिसि जुगल सिमिटि भुकि पर ही सो धवि कोन बलानै।
 नलित महत दाव अब मेरो तू मो हाथ न प्यारी।
 मान करल की सौह खाइ तो हम पहुँचाव पारी।
 हसत हसावत छीट उठावत बिहरत दीऊ सोहै।
 'हरीचद' जमुना-जल फूँदै जनज सरिस मनमोहैं॥^३

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, म्यूट कविताएं छ० १४, पृ० ८३१-३२;
 २ वही, राससंग्रह, छ० ८१, पृ० ४६४।

३ ब्रजरत्नदास (सम्पादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी राग संग्रह, छंद १६ पृ० ४५७।

गौडीय सम्प्रदाय में सयोग पक्ष की लीलाओं में भूने की अपनी महत्ता है। भारतेन्दुशालीन कवि कृष्ण और राधा को भूने पर बैठे देख अति आनन्द से झूम झूम जाते हैं। श्वाल बाल और गोप बंधुआ की सहायता से रसिकराज शिरोमणि श्रीकृष्ण को यह लीला कृष्णकाव्यधारा में नव नूतन रस का संचार करती है। भारतेन्दु जी का यह पद किसके मन मयूर को नहीं मत्त करता। पद इस प्रकार है—

झूनत है राधिका स्याम सग नवरग सुखद, हिंडीरे ।
मावत मालव राग रस मरे सा मान मधुरे सुर जोरे ॥
उमगि रही ब्रजनाथि नवेली पचरग चौर पहिरि चित चोरे ।
पचरग छवि रस जुगलमाधुरी बहि न जाइ श्यामल रग गोरे ॥
बरसत मद मद धन तेहि छन पच रग वादर सब सुल बोरे ।
'हरीचंद' वृषपानु नन्दिनी कोटिन ससि-छवि छिन महुँ छोरे ॥^१

सयोग-पक्ष की लीलाओं की भाँति ही वियोग पक्ष की लीलाओं का भी वर्णन तत्कालीन कविता का प्रमुख विषय है। विरह प्रेम तत्त स्वर्ण है। भारतेन्दु जी ने विप्रलम्भ शृङ्गार का अत्यंत सुन्दर एक विशद वर्णन किया है। पूर्वानुराग का वर्णन करते समय कवि का रसाम्यासी हृदय रस से सराबोर हो जाता है। सखियाँ लोकनाज, कुलकानि आदि की बातें कहकर तरह तरह से समझाने का प्रयत्न करती हैं। पर यहाँ तो 'सूरदास की कारीकामरि चढा न दूजो रग' ऐसा पक्का रग चढ गया है कि वह घने से छूटता नहीं बल्कि और निखरता है। वह कहती है—

वह सुन्दर रूप बिलौकि सखी, मन हाथ ते मेरे भय्यो सो भय्यो ।
चित माधुरी मूरति देखत ही 'हरिचन्द' जूझाय पय्यो सो पय्यो ।
मोह औरन सो कछु काम नहीं, अब तो जो कलक लय्यो सो लय्यो ।
रग दूसरो और चढेगो नही, अलि सावरा रग रय्यो सो रय्यो ॥^२

राधा गौडीय सम्प्रदाय में परकीया मानी गई हैं और कृष्ण की बहुनायकता तो प्रसिद्ध ही है। अतः राधा उन पर लीक जाती है। पहले उलाहना देती है,^३ लेकिन उन्हें जब मालूम हो गया कि इस काले रंग पर दूसरा रंग चढ़ने वाला नहीं है, तब साधारण होकर मान करना ठान लिया। वे बसतश्रुतु को मान के अनुपपुक्त समझते हुए भी मान कर बैठती हैं—

महु नव निनु बसत की सुन्दर मान न कीबे प्यारी ।
कर जोरे मनुहार करत हैं ठाढ़े श्रीगिरिप्यारी ।
कह पिय कह तू यह औसर उठि चलि कोप निवारी ।
भरि रग सो चित्र नवल साल को लै बचन पिचकारी ।

१ ब्रजलदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, प्रेमाश्रु वषण, छ० ४१, पृ० १२७ ।

२ यही, प्रेममाधुरी, छ० ११३, पृ० १७२ ।

३ सजन तोरी हो मुख देखे को प्रीत ।

तुम अपने जोबन मदमाते कठिन विरह की रीत ॥

जहाँ मिलत तहाँ हँसि हँसि बोलत यावत रस के गीत ।

'हरीचंद' घर घर के गौरा तुम मतलब के गीत ॥

यही, प्रेम-संरंग, छ० ३२, पृ० १८५ ।

साध सभै कोइल वन कोने, फूल रही फुनवारी ॥

गिरिधर पियहि भेंट अकम सरि हरीचन्द बनिहारी ॥^१

१

यही तब नहीं मान तो कभी कभी इतना बड़ जाता था कि रसिक गिरोमणि कृष्ण को मनाते मनाते सेवरा हो जाता था। चैतन्य सम्प्रदाय में इसे गुरु मान की सजा दी जाता है—

मनवत मनवत हूँ गयो मोर ।

ससित निला नायक पच्छिम निवि सोर बरत तमचोर ।

पियहि सबै निनि जागत बीती, धरे धरे^१बर जोर ।

आलस बस अब सरसरात पग निरखन तुव दुग जोर ।

क्यो सखि प्रेमहि पाव लगावति करिबै बुधा भरोर ।

‘हरीचन्द नीर सगु जठि पिके के, हा ताहि कहन निहोर ।’^२

वियोग-रस की मधुरसीलाओं में प्रवास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रवास का वर्णन प्रबोध काव्य में अधिक होता है। यहाँ भारतेन्दुकालीन कवि ने तो प्रबोधकाव्य की रचना करने में अपनी रसि नहीं दिलाया है। अतः अय लीलाओं की भाँति ही स्फुट पद्य में प्रवास का वर्णन उपलब्ध है। प्रवास में दुःखातिशय का प्रधान कारण पूर्व-वैलि-स्मरण होता है। गोपियाँ और स्वयं राधा दोनों के हृदय में एक टीस है। मन में एक बचोट है। राधा के बिरह में जो दीन-दशा होती है उसका अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन भारतेन्दु जी ने प्रस्तुत किया है। राधा का जो पंथ जोर दुःख है उसमें सहानुभूति रखन वाला कोई नहीं है—

भरम की पी न जाने कौय ।

कासों कहीं कौन पुनि माने बैठ रही धर शैय ॥

कौऊ जारनि न जाननवारी के महरम सब भोय ।

अपुनो कहत सुनत नाहि मेरी केहि समुभाऊँ माय ॥

सौव-साज कुल की मरजात बठि रही सब भोय ।

हरीचन्द ऐसहि निवहेगी होनी होय सों होय ॥^३

बिरहातुर ही वह कान्ह कान्ह पुकारती है एवं दीवानी सी प्रेमती है—

मौन रहत कबहूँ कबहूँ तू बोनत अलबल बानी सी ।

ठगी ठगी रस पगी श्याम रट लगी कबहुँ अतुलानी सी ॥

तन की सुधि गुरु जन की मैं त्रिगु हरीचन्द रस तानी सी ।

काके मद भागी होतत क्यो ध्यारी फिरत दिवानी सी ॥^४

इस तरह अनेक पदों में भारतेन्दु जी ने राधा की बिरह विदग्ध-स्था का वर्णन किया है।

गोपियाँ श्रीकृष्ण की अनन्य सखा हैं। रसवैलि उसके बिना समभव नहीं। भारतेन्दु जी गोपियों के परम भक्त हैं। चैतन्य सम्प्रदाय भक्ति के क्षेत्र में गोपियाँ का उत्तम स्थान देता है। परमभक्त भारते

१ डा० किशोरीनाथ गुप्त भारतेन्दु और अय सहयायी काशी, पृ० १०२ ।

२ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड प्रेमभलाप, छ० ४२, पृ० २८७ ।

३ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड प्रेमकुलवारी कविताएँ, छ० ४५, पृ० ५८७ ८८ ।

४ वही, स्फुट कविताएँ छ ४ पृ० ८६२ ।

उनकी प्रशंसा करते अथवा नहीं क्याकि प्रेम के तत्त्व को गोपिया न हृदयगम कर लिया था। उनके लिये प्रेम प्रेम है प्रेम में मीन मेघ नहीं होता।^१ अतः सब दुःख सहते-सहते भी मरने के पहले एक बार कृष्ण को देख लेना ही चाहती है। दशन की उत्कट अभिलाषा लिये हुए गोपिया कहती हैं—

१ । फेरहु मिलि जँए इक बार ।

इन प्रानन को नहिं मरोसो ए हैं चतन सवार ॥

जो छतियन सो लागि नहिं विहरो प्यारे नन्दकुमार ।

तो दूरहिं सा वदन दिखाओ करी लल मनुहार ।

नहिं रह जाय बात जिय मेरे यह निज चित बिचार ।

१ । हरीचंद योतेहु के मिस ब्रज आया बिना अवार ॥^२

मध्याह्न-लीला का समय बारह से अठारह घड़ी दिन बड़े तक है।^३ इसमें जलक्रीड़ा और रथक्रीड़ा आदि मधुर नौलाओ का वर्णन मिलता है। भारत-दुयुगीन कण्ठकाव्य में जलक्रीड़ा और रथक्रीड़ा दोनों की विशद व्याख्या हुई है। जलक्रीड़ा सबी प्रस्तुत पद को उद्धृत किया जाता है—

‘दोउ मिलि बिहरत जमुना-तीर में ।

करि कर के जलयत्र चलावत भीज रही लट नीर में ॥

इस उत तरत सबी जन मोहत मनहु कमल जलमीर की ।

छोट उडावत हसत हसावत बोलनि मनु पिचक कीर की ॥

सावरे अग गौर तन सोहत लपटनि भीज चौर की ।

‘हरीचंद लखि तन मन बारत छबि राधा-बलवीर की ॥^४

यक्रीडा

भारतेन्दु जी रथयात्रा के कई पद रचे हैं। कण्ठ का रथ परम विचित्र चारुचिन्तित एव चल चक्रो बाला है। वह जगद्विजयो है। रथ पर ध्वजा फहरा रही है। बलाहक शय्य सुप्रीव और मणि पुष्प नामक चार अति तरलतर सुरग पथ सुपथ उभे खाचते हैं। पताका का कलश चमक रहा है, उसके

१ प्रेम में मीन मेघ कतु नाही ।

अति ही सरल पथ यह सूघो छल नहिं जाके माही ।

हिंसा द्वेष ईरवा मत्सर मद स्वारथ की बातें ।

कबहुँ माके निबड न आव छल प्रपथ की बातें ॥

सहज सुभाविक रहनि प्रेम की पीतम सुख सुखकारी ।

अपुनो कोटि कोटि मुख पिय के तनिवहि पर बलिहारी ॥

जह ॥ शान अभिमान नेम रत विषय-वासना आवै ।

रीझ सीझ दोऊ पीतम की मन आनद बढ़ावै ॥

परमारथ स्वारथ दोउ पीतम ओर जगत नहिं जानै ।

‘हरीचन्द यह प्रेम रीत कोऊ बिरले ही पहिचानै ॥

द्रजरत्नदाम (संपादक) भारतेन्दु ग्रथावली दूसरा खण्ड विनय प्रेमपचासा छं० ३२ पृ० ५४८ ।

२ यही प्रेमफूलवारी छं० २५ पृ० ५८३ ।

३ डा० रूपनारायण पाठेय ब्रजभाषा के कण्ठकाव्य में भाष्य, पृ० २ ।

४ द्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड राग सप्तह छं० १६, पृ० ४५५ ।

ऊपर चक्र है, उसके नीचे विनत पवनसुत हैं विनता-सुअन गहड भी गजनूँ कर रहे हैं । स्तम्भ, कूबर, छत्र, डाढी समी चारु एवं विविध मनि जटित है । वेदोच्चार हो रहा है । भाँक भनकती है । घटा घहर घहर कर धनघोर शब्द कर रहा है । एक ही साथ घुघरा की भी ध्वनि हो रही है । दुखीजन देखकर सुखी हो जाते हैं, दैत्य भयभीत हो जाते हैं । सारथी दाक्ष घोडों को सचेत कर रहा है, वे मन के वेग से चल रहे हैं । देव और ऋषिगण जय जयकार कर रहे हैं, मुखन भला जा रहा है, सूत बदी आदि विरद कह रहे हैं । इन सरस सोमा को देखकर दुग चकित हो जाते हैं और सुमन वर्षा कर चारों ओरों की प्राप्ति कर लेते हैं ।^१ इस प्रकार वण्ण का रथ है । इसी पर बैठार वे अकेला या कभी कभी राधा को बैठाकर रथ झोडा करते हैं । एक पद में रथ के आते ही वातावरण रसपूर्ण हो जाता है । श्रीवण्ण राधा को रपालङ्क कर लेते हैं । गोपी इसका वणन निम्नोक्त ढंग से करती है, जो मापा और भाव दोनों दृष्टियाँ से मौलिक बन पडा है —

वह देखो सखि सेत पञ्जा पहरात ।
ज्यो ज्यो रथ नियरे आवत है, त्या त्या मन अकुलात ॥
खजन से भए नैन सखी नै चञ्चित इत उत डोल ।
आवत प्राननाथ रथ चन्कै, सजनी यह मुख बोल ॥
जहँ लगी दृष्टि जात प्यारी की यह छबि होत रसाल ।
मानहुँ आदर सो पिय के हित, कमल पाँवदे डाल ॥

१ चार चल चक्र चित्रित विचित्रित परम
जगत विजयी जयति कण्ठ को जैन रथ ।
अति तरलतर, बलाहक शब्द सुधीव मनिपुष्प
गुरग योजित चलत पथ सुपथ ॥
फहरत ध्वज उडत नव पताका परम कसल
कल इन्द्र सम सकल चमकत अक्षय ।
चक्र ता पर रह्यो तासु तल वायु सुत विनत
विनता-सुअन गरजि गरि करत हथ ॥
खम कूबर छत्र चारु डाढी चारु विविध
मनि जटित उषरित ने शब्द नथ ।
भाँक भनकत करत घोर घटा घट्टि घने
धुधरु विरत फिरत मिलि एक जय ॥
भुयो सूरज-मुखी सुखी लखि जन दुखी
दैत्य-दल भलमलत भलरन मुक्त तथ ।
बैठि दाक्ष तदाक्ष करत अश्व को चलत
मन बेग-सम बेगति शब्द नथ ॥
देव ऋषि करत जय शब्द मुखल दुरत
सूत बदी विरद कहत बहु भाति नथ ।
चकित 'हरिचन्द दुग सरस सोमा निरख
हरपि सुमनन बरपि लह्यो चारों अरथ ॥

अति अनुराग सग बैठन की प्यारी मन की जानी ।

‘हरोचद’ लै रथ बैठाए तिया अतिहि सुख माती ॥^१

रथ पर राक्षस को बैठाकर उनका रथ संचालन भी निराला है । भारते-दु जो इस संचालन विधि का वर्णन तो करते हो हैं साथ ही इसी बहाने कृष्ण के मन का सच्चा चित्र भी प्रस्तुत कर देते हैं । रचना कौशल की बलिहारी है—

कछू रथ होनतहू मैं भाति ।

यह कछु ओरहि चलनि चलावनि औरे रथ की काति ॥

कहूँ ठिठकि रथ रोकि घरिक लौं ठाढ़ रहत मुरारि ।

कहूँ दौरावत अतिहि तेज गति, कहूँ बाहु सो रारि ॥

काहूँ को अग परसि रथ चालनि, काहूँ लेनि दौराय ।

चाबुक चमकि तनक काहूँ तन, मारति देति छुआय ।

काहूँ के घर को फेरो दे घूमनि करि रथ मद ।

बार बार निकसनि बाही मन मैं जानी हरिचद ॥^२

कवि की कवित्व शक्ति का चातुर्य अजोब है । वह रथ संचालन के बहाने कृष्ण के चितचोर मन का नयन-मन में घर कर जाने लायक वर्णन प्रस्तुत किया ।

निष्कर्ष

उपयुक्त विवेचन से यह प्रमाणित होता है कि भारते-दु की कई रचनाओं पर यन्न-तन्न चैतन्य सम्प्रदाय की भक्ति की स्पष्ट छाया है । यद्यपि भारते-दु चैतन्य सम्प्रदाय के सीक्षित भक्त नहीं थे, फिर भी उक्त सम्प्रदाय को छाया अवश्य प्रतीत होती है ।

राधावल्लभ सम्प्रदाय

भक्ति सम्प्रदायों में यह एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय है । इसका आधार हृदय का परम प्रपान तत्त्व प्रेम है । हृदयगत माको से हम सम्प्रदाय का विशेष स्थान है । डा० विजयद्र स्यादक ने लिखा है कि हृदय की रस स्थिग्य भावनाओं की सहज स्वीकृति और सरस अभिव्यक्ति ही इस सम्प्रदाय के भक्ति सिद्धान्त की नींव और रसोपासना का आधार है ।^१

इस सम्प्रदाय में राधा आराध्या स्वीकार की गई है । ये मयुर और उज्ज्वल प्रेम की प्राण स्वरूपा, शृङ्गार सीला की विचित्र कलाओं की परम अवधि भगवान् श्रीकृष्ण की आराधनीया कोई अनिवर्चनीय शासन करी हैं । वे परम सुखमय मयु धारिणों पर स्वतन्त्राशक्ति हैं वे श्रीकृष्ण की पट्ट महिमी हैं ।^२ इनका रूप परम प्रेममय है । ये परमशक्ति आनन्दरूपिणी और श्रीकृष्ण द्वारा वर्दित हैं ।

१ बजरत्नदास (सपा०) भारते-दु ग्रथावली, दूसरा खंड, राग-संग्रह, छ० २६, पृ० ४४७

२ बजरत्नदास (सपा०) भारते-दु ग्रथावली दूसरा खंड, कृष्ण चरित्र, छ० १६, पृ० ६०८ ।

३ डा० विजयेन्द्र स्यादक राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य, दिल्ली, पृ० १२६ ।

४ प्रेम्ण समधुरोज्ज्वलस्य हृदय शृंगार सीला कला ।

वैचित्री परमावधिभगवत पूज्यैव कस्मीशता ।

ईशानी च शची महासुख तनु शक्ति स्वतन्त्रापरा ।

धीवृन्दावननाथ पट्ट महिमी राधैव सेव्या भग ॥

—पद्मानुधानिधि, श्लो० ७८ ।

वे भक्तों के हित श्रीकृष्ण के साथ रास रचाती हैं। इनका यह विलास नित्य होता है। अतः इसे नित्य विहार कहा जाता है। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने नित्यविहार पर प्रकाश डालते हुए कहा है—'साम्प्रदायिक दृष्टि से नित्यविहार शब्द एक गूढ़ रसलीन तात्त्विक व्यञ्जना का द्योतन कराने वाला है। उमे अनिवार्य रम-दशा कहा जाता है। लौकिक दृष्टि से समझने के लिये यह कह सकते हैं कि एक शीतल, सघन, गुरम्य, निभृत निकुञ्ज में प्रिया प्रियतम (राधा माधव) अविच्छिन्नभाव से—सतत, शाश्वत रतिक्रीड़ा में सलग्न करते हैं। उनकी यह केलि-क्रीड़ा बिना किसी बाह्य या आन्तरिक अंतराय के अनवरत चलती रहती है। इस निकुञ्ज सीला में न तो कजा तर गमन सम्भव है और न किसी प्रसार का स्थूल मान या स्थूल विरह ही।^१ अतः इस सम्प्रदाय में राधा-भावन की नित्य कैशोर्य-लीला ही प्रधान है। भक्त इस केलि-क्रीड़ा में नित्य नूतनता का दर्शन प्राप्त करता है। भक्त इसकी पूर्ति में सदैव सहयोग प्रदान करता है। अतः वह सखीभाव से नित्य विहार की सखा में सहायता करता है। इस सम्प्रदाय में राधा-माधव से एक क्षण भी अलग नहीं होती। प्रवास तो इस सम्प्रदाय में किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं है। इस तरह की रसोपासना में भक्ति सम्प्रदायों में केवल हरिदासी सम्प्रदाय में दृष्टिगोचर होती है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय के कवि राधा-जन्म से लेकर उनकी समस्त कैशोर्य लीलाओं का चित्रावन अपनी वाणी से करते हैं। वे उनकी रसोपासना में इतना मस्त हैं कि कृष्ण का रूप उनके सामने गौण हो जाता है। भारतेन्दु बाबू य तो वल्लभ-सम्प्रदाय की मानने वाले लेकिन सदैव राधा की ओर अधिक आकृष्ट रहे हैं।^२ कृष्णजन्म का वर्णन जहाँ आपने केवल ११ पदों में वर्णित किया है, वहीं राधा-जन्म ३२ पदों को शामिल करता है। राधाजन्म का इतनी विशदता के साथ वर्णन सूरदास के बाप पहली बार हित्य गगनागम में व्यञ्जित होता है—

आई माँ की उनियारी ।

आनंद भयो सबल ब्रजमंडल प्रगटी श्रीवृषभानु दुसारी ॥

कीरति जू की बोख सिरानी जाके घर प्यारी अवतारी ।

हरिचंद मोहन जू की जोरी विधना कुवरि सबारी ॥^३

राधा के जन्म से ही ब्रज में आनन्द की गहनाई बजन लगती है। सभी खालबाल गावों का धरान स्पष्ट कर बघाई के गीत गाने लगे—

आज बन खाल कोऊ नहि जाई ।

कहत पुकारि सुनौ री भया कीरति क्या आई ॥

'सावहु गाय सिंगरि बच्छ सह सुगरन सींग मलाई ।

मोर पख मखतूल भूख धरि अग अग चित्र कराई ॥

आजु उदय साचा सब गावहु मिली नै गीत बघाई ।

हरीचंद' वृषभानु बवा सो बहुत निछावरि पाई ॥^४

१ डा० विजयेन्द्र स्नातक राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धांत और साहित्य, दिल्ली, पृ० २४० ।

२ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, पृ० ८२ ।

३ ब्रजरत्नास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खंड वर्षा विनोद, छ० ७६, पृ० ५१५ ।

४ ब्रजरत्नदास (संपा०) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खंड, वर्षा विनोद, छ० ७४, पृ० ५१

अब क्या था । ब्रज में नौबत बजने लगी—

आजु बरसाने नौबत बाज ।

बीन, मृदंग, डोल, सहनार्ई गूह गूह दुदुनि गाज ॥

सब ब्रजमण्डल सोमा बाढ़ी घर घर सब सुख साज ।

‘हरीचन्द राधा के प्रगटे देव त्रघु सब साजै ॥’

यह तो बात रही ब्रजमण्डल की । अब देखिये देवमण्डल की । देवताओं में उल्लास और उमंग छा गया नम में विमानों की सीढ़ ने ब्रजवासियों को चरित कर दिया—

आजु कहा नम भीर मई ?

सजनी बौन फूल बरसावै सुख की बेलि बई ?

बालक से चारहु को आये ? तीन नयन को को है ?

ओढ़ि बघम्बर सरप सपेटे जटा घरे गिर सोहै ?

तान चार अर पच सप्त पटमुष्ट के मिलि क्यों नाचै ?

बड़ी जटा मुख सेज अनूपम को यह वेदहि बाध ?

बीन बजावति बौन लगाई हँस चगी क्यों डोलै ?

को यह यत्र बजाय रही है जै ज जै जै बोलै ?

को यह लिये तमूरा ठाढ़ी को नाचै को गानै ?

इत आवै कोउ बात न पूछत पुनि नम सौं चलि जावै ?

भक्ति आचरज भरी सब तन में बात करै ब्रज-नारी ।

प्रगट मई वृषमानु राय घर मोहत प्रान पिपारी ।

आनन्द बढ़यो कहत नहि आवै कवि की मति सनुचाई ॥

राधा रूपाम-चरन-संकर रज ‘हरीचन्द’ बलि जाई ॥^१

इतना उल्लास कण्ठ जन्म के समय भी किसी बचि ने नहीं दिखाया है जितना कि राधा-जन्म पर दिखाया गया है । ब्रजमण्डल और देवमण्डल के उल्लास एवं उत्साहपूर्ण वातावरण से नममण्डल में भी उत्साह और उल्लास की होनी खेती जा रही है । भारते-दुर्जी का यह पद इस विषय का एक दम अनूठा और मौलिक है ।

कण्ठ के जन्म पर वृषमानु जी को खुशी हुई हो या न हुई हो इसका बणन तो नहीं मिलता, लेकिन राधा के जन्म से नन्द के उल्लाह का बणन भारते-दुर्जी की कारयित्री प्रतिभा का द्योतक है—

नन्द बघाई बाँटत ठाढ़े ।

मई सुता बाबा भानुराय के प्रेम पुनक तन बाढ़े ॥

काहू को सोना, काहू को रूपा, काहू के मनगन दीनो ।

जिन जो मायो तिन सो पायो, कह्यो सबनि को वीनो ।

काहू को घेनु, बमन काहू को, दियो सबनि मन मायो ।

आनन्द भयो, कहत नहि आवै ‘हरीचन्द’ जस गायो ॥^२

१ ब्रजरत्नदास (सपा०) भारते-दुर्जीवाली, दूसरा खण्ड, बाशी, वर्षाविनोद छ० ८०, पृ० ५१५ ।

२ वही, छ० ८२, पृ० ५१५ १६, ।

३ वही, छ० १०७, पृ० ५२४ ।

भारतेन्दु जी राधा के अनन्य उपासक हैं। उनकी उपासना में कवि अपनी वाणी को बाल-वेलि का वर्णन करने को बाध्य करता है। राधा का बाल वेलि-वर्णन समस्त राधा बाह्यमय में किसी ने नहीं किया है। कथन काव्य के अमर गायक मत्तवत्सल सूरदास भी नहीं कर पाए हैं। सूर को तो राधा का ज्ञान तब होता है, जब राधा श्रीकृष्ण के सामने से गुजरती है। यहाँ भारतेन्दु जी ने राधा की बाल-वेलि का वर्णन एक पद में किया है, वह मौलिक और अनूठा है—

मनिमय आँगन प्यारी खेल ।

विलकि कितवि हुलसत मन ही मन, गहि अगुरीमुख भेले ॥

सहमागिनि कीरति सी मैया, मोहन सागी डोले ।

बचहुँक से भुनभुना बजावति, मोठी बतियन बोले ॥

अष्ट सिद्धि नवनिधि जेहि दासी, सो ब्रज सिन्धु-वपुधारी ।

मोरी अविचल सग्य बिराजे 'हरीचन्द' बलिहारी ॥^१

राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा अनुपम छवि तथा वेलि विलास का सागर है। भारतेन्दु जी राधा के रूप का वर्णन करते समय किसी के प्रभाव क्षेत्र में नहीं आते। प्राचीन नख शिख प्रणाली का सर्वथा त्याग कर उन्होंने राधा के रूप का वर्णन वरमान नवीन शैली के आधार पर—जो स्वयं भारतेन्दु जी देन थी—बड़े ही मनोमुग्धवारी ढंग से किया है। कवि की राधा छवि की राशि है। इस छवि की राशि का मुद्रालङ्कार के माध्यम से कवि ने मुद्रा-जीतक ही प्रस्तुत कर दिया है—

प्यारी छवि की राशि बनी ।

जाही विलोकि निमेष न लागत श्रीवृषमानु जनी ॥

नद नदन सो बाहु मिथुन करि ठानी अमुना-पीर ।

करन होत सौनिक के छवि लखि सिंह कमर पर चीर ॥

कीरति की कथा जग घन्या अया तुला न बाकी ।

वृश्चिक सी कसकत मोहन हिय मीह छबीली बाकी ॥

घन घन रूप देखि जेहि प्रति छिल मकरध्वज तिय साज ।

जुग कुच-गुम बढ़ावत सोमा मीन नयन लखि भाजै ॥

बैस-सधि-सकौन-समय तन जाके बसत सदाई ।

'हरीचन्द' मोहन सहमागी जिन अकम करि पाई ॥^२

भारतेन्दु जी को राधा के रूप के लिए उपमा नहीं मिलती, फलतः हैरानी में वह कभी राधा को 'दीपशिला सी'^३ कहता है कभी इस उपमा के लिए कविया को दोषी ठहराता

१ अजरलदास (संपादक) भारतेन्दु प्रभावली दूसरा खंड, राग सग्रह, छ० ६०, पृ० ४६७ ।

२ यही प्रेम-मालिका छ० १, पृ० ४५ ।

३ साचहि दीप शिखा सी प्यारी ।

धूम केश, तन जगमगति झुति दीपति भई निवारी ॥

स्वयं प्रकाश अनुठ सुहाई बिनु असार छवि छाई ।

सदा एक रस नित्य अधिक यह, वासो चाल लखाई ॥

भरत सुगधन ब्रज शृंगार भग—जीतन तन कर वारी ।

प्रीतम-तन को बिखड़ मिटावत 'हरीचन्द' दुख जारी ॥

है ।^१ अन्त में सागरूपक का सहारा ले कवि की उक्ति है—

प्यारी रूप नदी छवि देत ।

मुखमा जल गरि नेह तरंगनि बाढी पिय के हेत ॥

नैन मीन, कर-मद-पवज से, सोमित केस सिवार ।

चक्रवाक जुग उरज मुहाए, सहर लेत गल हार ॥

रहत एक रस मरी सदा यह जदपि तळ पिय मेंटि ।

‘हरीचंद’ बरसैं साबल धन बढत कूल कुल मेंटि ॥^२

राधा का रूप असौकिक है । उसने अपने रूप सौन्दर्य से ब्रज-वनिताओं का मान-मर्दित कर दिया है । उसके रूप सौन्दर्य से पिय की समाधि टूट जाती है, शुक डोलने लगता है । रवि और शशि का तेज हरण हो जाता है । क्या मजात कि ब्रज-वनिताएँ उसकी रूप-श्री को देख हत-श्री न हो जायें—

श्रीराधे सबको मान हरयो ।

अरी मुहागिन मेरी तू जब सेंदुर तिलक धर्यो ॥

गिरे गरव परबत जुबतिन के, रूप गहर गर्यो ।

रीति सिद्ध भई रिसि गन की, देखिन दरप दर्यो ॥

फूलन रूप रग तजि दोनो, जब आनन्द भर्यो ॥

सबको भाग रूप अघराभूत एक ली पान कर्यो ।

‘हरीचंद’ हरि तोहि एक सँ, है निसक विहर्यो ॥^३

भारतेन्दु जी न राधा क गोमा सिधु का अवन करने में तिल को भी नहीं छोड़ा है । उस रूपलता के सावप्य में तिल का योगदान महत्त्वपूर्ण है—

प्यारी बू के तिल पर बलि बलिहारो ।

जा मिस बसत कपोलन अनुछिन, लघु बनि पिय गिरधारी ॥

पिय की दीठ चीन्ह मनु सोहत, सागत अति ही प्यारो ।

‘हरीचंद’ सिंगार तत्व सी, लखि माह्न मन वारी ॥^४

१ कबिन सों संधिहि चूक परी ।

दीप शिला की उपमा जिन तुलि प्यारी हेत धरी ॥

यह दाहत, यह अग जुदावत, यह चंचल चिर येह ।

वह निज प्रेमिन परम दुखद, यह सदा सुखद पिय-देह ॥

वा में धूम स्वच्छ अति ही यह रैनि दिना एक रास ।

वह परिछिन्न बात-बस यह निज-बस सबत्र प्रकास ॥

वह सनेह माधीन और यह है सदेह भरपूर ।

‘हरीचंद’ दीपक प्यारी की नहि कोउ बिधि सम तूर ॥

—वही, पृ० ८३ ८४ ।

२ वही, प्रेमाश्रुवपण, छ० १८, पृ० ११६ ।

३। ब्रजरत्नदास, (सपादक) भारते-दु-याथावली, दूसरा खण्ड, प्रेमाश्रुवपण, छ० १६, पृ० ११५ ।

४ वही, पृ० २८८ ।

नित्य बिहार लीला

राधावल्लभ सम्प्रदाय में नित्य बिहार के विधायक तत्त्व चार हैं—राधा, कृष्ण, सहचरी और वृन्दावन ।^१ ये चारो प्रभ स्वरूप हैं । कवि भारते-दु जी युगल रूप के उपासक थे । अतः उन्होंने राधा-कृष्ण के सम्मिलित रूप का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन प्रस्तुत किया है—

आजु तरनि-तनया निर्रट, परम परमा प्रगट,
 ब्रज बधुन मिलि रची दीप-माला ।
 जाति जाल जगमगत, दृष्टि बिर नहि लगत,
 छूट छवि को परत अति बिसाला ॥
 खड़ी नवल बनिता बनी चार दिशि छवि मनो,
 हंसहि, गार्वाहि, विविध ब्याला ।
 निरखि सबी हरिचंद अति चरित सी ह्व बहत,
 जयति राघ, जयति नंद लाला ॥^२

वृन्दावन की महत्ता प्रायः सभी भक्ता ने एक स्वर से स्वीकार की है । कृष्ण काव्य में इसे वृन्दावन मान की भक्ति की सत्ता दी गई है । राधावल्लभ सम्प्रदाय में तो वृन्दावन नित्यबिहार का 'विधायक' तत्त्व है । कवि न श्रीकृष्ण और श्रीराधा को वृन्दावन में कैल के रूप में चित्रित किया है । यथा—

फूल रही द्वै बेसी श्री प्रदावन ।
 नव तमाल धनश्याम प्रिया श्रीराधापीत चमेसी ॥
 और फूल फूनी सब सखिया फूलनि पहिरि नबेसी ।
 'हरीचंद मन फूल्यो सब साज देखि भँवर भयो है हुसी ॥^३

यहां राधावल्लभ सम्प्रदाय के नित्य बिहार के विधायक चारो तत्त्व उपस्थित हैं ।

नित्य बिहार ही इस सम्प्रदाय के कवियों की कामना है । वे श्रीकृष्ण और राधा का नित्य बिहार रत देखना चाहते हैं । कवि भारते-दु जी इस युगल जोड़ी की कामना तब तक करते हैं जब तक आसमान में सूर्य चंद्रमा विद्यमान रहें । कवि उनके नित्य भगल व्याह की कामना व्यक्त करता है—

चिर जीवो यह जोरी भुग-भुग चिर जीवो यह जोरी ।
 श्रीजसुदानदन मनमाहन श्रीवृषभानु किशोरी ॥
 नित नित व्याह नित्य ही भगल नित नित सुख अति होई ।
 श्री वृन्दावन-सुख-सागर को पार न जावै कोई ॥
 एक रूप दोठ एक बयस दोठ दोऊ चंद्र चकोरि ।
 हरीचं अब ली ससि-सूरज तब ली जीयो जोरि ॥^४

१ डा० रूपरामनाथ पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में माधुर्य भक्ति, पृ० ३१२ ।

२ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारते-दु राधावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, कात्तिक स्नान छ० १४, पृ० ५२ ।

३ वही, प्रममात्रिका, छ० ६१, पृ० ६३ ।

४ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारते-दु राधावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, राग सप्रह, छ० २५, पृ० ४४५ ।

गुगल विहार का वर्णन इस सम्प्रदाय में विशेष है। भारतेन्दु जी पर इस सम्प्रदाय की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। वे श्रीकृष्ण और राधा के विहारों का वर्णन बड़े ही सजीव और ललित पदों में अंकित करते हैं। नित्य विहार में रसभेलि के मयूर श्रम से श्रम जल का प्रादुर्भाव होना नितान्त आवश्यक है। इस सुरत श्रम-जल में विहार करते हुए गुगल छत्रि का वर्णन कवि का स्तुत्य प्रयास है। इस तरह केलि प्रसंग का उद्घाटन अन्यत्र असम्भव तो नहीं, लेकिन मठिन अवश्य ही है। वर्णन इस प्रकार है—

सुरत-श्रम-जल विहरत पित-प्यारी ।

चाव भरे ढोड़ सेज नाव पै बाहु बाहु मैं धारी ॥

हरि आसरी पियारी को पिय पावत कोउ विधि पारी ।

‘हरीचंद’ सह मोन बाँधि गल दूरे भयो सुखारी ॥^१

रसभेलि का प्रारम्भ नयनों के हाथा-पाई से हो होता है। कवि राधाकृष्ण के नेत्रों के बाजी का वर्णन करता है। दोनों एक दूसरे को अपसव देखाते हैं। दोनों में बाजी सगी है, कौन जीतता है, कौन हारता है। ‘हार में भी जीत है। यह प्रेम राज्य का सिद्ध वाक्य है।

बाजी नैनन में लागी ।

रसिव राज इत, उत श्रीराधा, परम प्रेम रस-पाणी ॥

ढोड़ हरि, ढोड़ जीत आपुस के अनुरागी ।

‘हरीचंद’ निज जन सुख दायक, रहे बेलि निशि जागी ॥^२

इस सम्प्रदाय में राधा आराध्या है। वे श्रीकृष्ण की आराधनीया हैं। कृष्ण उनके साथ केलि करते हैं। उनकी केलि विदग्धा उत्तम श्रेणी की है। राधा को मुलवाने का हाल वे खूब जानते हैं। राधा भोजी है, वे जो बहने हैं राधा स्वीकार कर लेती है। इस तरह वह राधा से सम्बन्ध नापने के बहाने अपने केलि-बला का उद्घाटन करते हैं। राधा बड़ी हो जान का प्रयत्न करती हैं। इसी इस प्रयत्न में बेचारी घोखा खा जाती हैं। कृष्ण के सामने ज्यादा कमल-मुग पड़ता है कि वे झूम लेते हैं और उसे बघाई देकर अपनी हार स्वीकार कर लेती हैं। राधा चक्ति हाकर खड़ी खडो मुँह देखती रह जाती है।

हममें कौन बड़ी री प्यारी ।

ठाढ़ी होउ बराबर नापे बिहसि कह्यो गिरधारी ॥

सुनत उठी वृषमानु नदिनी, खरी भई समुहारी ।

पर-अगुरु-तल उचकि पिया सा बटवन चहत उँचाई ॥

सुंदर मुख आपुहि दिग आवत लखि भूमो पिय प्यारे ।

‘हरीचंद’ लजि हसि भुव निरक्षत पिया बह्यो हम हारे ॥^३

कवि राधा के भोजन की व्यवस्था भी करता है। प्रतिमा पूजन में भगवान् के भोग की व्यवस्था सगुण सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषता है। अतः कवि अपने निम्नोक्त पद में श्रीराधा के लिये सुस्वादु भोजन की व्यवस्था कर रखी है—

भोजन कीजै प्रान प्यारी ।

भई बढी बार हिडोले भूलत आज भयो श्रम भारी ॥

१ वही, प्रेमाश्रुवर्षण छ० १७, पृ० ११५ १६ ।

२ वही, कात्तिक स्नान, छ० ७ पृ० ८१ ।

३ ब्रजलत्तादास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड कात्तिक स्नान छ० ८-५० ८१ ।

बिजन भीठे दूध सुहातो लीजै भानु-नुसारी ।
स्यामा-स्याम-चरन-कमलन पर 'हरीचन्द' बलिहारो ॥^१

भारतेन्दुकालीन कविता पूर्णरूपेण सम्प्रदायनिष्ठ है। यत्र तत्र सत्र चतु सम्प्रदायो को भाँको हो लभित होती है। भारतेन्दु जी ने तो अपने को राधा रानी के चाकर कह कर बराबर ही देवभाव से उनकी उपासना की है—

हम चाकर राधा रानी के ।

ठाकुर श्री नदनदन के चुपमानु सती ठकुरानी के ।

निरभय रहत बहत नहिं काहू उर नहिं डरत भवानी के ।

'हरीचन्द' नित रहत दिवाने सूरत अजब निवाने के ।^२

प्रेमघन जी भी श्रीराधारमण की उपासना म लीन देखे जाते हैं। उनके भी उपास्य राधावल्लभ ही हैं। गुगल उपासना को आपने स्वीकार किया है—

श्रीराधा राधा रमण जुगुल चरन अर्वाबिद ,

शमन सकल बाधा सरस गुनि मम होहु मलिन ।^३

कवि को राधिका की उपासना में तत्पय पाते हैं। वह मोर होते ही मन को जपाकर राधा वर ध्याम की रट लगाने की सूचना देता है—

हमै रट राधा राधा लागी ,

श्रीराधा राधा रट लागी कृष्ण भये अनुरागी ।

मन सो तम दूर गया मजि प्रेम ज्योति जिय जागी ।

भब भय हरन सरन असरन जुग चरन ध्यान छल त्यागी ,

कपा वारि बरसाय प्रेमघन जन बनयो बढमागी ।

जाग ! जाग ! मन मोर भयो भज राधावर धनश्याम ।

सेवा कुज कुसुम सेजहिं तजि जाने दोउ छवि घाम ।^४

कविवर राधावल्लभदास राधा के मुख सौन्दर्य का वर्णन करने में चन्द्रमा के सौन्दर्य को भी कलनित करते हैं। सबभुज चन्द्रमा सकलक है, लेकिन यहाँ राधा का मुख तो निष्कलक है—

जनम लियो है ब्रज, प्रेम सुधा सागर वह ,

वापुरो भयक प्रगथो है जल खारी को ।

घटत बढत तेजहीन तेजमान होत ,

बाढ दिन दूतो तेज नीरति कुमारी को ।

वह सकलक दास दुखद चकोर वह ,

मटत कलक अब पोपक बिहारी को ,

धन मे छिपत चह धनश्याम सग सदा ,

मद वरै चद मुख प्यारी को ।^५

१ वही, प्रेमाश्रुवपण, छ० ३०, पृ० १२३ ।

२ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु प्रभावली, दूसरा खण्ड, होती, छ० ८१, पृ० ३६५ ।

३ प्रभाकेश्वर प्रसाद उपाध्याय (संपा०) प्रेमवन सर्वस्व, लालित्य सहरी छ० ३१, पृ० ३३२ ।

४ वही, संगीत नाट्य, पृ० ४१६ ।

५ ब्रजरत्नदास (संपा०) भारतेन्दु मण्डल, कमलमणि प्रथमाना, वाराणसी, पृ० १७५ ।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्पत्ति पर पहुँचते हैं कि भारतेन्दु कालीन कविता पर रामावल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव यत्र तत्र विराजमान है। राधाकृष्ण दास और प्रेमधन जी ने तो राधावर श्याम को उपास्य भी स्वीकार कर लिया है। स्वयं भारतेन्दु जी वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होते हुए भी राधावल्लभ सम्प्रदाय से प्रभावित हैं। उनकी रचनाओं पर इस सम्प्रदाय का प्रभाव पर्याप्त दृष्टिगोचर होता है।

वल्लभ सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय में प्रेम की विशेष महत्ता है। प्रेम ही इस सम्प्रदाय का साध्य है। प्रेम की तीव्रता के कारण इस सम्प्रदाय में बाल्य भाव, वारसत्य भाव और सकल भाव की उपासना स्वीकार की गई है। श्रीकृष्ण इस सम्प्रदाय के आराध्य है। वे मूल रूप में ब्रह्म ही हैं, लेकिन वे अपनी प्रेम लीलाओं के कारण मित्र देह धारी हैं, उन्हीं से समस्त जड़ चेतन की उत्पत्ति हुई है। डा० रूपनारायण पाण्डेय ने लिखा है कि उनके सत् रूप से जगत् चित् रूप से जीव देवता आदि और स्वयं आनन्द रूप से गोप गोपी आदि गौलोक की उत्पत्ति हुई है।^१

वल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का हम दो रूप में यहाँ स्वीकार करते हैं—दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में और व्यावहारिक सिद्धान्त के रूप में। वल्लभ सम्प्रदाय का दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैत है। भारतेन्दु कालीन कविता में किसी भी सम्प्रदाय के सिद्धान्त की व्याख्या नहीं के बराबर हुई है। भारतेन्दु जी दृष्टिमानों के अनुयायी थे।^२ फिर भी वल्लभ के दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या उनके काव्य में नहीं के बराबर है।

१. १. व्यावहारिक रूप में प्रेम-लक्षणा भक्ति का प्रतिपादन हुआ है। वल्लभ सम्प्रदाय पर श्रीमद्भागवत पुराण का प्रभाव है, कनस्वरूप भारतेन्दु कालीन कविता में प्रेमलीला का बाहुल्य है।

अनुग्रह

वल्लभ सम्प्रदाय में भगवान् के अनुग्रह का अधिक अतिव्यक्ति हुई है। बिना भगवत्कृपा के कृष्ण की निरय लीला में प्रवेश पाना निरन्तर अनम्भव है। कवि भारतेन्दु जी इन अनुग्रह का वर्णन प्रस्तुत करते हैं—

पायो न क्या है याह शिव शुक् रहे विचार।

हरिचंद तेहि अग्राह किया वल्लभ-कृपा आधार ॥^३

भारतेन्दु जी वल्लभ की कृपा का बराबर उल्लेख करते हैं। उनका विश्वास है कि ब्रज का गोपियाँ नित होरी रस का आनन्द लेती हैं। लेकिन वह होरी रस नितान्त मूढ़ है, उसे तो कोई बिरला ही पा जाता है। अतः होद्य रस रचान का लीला में वही भगवत् हो सकता है जो वल्लभ चरण शरण शरण का आकांक्षी हो और जिस पर इस रस का छाप पड़ जाती है। चढ़ न दूजो रग' वाली कहावत वहाँ चरितार्थ हो जाती है। यथा—

१ डा० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में साधुय भक्ति, पृ० ४००।

२ डा० विश्वोरीनाथ गुप्त भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

३ ब्रजरत्नदास (संपादन) भारतेन्दु भ्रायावली, दूसरा खण्ड, पृ० १२१।

नित नित होरी रहै मनावत याही तै ब्रजनारी ।
 बिहरत कुल की सक छाडि कै जाने गिरिवधारी ॥
 सो हारी रस परम गुप्त है, अनुभव हूँ नहि आवै ।
 शिव युव सा बिरजो कोऊ-कोऊ कछु पावे सो पावे ॥
 पै श्रीवल्लभ चरन-सरन जा होय सोई कछु जानै ।
 जा यह जानै सा फिर जग म और नही उर आने ॥^१

अत बिना भगवान् की कृपा के बार बार दुष्टि डालने पर भी ओझल ही रहता है—

बिनु श्रीवल्लभ-कृपा-भार यह निरखेहूँ नहि सुझै ।
 जमि गवार मनि हाथ सइ पै तापो मोल न बूझ ॥^२

यह कारण है कि कवि प्रभु की सीला गाने में अपने को समर्थ पाता है—

श्रीवल्लभ-भक्त रज प्रताप सो यह सीला कहि गार्द ।
 मनि-सम पोहि-पोहि अति रचि सो माता रुचिर बनाई ॥^३

भारतेन्दु जी का भगवान् में पूर्ण विश्वास था। अत युगल बिहार सीला में मंगल की आशा करते हैं—

मंगलपरिरमन आलिनन मंगल सोतरे शब्द उचार ।
 हरीचंद मंगल वल्लभ-पद जा बल बिहार बिना बिकार ॥^४

भीर भी—

मंगल ब्रज वृन्दावन जमुना मंगल गिरिवर नाम लए ।
 हरीचंद मंगल वल्लभ-भक्त जा बल जुगल बिहार भए ॥^५

भारतेन्दु जी को राधाष्टक व संयोग शृङ्गार का वर्णन करने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। राधाष्टक के संयोग मुख्य-सरिता में कवि सतरण करता है। श्रो वह प्रभु ही मानता है। इसे प्रभु की अमिश कृपा का प्रभाव ही कहा जा सकता है—

आनु तन आनंद सरिता बानी ।

निरस्तत मुय प्राप्तम ध्यारे को प्रीति तरंगनि काड़ी ॥
 सोन बर दोउ बूल तरोवर विरे न रहै सम्हारे ।
 हाव भाव के भरे सरोवर बहे होइ कै नारे ॥
 मुझे दवानल परम बिरह के पैम परब मो मारी ।
 भीन-वान के जे प्रमी जन जन सहि भए सुकारी ॥
 भई अपार न छोड़ गियारै जेनि-भाव नहि चाली ।
 'हरीच' वल्लभ-भक्त पै अवगाहत सोई आली ॥^६

१ ब्रजरत्नाग (भाग १) भारतेन्दु संपादनी, दूसरा सप्क, मधु-मुक्त, छ० ४८, पृ० ४१६ ।

२ वही, पृ० ४१६ ।

३ वही, पृ० ४१६ ।

४ ब्रजरत्नाग (भाग १) भारतेन्दु संपादनी दूसरा सप्क, प्रमाथु-वर्णन, छ० ११ पृ० ११४

५ वही, प्रमाथु-वर्णन, छ० १२ पृ० ११४ ।

६ वही, छ० १६, पृ० ११६ ।

सत रूपरसाभजनकतनया जानकी के अनुग्रह का उत्प्रेष करते हैं—
 श्रीजानकी-यद बज सखि बरहि जागु उर ऐन ।
 बिनु प्रयास तेहि पर प्रवहि रघुपति राजिवनैन ॥^१
 दीनदास जी राम से अनुग्रह प्राप्त करते हैं । उनका विश्वास है कि रामनाम को चित्त में धारण करने से त्रयताप का विनाश होता है, और नहीं तो अवतार का वास अवश्यम्भावी है—
 रामनाम चित्त धरतो रे मन भवसागर से तरतो ।
 रामनाम सारो हिय मे धरतो तीन ताप नहीं जरतो ।
 राम रसायन प्रेम बटोरन पीपी आनंद भरतो ।
 रामरसिक की संगत करतो नहीं भवकूप मे परतो ॥^२
 प्रेमधन जी को उस प्रभु का अनुग्रह प्राप्त था । उनका मन चातक बनकर उनसे प्रेम की याचना करता है—

बेद बने बरही बर बुन्द, रटे शुक्र नारद से जस जाचव ।
 ब्यास बिरचि सुरैस महसदु के हिय अम्बर बीच बिहारव ।
 भक्तन के अधोज्य मयकर श्रीपम को जय ताप बिनासव ।
 सोई दया बरतै धन प्रेम, भरो धन प्रेम रटै तुव चातक ॥^३
 आपकी एक प्रसिद्ध रचना सूर्य चीन है । प्रेमधन स्वयं यह समुचीत है । कवि सूर्य से भी अनुग्रह प्राप्त करता है । यद्यपि कवि यहाँ बहुदेवोपासना की ओर आकृषित है लेकिन वह यहाँ भी जगन्नीस को बारबार नमन करता है । उसकी कृपादृष्टि के बिना दुःख-सरिता का अन्त सम्भव नहीं एकमात्र वही दुःख-सरितासेतु है—

जय जगन्नाथार जय हरन भागु भगवान ।
 पाहि पाहि असरन सरन मयलमोद निषान ॥
 जय जय देव त्रिनेश जय कृपातिथु जगदीश ।
 बारबार प्रणाम करि सोहि नवावहै सीस ॥
 जय त्रिनेश जगन्नेव प्रभु सृष्टि स्रोत लय हेतु,
 देहु दया दुग दान पर है दुख सरिता सेतु ॥
 दीन बगु तम दुबिन सुनै कौन दुहाई दीन,
 असय ध्यान को दान को देम सिधु तनि मीन ॥^४

गुरु की महिमा

प्रातः गुरुस्मरण करना वल्लभ सम्प्रदाय का प्रमुख अंग है । अतः भारतेन्दु बाबू और उनके मण्डल के वल्लभ मतानुयायी कवि प्रातः उठकर गुरु स्मरण करना अपना धर्म मानते हैं । भारतेन्दु बाबू तो वल्लभकुल में विद्यमान थे । अतः वल्लभकुल के ११ गुरुश्री और नारायण को आपने स्मरण किया है । वल्लभ को स्मरण करते हुए उन्होंने कहा है—

- १ कल्याण, संतवाणी विशेषज्ञ, वर्ष २६, सं० २०-११, सं० १, पृ० १०८ ।
- २ कल्याण, संतवाणी अंक, वर्ष २६, सं० २०-११, सं० १, पृ० १३६ ।
- ३ प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय (संपादक) प्रेमधन सर्वस्व, प्रेमपीयूष वर्ष, पृ० २०० ।
- ४ प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय (संपादक) प्रेमधन-सर्वस्व, प्रेमपीयूष वर्ष, पृ० २३५ ।

प्रातः समय उठतहि श्रीवल्लभ यह भगलमय लीजै नाम,
कोटिविघन-वारन पचानन सब विधि समरथ पूरन काम ॥
अघ-नासन कलानिधि नीनानाथ पतित पावन मुख धाम,
सुमिरन मात्र हरन जन-आरति मोहन कोटि कोटि रति काम ॥
रहिये इनकी सरन सदा चलि बिकि जैये इन कर विनु दाम ;
हरीचंद निरमय इन चरननि छत्र छाह कीजै विश्राम ॥^१

कवि ने अपने गुरु महिमा का अपूर्व वर्णन प्रस्तुत किया है—

तम पाखंडहि हरत, करि जन मन जलज विवास,
जयति अलौकिक रवि कोऊ धृतिपथ करन प्रवास ॥^२

एक दूसरे पद में कवि वल्लभ के सिवा किसी और को जानता ही नहीं है—

हम तो श्रीवल्लभ ही को जानै,
सेवन वल्लभ-पद-सकज को वल्लभ ही को ध्यान ॥
हमरे माता पिता गुरु वल्लभ और नहीं उर आन ।
हरीचंद वल्लभ-पद-सल सो इंद्रहु को नहि मानै ॥^३

यह जानता है कि प्रातः गुरु-नाम-स्मरण करन से कृष्ण-वैति का रस सहज ही प्राप्त हो जायगा—

इमि श्री वल्लभ रूप प्रातः जो सुमिरन करई,
सहै प्रेम रस दान जुगल पद में अनुसरई ॥
द्वादस द्वादस अघ-सदी प्रातहि उठि गवै,
दुविध बासना छाडि केनि रस को फल पावै ॥
यह प्राननाथ की प्रथम ही सुमिरन सब भयल-भई,
बानी पुनीत 'हरिचंद' की प्रेमिन का भगल भई ॥^४

वल्लभ सम्प्रदाय में गुरु की महिमा गाई गई है। भारतेन्दु जी ने तो वल्लभ की प्रशंसा में अपने को इतना लीन कर दिया है कि उन्हें वे कृष्ण का अवतार ही मान बैठे हैं। उनका कहना है कि कृष्ण अपनी अज्ञात लीलाओं को प्रकट करने के लिये कलिकाल में वल्लभ के रूप में अवतरित हुए हैं। इस सम्प्रदाय में महाप्रभु वल्लभाचार्य और श्रीकृष्ण में कोई अन्तर नहीं माना जाता। महाप्रभु की पूजा ही भगवान् की पूजा समझी जाती है। भारतेन्दु जी इसी की पुष्टि यों करते हैं—

जयति राधिकानाथ चंद्रावली प्रानपति ।
घोष - कुल सकल - सताप हारी ॥
गोपिका - कुमुद बन चंद्र सावर बरन ।
हरन बहु बिरह आनदशरी ॥
निखित लोचन जुगल पान हित अमृतवपु ।
विमल - बुन्दाविपिन भूमिचारी ॥

१ ब्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु प्रयावली, दूसरा खंड, राम सग्रह, छ० ७७, पृ० ४६१ ।

२ वही, उत्तरार्द्ध भक्तमाल, छ० २३, पृ० २२५ ।

३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु प्रयावली, दूसरा खंड, प्रेममालिका, छ० ३३, पृ० ५५ ।

४ वही, प्रातः स्मरण भगनपाठ, छ० २६, पृ० ६४८ ।

गाय गिरिराज के हृदय आनंद करन ।
 नित्य बिहबल - करन जमुन - बारी ॥
 नद के हृदय आनंद वधित - करन ।
 मरनि जमुदा - मनसि मोद भारी ।
 बाल ब्रीछा - करन नद मदिर सदा ।
 कुज मे प्रौढ लीला बिहारी ॥
 गोप - सागर - रतन सकल गुनम भरै ।
 क्वनित स्वर सप्त मुखमुरलिधारी ॥
 मजु मजीर पद कलित कटि किंविनी ॥
 उत्तसि बनमाल सुन्दर सवारी ।
 सदा निज भक्त सत्ताप आरति-हरन ॥
 करन रस-दान अपनो बिचारी ।
 दास 'हरिचंद' बलि बल्लमाधीन हूँ ॥
 प्रगट अज्ञात लीला बिहारी ॥^१

कवि को पूरा विश्वास है कि लक्ष्मणमठ के घर में सीतापुरपोत्तम श्रीनदनदन द्विज वेप में प्रकट हुए हैं—

आजु ब्रज घर घर बजत बघाई ।
 द्विज-बधु सै नदनदन प्रगटे लक्ष्मण मठ घर आई ॥
 केर बहै सीला सोई रस निज जन हेत दिखाई ।
 हरीचंद से अघम जानि निज तारे भुज गहि धाई ॥^२

इस सम्प्रदाय को भक्तिभावना भगवान् के पद रज के प्रभाव से ही प्राप्त हुई है। अतः भगवान् के चरणों, गुह के चरण तथा पितृपद और उनके चिह्नों की विशेष महत्ता प्राप्त है। भारतेन्दुकाल में चरण चिह्नों की विशेष विराट् व्याख्या हुई है। उन्होंने युगलस्वरूप के अगाध चरण चिह्नों का वर्णन अपनी गति के अनुसार किया है।^३ वे स्वस्तिक चिह्न का भाव-वर्णन करते हुए लिखते हैं—

जे निज उर म पद धरत अमुष तिहे कहुँ नाहि ।
 या हित स्वस्तिक चिह्न प्रभु धारत निज पद माहि ॥^४

महाप्रभु बल्लभ के चरण चिह्नों का वर्णन निम्नांकित प्रकार है—

नमल पताका गदा बज्र सौरन अति सुन्दर ।
 कुसुम लता पुनि धनुष धरत दलिन पद में वर ॥
 ध्वज अंकुश भय चक्र अष्टबल अबुद मानो ।
 ममूत-कुंग यव चिह्न काम पद मे पुनि जानो ॥
 तैलग वक्त्र सोमित-करन विष्णु स्वामि पथ प्रगट कर ।
 श्री श्री बल्लभ-पद चिह्न ये हृदय नित्य 'हरिचंद' घर ॥^५

१ बजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु प्रभावली, दूसरा खण्ड, प्रेममालिका, छं० २६, पृ० ३४।

२ वही, राग सप्रह, छं० १४०, पृ० ४८३।

३ बजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु प्रभावली, दूसरा खण्ड भक्त-सर्वस्व, प्रस्तावना, पृ० ४।

४ वही पृ० ७।

५ वही, पृ० ३४।

कवि भगवान् एवं गुरु के पदा के साथ ही पितृपू की भी मर्णागो विस्मृत नहीं करता—

बढ़ो पितृन्द जुग जलन हरन हृदय समघोर ।

सबल नेह भजन बिमल भगनवरन अघोर ॥^१

बल्लभ सम्प्रदाय में भक्ति का स्थायी भाव प्रीति है । इसकी व्याख्या चार रूपों में होती है—

(१) दास्यभक्ति, (२) सख्यभक्ति (३) वामन्य भक्ति (४) माधुयभक्ति ।^२ कालांतर में यही भाव स्त्रीरूप, पुत्ररूप और युगलरूप में परिवर्तित हो गया है ।

दास्यभक्ति

भारतेन्दुकालीन कविता में दैयभाव की प्रचुरता है । कवि भारतेन्दु जी के विनय सम्बन्धी पत्रों की संख्या ३१४ है ।^३ इन सभी पत्रों में कवि का दैयभाव लीन होता है । कवि प्रभु की सेवा में रत है । उनका यह सेवक है लेकिन दीनता का चरमोत्पन्न तब लीलायी पड़ता है, जब वह अपने को नमकहराम कहता है । यथा—

प्रभु मैं सेवक निमक-हराम ।

छाह छाह के महा मुट्ठा करिहों बधु न काम ॥

बात बनैहो लम्बी थोड़ो बैठ्यो बैठ्यो धाम ।

जिनहु नाहि हत उत सरनैहो रहिहो बधो गुनाम ।

नाम बेचिहा तुमरो करि करि उलटो अपने काम ।

‘हरीचंद’ ऐसन के पालक तुमहि एक धनधाम ॥^४

उसका धनधाम पालक है । चाहे वह जिनका भी राज करे । लेकिन मरना उसी के पाप का है ।

इस तरह का विश्वास भक्त को भक्तों की श्रेणी में उच्चतम पद प्रदान करता है—

प्रभु जो करिहो सोइ याव ।

सुगति नुगति सब ही अति समुचित हम पतितन, के दाव ॥

जो तृन-भाग्रहु याव करी प्रभु करि शाखन, पे नेह ।

तो हम कठिन नरक के लायक यावे बधु न सदेह ॥

पै जो डरी नाथ कदना लिसि तो का मेरे पाप ।

कोटि कोटि वैकुण्ठ सुलभ तर तनिक बढान प्रताप ॥

जो हमारी दिसि सबहु उचित तो सब विधि ‘दंड विधान ।

‘हरीचंद’ तो यही जोग पै तुम प्रभु दयानिधान ॥^५

सख्यभक्ति

मिनता का जो आदम सौमिक व्यवहार में उपस्थित होता है, वही सख्यभक्ति में भगवान् के प्रति भक्त रहता है । वह अपने भगवान् को सखा मानता है । उससे वह प्रेम व्यवहार निस्वार्थ भाव

१ वही, पृ० ६ ।

२ डा० दीनदयानु गुप्त अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय, भाग २, पृ० ५६८ ।

३ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और अथ सहयोगी, वाराणसी, पृ० ५१ ।

४ प्रजरत्नवास (सपा०) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खंड, विनय प्रेमपरासा, छं० १३, पृ० ५४२ ।

५ वही, छं० १० पृ० ५४१ ।

से करता है। भागवतकार के निम्न वाक्य 'ब्रज के निवासी उन नन्दगोपों को धन्य मानना चाहिए जिनका परमानन्दपूर्ण-सनातन ब्रह्म मित्र है।' से सख्य भक्ति का रूप लभित होता है।

भारते दुकालीन कविता में प्राचीनता के प्रति मोह कम था। अतः सख्य भक्ति की रचनाओं में कृष्ण की बाललीला और यौवनकाल की आमोद प्रमोदमयी घटनाओं का विशेष उल्लेख है। कवि भारतेन्दु जी तो उनके सखा थे ही। अतः उनकी सख्यभक्ति का चित्रण उनकी पदावली में विशेष ढंग से हुआ है। इन पदों की मौलिकता और नवीनता के सामने मूर की काव्यकला भी मुँह देखने लगती है। कवि का कृष्ण आर्गन में खेल रहा है। वह बार बार बरजने पर भी नहीं मानता और धूप में चला जाता है—

अरी हो बरजि रही बरज्यो नहिं मानत ।

दोरि दोरि बार बार धूप ही म जाय ॥

सीरे ससखनि साजि सज्जू बिछाय राखी ।

भयो छिटकाव आइ नेकु सी जुबाय ॥

छूटत पुहारा चार देखि ती बौतुक आइ ।

मोतिन सी बूद करै चित्त सलचाय ॥

हरीचंद मातु के बचन सुनि आइ पौढ़े ।

विजन करत सब सखि हरछाय ॥^२

कृष्ण कुछ बड़े हुए, वे गोचारण के लिये वृन्दावन जान लगे थे। सग में केवल बालबान हैं। वे उसे चारण करते हैं और वशी का ध्वनि स सबका मन मोह लेते हैं—

सहज सुवालको के सग सुख पावै श्याम ।

गोपन चराचर पुहराव नाम देरि देरि ॥

आवै डिग जे ते नित्य बिबुध विरोधी तिहैं ।

पनरि पञ्जारि मार भूमि रन गेरि गेरि ।

सारदा घुरैत सभु गिरिजा गनेस आदि ।

गाव कमलस जासु गुन-गुन फेरि फेरि ।

कुल-बन जावै, वर बासुरी बनाव राम ।

रागिनी सुनावै औ चितावै हसि हेरि हेरि ॥^३

प्रस्तुत पद में एक चरवाहा दूसरे चरवाहा को नाम से पुकारता है। बात ही बात में हाया-पाई हो जाती है। इस तरह पकड़ कर पड़ाव पछाड़ मारने का भाव बड़ा ही चित्तकर्षक हुआ है।

भारतेन्दु जी ने तो वृन्दावन से लौटते कृष्ण के रूप का मनमोहक वर्णन प्रस्तुत किया है—

भीनो पिछीरा सोहे आबु अति भीनो पिछीरा सोहे ।

चन्दन लप नदनदन-तन देखत ही मन मोहे ॥

१ अहोभाग्यमहोभाग्यमहोभाग्य न दगोपब्रजौकसाम् ।

यमित्र परमानन्द पूर्ण ब्रह्म सनातनम् ॥

—श्रीमदभागवत दशम स्कन्ध, अध्याय १४, श्लो० ३२ ।

२ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु पदावली, दूसरा खण्ड प्रेम-भक्तिना ४० ६०, पृ० ६३ ।

३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ७६ ।

॥ पारिजात मदार रही लसि फूल-छरी कर लीहैं ।
 साध समय बन तें धनि आवत गोधन आगे कीहैं ॥
 गोरज धुरित अलक सब सुंदर ब्रज-बालन दरसायो ।
 'हरीचन्द' मुख चंद देखिकै वासर-ताप नसायो ॥^१

वात्सल्य भक्ति

रति प्रेम की तरह वात्सल्य स्नेह भी मानव जाति का व्यापक भाव है ।^२ फर्क केवल इतना ही है कि रति प्रेम में वेदना की अनुभूति अधिक होती है, यही अनुभूति जब चरम सीमा पर पहुँच जाती है तो सुखानुभव होने लगता है । वात्सल्य भाव का आश्रय विशेषकर माँ का हृदय है । अतः सभी वात्सल्य-काल की भक्ति रखने वाले भक्ता को यशोदा का हृदय प्राप्त है, नन्द का नहीं । भारतेन्दुवालीन कविता में वात्सल्य भक्ति की व्याख्या पूर्णरूपेण हुई है । प्रेमधन जी के पुत्रवद चन्दा माँगते हैं । माँ के बहुत मनाने पर भी नहीं मानते । इन बाल कौतुक को देखकर कवि अपनी भावधारा में बह जाता है—

मागत चंद श्रीवृजचन्द ।

मातु पै मधले न मानत करत बहु छलछन्द ॥
 बाल-कौतुक करत मोटत भूमि में नन्दनन्द ।
 यद्यपि जननी बहु मनावत बचन के करि फन्द ।
 पै न बद्रीनाथ कविवर सुनत आनंद कन्द ॥^३

पुष्टिमाग म बाल श्रीकृष्ण को सुलाने का प्रयत्न सभी कविता ने किया है । भारतेन्दु जी भी अपने श्रीकृष्ण को सो जाने का अनुरोध करते हैं—

लालन पीढे ही बलि जाऊँ ।

चापी चरन कहानी मापीं करि मनुहार सोवाऊँ ॥
 सीत-सीत परदा बहु डारो मवल अंगीठी साऊँ ।
 सरस रंग परिमल कोमल अति धार रजाई उड़ाऊँ ॥
 मधुरे गुन गाऊँ प्यारे को करि मनुहार मनाऊँ ।
 हरीचंद पीगै प्रिय लालन हो तेरे बलिजाऊँ ॥^४

प्रस्तुत पद पुष्टिमागीय सूर के प्रभाव से वचित है । यद्यपि कि दोगो म काफी समानता है, लेकिन सूर के अनुरोध^५ से श्रीकृष्ण सो जाते हैं । पर यही केवल अनुरोध का ही वर्णन है ।

१ ब्रजरत्नमाला (संपादक भारतेन्दु प्रभावली दूसरा खण्ड, रागसंग्रह, छं० ४२, पृ० ४५२ ।

२ डॉ० दीनदयालु गुप्त अष्टाष्टाध और वल्लभ सम्प्रदाय, भाग २, पृ० ६१६ ।

३ प्रभाकेश्वर उपाध्याय प्रेमधन सवस्व, पृ० ४३५ ।

४ ब्रजरत्नमाला (संपादक भारतेन्दु प्रभावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, रागसंग्रह, छं० १०६, पृ० ४७३ ।

५ पीढ़िये मैं रति सेव विद्याई ।

× × ×

मधुरे सुर गावत केदारो सुनत श्याम चित्त लाई ।

सूरदाम प्रभु नन्द-भुवन को नींद गई तब आई ॥

सूरसागर, २४२। ८६०

वात्सल्य भक्ति की उपासना में वनभाव की उपासना पर बल्लभ प्रभु ने विशेष बल दिया था । अतः पुष्टिमागीय कवियों ने इस भाव की उपासना का श्रौण्ण्य वणन में हाँ मिला है । भारतेन्दु जी ने भी कृष्णजन्म का वर्णन ११ पद्या में किया है । कविजर सूरदास पुष्टिमाग में पूर्ण विश्वास रखते थे । वे श्रीकृष्ण का जन्म न लिखकर यशोदा के गोमं म कृष्ण को डालकर केवल मानमोपासना की प्रतिक्रिया दिखला देते हैं । वही भारतेन्दु जी कृष्ण के व्रज में प्रगट होने का सजीव वणन प्रस्तुत करते हैं—

प्रगटे रसिक जनन के सरबस

जसुमति उदर अलौकिक वारिनि श्याम कनानिधि निवि रस ॥

पसरित चद्रकला सा पूरव उज्ज्वल विमल विसद जस ।

हरीचद मजवधू चकोरी सहज कीन्ही निज वस ॥^१

माधुय भक्ति

बल्लभ सम्प्रदाय में मधुर भाव की उपासना का समावेश विट्ठलनाथ जी के समय से हुआ । इनके पूर्व आचार्य बल्लभ ने मधुरभाव की उपासना के महत्व को स्वीकार करते हुए भी बालभाव की उपासना पर विशेष बल दिया था ।^२ माधुयभाव का लीला में कृष्ण की समस्त कैशवी लीलाएँ (दानलीला, पनपटलीला, झूना प्रसंग, वेणुनादन, जलविहार रथ क्राडा आदि) आती हैं ।

माधुय भाव से प्रेम करने वाली व्रज में दा प्रार की गोपिशाखा की चर्चा है । एक तो वे हैं, जिन्होंने स्वकीयभाव से उनकी उपासना की है, दूसरे न बिहान परकीयभाव से अपना प्रेम दर्शाया ।

स्वकीयभाव की मधुर भक्ति

जिन्होंने कृष्ण की रूपमाधुरी पर रोक कर उन्हें पति के रूप में वरण कर लिया, वे स्वकीया से कृष्ण की उपासना करती हैं । व्रजमण्डल का प्रायः समा गांधिया का भक्त कविया न स्वकीया के रूप में चित्रित किया है । भारतेन्दु जी अपने पिया से अरज करने की विधि सोचते हैं, क्योंकि यह पामर जीव वही तक कैसे पहुँच सकता है, जहाँ कि ब्रह्म, शिव आदि बड़े बड़े देव और ऋषि भी नहीं पहुँच पाते हैं—

पिया हा कैहि विधि अरज करौं ।

मति बहू चुकि हो बे-अदबी याहा डरत डरौं ।

भोरहि सा मला सो लागत नर-नारिनि को भारी ।

हात खात बन जात नुज मैं कैहि विनि लहै पुकारी ॥

महत टहल म रहता सुमान साभहि सा सब राती ।

तह को विघ्न बनै कधु कहि कै एहि डर परवत आती ॥

बड़े-बड़े मुनि देव ब्रह्म शिव जहें मुजरा नहि पायै ।

तह हम पामर जीव बहो क्यों घुसि कै अरज सुनावै ॥

एक बात वेदन की सुनिये कछु जिय आयो ।

हरीचद पिय सहम-अवन तुम सुनतहि आतुर घायो ॥^३

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड 'रामसङ्ग' छं० ५७, पृ० ४५७ ।

२ डॉ० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में माधुयभक्ति पृ० ४१४ ।

३ ब्रजरत्नगम (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, प्रेम फुलवारी, छं० १३, पृ० ५८० ८१

परकीया माधुर्य

परकीया माधुर्य भाव का चिन्तन मुग्ध गांधिया के 'पूवराम, राधाकृष्ण के 'सयोग और कृष्ण के प्रवाम वचन में विशेष लक्षित होता है। नीचे परकीया भाव चोतित करनेवाला पद उद्धृत है—

इन नैनन में वह सावरी मूरति देखति आनि अरी सो अरी ।
अब तो है निवाहिवो यावो 'हरिचंद' जू प्रीत करी सो करी ।
उन सजन के मद-मजन सो अखिया ये हमारी करी सो करी ।
अब लोग चवाव करो तो करो हम प्रेम के फंद परी सो परी ॥^१

गोपी-माधुर्य भाव

अप्य सम्प्रदायो में जिस प्रकार सखी-माधुर्यभाव की प्रधानता है, उसी प्रकार वत्सलमद-मत्त में गोपीभाव की महत्ता वर्णित है। गोपीभाव की उपासना भक्त की निम्नावस्था है। गोपी भाव परायण भक्त मगवान् कृष्ण की बिहार लाला से द्रवोभूत हो जाता है। डा० दीनदयाल गुप्त ने लिखा है कि वत्सल्य सम्प्रदाय को गोपीभाव की उपासना पर अप्य सम्प्रदाय के सखीभाव का प्रभाव वर्पात है।^२

भारतेन्दु जी गोपीभाव से उपासना कर मगवान् की बिहारलीला का शाश्वत आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं। गोपी रूप में उनकी त्रिरह दशा बड़ी ही दयनीय हो गई है—

गापिन वियोग अब सही नहीं जात भोपे
कब लौ निठुर होय मैन-बान मारोये ।
'हरिचंद' आप सा पुकारे कहैं बार बार
बेगही कृपाल अबे भोकुन सिधारोये ॥
बहुत निहोरि कर जोरि हम पूछ जौन
राधा रीन ताकी कौन उत्तर बिचारोये ।
आसुन को नीर जब बाढ़ीगो समुद्र तबै
कच्छ रूप धारोये के मच्छ रूप धारोये ॥^३

विविध लीलाएँ

माधुर्यभक्ति में लीलाओं की विशेष व्याख्या हुई है। भारतेन्दु जी ने इन लीलाओं का मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया है।

बीरहरणलीला — भारतेन्दु की गांधियाँ यमुना में स्नान करते हुए, उत्तम अगहन मास में, हाथ जोड़ देवी से 'दलाल का पति रूप में देने की प्रार्थना कर रही थी कि कृष्ण बीर लेकर भाग गये—

जल में न्हात हैं बज-बाल ।

मास अगहन जान उत्तम मिलन को गोपाल ॥

हाथ जोरि मुकुट देविहि देउ पति नन्ताल ।

बीर लै 'हरिचंद' भागे शुभग स्याम तमाल ॥^४

१ वही प्रेम-मानुरी छं० ११०, पृ० १७१ ।

२ डा० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में माधुर्यभक्ति, पृ० ४११ ।

३ ब्रजरत्ननास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थवली दूसरा खण्ड, छं० ४, पृ० ८२३ ।

४ वही, छं० १२, पृ० ८३१ ।

गोवर्धनधारणलीला —भारते दु जी गोवर्धनधारणलीला का वर्णन बड़े सरस और आकर्षक रूप में प्रस्तुत करते हैं—

घर त मिलि चली ब्रजनारि ।

खसित कबरी, नैन धूमत, सबै सकल सिंगार ॥

लिए पूजन साज कर मैं कुटिन विधुरे बार ।

कृष्ण-गुन गावत, सुविहसत, हरीचंद निहार ॥^१

पनघटलीला —कृष्ण की छेड़खानी बड़ जाती है । वे जहाँ तहाँ गोपियों का राह रोक खड़े हो जाते हैं । अब वे उहें पानी भरते, पनघट पर परेखाएँ करते दिखाई पड़ते हैं । यही प्रसंग पनघट लीला के नाम के प्रत्यात है—

देखी जू नामर-नट ठाढ़ो जमुना के तट—

पर, भग कोउ चलन न पावै ।

बाहू को हस्त चीर, बाहू को गिरावै नीर,

बाहू की हँडुरी दुरावै ॥

श्याम बरन तन सीस टिपारो

सोमा कहि नहि आवै ।

'हरिचन्द' हँसि हँसि गयनन गावत

तन-भन सबहि चोरावै ।^२

भ्रज मे कृष्ण की छेड़खानी से तग आकर गोपियाँ यशोदा से शिकायत करती हैं—

बिनती सुन नद-बाल, बरजो क्यों न अपने बाल

प्रातकाल आइ आइ अम्बर लै भावै ।

भीर होत जमुन तीर जुरि जुरि सब गोपी भीर

नहात जब विमल नीर भीत अतिहि जावै ॥

सेत बसन मन चुराइ कदम बढ़त तुरत पाइ

ठाढ़ी हम नीर माहि नागी सकुचाही ।

'हरीचन्द' ऐसी हाल, करत नित्य प्रति गोपाल,

भ्रज मे कहो कैसे बस, अब निबाढ़ नाही ॥^३

दानलीला —भारते दु जी के दानलीला पदो मे सजीवता और मौलिकता अधिक है । वामन और कन्हैया की तुलना करते हुए गोपियों ने कहा है—

दान लेन द्वै ही जन जायो ।

कै तुम नंदराय के डोटा, वामन जिन बलि छन आयो ॥

तान पैर कहि छोटे पग सो उन छल करि कै दह बनाई ।

तुम गोरख के मिस कछु औरै रस लीनो छलिकै ब्रजराई ॥

वे छोटे कपटी तुम खोटे एन्हि से विधि रचे संवारी ।

'हरीचन्द' वे तो वावन रहे तुम छपन निकसे गिरधारी ॥^४

१ श्रजरलदान (सपादक) भारते दु प्रयावली, दूसरा खंड, छ० ११, पृ० ८३१ ।

२ वही रामसंग्रह, छ० ४६, पृ० ४५४ ।

३ श्रजरलदान (सपादक) भारते दु प्रयावली, दूसरा खंड, प्रेममालिका, छ० ६३, पृ० ७१-७२ ।

४ वही, राम-संग्रह, छ० ४७, पृ० ४५३-६४ ।

वशी-वादन — कृष्ण की मुरली के सामने सारा ससार अणुमात्र है। वेणु का रूप होता है—

व + इ + अणु अर्थात् जिसके समस्त सारा ससार अणु मात्र हो। एक तो कृष्ण का रूप अलौकिक था दूसरे मुरली योगमाया रूप। अब क्या था। दोनों का समन्वित रूप गोपिया पर गजब ढाता है। वल्लभ सम्प्रदाय में मुरली अर्थात् ध्वना चतुर योगमाया है और नाग ब्रह्मा की जननी है।^१ भारतेन्दु जी की गोपिया पहले तो मुरली की धुनि सुन उस पर बलि बलि जाती थी।

पुष्टिमार्ग में मुरली का विशेष महत्व है। यह प्रभु की आह्वानिका शक्ति है। वह शुद्ध पुष्ट भक्ति का प्रतीक है और गोपियों की सपत्नी है। सूरदास मुरली वधन में कमल कर दिखाये हैं। उन्होंने सैकड़ों पदों की रचना की है। इन पदों में गोपिया मुरली को उपासना देती हैं। मुरली उनका उत्तर देती है और फिर गोपिया मुरली के बारे में परस्पर वाक्य युद्ध करती हैं। भारतेन्दु जी ने केवल छह पदों की सृष्टि की है। भारतेन्दुका न अर्थात् वज्रिया ने तो मुरली वधन की विशेषताओं का उद्घाटन किया ही नहीं है। प्रेमधन जान केवल एक जाह मुरली ध्वनि का वधन किया है। यहाँ इस वधन में विशेषता लेशमात्र भी नहीं है। प्रेमधन का वधन इस प्रकार है—

जब सौ मुरली तान तुव आन परी है वान

धुनि सुन कैसी हूँ बहूँ परत आन नहि जान ॥^२

सूरदास का मुरली वधन हिन्दी साहित्य में अप्रतिम स्थान है। भारतेन्दुजी, ने के सूर मुरली सम्बन्धी पदों की अपेक्षा कममात्रा में रचना प्रस्तुत की है पर इनके मुरली सम्बन्धी पदों का प्रभाव सूर के एतत्सम्बन्धी पदों से कम नहीं है। सूर की मुरली की ध्वनि सुन आदि खग मृग, देव-गंधर्व, ऋषि मुनि सभी अपनापन को देते हैं तो भारतेन्दु के बाह की वशी वज्रते हो सभी वरिष्ठ हो जाते हैं, उन्हें अपने प्रान की सुधि ही नहीं रह जाती। ऋषि मुनि, देव गंधर्व आदि मोहित हो जाते हैं—

वजन लगी बसी कान्ह की।

धुनि सुनि चकित भए गल मृग सब सुधि न रह्यो बधु प्रान की ॥

माहे देव गंधर्व रिसि मुनि भूले गति जू विमान की।

'हरीचन्द' का मन मोह्यो अस दिसरी सुधिहु अपान की ॥^३

भारतेन्दु जी की गोपियाँ मुरली-मातुरी से मुग्ध हो जाती हैं। कृष्ण का वशीवादन अलौकिक है। गोपियाँ मुरली की ध्वनि सुनकर आह्लादित होती हैं। इस प्रकार अब वे जान जाती हैं कि वह मुरली हमलोगों के बर पड़ी है। वह एक पल भी घर में नहीं रहने देती। गोपियों को लोकलाज की सुधि बिसर गई है—

बसुरिया मेरे बर परी।

धिनहूँ रहन देत नहि घर में मेरी बुद्धि हरी ॥

केतु-वस को यह प्रभुताई विधि-हर-सुमति छरी।

हरीचन्द माहन बस कीनो विरहिन-साप-करी ॥^४

१ सब लीनी कर कमल योगमाया सी मुरली।

ब्रजरत्ननाम (मपा०) नन्दाग्र प्रयावली, ना० प्र० समा, काशी, पृ० १०७।

२ प्रभासवेश्वर उपाध्याय (मपा०) प्रेमधन सर्वस्व लालित्य सहरो, छ० ७०, पृ० ३३५।

३ ब्रजरत्ननाम (मपा०) भारतेन्दु प्रयावली, दूसरा खंड, स्फुट वज्रिताएँ छ० २५ पृ० ८३५।

४ ब्रजरत्ननाम (मपा०) भारतेन्दु प्रयावली, दूसरा खंड, छ० १६, पृ० ८३४।

सूरदास की गोपियाँ भी मुरली से बैर मानती थी ।^१ सूरदास ने इस क्षेत्र में जिन भावा की सृष्टि की है वह अनुपम है ।

इस प्रकार मुरली की मधुर ध्वनि पुनः वे सुनना नहीं चाहती हैं । मुरली ध्वनि की भावना से उनके हृदय में कसक सो उठ जाती है । उनके मन थक गये हैं और मति की गति उलट हो जाती है—
बैरनि बासुरी फेरि बजी ।

सुनत थवन मन चकित भयो अह मति गति जाति मजी ॥

सात मुरली बह तीन ग्राम सो पिय के हाथ सजी ।

'हरीच' औरहु सुधि मोहो जब हो अघर तजी ॥^२

फिर तो वशी से बैर बनते बनते सपत्नी का भाव बढ जाता है । गोपियाँ उसे अपनी सौत समझने लगती हैं । सूरदास ने इसका वर्णन बड़ी ही कुशलता पूरक किया है । भारतेन्दु जी ने इस प्रकार का नहीं किया है । भारतेन्दुकी कवि लाला रघुपतनहाय ने वशी की सौत के रूप में चित्रित किया है । वर्णन में श्रु गारिक सज्जा तो विशेष है, लेकिन वशी को सपत्नी के रूप में चित्रित करने में कवि को विशेष सफलता मिली है । वर्णन इस प्रकार है—

बागि सौत बासुरी मधुर धुन धुन और तन पीर,
उठी पीर कोऊ ना धरत है ।

नोखे कान्हू सखियन डेर डेर घेर घेर,
बिकल करत छहूँ चीरहूँ हरत है ॥

आली रो न जैहो बनवारी पास,
तेरी सौह कहा कहाँ नेक न डरत है ।

पावे दौर भसगत अगिया टटोल स्याम,
उरज अमाल गोल पायल करत है ॥^३

सूरदास की गोपियाँ तो उसे सौत के रूप में स्वीकार ही कर लेती हैं ।^४

भारतेन्दु की गोपियाँ मुरली की ध्वनि सुन चकित हो जाती हैं, ज्यों ही उनके कानों में ध्वनि का प्रवेश होता है, वे अपने लिंगार सार्वभौमा विहारीलाल की सुधि से आत्मविमोह हो जाती हैं । क्या न आत्मविमोह ही ! उनके गुजन के द्वार की छवि धर कर गई है—

१ नन्ददुलारे बाजपेयी (सपा) सूरसागर, भा० प्र० समा, बाणी,

२ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारत दुःखावली, दूसरा खण्ड, ख० १८, पृ० ८३४ ।

३ रमिक मित्र, प्रथम भाग, संख्या ४, जनवरी, १८६८ ई०, पृ० २३ ।

४ मुरली हम वह सौत मई ।

नैकु न हाति अघर त पारी जसे तृपा उई ॥

इह अचकति, उह डारति सेनै, जल बन बननि बई ।

जा रसको ब्रत करि तनु जार्यो कोन्ही रई रई ॥

पुनि पुनि सेलि, समुच नहि मानति नैसी मई दई ।

कहा घरे वह बास सास की, आस निरास गई ॥

ऐसी बहई गई नहि देखी जसी मई नई ।

सूर बचन माने टोना से सुनत मनोज जई ॥

नन्ददुलारे बाजपेयी (सपा० सूरसागर, प्रथम खण्ड, १२४०।१८५८, पृ० ६६६ ।

बजन लगी बसी यार की ।

धुनि सुनि ब्रज तिय चकित होत है सुनि जावत नितद्वार की ॥

मीठी तान लेत चित मोहजो, चितवन तीखी यार की ।

‘हरीचंद’ नैनन मे गडि गई छवि गुजन के हार की ॥^१

और इस तरह प्रेम प्रतिशोध चाहने लगता है । गोपियों का दिल दुख का समान नहीं कर पाता है । अब वे पश्चाताप करने लगती हैं कि हमी वशी वश न हुई, यदि वशी का रूप हमें मिलता तो जो सुख वशी को प्राप्त हो रहा है वही सुख उहे भी सुलभ होता । इस प्रकार गोपियों की यह उक्ति मुरली वगन में अपना एक अलग स्थान प्राप्त करती है । यहाँ भारते-दु जी सूरदास से भी आगे हो जाते हैं । सूर की गोपियाँ मुरली से सब कुछ कहती हैं, लेकिन अपने पश्चातापपूर्ण शब्दों में इस प्रकार का भाव नहीं प्रकट करती । भारते-दु जी की गोपियाँ कहती हैं—

सखी हम बसी क्या न भए ।

अधर सुधा रस निमुनि पोबत प्रीतम रगरए ॥

बबहुँ कटि मे बबहुँ कटि मे बबहुँ अधर धरे ।

सब ब्रज-जन मन हस्त रहस नित कुजन माम खरे ॥

देहि बिधाता यह बर मागों कीने ब्रज का धूर ।

हरीचंद नैनन मे निवसे मोहन रस भरपर ॥^२

यहाँ सखियों की प्रबलतम इच्छा दर्शनीय है ।

रासलीला —यूग पुरोत्तम कृष्ण का निरंतर रास और हम लोक में कृष्णवतार के समय में नैमित्तिक रास दोनों का एकीकरण करने हुए भक्तिकालीन कविता ने गोपी-कृष्ण रास का वर्णन प्रस्तुत किया है । इस रास से तीन प्रकार के रस की सृष्टि होती है—लौकिक विषयानन्द, अलौकिक विषयानन्द और काव्यानन्द । लौकिक विषयानन्द तथा काव्य रस से इतर रस रूप धीकृष्ण के ससग की लीलाओं में जो रस समूह मिले वह रास है ।^३ यह रास तीन प्रकार का होता है । वे निम्नोक्त हैं—

१—नित्यरास

२—नैमित्तिकरास

३—अनुकरणारम्भरास

नित्यरास नित्यगोलोक में भक्ता के रजन के निमित्त प्रभु करते हैं । भक्तजन इस रास को देखकर आह्लादित होते हैं । नैमित्तिक रास में प्रभु गोबुल में अवतार लेकर विविध लीलाएँ प्रस्तुत करते हैं । यह वही रास है जिनसे मनुष्य भवसागर के बंधन से मुक्ति प्राप्त करता है ।

भारते-दुकालीन कविता ने इस रास की विशेष महत्ता नहीं बतायी है । रासलीला के वर्णन विशेषकर सूरदास में प्राप्त होते हैं । भारते-दु जी जिस प्रकार अन्य लीलाओं के वर्णन में मौन रहे हैं, ठीक उसी प्रकार रासलीला वर्णन में भी चुप हैं । उहाँमें केवल छ पदों की सृष्टि की है । रासलीला का सर्वश्रेष्ठ पद जो उहाँने लिखा है, वह इस प्रकार है—

१ ब्रजरत्नदास (सपात्क) भारते-दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड, छ० २४, पृ० ८३५ ।

२ वही, स्पष्ट कविताएँ छ० २०, पृ० ८३४ ।

३ डा० सत्येन्द्र गोयल नन्ददास का दर्शन साहित्य संदेश, वर्ष २६, अंक १-२, १९६७, पृ० ३४ ।

वृन्दावन उज्ज्वल वर जमुना तट नदालल
गोपिन सग रहस रच्यो सरद जमिनी ।
निरतत गोपाललाल, सग म वृज-वाल वनी
अद्भुत गति लेत कोक-कलित कामिनी ॥
साथ डाट सूर-दधान गावत अचूक तान
ततथेइ ततथेइ थेई गति अभिरामिनी ।
गोपिन सग श्याम सुन्दर मडल-माघ सोमित बति
बिहरत बहु रूप मानो मेघ दामिनी ॥
याकयो नम बंद देखि रैन गति सिधिल भई
लखि हरि गजपति सग गन-मामिनी ।
'हरीचंद' सोभा ललि देन गुनि नम विधक्ति
मानो हरि साथ सबै ब्रज मामिनी ॥^१

(घा-वृष्ण की आह्लादिका भक्ति है। कवि राधा के रास का वर्णन भी प्रस्तुत करता है—
ललि समि आञ्जु राधिका रास ।

- जमुना तुलिन सरल कोमल वन जह भल्लिरा विवास ॥
उदित चन्द्र पूरन नम मडल पूरन ब्रज तिय आस ॥
भद सुरन निय पास वन सजि निकर चिकुर भल पास ॥
प्रचलित पवन रवन हित महकत मह मह दवन-सुवास ॥
दवन मदन भद भद गवन सुख भवन जहा हरि-वास ॥
ब्रजत मृग उपग चग मिलि भजनन जति तति जाम ॥
बढयो रग रति रग दस लखि जग उमग प्रकाम ॥
मुरली रली मली बाजत मिनि बीन तीन सुर खास ॥
ताल देत उत्ताल बजावत ताल ताल करि हास ॥
उपटत श्रोरापे रावे मधुर धुनि बन सब आस ॥
हरि राधा की बचन रचन लखि बनिहारी हरिदास ॥^२

इस प्रकार भारते दुगुणीन कविता में पुष्टि भाग व सभी सिद्धान्तों और विभिन्न विधानों को आत्मसात् करने की अपूर्व चेष्टा की गई है। सब तो यह है कि विही निही सिद्धान्तों के विशेषण में कुछ कवियों की विशेष सफलता मिली है। यहाँ रास-वर्णन में भारते-दु तथा भारते दुगुणीन किसी भी कवि को सफलता नहीं मिली है। यहाँ केवल परम्परा का निवाह ही पाया जाता है। इस तरह का वर्णन न तो आध्यात्मिक महत्व रखता है और न भक्ति सिद्धान्तों के साथ तादात्म्य ही स्थापित कर पाता है।

गोलोक, गोकुल अथवा वृन्दावन

वृन्दावन की महत्ता प्रायः सभी सम्प्रदायों में स्वीकार की है। यह वृन्दावन सीताधर का सीता-पाम है। इसकी कीर्ति का उत्तरोत्तर विवास होता जाता है। जहाँ पर यजुस्तनन्द के चरणकमलों की

१ ब्रजलतास (संपादक) भारते-दु ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, राग सग्रह, छ० ८१, पृ० ४६४ ।

२ यही, राग-सग्रह, छ० ११०, पृ० ४७४ ।

छाप पड़ गई, जहाँ मयूर मुरली की मधुर ध्वनि सुन कर मत्त हो नाचने लगते हैं। सभी उसकी शोभा एवं महिमा से मोहित हो जाते हैं। जब श्रीकृष्णचन्द्र गिरिराज के शिखर पर सभी को दूर कर लीला में लीन हो जाते हैं, उम्र समय मयूर नाचने लगता है। वह वृन्दावन बिहारी मयूर के पाँच को सर पर धारण कर नटराज के रूप में शोभित होता है। इस तरह वृन्दावन की शोभा द्विगुणित हो जाती है। कवि भारतेन्दु जो इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

बनी जग कीरति वृन्दावन की।

श्रीजमुदानन्द की जाप छाप भई चरन की ॥

बेनु धुनि सुनि जहाँ नाचत मत्त होइ मयूर।

सिखर पै गिरिराज के सब सग को करि दूर ॥

सबै मोहत देव नर मुनि नदी खग मृग आन।

ता समै यह मोर नाचत सुनत बसी तान ॥

पच्छ यातें धरत सिर प श्याम नटवर राज।

बहुत इमि हरिचंद गापी बैठि अपुन समाज ॥^१

प्रेमधन जी का वृन्दावन के प्रति विचार बहुत ही महत्त्व है। वृन्दावन की शोभा अति रचि है। अतः गोकुल बिहार के निमित्त भगवान् न अपना कृष्ण रूप धारण किया। वरमा रानी को इस नर गोधारण के निमित्त गोकुल बास करने लगे—

गोधारण हित गोकुलहि आप बस्यो गोपाल।

रानी रमा विसारि तजि निज गो साक्ष विशाल ॥^२

श्रीगदाधर भट्ट द्वारा वृन्दावन की शोभा का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

श्रीगोविन्द पदारविन्द सीमा सिर नाऊ।

श्रीवृन्दावन विपिन मीलि वैभव कछु गाऊ ॥

कालिंदी जह नदी नील निमल जल भ्राज।

परम तत्व वदान्त बंद इव रूप बिराज ॥

रक्त पीठ सित असित लसित अबुज बन शोभा।

टोल टोल मदलाल भ्रमत मधुकर मधु लोभा ॥

सारस अरस कल हंस वारु कोलाहन वारी।

अगनित लणन पनि जानि कहतहि नहि हारी ॥

पुलिन पवित्र विचित्र रचित नाना मनि मोती।

सज्जित है ससि सूर निरखि निसि बासर जोती ॥^३

निष्कर्ष

भारतेन्दुयुगीन भक्तिकाव्य पर बल्लभ सम्प्रदाय की विशेष छाया दृष्टिगोचर होती है। भारतेन्दु युगीन प्रमुख भक्त कवि राधाकृष्णदास, गोस्वामी राधाचरण आदि पर भी इस सम्प्रदाय की विशेष छाया है। भारतेन्दु जी तो बल्लभ सम्प्रदाय में दीप्ति थे ही। उन्होंने तो इस सम्प्रदाय के सम

१ ब्रजरत्नदास (सपात्त) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड वृष्णीय छ० ४ पृ० ७५०।

२ प्रभाकरेश्वर प्रेमधन सबस्व कालित्य लहरी, छ० ३२, पृ० ३३१।

३ हरिचन्द्र भगवीन, १८७४ ई०, पृ० १७२।

सिद्धांतों और विविध विधानों को अपनाया है और अपने काव्य को प्रथम लिया है। मुख्यतः वल्लभ सम्प्रदाय के व्यावहारिक सिद्धांतों का निष्पण तद्गुणीन कविता में सफलतापूर्वक हुआ है।

हरिदासी सम्प्रदाय

हरिदासी सम्प्रदाय और भारते-दुकालीन काव्यधारा

हरिदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी हैं। इस सम्प्रदाय पर राधावल्लभ सम्प्रदाय की स्पष्ट छाप लक्षित होती है लेकिन राधावल्लभ सम्प्रदाय का परिवर्तित रूप ही इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। उपासना के क्षेत्र में इस सम्प्रदाय में अपना एक अलग स्थान निश्चित किया है। डा० रूपनारायण पाण्डेय ने लिखा है कि इस सम्प्रदाय में भी राधावल्लभ की भाँति राधा-कृष्ण का पारस्परिक सम्बन्ध नित्य बिहारों भाग का है।^१

उपास्य का स्वरूप

स्वामी हरिदास जी ने अपने दृष्टि के रूप में कुजबिहारी को माना है। अतः नित्य उपासना की प्राधान्यता देते हुए इस सम्प्रदाय में श्यामाश्याम युगल विशार, कुजबिहारी उपास्य के रूप में स्वीकार किये गये हैं। राधा और कृष्ण दोनों का प्रेम समान है। यहाँ राधा और कृष्ण दोनों अपनी लीला के निमित्त दो रूप धारण कर लिये हैं। दोनों में कोई भेद नहीं है। वे द्वैत अद्वैत और विशिष्टाद्वैत नहीं हैं, ऐसा इस सम्प्रदाय का विश्वास है।^२

राधाकृष्ण की प्रेम लीलाओं की प्रधानता इस सम्प्रदाय में है। राधा और कृष्ण का युगल बिहार के लिये समान अधिकार है। स्वकाया परकीया सम्बन्ध से नित्य बिहार की लीला सम्पादित होती है। नित्य बिहार में समानता का अधिकार होते हुए भी राधा की प्रधानता स्वीकार की गई है। वहीं वहीं तो कृष्ण से राधा के चरणों का स्पर्श तब करा दिया गया है। यह केवल प्रेम की उत्कृष्टता प्रदर्शित करने के लिये हुआ है। इसे डा० रूपनारायण पाण्डेय ने सिद्धांत स्वीकार नहीं किया है।^३

प्रस्तुत सम्प्रदाय की छाप भारते-दुकालीन कविता पर विशेष परिलक्षित होती है। ठाकुर जग-मोहन सिंह जी की कविता पर यह प्रभाव स्पष्ट है। उनके दृष्टि श्यामा श्याम हैं, वे अपने श्यामा की मूर्ति को पल भर भी विसारना नहीं चाहते—

श्यामा श्यामा नाम की जीह रटत निन रैन।

श्यामा की मूर्ति अबों टरे न पलमर नैन ॥^४

ठाकुर साहब श्यामा रूप के अनन्य उपासक हैं। उनके श्यामा का रूप जल-पल-नम और वृक्ष तथा उनके पत्तों पत्तों में व्याप्त है। यह ससार ही श्यामामय है—

१ डा० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में माधुयमकित, पृ० १४८।

२ नहीं द्वैताद्वैत हरि नहीं विशिष्टाद्वैत

बैधे नहीं मतवाद में ईश्वर इच्छा द्वैत।

ईश्वर इच्छा द्वैत करें सब ही को पोषण,

आप रहे निर्लेप भक्त तो माने तापन ॥

भगवत्तरसिंह की वाणी, पृ० ८३।

३ डा० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में माधुयमकित, पृ० ३६८।

४ डा० जगमोहन सिंह श्यामा स्वप्न, पृ० १३२।

श्यामा सुमिरि जगत श्यामा मय श्यामा विनय बहोरी ।

जल थल नभ तर पातन श्यामा श्यामा रूप भरी ॥^१

यद्यपि इस सम्प्रदाय म निम्बान गौडीय और बल्लभ की मति ही श्रीकृष्ण परात्पर तत्व स्वीकार किये गये हैं फिर राधा की महत्ता स्वीकार का गई है । भारते-दु जी के लिये श्यामा प्राण-जीवन धन है—

हमारी प्राण जीवण धन श्यामा ।

ब्रज जन-सखि चन्द्र-चूडामनि पूरनि हरि मन-नामा ॥

अति अमिरामा सब सुख धामा हरि बाभा-मनि-नामा ।

हरीचद' तजि साधन सबरे रटत एक सुव नामा ॥^२

श्यामा सखि गन की सरताज^३ और सरदार^४ हा नहा बलि भक्त भारते-दु जी की सरवत्त भी हैं—

हमारी सरवरस राधा प्यारी ।

सब ब्रा स्वामिनि हरि अमिरामिनि श्री कृष्णानु-दुतारी ॥

वृन्दावन-देशी सुख देनी सुख सबी सहज दीन हितकारी ।

हरीचद गुन निधि सोभा निधि कीरति का मुकुमारी ॥^५

हरिदासी सम्प्रदाय म राधा कृष्ण का परस्पर सम्बन्ध स्वीया परकीया भाव निर्विशेष निर्य बिहारी भाव का स्वीकार किया गया है । भारते-दु जी के निम्नांकित पं म यही भाव द्योतित होता है—

रागा श्याम सब सदा वृन्दावन वास कर

रहै निर्द्विष पद आम गुह्वर के ।

चाहे धनधाम न जराभ सो है काम

हरिच' नु भरोसे रहै नदराय घर के ॥

१ ठाकुर जगमाहन सिंह देववानी पृ० ६६ ।

—श्रीवृन्दावन धाम इष्ट श्यामा महारानी ।

भगवतरसिक की वाणी पृ० ६० ।

२ ब्रजरत्नरास (संपादक) भारते-दु प्रधावली, दूसरा खण्ड, छ० ८६, पृ ६६

३ हमारी प्यारी सखियन की सरताज ।

ताड़ की महारानी जो सब ब्रजमंडल महाराज ॥

सील सनेह सरस सोभा निधि पूरनि जन मन काज ।

हरीचद की सरवत्त जीवनि पालनि भक्त-समाज ॥

वृन्दा प्रेम फुलमारा, छ० ८४, पृ० ५६८ ।

४ श्यामा प्यारी सखियन की सरदार ।

अनि भारी भारी रस बोरी सटजहि परम उदार ।

लाज-कृपा सो भरे बड़े दृग बड़े छूटे तिमि वार ।

हरीचद तनिकहि बम कानो श्री ब्रजराज-कुमार ॥

वर्गे प्रेम-फुलकारी छ० ८५ पृ० ५६८ ।

५ ब्रजरत्नरास (सम्पादक) भारते-दु प्रधावली दूसरा खण्ड, छ० ८७ पृ० ५६९ ।

एरे नीच धनी हम तब तू दिवावे कहा
गज परवाही नाहि होहि कबो खर के ।
हाइ ले रसात तू मलेई नम-जीव बाज
आसी ना सिहारेये निवासी बत्पतर के ॥^१

यद्यपि इस सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण ने लीला के लिये विभिन्न रूप धारण किये हैं, किन्तु वास्तव में वे अमित्र प्राण हैं । उनकी लीला भी उन्हों की मूर्ति अनादि है । अतिरिक्त प्रतापनाशरण मिश्र अत्र से अज्ञात कहलवाते हैं । यथा—

सब अचरज मय बात सुनन सखत इत आप मैं ।
कह्यो कछु नहि जात सबै न मन अनुमान करि ॥
यह शिशु परम अयान हान जोग अनि स्वल्प थप ।
सो बल बुद्धि निधान मुह तेज युव है महन ॥
धय धन्य बसुदेव धय देवनी देवि तू ।
जाया जग नहि भेष जयो भजया जिन सुवन ॥^२

उपासना का स्वरूप

इस सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण की लीलाओं का नित्यप्रति ध्यान एवं चिन्तन करना ही उपासना स्वीकार की गई है । इस सम्प्रदाय की उपासना पद्धति में नाम, जप, सत्संग आदि की महत्ता स्वीकार की गई है । क्योंकि इन बाह्य साधना में साधक का हृदय विचार ग्रहण हो जाता है । इस प्रकार साधक राधा-कृष्ण की मधुर लीलाओं का रसास्वादन करने लगता है । अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि इस सम्प्रदाय में नित्य विहार की विशेष महत्ता है । इसलिये उपासना के स्वरूप को सभ्यजन के लिये नियम-विहार का अर्थ आवश्यक प्रतीत होता है ।

नित्य विहार लीला

हरिदासी सम्प्रदाय में उपासना का स्वरूप नित्य विहार की लीला से सम्बन्धित है । यहाँ नित्य विहार की लीला की विशेष महत्ता है । डा० रूपनारायण पाण्डेय ने लिखा है कि नित्य विहार के रूप का जिसने आस्वादन कर लिया है उसके लिये अन्य सभी स्थायी पद जाते हैं ।^३ 'फलस्वरूप' इन लीलाओं का चिन्तन एवं रसास्वादन करना इस सम्प्रदाय के कवियों का मुख्य ध्येय है । लेकिन रसास्वादन आसान नहीं है । यहाँ हृदय की परिश्रमिता नितात आवश्यक है । जब तक साधक का हृदय शुद्ध नहीं हो जाता, उस नित्य विहार लीला का रसास्वादन सबथा असम्भव है इस लीला के चिन्तन एवं मनन से जो प्रेमानुभूति होती है, वह लीला प्रेम से सबथा भिन्न है । इसमें भक्त आत्मनिर्भर एवं भावविभोर हो प्रयत्नशील होता है । संयोग की सुख लीलाओं का सामान मान, प्रयास विरह की स्थिति भक्त कवि नहीं स्वीकार करता ।

भारतेन्दु जी का अधिवास सभोग शृङ्गार स्वीया से सम्बन्ध रखता है । बेचारी परिकीयाओं को तो कुदृष्ट हो बीतता है । उन्होंने परिकीया के निःशक्त विहार या उज्ज्वलतम उदाहरण स्वरूप निम्नोक्त छन्द प्रस्तुत किया है ।

१ यही, स्फुट कविताएँ, पृ० ५, पृ० ८२३ ।

२ प्रभावशर उपाध्याय (संपादक) प्रेमधन सवरूप, पृ० ८३ ।

३ डा० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णवाक्य में साधुयुग्मवित्, पृ० ३७० ।

वृज के सब नाव घर मिलि ज्या ज्यो बनाइकै त्यो दोऊ चाव कर ।
 'हरिचंद' हँस जितनो सबही तितनो दुद दोऊ निमाव कर ।
 मुनि ॥ चहुँघो चरवा रिस सा परतच्छ ये प्रेम प्रभाव कर ।
 इत दोऊ निसक मिल बिहर उत चौमुनो लोग चवावकर ।^१

श्याम और श्यामा दोनों झूल पर भकोर सेते हैं । कवि इस लीला का प्रत्यक्ष चित्रण कर आत्मविमोह हो जाता है—

हिडोरना आजु भकोरवा सेत ।

झूलत श्यामा श्याम रंग मरे लपनि बनावत हेत ॥

बरसत धन तन काम जगावत गानत तारी देत ।

'हरिचंद' उरभे पिय प्यारी घोर मुग्ध रन-खेत ॥^२

कवि गोपीबन्धन सिंह ने भी श्यामा श्याम के झूलन प्रमग का उद्घाटन किया है । कवि की उक्ति बड़ी ही अनमोल है—

झूलत आज श्यामा श्याम ।

देखु घुना विपिन मह होणार मुनित ललाम ॥

साजि भूषण बसन भुसवनि मदगति ब्रज-बाम ।

राग गुण मलार गावति सेति बहुविध ग्राम ॥

बहत भारत मन्द गीतल सुरमि सै अमिराम ।

जलद-बुद रसाल बरसत निरखि उमगत काम ॥

देखन सुमग शोभा अमर तिय आइ तजि निज धाम ।

गामीण चचल नैन लखि छत्रि सेत नहि बिसराम ॥^३

जैसा कहा गया है कि लीला प्रमग में प्रेमाधिक्य के कारण कही-कही कृष्ण राधा का चरण स्पर्श करते भी चित्रित हुए हैं । लेकिन यह मत सिद्धांत रूप में स्वीकार नहीं की गई है । भारतेन्दु जी इस भाव के तीन पदा का सृजन किये हैं ।

श्रीकृष्ण देवा के देव हैं । रागा उनकी इन् महरानी हैं । लेकिन श्रीकृष्ण उनके पदों की सेवा करते हैं और उन्हें अपनी सुधि लेने के लिये प्रायना करते हैं—

ज जै श्री बुदावन देवी ।

जो देवन को देव कहाई सोऊ जा पन सेवी ॥

अमम अपार जगत-सागर ने जाके गुन मन सेवी ।

'हरिचंद' की यह वीनती नकहूँ तो सुधि सेवी ॥^४

राधा अनुसूनी कर देती हैं । अतः वह नयनों में नीर भर के राधे के चरणा पर गिर जाते हैं । वे राधा से अपने अपराधा को सभी प्रकार क्षमा करने को कहते हैं और भविष्य में अपराध नहीं करने की राधा के चरणों का शपथ लेते हैं । वर्णन इस प्रकार है—

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, छ० २३ पृ० १५१ ।

२ वही, वर्षाविनोद छ० ३७ पृ० ४६६ ।

३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार भाग २ पृ० ११६ ।

४ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रथावली दूसरा खण्ड छ० १, पृ० ५३७ ।

हे देवी अब बहुत भई ।

यह बरदान दीजिए हमको बहुत मत कीजें आजु नई ॥

अब बहूँ अपराध न करिहौं तुव चरनन की समय करौं ।

छमा बगै हा सरन तिही नाहि आहि यह दीन खरी ॥

सहो न जात बिरह यह कहिके नैन म हरि नीर भरे ।

‘हरीचंद’ बेबस हूँ श्रीराधा जू ने चरन परे ॥^१

अपराधी जब स्वयं अपने अपराध को स्वीकार कर समा के लिय प्रार्थना करता है तो निर्णायक आप ही आप द्रवीभूत हो जाता है । राधिका का मान अपने प्यारे को अपने पैरा पर षेख टूट जाता है । वह श्रीकृष्ण को अब मे उठा लेती है । कवि इन अपूर्व शोभा का निरत आत्मनिर्भोर हो जाता है—

देखि चरन पै पातम प्यारो ।

घुटि गयो मान कपट बहुत जिय मे रह्यो छद्म को नाहि समारो ।

घाइ उठाइ लियो मुज भरि कै नैनन नार मर्यो नाहि डोरा ।

तन कपट गद्गद् मुख बाना कष्टो न बहुत जो कहन बिचारो ।

रहे लपटाइ गाढ मुज भरिकै छूत नहि तिय हिए पियारो ।

‘हरीचंद’ यह शोभा लखि कै अपनी तन मन सहजहि वारो ॥^२

उपासक का स्वरूप

इन सम्प्रदाय में उपासक अपने उपासक अपने उपास्य श्यामा श्याम के साथ निरंतर साधना एवं भजन से एक रूप हो जाता है । उसे अपने देह की सुधि नहीं रह जाती । वह अपनी साधना से अपने उपास्य में इतना तन्वीन हो जाता है कि उसका मन मतलब और कुछ सुनता ही नहीं—

श्यामा तेर नेह की डोर जरि जिय मोर ।

मन मतलब अति प्रबल भम विच्यौ जात बरजोर ॥^३

इस अवस्था में उपासक को सब कुछ श्यामल ही दृष्टिगोचर होता है—

श्यामल श्याम लखात चहूँ नममडल मे बगपाति सुहाई ।

दूब हरी हरी गल गई भूति हा हा हरी सुधिह विसराई ॥

त्यो जगमोहन पीगी परी बिरहानल ने सब देह जराई ।

तरे बिना घन धरि घटा तरवार लै बिजु अटा चलि धाई ॥^४

सखीभाव

प्रस्तुत सम्प्रदाय में सखीभाव की उपासना स्वीकृत है । माधुयपरक लीलाओं में मिया प्रियतम की सेवा में सखिया का विशेष स्थान है क्योंकि साधक जब राधा कृष्ण की लीलाओं का आस्वादन ही नहीं करता बल्कि वह स्वयं भाग लेता है । अतः इन लीलाओं में वह भाग लेने के लिये अपने को

१ यही, देवीछद्मलीला छ० १३, पृ० ६४० ।

२ बजरत्नदास (सपादक) भारते दु प्रभावली, दूसरा खण्ड, देवी छद्म लीला, छ० १४, पृ० ६४० ।

३ डा० श्रीकृष्णलाल (सपादक) श्यामास्वप्न नामरीप्रचारिणी सभा, श्रावणी, पृ० १७१ ।

४ ठाकुर जगमोहन सिंह श्यामास्वप्न, सपादक डा० श्रीकृष्णलाल, पृ० १६५ ।

राधा की सखी स्वीकार करता है। इस रूप में उसे बिहार का प्रत्यक्ष आनन्द मिलता है तथा बिहार के साधन जुटाने में वह अपने को समर्थ पाता है। सखीभाव की उपासना के तीन भेद हैं—

(१) साधारणी

(२) समज्जसा

(३) समर्था

इसे ही हरिदासी सम्प्रदाय के माधुय भाव में नित्य सिद्धा या साधन सिद्धा के नाम से अभिहित किया जाना है। इन दो भेदों के अतिरिक्त सखियाँ के तीन अर्थ प्रकार भी हैं, जो निम्नोक्त हैं—

(क) स्वमुख सखी

(ख) तत्सुख सखी

(ग) चित्सुखी सखी

इन सम्प्रदाय में स्वमुख सखी और तत्सुख सखी की सेवा का ही स्थान उच्च है। स्वमुख सखीभाव से उपासना करने वाले भक्त राधा वृष्ण को सेवा करने हुए सुख का कामना करते हैं लेकिन तत्सुख सखीभाव में निजसुख की कामना नहीं रहती है।

भारतेन्दु जी स्वमुख सखीभाव से उपासना करते हैं। वे अपने युगन उपास्य श्रीश्यामा श्याम के सुरतिक्लीषा सम्पन्न शटया से उठते हुए युगल छवि को दशन करते हैं। कवि इस छवि का दशन करते हुए अपार आनन्द की सृष्टि करता है। यथा—

जागे माई सुन्दर श्यामा-श्याम ।

बहु अलसात जंगल परस्पर दूँट रही मोतिन की दाम ।

अघसुले नैन प्रेम की चितवनि आय आधे रचन ललाम ।

बिभुलति अलव भरगजे बागे नखछत उरमि मुग्धम ।

सगम गुन गावत ललितता दिक् बाजत बीन तीन सूर ग्राम ॥^१

‘हरीचर’ यह छवि सखि प्रमुत्ति ^१तून तैगन वन ग्राम ।

यहाँ कवि केवल युगल छवि के दशनार्थि सुख की भावना को अभिव्यक्ति करता है।

ठाकुर जगमोहन सिंह तो स्तुतिदिक् सुख की विशेष अभिलाषा रखते हैं। वे तो बिना श्यामा के रत्न बिना ही नहा सकते हैं। यथा—

श्यामा त्रिन इत बिरह की लागी अगिन अपार ।

पावस धन बरस तऊ बुझे न तन की भार ।

बुझै न तन की भार भार निज मानन मारत ।

आसू भरना उस भरन को जो मुहिं बारत ।

जरत अत अनग मीत बनि नीरद रामा ।

कैसे बागे रैन बिना जगमोहन श्यामा ॥^२

कवि यहाँ स्वमुखीभाव से स्पष्ट सुख की अभिलाषा व्यक्त करते हैं। स्वमुख सखीभाव की उपासना में भक्त राधाकृष्ण को एकात्मकेलि में प्रवेश नहीं पाता। यहाँ प्रभु भक्ता को अपनी रसान्ति लीलाओं में प्रवेश देकर उसकी सारी अभिलाषा का पूर्ण करता है।

१ ब्रजलतास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथाली दूसरा खण्ड प्रेम महिमा, छंद २४, पृ० ५१ ५२ ।

२ ठा० जगमोहन सिंह श्यामास्वप्न संपादक ठा० श्रीकृष्णलाल, पृ० १५४ ।

। तत्सुखसखी भाव की उपासना में उपास्य युगल की क्रीडा में भक्ता का सीधे प्रवेश होता है। वे इस प्रकार असौम्य आनन्द का अनुभव करते हैं। इस सम्प्रदाय का भक्त इसी भाव की उपासना के लिये लालायित रहता है। कविवर ललितकिशोरी तत्सुखसखीभाव के उपासक हैं। उनकी प्रबलतम इच्छा है कि ब्रजधाम को छोड़ कहीं अ यत्र न जाऊँ। उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

जमुना-मुलिन कुज गह्वर की कोकिल ह्वे डुम मूक म गाऊँ ।
पद पाज प्रिय लाल मधुप ह्वे मधुर मधुर गूज सुनाऊँ ।
बूबर ह्वे बन बीधिन डोलौ बचे सीव रमिकन के छाऊँ ।
ललितकिशोरी आस यही मम ब्रजरज सजि जिन अनत न जाऊँ ॥^१

कवि राधा-कृष्ण-केलि को निज सुख समझता है। यही कारण है कि वह ब्रजधाम में ही किसी प्रकार रहना चाहता है। विशेष बात तो यह है कि तत्सुखसखीभाव की परायणता अपने चरम सीमा पर पहुँच जाती है। क्योंकि कवि (साह कुन्दनाल) अपने को सखि ललितकिशोरी के रूप में घोषित करता है।

ललितमाधुरी जी के हृदय में यह चोर धुम गया है। वे उसे पकड़ना चाहते हैं, लेकिन हिय का चोर क्या कभी पकड़ा गया है—

मोहन चोर पकरि कैस पाऊँ ।
देसत हौं दुग भरि भरि सजनी, परसन को रहि रहि ललचाऊँ ।
दुरयो निबुज्ज लता बन बीधिन, निपट निपट मैं सोहि बताऊँ ।
ललित माधुरी हो मे जी सग चितचोरे हो आनि मिलाऊँ ॥^२

कवि यहाँ तत्सुखसखी और स्वसुखसखीभाव के बीच का रास्ता पकड़ना चाहता है। वह स्वयं सुख का भी कामना करता है और उपास्य युगल की क्रीडा में अपने को लीन भी कर देना चाहता है। नकि ललित माधुरी भी उपास्य युगल के चरणों में अपने को समर्पित कर सखीत्व द्योतक नाम अंगीकृत कर लिया। इस प्रकार निजत्व का परत्व पर समर्पित कर देने की यह कला अभिनव।

भारते-दुकालीन अथ कविया की वाणी द्वारा इस भाव की अभिव्यक्ति नहीं हुई है।

निष्काय

उपयुक्त विवचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारते-दुयुगीन कविता पर हरिदासी सम्प्रदाय के सिद्धान्त की विशेष छाया नहीं पड़ी है। भारते-दु जी पर इस सम्प्रदाय की विशेष छाया है। तत्सुख सखी और स्वसुख सखी भाव की उपासना का केवल ललितकिशोरी जी और ललितमाधुरी जी पर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

बहुदेवोपासना

भारते-दु युग की कविता रीति परम्परा का अनुवर्णन करने में मिद्वहस्त है। तत्कालीन कवियों की कल्पना में रीतिपरत माधुर्य का समावेश रीतिवादी कविता का सफल प्रयास था। अतः माधुर्य भक्ति के रक्षित प्रवाह-मयोधि में कवि का मन घुल मिल गया था। वहाँ राधा और राधाराम ही कविता के त्रिपथ थे, राम और शिव तो गौण थे। सीता तदुयुगीन वाक्यज्ञान से निर्वासित कर दी गई थी।

१ विमोगी हरि (सपात्र) ब्रजमाधुरी सार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० १३, पृ० २७१।

२ वही, पृ० २७६।

राधा की सखी स्वीकार करता है। इस रूप में उसे बिहार का प्रत्यक्ष आनन्द मिलता है तथा बिहार के साधन जुटाने में वह अपने को समर्थ पाता है। सखीभाव की उपासना के तीन भेद हैं—

(१) साधारणी

(२) समज्जसा

(३) समर्था

इसे ही हरिदासी सम्प्रदाय के माधुर्य गाव में निरव सिद्धा या साधन सिद्धा के नाम से अभिहित किया जाता है। इन दो भेदों के अतिरिक्त सखियाँ के तीन अन्य प्रकार भी हैं जो निम्नोक्त हैं—

(क) स्वमुख सखी

(ख) तत्मुख सखी

(ग) चित्मुखी सखी

इन सम्प्रदाय में स्वमुख सखी और तत्मुख सखी की सेवा का ही स्थान उच्च है। स्वमुख सखीभाव से उपासना करने वाले भक्त राधा कृष्ण की सेवा करते हुए मुख की कामना करते हैं लेकिन तत्मुख सखीभाव में निजमुख की कामना नहीं रहती है।

भारतेन्दु जी स्वमुख सखीभाव से उपासना करते हैं। वे अपने युग में उपास्य श्रीश्यामा श्याम के मुरतिस्त्रीका सम्पन्न शरीर से उठते हुए युगल छवि की स्मरण करते हैं। यदि इस छवि का दर्शन करते हुए अपार आनन्द की सृष्टि करता है। यथा—

जागे माई सुन्दर श्यामा श्याम ।

बहु अलसात जमात परम्पट दूटि रह्यो मोतिन की दाम ।

अघखुले नैन प्रेम की चितवनि आय आये बचन तलाम ।

बिनुलति अलख मरगजे बागे तबछत उरसि मुगम ।

सगम पुन गावत लनिता कि बाजत बीन तीन सूर ग्राम ॥^१

‘हरीच’ यह छवि लखि प्रमुत्ति तूत नैन ग्राम ।

यहाँ जब केवल युगल छवि के दर्शनात्मक सुख की भावना को अभिव्यक्ति करता है।

ठाकुर जगमोहन सिंह तो स्पर्शात्मक सुख की विशेष अभिलाषा रखते हैं। वे तो बिना श्यामा के रन बिता ही नहीं सकते हैं। यथा—

श्यामा तिन इत बिरह की लागी अगिन अपार ।

पावस धन बरस तक बुझे न तन की भार ।

बुझे न तन की भार मार निज बानन मारत ।

आसू भरना उस भरन को जो मुहिं जारत ।

जरत जत अनग भीत बनि नीरु रामा ।

बैसो काग रैन बिना जगमोहन श्यामा ॥^२

यदि यहाँ स्वमुखीभाव से स्थान सुख की अभिलाषा व्यक्त करत, है। स्वमुख सखीभाव की उपासना में भक्त राधाकृष्ण को एकांत-केलि में प्रवेश नहीं पाता। यहाँ प्रभु भक्तों को अपनी रसात्मक लीलाओं में प्रवेश देकर उसकी सारी अभिलाषा को पूर्ण करता है।

१ ब्रजलतास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथालय, दूसरा खण्ड, प्रेम महिमा, खंड २४, पृ० ५१ ५२ ।

२ डा० जगमोहन सिंह श्यामास्वप्न, संपादक डा० नीरुलाल, पृ० १५४ ।

। तत्सुखसखी भाव की उपासना में उपास्य युगल की क्रीडा में मक्तों का सोघे प्रवेश होता है। वे इस प्रकार असौम्य आनन्द का अनुभव करते हैं। इस सम्प्रदाय का भक्त इसी भाव की उपासना के लिये स्थापित रहता है। कवि-वर ललितनिशोरी तत्सुखसखीभाव के उपासक हैं। उनकी प्रबलतम इच्छा है कि ब्रजधाम को छोड़-वही जय न जाऊ। उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

जमुना-पुलिन कुज गह्वर की कोकिल ह्वे दुम कूक मराऊ।

पद पकज प्रिय लाल मधुप ह्वे मयूर मयूरे गूज सुनाऊँ।

कूबर ह्वे बन बीधिन डोलो बचे सीव रगिजन के साऊँ।

ललितकिसोरी जास यही मम व्रजरज तजि जिन अनत न जाऊँ ॥^१

कवि राधा कृष्ण-केल को निज सुख समझता है। यही कारण है कि वह ब्रजधाम में ही किसी प्रकार रहना चाहता है। विशेष बात तो यह है कि तत्सुखसखीभाव की परायणता अपने चरम सीमा पर पहुँच जाती है। क्योंकि कवि (साह कुन्दलाल) अपने का सखि ललितनिशोरी के रूप में घोषित करता है।

ललितमाधुरी जी के हृदय में यह चोर घुस गया है। वे उसे पकड़ना चाहते हैं लेकिन हिय का चोर क्या कभी पकड़ा गया है—

भोहन चार पकरि कैसे पाऊँ।

देखत हो दूग भरि भरि सजनी, परसन को रहि रहि खलचाऊ।

दुरयो निदुज्ज लता बन बीधिनि निपट निपट मैं तोहि बताऊँ।

ललित माधुरी हो म जो सम चित्तचोरे हों आनि मिलाऊँ ॥^२

कवि यहाँ तत्सुखसखी और स्वसुखसखीभाव के बीच का रास्ता पकड़ना चाहता है। वह स्पष्ट सुख का भी कामना करता है और उपास्य युगल की क्रीडा में अपने को लीन भी कर देना चाहता है। भक्ति ललित माधुरी भी उपास्य युगल के चरणों में अपने को समर्पित कर सखीत्व द्योतक नाम अंगीकृत कर लिया। इस प्रकार भिन्नत्व को परस्पर पर समर्पित कर देने की यह कला अभिनव।

भारते-दुकालीन अथ कवियों की वाणी द्वारा इस भाव की अभिव्यक्ति नहीं हुई है।

निष्कर्ष

उपयुक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारते-दुगुगीन कविता पर हरिनाम सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की विशेष छाया नहीं पड़ी है। भारते-दु जी पर इस सम्प्रदाय की विशेष छाप है। तत्सुख सखी और स्वसुख सखी भाव की उपासना का केवल ललितनिशोरी जी और ललितमाधुरी जी पर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

बहुदेवीपासना

भारते-दु युग की कविता रीति परम्परा का अनुकरण करने में सिद्धहस्त है। तत्कालीन कवियों की रत्नमय रीतिपरव माधुर्य का समावेश रीतिवालीन कविता का सफल प्रयास था। अतः माधुर्य भक्ति के स्फीत प्रवाह पयोधि में कवि का मन घुन मिल गया था। वहाँ राधा और राधारमन ही कविता के विषय थे, राम और शिव तो गौण थे। साता तद्गुणीन नायकानन से निर्वासित कर दी गई थी।

१ वियोगी हरि (सपादक) ब्रजमाधुरी सार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० १३, पृ० २७१।

२ यही, पृ० २७६।

मधुरा भक्ति का मध्य मवन श्रेष्ठमान था। आलोच्यकाल की कविता में राधा और कृष्ण को इसी से प्रथम मिला। राम और जानकी ने सम्बन्ध में यद्यपि माधुर्य की कमी नहीं है फिर भी इस युग के काव्य के उपासना न बन सके। आचार्य शिवपूजन सहाय ने लिखा है कि कृष्णभक्ति साहित्य में मधुर उपासना काफी है। अब इस ग्रन्थ (रामभक्त साहित्य में मधुर उपासना) से यह बात हो जायगा कि रामभक्ति साहित्य में भी मधुर उपासना का टोका नहीं है।^१ अतः राम राधा में माधुर्य का टोका न रहने पर भी रामका प्र उपनिषद् रहा। इसी तरह अन्य देवा देवताओं के बारे में यह काल धुण्डी साये रहा। यदि इस तरह तद्दुगीन कविता का ध्यान गया भी है तो विशेषकर शिव, दुर्गा और सरस्वती की तरफ, जहाँ माधुर्य की गुंजाइश कम है। कवि कहीं कहीं ऐश्वर्यपरक भक्तिभाव से नतमस्तक है ता कहां-कहां दैत्य हो विरलता स पना के प्रवाह में डूबीभूत हो उठता है।

शिवभक्ति की बहुलता है। शिव की उपासना पर विशेष बल दिया गया है। भारतेन्दु जी भी शिव जी को भूले नहीं हैं। उन्होंने शिव जी के पना की कल्पना करते हुए जो कहा है, वह उनके शिव भक्त हृदय का परिचायक है।

श्रीशिव-पना निज जानि गुह्य बन्त प्रेम प्रमान ।

परम गुप्त निज प्रगट करि भक्तिपथ अभियान ॥^२

भारतीय धार्मिक जगत् में शिवरात्रि का अनुपम महत्ता है। शिवभक्त नर नारी शिव की उपासना बहुविध करते हैं। शिवरात्रि के दिन भक्त लोग शिव भक्ति सम्प्रदायी नव भजन गाते हैं। भारतेन्दु जी बल्लभ सम्प्रदाय में दानित होने पर भी अन्य देवताओं से धुणा नहीं करते थे। अतः शिवरात्रि का पना उनसे कवि हृदय से अनायास ही निकल पड़ता है। यथा—

आजु शिव पूजहु ह बनमाली ।

छोड़ि कुटी बाहर ह्रु बैठे ए दोउ मोमालाली ॥

नाहि गंगा भग चरम नही कटि नहि त्रिभूषण सिर राजै ।

नाहि चण्ड केरल बज्र त्रिगुण सटरत गिर पर छाजै ॥

तुम बहमाणी भक्त लाल चनि सेवन यह बिधि कीजै ।

हरीचन्द ऐसा मामिनि को वाहें स्मन दीज ॥^३

वैशाख महाने में अण्ड्य तृतीया के दिन शिव उपासना की विशेष महत्ता है। उस दिन जो शिव की पूजा करके शिव के निमित्त जा पना गान करता है उस शिवपुर में स्थान उपलब्ध होता है। उपाहरण द्रष्टव्य है—

शिवहि पूजि कै तीज दिन शिव हित दै घट-दान ।

शिवपुर सो नर पावई भाषत शिव भगवान ॥^४

१ डा० मुवनेश्वरनाथ मिश्र भाष्य रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, भूमिका, बिहार साधु-भागा परिषद्, पटना, पृ० ३।

२ श्रवणलगाय (संपादक) भारतेन्दु प्रयागली दूसरा खण्ड, उत्तराखण्ड भक्तमान, धृ० २६, पृ० २२५।

३ श्रवणलगाय (संपादक) भारतेन्दु प्रयागली दूसरा खण्ड मुकुट धृ० ७३, पृ० ४३०।

४ यही, वासन्त-माहात्म्य, धृ० ३४, पृ० ६२।

दुर्गा

शिव के बाद इस युग में दुर्गा का स्थान विशेष महत्व का है। दुर्गा त्रिभुवन की महारानी, अति नेहमयी और मुक्ति वरदात्री हैं। उनकी प्रभाव अतुल है और वे अरिदल का नाश करने वाली हैं—

जय जय त्रिभुवन महारानी ।

विभुष वृत्त पूजित पद एकत्र नेहमयी जननी जग जानी ।

पुरुष सिंह मानस अरुद्ध नित शूल प्रहार कुशल बल खानी ।

सेवक रच्छिनि, अरि-दल मच्छिनि अतुल प्रभाव न जात बखानी ।

मिरजन पालन नाशत निरता मुग्ध दुख बघ मुक्ति वरदानी ।

निशि दिन रहित प्रेम मदमूर्ती चहति सदा, मैं की हानी ॥^१

ठाकुर जगमोहन सिंह जी को दुर्गा पर परम भरोसा है। जत वे दुर्गा जी से प्रापना करते हैं कि तुम्हारा ध्यान जहनिश करता हूँ। तुम्हारे चरणों की सेवा बराबर करना हूँ। जीव यदि दुर्गा का मुमिरन करता है तो रिपु का नाश होता है। अतः कवि इसी से दुर्गा की जनय सदा में रस है जिससे उसकी मनोकामना पूर्ण हो—

ध्यान तोरनिशि चौम चरन जलज सेवत सदा ।

जिमि वासो मिलि होस बीस रैन सुचैन सौ ॥

याहि बाचि रिपुनाश होहु जाहि मुमिरौं जिवहि ।

पुरुषहु सब मम आस दुर्गा दुर्गति नाशिनी ॥^२

बालमुकुन्द गुप्त का वृष्टिकाण बहुत ही उच्च वाटि का है। उनकी विचार है कि दुर्गा की शक्ति का घणन काई नहीं कर सकता है। समार में उसकी लीला ही व्याप्त रही है, उसका ही बल चारों ओर प्रकाशमान है। उससे ही प्रभाव से रत्नाकर उमड़ता है, हुतामह दाह करता है, बापु बहती है और रवि प्रकाशमान होता है—

सख्य भूतमय शक्ति स्वरूपिनि शक्ति तुम्हारी ।

को वरमन कर सक तुम्हारी महिमा भारी ॥

तब लीला सो व्यापि रह्यो है यह जग सारी ।

तेरे बल रवि तप्त बहुत अति बापु मयवर ।

कृपति हुतासन दाह करत उमड़त रत्नाकर ॥^३

कवि माता दुर्गा की उपासना एषय मात्र से करता है। उनकी शक्ति अव्यय है उनकी दमो भुजाएँ दसो निशानो में व्याप्त है। वह सब के पालन के निमित्त ब्रह्माण्ड को ही धाम लिया है। वह सकल निवारण करने वाली है। उसकी कृपा का विस्तार बहुत है। सर्वत्र उसकी कृपा का ही स्रोत उमड़ रहा है—

१ प्रतापनारायण मिश्र नवरात्र के पत्र, ब्राह्मण, खंड ४, सख्या ४, पृ० १८५ ।

२ डा० जगमोहन सिंह श्यामास्वप्न, सपादन डा० ग्रीष्मलाल, पृ० १४६ ।

३ बालमुकुन्द गुप्त स्फुट कविता, भारतमित्र प्रेस, द्वितीय संस्करण, सं० १६७६, पृ० ४३ ।

दसो दिसा मे व्यापि रही दस भुजा तुम्हारी ।
 धाम्या है ब्रह्माण्ड सकल के पालन हारी ॥
 सकट हरिनि बरदायिनि त्रैलोक्य विहारिनि ।
 दुयति नासिनि जगत जननि सब विपद निवारिनि ॥
 फैल रही चहुँ ओर मातृ बल्मा इक तेरी ।
 दयामयी सब जीवन पर सब दया घनेरी ॥^१

तब भक्त मा चरणा पर गिर जाता है और विचल हो कहता है कि है मा ससार के जो प्राणी है वे सब तेरे हैं और तू ऐसा बर दे जिससे वे दिन रात तेरे ही चरणा के सेवक बने रहें ।

सुखदे ! सुखदे ! बरदे ! मा जो जन है तेरे ।
 बन रहैं निस बासर तब चरनन के चरे ॥^२

सरस्वती

सरस्वती विद्या की देवी हैं । ज्ञान की अन्न मलिला हैं । इनकी उपासना से विद्या की प्राप्ति होती है । प्रेमधन जी भारती देवी के रूप के चतुर चित्तेरे हैं । उन्होंने कहा है कि भारती के युगल पदों का बदना से सब कायों की पूर्णाहुति हो जाती है—

जयति भारती देवि कर बीणा पुस्तक साज ।
 जामु जुगल पद ध्यान सौं सिद्धि होत सब काज ॥^३

ठाकुर जगमोहन सिंह दुर्गा से सरस्वती की महिमा का वर्णन में टोटा नहीं रखते । उनका विशाल हृदय माँ सरस्वती का प्रथमी है । उनका विश्वास है कि माँ सरस्वती की कृपा तोर से हो कविता की अथाह सरिता प्रवाहित होती है । सुमेरु रज हो जाता है अनल शीतलता प्रदान करता है और पवन गिर हो जाता है । उसकी कृपा से कुछ भी बँधोर नहीं । बँधोर सहूल हो जाता है । अन्न माता मैं बरजोर प्रार्थना करता हूँ कि अधिमा का नाश कर ज्ञान दाप-दान दे जिससे तिमिर का नाश हो । कवि का एकमात्र सरस्वती पर ही भरोसा है ।

कविता सरिता अथाह धारा सुद बबहुँ न रूँ ।
 माँ चाहती लाहु जननि दीजिए बर सुयस ॥
 बर सुमेर रज होम शीतल अनलहु पवन गिर ।
 पै तुअ धार न जाय रूँ न बबहुँ देवि बिर ॥
 यह न अहै कसु दूरि तुअ प्रताप सेवा सबल ।
 जो तुअ किरपा भूरि तो न कठिन कछुतार बल ॥
 यह बिनवा भरजोर, असल सरनि निकेत सुख ।
 हूँ प्रसन्न करि कोर दया शील रावरि सुख ॥
 हरहु अविद्या दे विद्या विबुधान की ।
 नासहु तिमिर जुतामु ज्ञान दीप राखि मम ॥^४

१ बालमुकुट गुप्त स्फुट कविता, पृ० ४४ ।

२ बहो पृ० ४५ ।

३ प्रभाकेश्वर उपाध्याय (संपादक) प्रेमधन सक्क, साहित्य लहरी, पृ० ३३२ ।

४ ठाकुर जगमोहन सिंह देवयानी, भारतजीवन प्रेस, बनारस, पृ० १५ ।

धीर पाठन जो की सरस्वती उपासना में बाल हृदय का उद्गार बड़ा हो हृदयपाही हुआ है। कवि करता तो है बाल विनय लेकिन समाना का कान काटता सा दोष पड़ता है। उसकी अभिव्यजना शैली बड़ी ही कुशलप्रद है—

बोमल-हृदय-सदय सुचि-सीला ।
रवि रही विविध विश्व मह सीला ॥
हँसा ह्य, हँस यति गामिनि ।
त्रिभुवन जननि स्वयम्भू गामिनि ॥
जयति मातु तव शक्ति मपारा ।
आयम-जनम निगम-श्रुति-सारा ॥
धीर बाल विनय सुनि सौजे ।
विमल बुद्धि विद्याधर दीजे ॥

दूर की बौद्धि लाने का यह बाल प्रयास कितना अच्छा है इसे पाठक ही बता सकेंगे।

भगवती सरस्वती मनुष्य में विद्या, बला, ज्ञान और प्रतिभा प्रकाश करती है। वही समस्त विषाजो की अधिष्ठात्री है। वे सत्स्वरूपा, ससार की ज्योति, ब्रह्मस्वरूपा और आनन्दरूपा है। वे अनादि शक्ति भगवान् ब्रह्मा के कार्य की सहयोगिनी है। उन्हीं की कृपा से प्राणी कार्य के लिये ज्ञान प्राप्त करता है। वे कमल-दल-सोषणि और कुटिल-कुटेव, कुयति भक्त-भोषणि है। प्रत्येक कवि उनके पावन पदों का स्मरण करके ही अपना वाङ्मय प्रारम्भ करता था, यह यहाँ की सनातन परम्परा है। धीर पाठक भी सर्वप्रथम सरस्वती की प्राप्ति करते हैं—

जय सारद जय गिरा भवानी ।
जय जय-जोति जयति जग रानी ॥
जय जय विसद् ब्रह्म-वर-बानी ।
ब्रह्म स्वरूपिनि वेद बखानी ॥
जय अज्ञान निसा-तम-नासिनि ।
जय जय ज्ञान दिनेश प्रवासिनि ॥
अमर-प्रफुल्ल-कमल दल-सोषणि ।
कुटिल-कुटेव-कुयति-मल-भोषणि ॥
मम-सूत्र दणिण कर धारे ।
बाम-वेद-वर बीन समारे ॥
रुचिर-यद्म आसन आसीना ।
रुचिर-साम-पद-मान प्रवीणा ॥
मुक्ताहार कठ सुठ राजै ।
सिर मुद्गास सिन्दूर बिराजै ॥^१

भगवती लक्ष्मी

†

श्रीरामसुन्दर सदा में बौद्धिकी है। जो लोक में नित्य रासमण्डल में उन्होंने अपनी शक्ति को दो रूपों में प्रकट कर दिया। समान वेष, समान रूप समान सौन्दर्य। वामांग स व्यक्त चतुर्भुज रमा और

† † †

द्विभुज से श्रीराधा । दोनों की तुष्टि के लिये स्वयं भी दो रूपों में व्यक्त हो गये । चतुर्भुज श्रीनारायण रूप से रमा वैकुण्ठ में आ विराजे रमा के साथ और द्विभुज श्यामसुन्दर रूप तो नित्य गोलोक बिहारी है ही ।^१

बालमुकुन्द गुप्त उनकी उपासना में कहते हैं— त्रिभु सुता लक्ष्मी अथ घन वरसाने वाली हैं । वे हरिवल्लभा हैं और दारिद्र्य विनाश करने वाली हैं । वे त्रिभुवन को आसजक और पालक दोनों हैं, ब्रह्मादि देवता भी उनका ध्यान करते हैं । वे आनन्द रूपा हैं । अतः हे माँ, आज हमारी नाव समुद्र में डूब रही है, उसे उबारो, हमारी लाज को बचाओ, कवि के शब्दों में—

जय जय छीर समुद्र सुते अन्न घन बरमावनि ।

जय जय हरिवल्लभे जयति दारिद्र्य नसावनि ॥

जय त्रिभुवन जननी जय त्रिभुवन पालन करनी ।

ब्रह्मादिक सब ध्यान घर जय आनन्द भरनी ॥

ब्रूइत दारिद्र्य समुद्र मह ,

नाव हमारी आज मा ।

राखहु राखहु जगपति प्रिये

हाथ तुम्हारेहि लाज मा ॥^२

लक्ष्मी के बिना जप-तप-तीर्थ होम और यज्ञ किसी काम के नहीं हैं । स्वार्थ और परमार्थ दोनों लक्ष्मी के वश की ही धीजे हैं । घर क्या बाहर भी त्रिभु-कुल और देश कुल का कार्य बिना लक्ष्मी के सम्पन्न नहीं होता । एक भाग लक्ष्मी ही सत्सार सुखसार है । यथा—

जप तप तीर्थ होम यज्ञ बिन कुछु नाही

स्वारथ परमारथ सबरी तेरे ही माही

भले न घर नो काज न पितृन अरु देवन नो

जनम सेत तब कृपा बिना नर दुख सेवन नो

जय जयति अलिल ब्रह्माण्ड के

जीय की आपार जो ।

जय जयति सच्चिदी जगती

एकमात्र सुख पार जो ॥^३

इस तरह कवि की लक्ष्मी के प्रति अगाध धृष्टा व्यक्त हुई है ।

गणपति

गणपति नित्य देवता हैं लेकिन विभिन्न समयों में विभिन्न परिस्थितिवश विभिन्न प्रकार से उनकी सीला का प्राकट्य होता है । ते देवता माता पिता दोनों के प्रिय हैं । ये गजवदन हैं । गणनायक हैं ।

पद्मदेवोपासना में भगवान् गणपति मुख्य हैं । ये विघ्नों के नाशक हैं, मंगलदाता हैं । शंकर के साथ गौरी सहै गोद सेकर प्रफुल्लित होती हैं । प्रेमधन ने ठीक ही लिखा है—

१ बल्गाण हिन्दू सस्कृति अक, (भगवान् के सगुण स्वरूप और अवतार), पृ० ७६४ ।

२ बालमुकुन्द गुप्त स्फुट कविता, देवी स्तुति छ० २ पृ० ११ ।

३ बालमुकुन्द गुप्त स्फुट कविता, लक्ष्मीपूजा, छ० ६, पृ० ४८ ।

ज गोरी सुत गज वन्दन गणनायक सर ध्यान ।
 एक रदन अघ करन शुभ मंगल वरन मनाय ॥
 जय गणेश मंगल वरन हरन सकल दुख द्वन्द ।
 सिद्धि सनिल नित प्रेमघन पर वरसहु सानन्द ॥
 मंगल मूरति गजानन गोरी लीने थोद ।
 शंकर सग राखे सदा सह बर-बधू बिनोद ॥^१

धीधर पाठक गणपति की वन्दना करते हुए क्या भाव व्यक्त करते हैं, वह उल्लेखनीय है—

जयति गजानन गिरिजानन्द
 गणनायक करुणा-मुख बंद ।
 तुन्दिल-नाय, भाज शिशु चंद
 वरमोदक उर-मोद-अमद ।
 घणल शुद्धि, प्रवल भुज-दण्ड
 दुष्ट-दलन-दुष्कार प्रचंड ।
 विघ्न विनाशन-नाम-मुषय
 विघ्न-वरेय स्वभक्त-शारय ।
 पाटहु-भुमति-वलेष-दुः फेर
 देउ सुमति बिद्या आनंद ।

गंगा

भारतेन्दु हरिश्चंद जी गंगा के अनन्य भक्त थे । गंगा तट पर बसी काशी नगरी के वासी होने के कारण यह गंगा प्रेम उनके हृदय को विरासत की देन थी । वे गंगा को पतितन के उद्धार का आधार मानते थे । गंगा ही कलिकांत सागर से पार उतारने वाली है । गंगा की महिमा अपरम्यार है । उनके जल के दरस-परम जलपान से हजारों लोग तर जाते हैं । कवि की अगाध भक्ता निम्नोक्त पद में फूट पड़ी है—

गंगा पतितन की आधार ।

यह कलि-नाल कठिन सागर सौं तुमहिं लगावत पार ॥
 दरस-परस जल पान किये तैं तारे लोफ ह्वार ।
 हरि-चरनारविंद-मकरेदी सोहत सुंदर धार ॥
 अवगाहस नर-देव सिद्ध मुनि कर अस्तुति बहु बार ।
 'हरीचंद' जन-तारनि देवी गावत निगम प्रकार ॥^२

कवि आगे कहता है—

जै जै विष्णु-पदी श्री गये ।

पतित उधारनि सब जग-तारनि नव उज्जल अंगे ।
 शिव सिर मालति माल सरिस धर तरलतर तरंगे ।
 'हरीचंद' जन उधारनि देवा पाप भोग भंगे ॥^३

१ प्रभाकेश्वर उपाध्याय (संपादक) प्रेमघन सवस्व, लालित्य लहरी, छ० ३४, ३८, ३९, पृ० ३३२ ।

२ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, कृष्णचरित्र, छ० १६, पृ० ६०६ ।

३ वही, पृ० ६१६ ।

कवि गंगा स्तुति में गंगा की सच्ची बधाई करता है—

गंगा तुमरी साच बडाई ।

एक सगर-सुत हित जग आई तारयौ नर समुदाई ॥

इक चातक निज तृपा बुभान्त जाचत घन अकुलाई ।

सो सरवर न नदी बारिनिधि पूरत सब भर लाई ॥

वाम लेत जल पिअत एक तुम तारत कुल अकुलाई ।

‘हरीचन्द’ याहो त तो सिव राखी सोस चगाई ॥^१

काली

देश की धार्मिक परिस्थिति में विभिन्न प्रकार के मत फैले हुए थे । प्रतापनारायण मिश्र इन मतवादों को मिटाना चाहते थे । इन मतवादों के चलते देश की शक्ति क्षीण होती जा रही थी । केन्द्रीय शक्ति के अभाव में देश का बड़ा विघटन हो रहा था । अतः वे काली और कृष्ण दोनों की अनेक स्तुतियाँ की । उदाहरणार्थ—

जय काली अद्भुत गति वारी ।

लीला हित वृन्दावन विहरत हूँ नटवर वपु रासविहारी ।

एकहि ज्वाति लसति द्व तनु धरि नदनदन वृषभानु दुत्तारी ।

को समझै यह भेद अकथ अति आपहि पुरुष आपहि नारी ।

सोई कटि जो रही बसन बिन गति जिन लसति पीत-पटवारी ।

सोई लटै रही जे लटवत बेनी बनि छात्रहि छात्रि मारी ।^२

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन का सारांश यह है कि भारते-दुयुगीन काव्य का वह विशेषकर राधा-कृष्ण केलि से प्रभावित रहा । लेकिन तद्दुयुगीन कविता में दुगा सरस्वती लक्ष्मी आदि की उपासना पर भी ध्यान से बल दिया गया है । युग नियामक भारते-दुयुगीन भी यत्र तत्र देवी-देवताओं की उपासना करते हैं जबकि भारतेन्दु की के तत्कालीन समाज में राधा-कृष्ण की भक्ति के अतिरिक्त और किसी देवी-देवता की आराधना का व्यवस्था नहीं थी ।

१ वही, पृ० ६१६ ।

२ नारायणप्रसाद अरोड़ा (सपा०) प्रताप सहरी, १९४६ ई०, पृ० १८१-८२ ।

अध्याय ५

भारतेन्दुयुगोन प्रमुख भक्तकवि एवं उनकी भक्तिभावना

[प्रस्तुत अध्याय में भारतेन्दुयुगोन प्रमुख भक्तकवियों एवं उनकी भक्ति-भावना का सम्यक् अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है ।]

सुमेरसिंह 'साहबजादे'

जीवन रेखा

सुमेरसिंह साहबजाद का जन्म उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिलान्तर्गत 'निजामाबाद' नामक कस्बे में भाद्र शुक्ल ३, म० १६०४ वि० को हुआ था ।^१ ये सिक्ख संप्रदाय के तीसरे गुरु- वंशधर थे । तीसरे गुरु का नाम अमरदास था । अतः वंश परम्परा के अनुसार ये साहबजादे कहे जाते थे । आपके पिता का नाम बाबा साधुसिंह था, जो बड़े मज्जानापुराणी, दीनदुखिया के सहायक, रमतामोगी, ईश्वरीय सत्ता में दृढ़ निश्चयी और परम सिद्ध पुरुष थे ।^२ खालसा-पंथी लोग उनको गुरु गोविन्द सिंह का मानते थे । वे ऐसे आनन्दी जीव थे कि बानका के सगे चाल युवकों से युवक और वृद्धा में वृद्ध बन जाते थे ।^३

सात वर्ष की अवस्था में आपका अक्षरारम्भ हुआ । भाई गरीब सिंह जी इनके गुरु थे । आपके पिता जी स्वयं आपके दीक्षा गुरु थे । पञ्जाब से पाँच वर्ष की अवस्था में पटना आये और यहीं रह गये । यहीं आपने गुरुप्रभ साहब, दास, व्याकरण और पिंगल आदि की शिक्षा प्राप्त की ।

आपकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी । अल्प वय में ही बिहार के प्रसिद्ध कवियों में आपकी गणना होने लगी । आप काशी कवि-समाज और काशी-कवि-मञ्च के सदस्य थे । पटना में आपने ही सन् १८६७ ई० में कविसमाज की स्थापना की । भारतेन्दु जी आपके मित्र थे ।^४ कविवर हरिऔष जी,^५ मारकण्डेय^६ जी और रत्नाकर^७ जी ने आपसे काव्य की शिक्षा प्राप्त की । इतनी विद्वता और विख्यात कवि के होने पर भी श्री भारतेन्दु मण्डल में आपका परिचय नहीं मिलता है । न जाने क्या बजरत्नदास ने भी अपने ग्रन्थ में इनका उल्लेख नहीं किया । अथ इतिहासकार भी बाबा सुमेर सिंह साहबजादे

१ शिवनन्दन सहाय सिक्ख गुरुओं की जीवनी, साहित्य, खण्ड ६, सख्या ३, जून, १९१४, पृ० २७ ।

२ शिवपूजन सहाय (संपादक) हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० २८६ ।

३ वही, पृ० २८६ ।

४ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔष' हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ५२२ ।

५ किशोरीलाल गुप्त (अनुवादक) हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९५७, पृ० ३०५ ।

६ शिवनन्दन सहाय सिक्ख गुरुओं की जीवनी, साहित्य पत्रिका, खंड ६, सख्या ३, जून १९१४, ई०, पृ० २७ ।

७ वही, पृ० २७ ।

के बारे में मोन हैं ही। आपुनि हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों में केवल अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' को ही इनके बारे में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त है। उन्होंने अपने 'हिंदी भाषा और साहित्य का विकास' नामक ग्रंथ में साहजिकता के विषय में जो विचार उद्धृत किया है, वह द्रष्टव्य है—

बाबा मुमैरसिंह सिन्धु गुरु और पटने के महर्षि थे। जिला आजमगढ़ के निजामाबाद कस्बे में उनका निवास था। वे सिन्धु के तीसरे गुरु अमरदास के वंशज थे। इसलिये साहजिकता से महे जाते थे। जाति के मल्ले मंत्री थे। परमात्मा ने उनकी बड़ा सुंदर रूप दिया था। जैसा सुंदर स्वरूप था, वैसा ही सुंदर उनका हृदय भी था। हिंदी भाषा ने बड़े प्रेम से। इस भाषा का ज्ञान भा उह अच्युत था। वे सस्कृत भी जानते थे। बाबू हरिश्चंद्र से उनकी बड़ी मैत्री थी। बनारस के महल्ले, रेगमवटरे की बड़ी संगत में आ कर ये शाय रहते थे और यही दोना का बड़ा समागम होता था। बाबा मुमैरसिंह ब्रजभाषा की बड़ी सरल कविता करत थे। उन्होंने हम भाषा में एक दिनाल प्रथमरात्र्य लिखा था, जो लगभग मध्य हो चुका है, केवल उसका दशम मण्डल अत्र तक यत्र तत्र पाया जाता है। इस ग्रंथ का नाम प्रेम प्रकाश था। बड़ी ललित भाषा में लिगि थी। दशम मण्डल में गुरु गोविंदसिंह का चरित्र था। गुरुमुखी में वह मुद्रित हुआ और वहां अब भी प्राप्त होता है। शेष नौ मण्डल काल काल के उदर में समा गये। बहुत उद्योग करने पर भी न ता वह प्राप्त हो सके, न उनका पता चला। उन्होंने 'कर्णामरण' नामक एक अलंकार ग्रंथ भी लिखा था। अब वह भी अप्राप्य है। गुरु गोविंद सिंह ने फारसी में जफरनामा लिखा था, उसका अनुबां भा उन्होंने 'विषयपत्र' के नाम से किया था। बाबा मुमैरसिंह ने आजीवन कविता देशी को ही आराधना की। उन्होंने न तो गद्य लिखने की चेष्टा की और न गद्यग्रंथ रचे। उनका जीवन कायम था और वे कविता पाठ करने और कराने में आनंद प्राप्त करते थे। अपनी कविता के विषय में उनकी बड़ी बड़ी आशाएँ थी। वे उसका बहुत प्रचार चाहते थे और कहा करते थे कि 'हिंदू सिखा का भेनाति का संसार इसी के द्वारा होगा'।

आप बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। आप शान्तिया में भा निपुण थे जिससे कविता पाठ करते समय आप अपने पाठका को अपनी तरफ आकर्षित कर लेते थे। 'कविता-पाठ आप बड़े आनंद और प्रभावशाली ढंग से करते थे।' इस प्रकार आप ब्रजभाषा के प्रमुख कवि थे, रीतिकालीन परम्परा का निर्वाह आपकी कविताओं में पूरा हुआ। आपने हिंदी साहित्य के महार में बीस पुस्तिका को दिया, लेकिन वे गुरुमुखी लिपि में थी। कारण है कि आज हिंदी भाषी जनता उनमें अपरिचित है। आपके ग्रंथों में हिंदू धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाया गया है। उनमें हिंदू मान्यता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

भक्तिभावना

आप सिक्ख मतावलम्बी थे। सिक्ख धर्म को हिंदू धर्म का ही अंग मानते। रामचरितमानस के अनुपमभक्त थे। पटना के हर मंदिर का वातावरण आपको एक मित्र मत्तात्रि के रूप में मौ भारत की भव्यभवन के पुजारी के रूप में प्रस्तुत किया। आज जब हमें भी रामचरितमानस का अर्थ कहने लगते थे तब आँखा से अविरल आमुआ का प्रवाह धोना-ना को चकित कर देता था। इनका अन्त मक्ति

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिंदी भाषा और साहित्य का विकास, पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय, दरभंगा, पृ० ५२२ २४।

२ शिवनंद सहाय सिक्ख गुरुओं की जीवनी, साहित्य-पत्रिका, ख० ६ स० ३, जून १९१४, पृ० २७।

३ शिवनूजन सहाय (संपादक) हिंदी साहित्य और विहार भाग २, विहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, पृ० २८८।

की स्रोतस्विनी में आप्लावित था। तभी तो आप बचीर के साहब राम की मीन देखकर उपात्म देते हैं। प्रस्तुत उदाहरण अपने व्यापक अर्थ के लिये हिंदी साहित्य का शृंगार है—

रत्ना कसाई कौन सुठन कसाई भाष

भालन के मा के सुपेरे मनिग ने कौ।

मीन तप माधना सो सरी ने तुष्ट नियो

सोचाचार कुवरी न नियो कौन सुख कौन।

त्या हरि सुभर जाय ज्यो कौन अजामेल

गज को उबारया वार वार बबि भाष्यो तीन।

एन तुम तारे सुना साहज हमारे राम

मेरी वार विरद बिचारे कौ गहि मीन ॥^१

यहाँ कवि का दुष्टिकोण कितना उगार है। यावा ये तो मित्र मन्त्रदाय के सन्नि रचना की देखकर पाठक की सहज ही भ्रम हो सकता है कि वे रामभक्त वैष्णव कवि थे। राम के प्रति उनकी इस अद्वैत श्रद्धा का जितना भी बगन किया जाय, वह धाँज है। भक्त भगवान् पर अपना कितना अधिकार रखता है, यह हम पद से स्पष्ट ज्ञात होता है।

बाबा की अतिशय रचनाएँ शृंगाररस से ज्ञातप्राप्त हैं। शृंगार माधुरी में कवि का भक्त हृदय उमड़ पड़ता है। वह अपने कृष्ण की आराधना में परकीया का भाव दर्शाता है। इस तरह उस लोकवेद की मर्यादा को त्यागना पड़ता है और पराभक्ति में यही आवश्यक है। लोकवेद की मर्यादा का त्याग पराभक्ति की आवश्यकता की वजह से है। अतः कवि सुमेरुमिह की भावना में यही भाव परललित होता है। उदाहरण कृष्ण-व्य है—

निहिं ते तजि दीन कनिनी को बूल और भूलहूँ आई न जाय कै री।

कुलकानि का आनि हूँ एतौ हुती सो भई दुखानि बपाय कै री।

अब कौन ता सोच रह्यो है 'सुमेरु हरी' जो निषक बनाय कै री।

जा पलक नय्यो मोहि पाय कै री, ती सुअरुह लागि ही धाय कै री^२॥

यहाँ कवि का परकीया प्रेम अनायास ही लोक मर्यादा का त्याग करने को प्रस्तुत है। सबप्रथम तो कालिंदी बूल पर मन का बस जाना अभ्युपगम की प्रतीति होता है। लेकिन ज्याही कुल मर्यादा का त्याग आता है, प्रेम के रास्त में एक व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। नायिका अपने प्रण से अलग हो जाती है। पर इतने पर भी उस कृष्ण लगता ही है। जब वह अपने कृष्ण-व्य के अंक में निश्चय भाव से लिपट जाना चाहता है। कवि का परकीया माधुर्य चरम सीमा पर है।

भक्त भगवान् के लिये लोक वेद का त्याग कर देता है। यदि वह भगवान् के प्रेम में लोकवेद की परवाह करता है तो भक्ति सार्थक नहीं। भक्ति तो सब गायक है जब भक्त और भगवान् के बीच लोक और वेद की खाई को पाट दिया जाय। प्रेम की इसी एकात्मता के कारण परकीया का त्याग भक्तों के बीच श्रेष्ठ है। अपने गोनोक विहारी के रूप सुगम रस पान के लिये कवि के हृदय में आत्मलाप आगूत होती है। वह मुक्तना द्वारा मिलनशाली निन्दा ही नहीं बल्कि प्रचंड दंड भी चुपचाप सह जाने को तयार है। गाँव के लोग भले ही बदनाम करें, लेकिन, ब्रजराज के लिये लोक की आज कोई परवाह नहीं। कवि का परकीया प्रेम उनके भक्त हृदय का परिचायक है—

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिंदीभाषा और साहित्य का विकास पृ० ५२३।

२ डा० किशोरीलाल गुप्त 'भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी', पृ० ३५७।

३ वही, पृ० ३५७।

गुल्लोग करेने चवाव घाँ, तिननी मुनि कै भई भासिहीं मैं ।
 बरिहैं जु पै दह प्रचह तुपै, 'सुमेरस हरी' मागिहीं मैं ।
 बदनाम जो गाव बरे सिंगरी, तऊ रूप सुधा रस चाखिहीं मैं ।
 ब्रजराज जो आज मिलै सजनी, इहि लाज सा बाज न रागिहीं मैं ॥^१

कृष्ण के प्रेम में कुल-लाज का ध्यान न करने वाली का उमरी सखी सीस खी है कि वह कृष्ण जातिम है। तुम उस जातिम बान्ह^१ के प्रेम में वासला यौनोमा^२ में मरी बात नहो मानती हो, लेकिन तुम्हें पश्चात्ताप करना पड़ेगा। अभी तो तुम्हें कुछ भी नहीं सूझता, कालांतर में मेरी बात याद करके पड़नाजानी—

कुल लाज गवाय के हाय, बनाय स्यो पाय, व्याधा को चितारहुगी ।
 वह नीकी बहे तो सुमर हरी^३ तब तो यह नाति निवारहुगी ॥
 मेरो तेरो मिटै मिलै तस संगत ईस ।
 बिहरहुँ तू उनमत धारि ब्रजराज निजसीस ॥

इस तरह कवि में राम एव कृष्ण दोनों का प्रति अद्वैत धड़ा है। राम के प्रति उसकी वैष्णव भावना उपालम्भ का प्रयोग करती है तो कृष्ण को भुगार सम्राट मानकर प्रणय निवेदन करती है। कवि मीरा की भाँति अपना प्रमादगार प्रकट कर सका गिद्ध जाना है। उसकी भक्ति में प्रेमाकुलता है किन्तु प्राचीनता में नवीनता का जो आग्रह है वह एक अलग सचिरी हो सीध देता है। कवि की मौलिक भावनाओं में भक्ति की सरिता प्रवाहित होती है। उसका समस्त जीवन भगवान् के रूप का चितेरा है। वह अपने भगवान् के रूप सुधा रस पान के लिय बबोर की बिरहिणी की भाँति उमत्त हो जाता है और कभी मीरा की प्रेम साधना में पागल दीख पड़ता है।

अब तो इहि जोबन जोग में जालिमनाह के साथ सिधारहुगी ।

दिन राते कछूक हमारी मरू, ये हमारिय बात निचारहुगी ॥^४

कवि न बिहारी के दोहा पर नुबलियाँ लगाई हैं। यहाँ भी उसकी भक्ति का प्रवाह अबाध गति से प्रवहमान है। वह दाहो के घट से झपट उलट रस छानना देना चाहता है—

मेरी भव बाधा हरो राधा नागरि सोय ।

जा तन की भाइ पर स्याम हरिन वृति होय ॥

यह बिहारीलाल का प्रसिद्ध दाहा है, इस पर निम्बाक की स्पष्ट छाप द्विजगोचर होती है। बाधा सुमेर सिंह साहबजाब ने इन या प्रकट किया है—

स्याम हरित दुति होय, होय सम कारज पूरी ।

पुरुषारथ सहि स्वारथ चारि पणरथ हरी ॥

सतगुरु सरन अनय भूटि भय भ्रम की फेरी ।

मनमोहनमित सुमेरस हरी गति मति मे मेरी ॥

बिहारीलाल अपने कृष्ण के प्रति भक्ति प्रकट करने हुए कहते हैं कि—

सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उरमाल ।

एहि बानिक भो मन असह सदा बिहारीलाल ॥

१ अयोध्यामिह उपाध्याय 'हं जीव' हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ५२३ ।

२ नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग ६ अंक ३ कार्तिक सं० १९८५ त्रि०, पृ० ३४६ ।

बादा अपने कृष्ण को प्रियतम मानकर उनके चरणों की चेरी बा जाना चाहते हैं। साथ ही उनकी कामना है कि तुझे तजकर वहाँ जाऊँ। कवि का दय प्रबल हो उठा है—

सदा बिहारीलाल करहु चरनन को चेरी।
तुहि तजि अनत न जाइ कतहुँ प्रियतम मन मेरी ॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

जीवन-रेखा

वैश्य-अग्रकुल में प्रगट बालकृष्ण कुलपान।
ता सुत गिरिधर चरन रत्न, वर गिरधारीलाल ॥
अमोचन्द तिनके तनय पतेचन्द ता मन्त्र।
हरलक्ष्म जिनके मए निज कुल सागर चन्त्र ॥
श्री गिरिधर गुरु सेह के घर सेवा पधराइ।
तारे निज कुल जीब सब हरि पद मक्ति द्याइ ॥
तिनके सुत गोपाल सनि प्रगटित गिरिधरदास।
कठिन करम-गति भेटि निज कीनी मक्ति प्रसास ॥
मटि देव देवी सकल छोडि कठिन कुल रीति।
पाप्यो गृह में प्रेम जिन प्रगटि कृष्ण-पद प्रीति ॥
पारबती की कूल सौं तिनसौ प्रगट अमद।
मोकुलचन्द्राग्रज मयो भक्त दास हरिचन्त्र ॥^१

हिन्दी भाषा के उद्गायक श्रीभारतेन्दु बाबू एक बड़े प्रतिष्ठित घराने के कुलरत्न थे। उनका जन्म काशी के चौखम्मा मुहल्ले में भाद्रपद शुक्ल ५, सं० १९०७ वि० चन्द्रमार्ग (९ सितम्बर १८५० ई०) को हुआ था।^२ इनके पिता का नाम गोपानचन्द्र था। ये गिरिधरदास नाम से जगत्प्रसिद्ध कवि थे। माता का नाम पावती देवी था। यह भी एक सभ्रात कुल की विदुषी महिला थी। मातृकुल भी विद्याभ्रमरनी था। इस प्रकार भारतेन्दु को पितृ एवं मातृ दोनों पक्षा से विद्या का अंश मिला।^३ भारतेन्दु जी अल्पायु में ही मातृ एवं पितृ विहीन हो गये। मातृ एवं पितृ दोनों पक्षा से प्यार का न मिलना सतान की प्रवृत्ति में एक अजीब परिवर्तन ला देता है। कृष्णकिशोर मिश्र ने लिखा है कि 'प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जिन अल्पायु बच्चों के माता पिता कम ही आयु में स्वर्गवासी हो जाते हैं वे कुशाग्रबुद्धि निकलते हैं।'^४ भारतेन्दु बाबू की माता का देहांत ५ वर्ष की उम्र में और पिता का देहांत नौ वर्ष की अवस्था में हुआ। इस प्रकार इन्हें माता पिता दोनों से लाह-प्यार न मिल सका। अतः आपकी प्रकृति में गम्भीरता का समावेश बनपन से ही हो गया। बाबू गोपालचन्द्र काशी नगरी के एक सभ्रात

१ अजरतनदास (मपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड, उत्तराद्ध भक्तमाल ख० ४८ ५३, पृ० २२७।

२ नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५५, सं० १, पृ० २।

३ डा० विश्वरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, वाराणसी पृ० १।

४ कृष्णकिशोर मिश्र भारतेन्दु काव्यान्त, पीयूष प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, १९६३ ई०, पृ० १६।

व्यक्ति थे। उनकी विद्यानुरागिता अत्यन्त प्रबल थी। इनका दरबार कवियों का दरबार था। यहाँ कवियों को उचित सम्मान मिलता था। उनके कवि दरबार के ५० ईश्वरीन्त, मरदार कवि, दीन दयाल गिरि, कहेयालाल, ५० लक्ष्मीशंकर व्यास, बाबू कल्याणलाल, भाधाराम जी गोड, गुलाबराय नागर तथा बालकृष्ण टेकभासी आदि कवि और विद्वान् समामद थे।^१ भारतेन्दु बाबू इसी अलाहे का का रोज दशन करते थे। अतः इनकी साहित्यिक अभिरुचि का यह दरबार मूल कारण बना। बीज और उर्वारपन दोनों एक ही गहव प्राप्त हो गया था। वस क्या था? भारतेन्दु बाबू ने मौखिक रूप से अपरारम्भ किया।

ले ब्योडा ठाढ़ मए श्रीअनिरुद्ध सुजान।

बाणामुर की मैंन को हतन लगे भगवान् ॥^२

जिस बच्चे का अपरारम्भ इस दोहे से होता हो उसके भविष्य के बारे में क्या लिखा जा सकता है। गिरिधरदास जी ने कहा—तू मेरा नाम बनावेगा।^३

प्रसंग था, गोपालचन्द्र जी बलराम क्यामृत की रचना कर रहे थे। यही भारतेन्दु जी बैठे थे। पिता की कलम चल रही थी। रबर, स्वरचना के साथ निरल रह था। बालक वही मौन सुन रहा था। बाल सुलभ चपलता ने जोर मार कर कहनवा लिया। पिता जी आना हो तो मैं भी कविता बनाऊँ। और सुना ही तो दिया।

एक दूसरा प्रसंग है। कवि दरबार लगा था। कच्छप क्यामृत के एक सोरठे की व्याख्या हो रही थी कि भारतेन्दु जी वही आ गए और आरंभ मन्ते हुए एकान्त बान उठ, बाबू जी हम अथ बतलाते हैं। आप भगवान् का यश वर्णन करना चाहते हैं जिसकी कछुफ छुआ है—अर्थात् जान लिया है।^४ सोरठे की प्रथम पंक्ति यह है—

करत चहत जस चार कछु कछुवा भगवान को।

यहाँ तक तो हुई 'तू मेरे नाम को बनावेगा। अब कुल बोरने का प्रसंग भी आप सुन लें, क्योंकि दोनों का भारतेन्दु के जीवन पर प्रभाव स्पष्ट पड़ा है। प्रसंग इस प्रकार है—एक बार इनके पिता तपण कर रहे थे। भारतेन्दु जी ने उनसे पूछा बाबूजी, पानी में पानी डालन स क्या लाभ? धार्मिक प्रवर बाबू गोपालचन्द्र ने मिर ठोका और कहा—जान पडता है कि तू कुल बोरेगा।^५ इससे यह सिद्ध होता है कि भारतेन्दु जी बड़े जिनामु प्रवृत्ति के थे।

गिरिधरदास जी साधु प्रकृति के थे। उनका दोनों भविष्यवाणियों अपररश सिद्ध हुई। नाम बढाने का आशीर्वाद और कुल बोरन का अभिशाप दोनों ही सिद्ध हुए। फलतः भविष्यवाणियों के अनुसार आप एक तरफ हिंदी भाषा और साहित्य का उद्भाषक हुए दूसरी तरफ पैतृक धन एवं ऐश्वर्य सब कुछ नष्ट कर दिए।

भारतेन्दु जी को शिक्षा सवप्रथम घर पर हुई। घर पर ह इहे हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी की शिक्षा मिली। पश्चात् ये कबीर कालेज के वाद स स्कूल में भर्ती हुए। एक तो स्वयं य स्वच्छन्द प्रकृति के थे, दूसरे माता पिता के न रहने से उनकी स्वच्छन्दप्रियता और बढ़ गई। फलस्वरूप स्कूली

१ डा० किशोरीलाल शुक्ल भारतेन्दु और उनके अथ सहयागी पृ० १।

२ नागरीप्रचारिणी पत्रिका वष ५५ स० १, पृ० ३।

३ कृष्णकिशोर मिश्र भारतेन्दु कायाण्डश, कानपुर, १९६३ ई०, पृ० १८।

४ नागरीप्रचारिणी पत्रिका वष ५४, स० १ पृ० ३।

५ वही, पृ० ४।

पगई बहुत ही जल्द खत्म हो गई। इनकी मेधाशक्ति तीव्र थी, जिससे जितनी भी परीक्षाएँ इन्होंने दीं सभी में सफलता मिली। हाँ, ईश्वररसदत्त प्रतिभा थी जो कुछ पढ़ने भट याद हो जाता। बीस-बाइस मापाआ के जाता थे। मापा सीखने की कला उनकी अजीब थी। इसे उन्होने के शब्दा में सुनें—

‘ग्यारह बप की अवस्था मे हम जगत्ताप जी गये थे। माग म बढ़मान मे त्रिपवा त्रिवाह नाटक बंग मे मोल लिया, सो अटकल से ही उसका पद लिया।’^१

जगदीश यात्रा का उनके जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ा। वे जाँटते ही देश के उद्धार के बारे में सोचने लगे। अतः नागरी के उद्धार एवं अग्रजी के प्रचार का उत्तम माग समझा। वम वे समाचार पत्रों के प्रचलन के निचे प्रयत्नशील हुए। फिर ता कविवचनमुषा (साद्वपद १६२६) हरिश्चन्द्र मेगजीन (१६९० वि०), बालाबोर्जिनी (१८७४ ई०) आदि पत्रिकाओं का सम्पादन शुरू किया। यहाँ उनका अपना निजी कृतव्य था। इनके अनिरिक्त उन्होंने अपने मित्रों को भी पत्रों के प्रकाशनार्थ उत्साहित किया। फलस्वरूप आनन्दबालम्बिनी, नागरीनीरद हिंदी प्रणीप, ब्राह्मण, आयमित्र, काशी पत्रिका, आदि इनके जीवनकाल में ही प्रकाश में आईं। इस प्रकार हिन्दी समाचार पत्रों को जन्म देने का श्रेय भारते दु जी को ही है।

भारते दु जी शील, सौजन्य और नीन्य को प्रतिभूति थे। उनका स्वभाव कोमल था। पर दु खकातरता से उनका कोमल हृदय बराबर द्रवोभूत रहता था। समाज सेवा के काम में इन्होंने अपने धन को शानी की तरह बहाया और परवाह तमिक् भी नहीं की। ब्रजरत्नदास ने लिखा है कि इन्होंने चित से बढकर गुणिमो, कलाविन, विद्वाना तथा सुकशिया का आनर सत्कार किया। दीन-दुखियों के दु ख दूर किये और निन्दने ही लोगों की सहायता कर उन्हें व्यवसाय में लग्न दिया। यह सब करते हुए भी इन्हें कभी अपनी दातव्यता, अमीरी कवित्वशक्ति आदि पर अहंकार नहीं हुआ।^२ पूरा परिचय वही द्वारा रचित एन पद से प्राप्त हो जाता है जो निम्नांकित है—

सेवक गुनी जन के चारर चतुर के है

कविन के भीत चित हित गुन ग्यानी के।

सीपेन भा सीधे महा बाके हम बाकेन सी

‘हरीचद नपद दमाद अभिमानी के॥

चाहिये की चाह बाहु की न परवाह नेही

नेह के दिवाने सदा भूरत निबानी के।

सरवस रसिन के सुनास दास प्रेमिन के

सखा ध्यारे कृष्ण के गुलाम राधारानी के॥^३

भारते दु जी का हृदय समाज सुधार की भावना से ओतप्रोत था। ये बाल विवाह के विरोधी थे। त्रिपवा विवाह के पक्षपाती थे। स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। मास मन्त्रि आदि का बटकर विरोध इन्होंने किया। सामाजिक कुरीतियों एवं अंध विश्वासों के प्रति आपरा दृष्टिकोण सुधारवादी था। यही कारण था कि अपनी कथा के विवाह में गाल, गाना बंद करा दी थी।^४ समाज-सुधार के स्थाल से ये पत्रिकाओं और विद्यालया का योजना अनिवार्य समझत थे।

१ नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५५, सं० १ पृ० ४।

२ नागरीप्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५५, सं० १, पृ० ५।

३ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारते दु प्रयावनी, भाग २, पृ०

४ डा० विशोरीलाल गुप्त भारते दु और उनके अन्य सहयोगी, पृ० ५।

आप सत्य के पुजारी थे। यद्यपि इस सत्य ने आपको जी भर वर 'तूटा' लेकिन आपका यह सिद्धांत वाक्य—

चलू टरै गुरुज टरै टरै जगत व्योहार।

यै दृढ़ धीहरिचन्द को टरै न सत्य विचार ॥^१

कभी भी अपनी कसौटी से विचलित नहीं हुआ। जागीवन आप इस सत्य की रक्षा में हँसते रहे। आपकी विनोदप्रियता काशी में मशहूर थी।

भारतेन्दु जी का साहित्यिक जीवन केवल १८ वर्षों का है। इस अवधि में आप हिन्दी साहित्याकाश में पूरा चन्द्र बनकर जाये। आपने मद्य-मद्य, नाट्य, कथा, कहानी, पुरातत्व, आलोचना, निबन्ध आदि सभी साहित्यिक विधाओं को स्पष्ट किया और उसे पारस बना डाला। डा० विश्वेश्वरनाथ गुप्त ने लिखा है कि भारतेन्दु पारस थे। सोहा भी इन्हें छू लता था, ता सोना हा जाना था।^२ इस अल्प साहित्यिक जीवन में आपने साहित्याकाश में जो जो सुमन गिलाय उतना दूसरा कोई सौ वर्ष जीने के बाद भी नहीं कर सकता।

भारतेन्दु बाबू सौन्दर्य के उपासक थे। सरिता सतरण में उनकी रचि थी। प्रकृति सौन्दर्य, नारी सौन्दर्य, काव्य सौन्दर्य का चित्रण आपने बड़े मनोयोगपूर्वक किया है। सौन्दर्य की उपासना आप क्यों न करें। आप तो खुद ही सावसियाबिहारीलाल की भाँति हो बंद सभ्या, नाच सुझीन, आँखें छाटी, कान बड़े, ललाट भव्य, बाल धुंधरात और सूरत साँवली पाए थे। जो देखता मुग्ध हो जाता। शरीर की कान्ति के साथ ही अंत की कान्ति के भी धनी थे। यही कारण है कि मल्लिका और माधवी आपके सम्पर्क से बराबर सुधापान करती रही।

भारतेन्दु की भक्तिभाजना

भारतेन्दु जी परम वैष्णव भक्त थे। उन्होंने तीन वर्ष की अवस्था में ही गोपाल मन्दिर की अधिष्ठात्री श्रीमामा बेनी से वल्लभ भक्त की दीक्षा ली। इस प्रकार उन्होंने ज्येष्ठदास के कविया की भाँति ही अपने गुरु श्रीवल्लभ के प्रति भक्ता के सुमन पिरोये हैं।

जे 'न अय आसरो तजि श्रीविठ्ठलनाथहि गावै।

ते बिनु भ्रम थोरेहि साधन में भवसागर तरिजाव ॥

जे निसर्गि श्रीविठ्ठल बिठ्ठल हो मुख माध।

'हरीचन्द' तिनके पद की रज हम अपुने मिर राख ॥^३

इस प्रकार भारतेन्दु जी जन्मजात भक्त थे। उनकी गुरु ही नहीं बल्कि गुरु-स्नानान्त के प्रति भी अटूट भक्ता थी। श्रीकृष्णविश्वेश्वर मिश्र ने लिखा है कि वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी वैष्णव भक्त श्रीभारतेन्दु जी की रचि बाल्यावस्था से ही धर्म की ओर विशेष थी। आप तो धर्म के तत्त्व को मलीभाँति समझते थे। तथा आपकी नस नस में मगवान् श्रीकृष्ण का प्रेम समाया हुआ था।^४

आपका हृदय भक्तिरस स्नात था। आपकी वाणी से भक्ति की जमिरल धारा प्रवाहित होती थी। आपके शब्दों में भक्ति सुधा का मधुर सम वय था वाणी में भक्ति का मधुर विज्ञान था और

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, पहला खण्ड नागरी प्रचारिणी सभा काशी, स० २००७, पृ० २६६।

२ डा० विश्वेश्वरनाथ गुप्त भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, पृ० ४३५।

३ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, राम संग्रह ख० ३६, पृ० ४५०।

४ कृष्णविश्वेश्वर मिश्र भारतेन्दु काव्यान्ध, पृ० ५८।

आपके क्रियाकलाप में भक्ति का मधुर योगदान था। जत यही कारण है कि आपने भक्ति को भाव मात्र न मानकर उसे रस को सजा दी है और उसे शास्त्ररस से भिन्न माना है। इस रस के अगो के विषय में आपकी धारणा इस प्रकार है—‘भक्ति कहिये इसको आप जिसके अन्तर्गत करते हैं, क्योंकि इस रस का स्थायी माल श्रद्धा है और इसके आलम्बन भक्त और इष्ट देवता हैं और उद्दीपन पुराणादि भक्तों का प्रसंग तथा सत्संग है। जब जो इस शान्त के अन्तर्गत कीजियेगा तब शान्त का स्थायी वैराग्य है।’^१

भारते दु जी की धार्मिक प्रवृत्ति उत्तार थी। वे किसी भी धर्म को घृणा की दृष्टि से नहीं देखते थे। धार्मिक उदारता सम्बन्धी उनकी रचनाएँ ‘जैन कुतूहल’ में संकलित हैं। वे नदिया एक, पाट बहतेरे की भाँति सभी धर्मों को ईश्वर के नजदीक पहुँचाने का मित्र मित्र माग मानते थे। वे अपनी उत्तारता के कारण जट्ट, ‘श्रृपम’^२ और पाश्वनाथ^३ आदि जैन महाप्रभुओं को विष्णु का अवतार मानते थे।

सभी धर्मों का अपना अलग अलग विश्वास है। अपना अलग अलग मत है। उन्होंने अपने मत के अनुसार ईश्वर को देखा है। इस प्रकार ईश्वर के रूप में मत विशेष के कारण भिन्नता आ जाना अति आवश्यक है। भारते दु जी इस भिन्नता में एक ही परमात्मा के रूप को देखते हैं। और इसीलिय वे अपने प्रिय को बहुरूपिया की सजा से अभिहित करते हैं—

- १ कविचनसुधा जिल्द १, म० २५ २६ पृ० १४६
बैकट शर्मा ‘आधुनिक हिंदी साहित्य में समालोचना का विकास,
- २ पियार झुंजी को अरहत
पूजा जोग मानि कै जग में जाये पूज सत ॥
अपुनी रचि सब गावत पावत कोउ नहि अत ।
‘हरीचंद’ परिनाम तुही है तासा नाम अनत ॥
ब्रजरत्नदास (सपात्क) भारते दु ग्रथावली दूसरा खण्ड, जैनकुतूहल, छ० १, पृ० १३३ ।
- ३ जय जय जयति श्रृपम भगवान् ।
जगत रूपम बुध श्रृपम धरम के श्रृपम पुरान प्रमान ॥
प्रगटित-करन यरम बस धारत नानावेग सुगान ।
‘हरीचंद’ कोउ भेद न पायो बियो यथा रचि गान ॥
ब्रजरत्नदास (सपात्क) भारते दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, जैनकुतूहल, छ० २, पृ० १३३ ।
- ४ तुमहि तो पार्श्वनाथ ही प्यारे ।
तलपन लाग प्राण बगल तैं छिनहु होउ जो यारे ॥
तुमसों और पास नहि कोऊ मानहु करि पतियारे ।
‘हरीचंद’ सोजत तुमही को वं पुरान पुवारे ॥
वही, छ० ३, पृ० १३३ ।

भक्त है बहुरूपिया हमारो ।

ठगत फिरत है भेष रत्न जग आप रहत है यारो ॥

बूने-ज्वान-जती जोगिन को स्वाग अनेजन सारो ।

बवहूँ हिन्दू जैन बवहूँ अर बवहूँ तुख बनि आवै ॥

मरकत बाँके भेत्तन म सब भूले घोसा खात ।

हरीचन्द जानत नहिँ एकै हूँ बहुरूप सपात ॥^१

वे मायावाद, वेदान्त, कमवाण्ड आदि के विरोधी थे । उदाहरणार्थ अद्वैत के सम्बन्ध में उनका अकाट्य तर्क है—

बहो अद्वैत कहाँ सो आयो ।

हम छाडि दूजो है को जेहि सब धल पिपा लखायो ॥

बिनु रैसो बित्त पाएँ भूछो यह क्या जान बनायो ।

‘हरीचन्द बिनु परम प्रेम के यह अभेद नहिँ पायो ॥’^२

उनका ता विश्वास था कि—

नहिँ इश्वरता अटरी ख म ।

तुम ता भगम अनादि अगोचर सो कैसे मतभेद म ॥

तुम्हरो अनित अपार ऊँह गति जाचो बार न पारो ।

ताका इति बरि गाइ सबै क्यों बापुरो बंद विचारो ॥

बेगलिमि ही हाय तुम्हारी जा पै महिमा स्वामी ।

तो परिमिति गुन नय तिहारे नेति नति के नामी ॥

बंद भार गहिँ बारा प्यारे जो इत तुमको पावै ।

तो जग-स्वामी जग जीवन क्या तुमरो नाम कहावै ॥

जो तुव पत् रज-अजन नैनन लाग ता यह सूझ ।

हरीचन्द बिनु नाथ-शृपा क्यों यह अभेद गति बूझै ॥^३

और उनका विश्वास द्वैतवाद में है व जीव और ब्रह्म दोनों की अलग अलग सत्ता की मानते हैं क्योंकि दोनों की अनेकता से अनित का रूप खड़ा हो नहीं हो सकता । अतः वे अद्वैतवाजियों को पन्कारते हैं—

शिवोह माखत सबही लाग ।

कहाँ शिव, कहाँ तुम कीट अत वे यह कैयो सयोग ॥

आध अग मैं पारवती हूँ शिवहिँ न काम जगावै ।

तुमको तो नारी के देखत अग गुनगुनी आवै ॥

तुमको कहा सबध ब्रह्म सो क्या छान्त ही जान ।

हरीचन्द मनमथ जागयो तवै पड़ेगी जान ॥^४

यदि ऐसी बात है तो जोर और जननी में फर्क कहा रहा—

जो पै सबै ब्रह्म ही होय ।

तो तुम जोर जननी मानो एक भाव सो दोय ॥

ब्रह्म ब्रह्म कहिँ काज न सगनो वृथा मरो क्या राय ।

हरीचन्द इन बातन सा नहिँ ब्रह्महिँ पै हो नाय ॥^५

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, जैनकुतूहल, छ० १६, पृ० १३७ ।

२ वही, पृ० १३७ ।

३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड, छ० ६, पृ० १३४ ।

४ वही, जन कुतूहल, छ० २२ पृ० १३८ ।

५ वही, छ० २३, पृ० १३६ ।

अन्त में वे धार्मिक मान्यताओं के विरुद्ध जैनियों का आस्तिक स्वीकार करते हैं।^१ फिर उनका खटन मदन में विश्वास भी नहीं है, यह विरोधाभास पाठक के सामने एक दृढ़ लेकर उपस्थित हो जाता है। उनका विश्वास सभी मतों में है। किसी मत को वे घृणा की नजर से नहीं देखते। यही कारण है कि उनका खटन-मदन में विश्वास नहीं है, यथा—

खटन जग में बाको नीजै ।

सब मत तो अपने ही है, इनको कहा उत्तर दीजै ॥

तासा बाहर हाइ कोऊ जब सब कछु भेद बताव ।

ह्या तो वही सबे मत ताके तहै दूजो क्यों आव ॥

आपुने ही पै क्रोधि बाकरो अपुनो पाट अप ।

हरीचन्द' ऐस मतबारेन को बहा कीज सग ॥^२

साम्प्रदायिक दृष्टि से उनका मायावाद और अद्वैतवाद के विरोध में होना सामाजिक भी था। अद्वैतवाद के प्रमुख सिद्धांत 'ब्रह्मसत्य जगमिथ्या' को भी भारतेन्दु जी नहीं मानते थे। उनका अकाट्य तर्क था कि ब्रह्म सत्य है तो उसकी सृष्टि भी सत्य होना चाहिये। उनका तर्क है—

जा पै ईश्वर साधो जान ।

तो क्यों जग को समर भूरत भूठो करत बखान ॥

जो करता साँचो है तो सब फाजल है साच ।

जो भूठा है ईश्वर तो सब जगल जानी काच ॥

जो हरि एक अहे तो माया यह दूजो है कौन ।

हरीचन्द कहु भेद मिली न बक्यो जिय आयो जौन ॥^३

भारतेन्दु जी बाह्याडम्बर से बहुत ही दूर रहते थे। उनका विश्वास था कि हृदय ही भक्ति का आगार है। बाह्याडम्बर व्यर्थ है इनसे समष्टि का विनाश ही सम्भव है। अतः समस्त हिन्दुओं को इन्हें भुलाकर एक सूत्र में बंध जाने का आदेश उन्होंने दिया। देश में प्रचलित बाह्याडम्बरों को कबीर की भाँति ही निरर्थक बतलाया एवं आडम्बरों का विरोध ही किया। यथा—

लखो हरि तीन ताल में लटकया ।

रोकि रह्यो पानी चाटन पै बरमजाल में अटक्यो ॥

१ जैन को नास्तिक भापे कौन ?

परम धर्म जो दया अहिंसा सोई आचरत जौन ॥

सब कर्मन को फल नित मानत अति विवेक के मौन ॥

तिनके मतहि विरुद्ध कहत जो महाभूत है तौन ॥

सब पहुँचत एक हि थल चाहो करो जौन पय मौन ॥

इन आखिन सों तो सब ही थल सूझत यापी रौन ॥

कौन ठाम जह प्यारो नाही भूमि अनल जस पौन ॥

'हरीचन्द ए मतबारे तुम रहन न क्यों गहि मौन ॥

ब्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु श्यामलती, दूसरा खंड, जैन-मुतुहल, छ० ७, पृ० १३४ ३५ ।

२ वही जैन-मुतुहल, छ० १२, पृ० १३६ ।

३ वही, छ० २४, पृ० १३६ ।

हाथ नचावत सोर भचावत अगिन बुड है पटवयो ।

‘हरोच-द’ हरिजाई बनि वै फिरत लखहु वह भटवयो ॥^१

वास्तव में वे ज्ञान मार्ग के नहीं, प्रेममार्ग के समर्थक थे । उन्होंने प्रेम या रागानुगा भक्ति को अपनाया । प्रेमलक्षणा भक्ति की सुरगतिता को प्रवाहित किया, क्योंकि उनका भगवान् ता प्रेम में वास करता है—
पियारो पैये केवल प्रेम मैं ।

नाहि ज्ञान मैं नाहि ध्यान मैं नाहि करम पुन नेम मैं ॥

नहि भारत मैं नहि रामायन नहि मनु मैं नहि वेद मैं ।

नहि भगवे मैं नाहि युक्ति मैं नाहि मतन के भेद मैं ॥

नहि मंदिर मैं नहि पूजा मैं नहि घटा की घोर मैं ।

‘हरोचन्द’ वह बाधो डोलत एक प्रीति की डोर मैं ॥^२

भारतेन्दु जी सगुणोपासक थे । सगुणोपासना अवतारवात् की प्रधानता है । भारतेन्दु जी बल्लभ को भगवान् का अवतार मानते थे । इसके अतिरिक्त भी उन्होंने नृसिंह वामन, राम और कृष्ण—इन चार अवतारों का वर्णन किया है । नृसिंहावतार का वर्णन कवि ने बड़े ही ओजपूर्ण शैली में व्यक्त कि १ है । यह पद बहुत बड़ा है इसलिये कुछ ही अंश अवलोचनाय प्रेषित है—

आजु अपमान जति ही निरखि मस्त को

नेकुठ बा सिंह बहुत कोप्यो ।

पटकि कर भूमि पै भ्रमि सिर केश रद

बामि ओठन तेज भगत सोप्यो ॥

खम को फारि बिक्कारि केहरि-नाद

गमिनी-गर्भ गरजन गिरायो ।

सटा फटकारि कै नयनगन नमहि

कैकि ईत सी उतहि शेष धायो ॥

सदा प्रभु संवत्स गवहर अमय कर

जनन उर सौख्य कर पु खहारी ।

पीर ‘हरिच-द’ की हरहु कल्याणतन

नसित कनि बाल तव सरनधारो ॥^३

कवि के राम शिष्यक पदों की संख्या कम है । इनका वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है । यहाँ राम की प्रशंसा में एक पद उद्धृत किया जाता है ।

एई हैं गौतम नारि के तारक कौसिर के मुख के रखवारे ।

कौसलानदन नैन अनदन एई हैं प्रान जुडावन हारे ॥

प्रेमिन के मुख दैन महा हरिच-द के प्रानहुँ ते अति प्यारे ।

राज-कुसारी सिया जू के दुलह एई हैं राख राज दुलारे ॥^४

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, जन-कुतूहल, छ० ३१, पृ० १४० ।

२ वही, छ० १३, पृ० १३६ ।

३ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड, राग-संग्रह छ० ७, पृ० ४३७ ३६ ।

४ वही, रामलीला, छ० २२ पृ० ७७६ ।

कवि ने रामभक्ति सम्बन्धी रचनाओं का सृजन अपने राम-लीला नामक चम्पू काव्य में किया है। इसमें रामचरित सम्बन्धी ३५ पदों की रचना है जो एक से एक भाव सौन्दर्य के लिये अप्रतिम हैं।

मारतेन्दु जी अवतारवाद के प्रशंसक थे। उन्होंने अपने एक पद में दशावतार का एक ही साथ वर्णन प्रस्तुत किया है। देखिए—

जयति वेणुवर चक्रघर शङ्खघर,
पद्मघर गदाघर शृङ्गघर वेनघारी ॥
मुषुटघर व्रीटघर पीतपट-कटिनघर,
कठ - कौस्तुभ घरन दुल्लहारी ॥
मत्स्य को रूप धरि वेद प्रगटित करन,
कच्छ को रूप जल मथनघारी ।
दलन हिरनाच्छ वाराह को रूप धरि,
दत्त के अग्र घर पृथ्वि भारी ॥
रूप नरसिंह घर भक्त रच्छा-नरन,
हिरनकश्यप - ऊँर नख विधारी ।
रूप बाभन घरन छजन बलिराज को,
परसुघर रूप धनी सहारी ॥
राम को रूप घर नास रावन करन,
धनुषघर तीरघर जित सुरारी ।
मुशलघर हलघरन नीलपट सुमगघर,
उलटि करपन करन जमुन-घारी ॥
बुद्ध को रूप घर वेद गिना करन,
रूप घर बलि बलजुग - सघारी ।
जयति दश रूपघर कण्ठ कमलानाथ,
अतिहि अनात सीला बिहारी ॥
गोपघर गोपिघर जयति गिरराजघर,
राधिका बाहु पर बाहु धारी ।
भक्तघर सतघर सोइ 'हरिचन्द' घर
बल्लभाधीत द्विज वैपवारी ॥^१

रगीले हरिचन्द्र ने मगवान् श्रीकृष्ण को ही अपना उपास्य माना। उन्हीं की चरण शरण में अपनी भक्ति-लता को हरी भरी की। यही कारण था कि वे अपने पापियों का सरदार कहते थे। उनका हृदय ही सभी पापियों के पाप को समेटे हुए था—

सब दीननि को दीनता सब पापिन को पाप ।

सिमटि जाइ मो मे रह्यो, यह मन समुझहु आप ॥^२

१ सतवाणी अंक, (कल्याण विशेषांक), वष २६, सं० १, सं० २०११, पृ० ५१२।

मारतेन्दु प्रयागली, दूसरा खण्ड, प्रेम मालिका, १३० २६, पृ० ५२-५३।

२ कल्याण संतवाणी विशेषांक, वर्ष २६, सं० १, सं० २०११, पृ० ५११ ॥

वे जन्मजात भगवत रसिक थे। उनकी आत्मा रासरसिकेश्वर घनश्याम के लिये सदैव लालायित रहती थी। उन्होंने कहा है—

भरित नेह नवनीर नित बरसत सुरस अंधार।

जयति अपूरव धन बोक लखि गच्छत मन मोर ॥^१

भगवान् श्रीकृष्ण हैं प्रति उनकी स्थायी अनन्यता थी। उनकी आत्मा विरहिणी की भाँति प्रेमानुल हो दरस के लिये सदैव विकल थी। चाहे वह घनश्याम का बाल रूप हो, या यौवनवालीन रासलीला का। भक्त भारतेन्दु की वाणी आजीवन उनके लीलागान से अपने को कृतार्थ करती रही। कवि की व्याकुलता में मीराबाई के दगन सहज ही म हो जाते हैं—

मोहन दरस दिखा जा।

व्याकुल भति प्रान-प्यारे दरस दिखा जा ॥

बिछुरी में जनम जनम की फिरी मय जग छान।

अबकी न छोडो प्यारे यही राखा है ठान ॥

‘हरीचंद’ बिलम न कीज नीज दरसन दान ॥^२

कभी वे दाम्पत्य भाव से ओतप्रोत होकर नन्दनन्दन का आवाहन करते हैं। गोपिया की अचल भक्ति की तरफ कवि जब संकेत करता है तो उसकी भक्ति सलिला में एक कबन का स्वर गुंज उठता है। उस समय वह मन को एक ही मान कर नानोपदेश देन वाल उद्धर के ज्ञान पर जो चूर चूर कर देता है। सचमुच यदि मन एक नहीं अनेक होता तो किसी भी लौकिक कार्य में बाधा उपस्थित नहीं होती। वे सारे एक ही साथ सम्पन्न होते। कवि कहता है—

उधौ जो अनेक मन होते।

तौ इव श्याम सुंदर को देते, इव सै जोग सजोते ॥

एक सा सब गृह-भारज करते एक सा धरते ध्यान।

एक सो श्याम रंग रगते तजि लोच-लाज कुल-दान ॥

को अप बरे जोग को साथे को पुनि मूँडे नैन।

हिये एक रस श्याम मनाहर माहन मोटिख मैन ॥

ह्य ता हुतो एक ही मन सो हरि सै गए चुराई।

हरीचंद कोउ और खोजि कै जोग सिखावहु जाई ॥^३

उद्धव का ज्ञान-योग-सन्देश गोपिया के प्रेम-योग के सामने विफल हो जाता है।

भारतेन्दु की भक्ति में दाम्प्य भाव की प्रधानता है। उन्हें भगवान् की भक्तवत्सलता पर पूर्ण विश्वास है। डा० किशोरीलाल गुप्त न लिखा है कि ‘भारतेन्दु को भी भगवान् की रीझ, उसकी भक्त वत्सलता पर अनन्य विश्वास है। वे भगवान् की रीझ पर बनिहार जाते हैं क्योंकि महापतितों से भी प्रेम करने वाला उनके अतिरिक्त अर्य कोई देव नहीं दिखाई देता।^४ भारतेन्दु ने भगवान् की रीझ का जिन पदा में वर्णन किया है, कवि की आत्मविमोहता और को सरस वाणी से अविश्रम प्रभावप्रद है—

१ भक्त चरिताक (कल्याण विशेषांक), वर्ष २६, सं० १ सं० २००८, पृ० ७८३।

२ ब्रजरत्नदाम (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, प्रेम-तरंग, छ० ६०, पृ० २०७।

३ यही, प्रेम मालिका, छ० ६८, पृ० ६५।

४ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके अर्य सहयोगी, वाराणसी, पृ० ५२।

भरासो रीझन की लखि नारी ।

हमहूँ को विश्वास होत है मोहन पतित उषारी ।
जो ऐसी मुभाव नहि होना क्या अहीर कुल भायो ।
तजि के कौमुद सो मनि गल क्यों गुजा-हार धारयो ।
ब्रीट मुकुट तिर छोडि पत्रोश मोरन को क्या धारयो ।
फँट बगी टेंटनि पै मेवन को नयो स्वाद विसारयो ॥
ऐसी उलटी रीझ देखि वे उपजत है त्रिय आस ।
जग निदित 'हरिचदहु' का अपनाबहिगे करि दास ॥^१

भारतेन्दु सी सच्चे अर्थ में भक्त थे । उनका भगवान् से झूट नाता था । वे उसे प्रियतम मानते हैं । प्रियतम मानकर उसकी उग्रमत्ता करना तथा उसकी निर्ममता पर उसे उग्राहना देना, यह कोई जन्म जात भक्त ही कर सकता है । भारतेन्दु जो का मावुक् भन श्रीराधाकृष्ण के प्रेमाश्रव मे सदा ह्वता उतराता था । उनकी भक्ति गंगा मे ज्ञान और प्रेम का अभूत समन्वय था । वे सदा कृष्ण को ही चाहते थे—

हमहूँ कबहूँ सुख सा रहते ।

छाडि जाल सब, निसदिन भुख सो केवल कृष्णहि कहते ॥
सदा भगन लीला अनुभव थे, हृष दोउ अविचन रहते ।
'हरीचद' धनम्याम बिरह इक जग-दुख तृन सम रहते ॥^२

कवि कृष्ण को प्रियतम मानता है, लेकिन उनकी रीझ लीझ मे राधा की तरफ विशेष आकर्षित होना उनके भजनानन्द हृदय की प्रेममूलकता का परिचायक है । वह राधा के चरणों की उपासना मे अपने को विशेष तल्लीन करता है । उसने समस्त जगत् मे श्रीराविका रानो की सरस परिप्राप्ति पायी है । एक तरफ उसकी वाणी मे स्वयं राधा के रूप में चकोरा^३ वन जाने का आग्रह है तो दूसरी तरफ वह श्रीराधारानी मे एक सच्चे सीधे सादे भक्त की भाति अहनिश कहा करते हैं—

श्रीराधे मोहि अपनो कब कहिनी ।

भुगल रूप रस अमित माधुरी कब इन नयननि भरिहों ॥
कब या गीन हीन निज जन पै ब्रज की बास बिहरिहों ।
'हरीचद' कब भव ब्रूत तें भुज धरि धाई उबरिहों ॥^४

१ श्रजरत्नभास (संपादक) भारतेन्दु प्रयावली, दूसरा खण्ड, प्रेम-फुनवारी, खंड ६, पृ० ५७६ ।

२ वही, प्रेम प्रताप, छ० ११, पृ० २०५ ।

३ 'हरीचद' पतेहू पै दरस निखावे क्यों न,
तखत रैनदिन प्यासे श्रान पातकी ।
एरे ब्रजचद ! तेरे मुख की चकोरी हो मैं
एरे धनम्याम तेरे रूप की हों चाहती ॥
वल्याण भक्ति चरिताक, वर्ष २६ स० १, २००८, पृ० ७८३ ।

४ श्रजरत्नभास (संपादक) भारतेन्दु प्रयावली, दूसरा खण्ड, प्रेम फुनवारी, छ० १, पृ० ५७७ ।

इस प्रकार का भाव राधावल्लभ सम्प्रदाय का ध्योतक है। वह इस सम्प्रदाय से विशेष प्रभावित है।^१

अतः मे कवि अपने त्रियाकलाप पर पश्चात्ताप करता है। उसकी कविता कालिन्दी के तट पर ज्ञान-पुष्प पुष्पित हो जाता है। उसकी आत्मचेतना सबल हो जाती है, फिर तो कवि को सच्ची भक्ति की प्राप्ति में किसी प्रकार की शिकायत नहीं रह जाती।

मजा कही नहि पाया जग मे नाहन रहा भुलाया ।
 दिन के सुख की तालच जित तित स्थान सार ठपराया ।
 यह जग मे जिसको अपनाकर भूटा भरम बढ़ाया ।
 तिम स्वारथ पसि बूकर सूकर सब दुतकार बताया ॥
 अपना अपना अपना करवै बहुत बनाई माया ।
 भत सबे तजि दीना मल राम जिनरो अनि अपनाया ॥
 साचे भीत स्यामभुंदर सा छिनहु न न बढ़ाया ।
 'हरीचंद' मल भूत्र कीट बनि नर जीवनहि गँवाया ॥^२

इस प्रकार भारतेदु की भक्ति रचनाओं में उनका देय प्रबल है। इसके अतिरिक्त विनय, बाललीला, प्रेम सम्बन्धी सक्षयभाव सबको शक्ति समी प्रकार के पं मिलते हैं। आपने तो पुष्टिमाग की इस राधारानी के जन्म एवं बाल्यकाल का जो वर्णन प्रस्तुत किया है, वह आपकी एक अनोखी श्रृंखला है। अष्टछाप भक्त कवियों ने भी इस प्रसंग को स्पर्श नहीं किया था। आपको रसिकता राधा-कृष्ण के प्रेम, मान और विरह उद्भव-गोपी सबान् विरह के अतृप्त मानी जाने वाली सभी दशाओं का विशद वर्णन मिलता है। आपकी भक्तिपरक रचनाओं में गीतिकांता का पूर्ण निर्वाह पाया जाता है। उनमें गीतितत्व प्रचुर मात्रा में प्राप्य है। पदा के अतिरिक्त आपने होली, कुमरी सोरठा, तथा उलू की भी कविताओं का सृजन किया है, वही भी भक्ति भागीरथी कितोल् करती दिखायी पड़ती हैं। उनकी भक्ति के बारे में अतः मे यही कहा जा सकता है कि वे चन्द्रावली के रूप में प्रभु के दाम्पत्य भाव को और विरहोभाव का स्पष्ट प्रकट कर हिंदी साहित्य के पाठकों के धर्म का निवारण करते हैं। यथा—

मगल भयो मोर मुख निरखत मिटे सबल निसि दाग ।

हरीचंद आओ गर लागी साची करा सोहाग ॥

×

×

×

तोसा और न प्रभु कछु जाचो ।

विस्फुलिंग के जग दुख तजि तब विरह-अग्नि तन ताप्यो ॥^३

- १ गुलाबराय का भी यही मत है कि वे राधावल्लभ सम्प्रदाय से विशेष प्रभावित थे। क्योंकि ऐसा देखा जाता है कि उनके पदा की कुल संख्या १२५० से अधिक नहीं है। इन्हें हम दो भागों में बाँट सकते हैं—विनय और कृष्णचरित। कृष्णचरित में भी बाललीला सम्बन्धी पं कम हैं। गोपियों के प्रेम का बहुतांश है। इसमें भी संयोग शृंगार की प्राधान्य है—ऐसा राधावल्लभ सम्प्रदाय ही में सम्भव हो सकता है।^१

साहित्य सन्देश, वर्ष १२, अंक ४, ५, अक्टूबर नवम्बर, १९५०, पृ० २०५।

- २ कल्याण सतवाणी विशेषांक, पृ० २९, सं०, १ सं० २०११, पृ० ५१८ ।

भारतेदु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, विनय प्रेम-पचासा, छ० ३९, पृ० ५५० ।

- ३ व्यथित हृत्पथ (संपादक) चन्द्रावली, प्रयाग द्वितीय संस्करण, १९५७, पृ० ८० ।

वक्ता चन्द्रावली को स्वयं कृष्ण चित्रित करते हुए अपनी तमयता का परिचय दिया है। वे वैष्णव थे। वैष्णव होने के कारण वैष्णव गुणों के प्रति अद्भुत अर्पित की है। उन्होंने इसी भाव से प्रभावित होकर तदीय समाज की स्थापना भी की थी। साथ ही साथ वैष्णव परम्परा के अनुसार उन्होंने हिन्दू पर्वों, त्योहारों को महत्ता और प्रभु चरण चिह्नों आदि का भी वर्णन प्रस्तुत किया है।

भारतेन्दु जी जनक के समान गृहस्थ थे और कण के समान दानी भी थे। उनका हृदय भक्ति का चित्रकूट था, त्रिवेणी का संगम था। एक तरफ जान गरिमा मक्तिमत्ता लहरा रही थी तो दूसरी तरफ प्रेमलतिका, प्रेमसागरी की स्थापना कर रही थी। बीच में भारतेन्दु के मक्त हृदय की सच्चाई एष नवीनता, नवनूतन रस का संचार कर रही थी। उनकी भक्ति के बारे में प्रेमधन जी ने लिखा है। वे गृहस्थ थे जनक के समान, धर्मात्मा थे जनक के समान—

जनक सरिस दुहु लोक के कारण मे लवलीन ।
नारद सौ हरि भक्ति या जग दिखाय जो दीन ।
परहित साधन मे रह्यो राग दधीचि समान ।
सो बिन सोमस सौ भया चिरजीवहु सुजान ॥^१

श्रीधर पाठक ने भी लिखा है—

हरिश्चन्द्र सम सत्य सदा प्रतिपालन कीनी
गोपिन-सरिस-अनय भक्ति-सर्वस - रस भीनी ।
देव एष जह्माद - अटल प्रह्लाद प्रबल प्रन
ध्रुव सम ध्रुव निश्वास-आस ध्रुव आनि अविचल-भन ।
जय परम भक्त गन-भक्ति-मद भक्ति भक्ति-वैभव विमल
जय जल जल-सु विभुक्त सद् भक्त-माल मुक्ता नवल ।
हरि समान हरि कुमति निस-तम, सुमति प्रकासी
परम पुरातन प्रेम-वेलि नववली बिकासी ॥^२

भारतेन्दु जी ने अपने अपने अग्रणी अग्रणी^३ को हिय में सजोये हुए अन्तिम दिन 'श्रीकृष्ण । श्रीराधा कृष्ण, हे राम आते हैं मुख दिखलाओ' कहा और कोई दोहा पदा जिसमें से श्रीकृष्ण सहित स्वामिनी इतना घीरे स्वर से स्पष्ट सुनाई दिया।^४ अम्बिकानाथ सिंह के शब्दों में अन्तिम समय का दृश्य इस प्रकार है — 'अत समय में राजा शिवप्रसाद जी 'सितारे हिन' से जो उनकी शय्या के पास ही थे, कहा—'बड़ी प्यास लगी है।' राजा साहब ने चाँनी के बटारे में जल भर कर दिया। बाबू साहब की आन्तरिक वेदना ने तब बर कहा—'पानी नहीं धनामद का सबैया चाहिये।' राजा साहब ने

- १ प्रभावेश्वर उपाध्याय (संपादक) प्रेमधन सर्वस्व, शोकाग्रविदु, छ० ४० ४१, पृ० १३० ।
- २ श्रीधर पाठक मनोविनोद हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम सत्करण, १९१७ पृ० ६७ ।
- ३ अभी तक मेरे पास पूर्ववत् बहुत घन होता तो मैं चार काम करता—(१) श्री ठाकुर जी के बगीचे में खूब घूमघाम से पटश्रुत का मनोरथ करता (२) विलायत फरासीस और अमेरिका जाता (३) अपने उद्योग से एक शुद्ध हिन्दी यूनिवर्सिटी स्थापन करता (४) एक शिल्पकला का पश्चिमोत्तर देश में कालिज करता । (कविचन सुधा पृ० ८, जिल्द १६, स० २३, २४, जनवरी १८८५)
- ४ कविचन सुधा जिल्द १६, स० २३ २४, जनवरी, सन् १८८५ ई०, पृ० ६ ।

‘तुम कोन से पादो पड़े हो लला ! मन लेहु वै देहु छागक नही,’ की सुधावाणी से उनके अघर की प्यासो बुझाई ।^१ इस प्रकार मल्लु शय्या पर भी अपनी भक्ति और रसिकता का परिचय दिया ।

उम समय बाबू साहब की उम्र ३४ वर्ष ३ महीने २७ दिन १७ घंटा ७ मिनट ४८ से० थी ।^२

बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’

जयति प्रेमघन नाम सुकवि बदरीनारायण ।

भारतेन्दु की भीत रसिक साहित्य परायण ।

आनन्द बालम्बिनी पत्रिका जाने चापी ।

रखी मनो गभीर मनोहर नव रस-बापी ॥^३

जीवन रेखा

प्रेमघन जी का जन्म मिर्जापुर जिला तर्गत दत्तापुर नामक ग्राम में भाद्रपद कृष्ण ६ सं० १९१२ वि० को हुआ था ।^४ इनके पिता जी का नाम प० गुरुवरणलाल उपाध्याय था । ये बहुत ही धार्मिक और उदार व्यक्ति थे । प्रेमघन जी का जन्म गांव से विशाल सम्पन्न नहीं रहा । उन्होंने लिखा भी है—

जन्मभूमि वह यद्यपि तऊ सबब न कछु अब ।

अपनो वा सो रह्यो दूटि सो गयो कबै सब ॥

जीर जीर ही ठौर भयो अब ता गृह अपनो ।

तऊ सखत मन विह कारण बाही को सपनो ॥^५

प्रेमघन जी का अक्षरारम्भ इनकी माता द्वारा सम्पन्न हुआ । पिता हिन्दी फारसी और संस्कृत के विद्वान् थे । इमलिय पढ़ने को तरफ इनकी प्रवृत्ति थी । उन इनकी शिक्षा मिर्जापुर, गाहा, फैजाबाद आदि स्थानों में चलती रही । जयधन में जन्मिष्टि थी । फनस्वरूप ये बचपे पिता से एक कदम और आगे बढ़ गये और अग्रजों सीख ली । इनके काव्य गुरु प० रामानन्द पाठक थे जो इन्हें संस्कृत पढ़ाया करते थे ।

प्रेमघन जी बड़े शौकीन व्यक्ति थे । इनकी वेश भूषा में नारतीय रईसी साफ स्पष्ट होती थी । पठन-पाठन के अलावे इन्हें पुस्तकवारी का भी शौक था । ये भारतेन्दु जी के अनन्य मित्र थे । भारतेन्दु जी की भाँति ही इनकी प्रवृत्ति बड़ी उदार थी । ब्रजरत्ननाथ ने लिखा है कि प्रेमघन की बातों में प्रकृष्टता कुछ श्रुता रहती थी और उसमें एक निजी निरालापन, विनोद तथा दूसरों को बनाने की प्रवृत्ति भी रहती थी ।^६

आपका व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक था । आप जिस प्रकार अपनी सजनात्मक शक्ति के हिमायती थे, ठीक उसी प्रकार अपनी रियासत के भी हिमायती थे । यही कारण था कि आपके यहाँ मजलिस

१ कल्याण मन्तविरिताक, सं० १, वर्ष २६, सं० २००८, पृ० ७८४ ।

२ कविवचन सुधा, जि० १६, सं० २३ २४, जनवरी, सन् १८८५ ई० पृ० ६ ।

३ वियोगी हरि कवि कीर्तन पृ० ६६ ।

४ ब्रजरत्ननाथ भारतेन्दु मण्डल, नाथो, पृ० ७८ ।

५ वही, पृ० ७८ ।

६ ब्रजरत्ननाथ भारतेन्दु मण्डल, पृ० ८० ।

बराबर जमी रहती थी। आपके बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि भगलिस लगी है, बीच में लेम्प जल रहा है। अचानक वह भग्न गया। लोग चाहतर भी बुझा न सके। चौधरी जी ने नौकर को आवाज दी 'अरे जब फूट जाई तबै चलत जाव है।' अंत में चिमनी फूट गई पर हाथ लेम्प की तरफ न बढ़ा^१। प्रेमघन जी के यहाँ बराबर मीठ नगी रहती थी। इसी प्रवृत्ति के कारण इन्होंने 'सत्कर्म समा और रसिक समाज की स्थापना की थी। कालांतर में यही रसिक समाज रसिक बाटिका और रसिक मित्र नामक पत्रों का सम्पादन करने लगा।

प्रेमघन जी का साहित्यिक प्रवेश वाँवबवन सुधा से हुआ। कुछ गिनो के बाद आपने आनन्दका हम्बनी नामक पत्र भी प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। इसी में आपके लेख, आपको कविताएँ आदि प्रकाशित हुआ करती थी। यह पत्र आठ-नौ वर्षों तक चलता रहा। इसके अनंतर आपने मागरी-नीरद एक साप्ताहिक समाचार पत्र का प्रकाशन भी किया।

आपने अपने जीवन के ६८ वर्षों तक साहित्यिक कार्य किया। स० १९७६ के फाल्गुन शुक्ल चतुर्दशी का आप इस ससार को छोड़ कर चल बसे।

भक्ति-भावना

प्रेमघन जी अपने परिवार से घामिन् परम्परा नहा प्राप्त कर सके थे। वहाँ उन्हें भक्ति शिक्षा नहीं मिली थी। लेकिन पिता की विद्वत्ता, संस्कृत के प्रति प्रेम और माता का बिबुयी होना उनके हृदय में तरंगित करता रहा। अंत अपने धर्म की खाल खींच कर उसकी आत्मा से सम्बन्ध स्थापित किया। भारते दुयुगोन साहित्यिका जगत् में आपकी भक्तिभावना एक 'भाइल स्टोन' का काम करती है।

धुग की धमनिया में स्फुट-कविता का प्रवाह हिलोरें ल रहा था। प्रबन्ध-कविता का पूर्ण अभाव था। रामकथा प्रणयन में प्रबन्ध की सीमा निर्धारित हो चुकी थी। कृष्ण-कथा का प्रवाह स्फुट कविताओं में ही सीमित था। कवि कृष्ण कथा को प्रबन्ध-रस का रूप 'जलौकिक लीला' के रूप में देता है। कथा का प्रवाह पाच सप्त तक चला जाता है। इन पाच सर्गों में कथा का प्रवाह ध्वन्दा की छटा, गीतों की गैयता कवि की काव्य प्रतिभा का परिचायक है। लम्बिन यही कथा का प्रवाह टूट जाता है। प्रेमघन स्वस्व के पृष्ठ १२३ पर इस अपूर्वी रचना के बारे में एक नोट है जो इन प्रकार है—'प्रेमघन जी इस काव्य को इसी स्थान तक लिख सके थे। १९७२ वि० में उन्होंने यहाँ तक लिखकर बाद में पूरा करने के लिये छोड़ दिया था, पर दुर्भाग्यवश यह काव्य फिर न लिखा जा सका।

कवि कृष्ण का अन्य मन्त्र है। उस कृष्ण की उदारता और महनीयता पर पूर्ण विश्वास है। इस दृष्टि में कवि कृष्ण की अलौकिक लीला का वर्णन करता है। उनके जन्म के साथ ही उसे यह विश्वास हो जाता है कि भगवान् ने मनुष्य का अवतार ले लिया है। गीताकार^२ का यह विश्वास है कि जब-जब ससार में पाप का प्रवाह बढ़ जाता है तब-तब भगवान् भूतल पर अवतार लेते हैं। कवि इसी भाव का वर्णन बड़े ही सुन्दर ढंग से करता है—

१ प्रभाकेश्वर उपाध्याय प्रेमघन स्वस्व, (भूमिका लेखक रामचन्द्र शुक्ल), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ८।

२ यदा यदा हि धर्मस्य स्तानिमवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदा त्मानं सृजाम्यहम् ॥

श्रीमद्भगवद्गीता, ४।७

देखि पाप को जग पुनि प्रभु प्रचार ।
 सम्भव है हरि होय मनुज अवतार ॥
 जब जब होय धम की जय म स्तानि ।
 बढ़हि असुर कुल सकुल अति अभिमानी ॥
 जब तिनसा दवि दीन सत्तायें जाहि ।
 जबहि साधुजन ह्वै व्याकुल चित्साहि ॥
 तब करनावर करना करि प्रगटाय ।
 दुष्ट दलन निज जन सहि बचाय ॥^१

यहाँ गीता की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है । कथ द्वारा वसुदेवकी पर विभे गये अत्याचार से जग पीड़ित है । ससार म यव तन सवन चाहि चाहि की आवाज आ रही है, साधुजन सन्तप्त है । अतः कवि को विश्वास हो जाता है कि—

वैसाई सब जोग छुरयो जब आय ।
 परिनामहुँ तब वै सोई होय लपाय ॥^२

अक्रूर और कस का परामर्श कहे कृष्ण की अलौकिकता प्रकट करता है तो कही कृष्ण को साधारण मानव की कोटि म रख उगम मानवीय गुणों का आरोप किया जाता है । लेकिन प्रलम्भना से मनुष्य के एकाग्रचित्त को चंचल कर देना आसान बात है । कथ अक्रूर स कृष्ण को जाने को कहता है । अक्रूर की चिन्ता बल जाती है । उसे विश्वास है कि कृष्ण मनुज रूप मे भगवान हैं उसे फुसलाया कैस जा सकता है । यथा—

तो बहु वधन चहत तिहि तितो बुलाय ।
 भेज्यो मुहि जिहि ल्यावन हित फुसलाय ॥^३

कवि को कृष्ण के शौर्य पर पूरा विश्वास है । वह जानता है कि जिसने बड़े-बड़े वीर को मार दिया है, वह कस का अवश्य ही काल बनेगा ।

बड़े बड़े वीरन जो मारया बाल ।
 अबसि होइहे सो कसहु को काल ॥^४

कृष्ण अलौकिक पुरुष हैं नही बताने पर भी सभी कुछ जान जाते हैं । सबज्ञाता हैं । अतः वह अक्रूर की अगवानी कर उनसे पूछता है । कवि की पक्षियाँ अलौकिकता का भास भटके से करा जाती हैं । कृष्ण की व्यवहार कुशलता और वाक्य धातुय दशनीय है—

पूछो मृदु सुमुकाय मनमोहन अक्रूर सन ।
 कहहुँ चचा समुझाय कुशल सेम सकुटुम्ब निज ॥
 परम अनुग्रह कीन दीन तरस इत आइसै ।
 अब जो वृत्त नवीन होय कहहुँ गो करि कथा ॥
 चित्त चिन्ता सो जूर समय विसमय सो मर्यो ।
 कह्यो सकुचि अक्रूर उहै कुशल सानंद सब ॥^५

१ प्रभाकेश्वर उपाध्याय (सपादक) प्रेमधन सवस्व, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ६६ ।

२ वही, पृ० ७० ।

३ प्रभाकेश्वर उपाध्याय (सपादक) प्रेमधन सवस्व हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ६८ ।

४ वही, पृ० ६६ ।

५ वही, पृ० ८२ ।

कवि कृष्ण को अजमा बताता है—

सब अचरज मय बात सुनत लखत इह आय म ।
कह्यो कछु नहि जात सवै न मन अनुमान करि ।
यह शिशु परम अयान होन जोग अति स्वल्प वय ।
सो वल बुद्धि निधान दुसह तेजयुत है महत ।
धय धय वसुदेव धय देवकी देवि त ।

जाया जय नही भेव जयो अजमा जिन सुवन ॥^१

प्रेमधन जी कृष्ण के समुण रूप के उपासक हैं। अतः नवधामति में उनका पूर्ण विश्वास है। कृष्ण ब्रह्मर के साथ गोपिकाओं को छोड़कर चले गये हैं। इधर बिरह विदग्ध बाल-बाल भगवान् क ऐश्वर्य का स्मरण कर आकुल-व्याकुल है। विधि का विधान विचित्र होता है। कवि के शब्दा म—

कैमो हो विधान विधिना का न जनाय कछु
जाय मधुपुरी फिर कब इत आइहैं ।
नाग सिर नाचि हैं उठाई घरा घर कर
दावानल पान करि हमहि बचाहैं ।
गाइन चराइहैं कदम्ब चढि प्रेमधन
बामुरी बजाइहैं औ रम बरसाइहैं ।
जाबो मुजबल सो रह्यो बैरिहीन ब्रज
सोई वृजराज आज वृज तजि गइहैं ॥^२

और फिर भी

विधि को विधान अति अटल जानि
नहि पछित जन मन करत म्लानि ॥^३

अतः कवि उस सावरिया के दर्शन के लिये ललच जाता है। सारा ब्रजमण्डल यमुना-गुलिन पर जुग जाता है। मनोतियाँ होने लगती हैं—

करि नित्य वृत्त्य निवृत्त सब जमुना पहुँचै जाय कै ।
अरचन लग निज इष्ट देवहि गोप सबल भनाय कै ॥^४

कवि कृष्ण की महिमा का वर्णन करन में किसी प्रकार का टोटा नहीं रखता। उस रास्ते में किसी ने छेड़ दिया—कृष्ण बच्चे हैं। कवि की कबित्व शक्ति इस धुनोती को बच सब बर्दाश्त करती। बस क्या था? कविता का स्रोत फूट हा तो पड़ता है—

री बागरी इहें निपट बालक ही न जान ।

ये—

बेसी अरिष्ट अघासुरन गण ह्यो जिन बनि बेहरी ।
पय पीयत नास्यो पूतना बच व्योम बलामुर ह्यो ।

१ प्रभाकेश्वर उपाध्याय (मैपानक) प्रेमधन सर्वस्व, प्रयाग, पृ० ८३ ।

२ वही, पृ० ८६ ।

३ वही पृ० १०६ ।

४ वही, पृ० ११२ ।

चेनुक शकट शर त्रणावर्त सहारि अजित यहै वयो ।
 कालीय नाग कराल नाथ्यो नृत्य तिहि फन पर कियो ।
 नाथ्यो पुरन्दर बिधि गरव सुनि कम को काप्यो हियो ।
 मारो सुदशन शख चूडहि पान दावानल कियो ।
 भज्यो जमल अजुन करहि पर धारि गोवर्धन लियो ।
 कोउ कहत ससय कछु नहि देवी कही सो है सही
 नृप कस को जो बाल जायो देवकी सो है यही ॥^१

बस कवि का दैव्य प्रबल हो जाता है । अतः धीन होकर उमने भगवान् से भव मय ताप हरने के निमित्त अपनी कामनाएँ निवेदित की है—

स्याम घन सम सामित घा स्याम
 दासनी सो राधा रानी सग मोहत मन आम राम
 भव भय ताप हरहु प्रभु भरे सुखनायक छवि धाम
 बरसहु प्रेम प्रेमघन हिय निजा अबर आठहु जाम ।

अतः कवि भारतीय आशावाद की व्याख्या कर हृदय को सान्त्वना देता है—

दिन एक से बीतत बराबर नहि कोउ के नित्य है ।
 जो मात्र सुख सो सोवतौ सहि सकल सुख साहित्य है ॥
 कल्ह उन्हें बेकस देखियत बेकल परे जो आज है ।
 उन ही न कल जो देखिये लखि परत यह सुखसाज है ॥^२

कवि कृष्ण का ही नहीं राधा का भी ध्यान करता है । राधा उनकी आह्लात्तियों शक्ति हैं । अतः कवि मुगल रूप की उपासना को ही सवधेष्ट समझता है—

राधा राधा रट लगी माधव माधव टेर ।
 सहित प्रेमघन परम सुख सखचय सौंभ सखेर ।
 राधा राधा रट लगी माधव माधव टेर ।
 दोउन के उर ध्यान ते दुइ लोक सुख डेर ।
 श्रीराधा राधा रटत हटत सकल दुख डेर ।
 उमडत मुख को सिधु उर ध्यान धरत नदनद ॥^३

कवि वामनावतार भगवान् से भी भगल कामना की प्रार्थना करता है—

ब्रह्मचारी बनि बैलियो सकल जगत जिन जीत ।
 सब बिधि सो भगल करै श्री बावन उपनीत ॥^४

कवि गोपीभाव का उपासक है, वह मुरली की ध्वनि सुन कर बेचैन हो जाता है—

जब सो मुरली तान तुव आन परी है वान ।
 धुनि सुनि कैसी हूँ कहूँ परत आन नहि जान ॥

१ प्रभाकेश्वर उपाध्याय (संपादक) प्रेमघन सवस्व प्रयाग, पृ० ११२ ।

नागरी नीरद (१८ जुलाई १८२५)

२ प्रभाकेश्वर उपाध्याय (संपादक) प्रेमघन सवस्व, प्रयाग, पृ० ११६ ।

३ वही, लालित्य लहरी, पृ० ३३१-३२ ।

४ वही, पृ० ३३२ ।

स्याम सौंह स्यामा नहीं झूलत तेरे बोल ।

करत वान में प्रेमधन मानहुँ काम कलोल ॥^१

कवि यहाँ राधिका के श्यामा रूप का तथा कृष्ण के श्याम रूप का उपासक है । स्पष्ट है कि यहाँ हरिदासी सम्प्रदाय का भाव लक्षित होता है ।

कवि सखी रूप में कृष्ण का साहाय्य सुख प्राप्त करना चाहता है । वह कुञ्ज की पृष्ठभूमि से रतिरणागन में भस्ते युगल सरवार के आनन्द का रसास्वादन करता है—

लोट मिली कैलि कुञ्ज करत ।

राधिका राधे रमन की सरस छवि लखि परत ॥

रास रण राते रसीलै भागिनी भुज परत ।

भ्रमकि नाचत सखिन सगलनि मोर साजन मरत ॥

मधुर अधरा घरनि उपर ललित बसी घरत ।

मोहिव हित भौकिलन कल सरस सुम सुर भरत ॥

रति मनोज दुहुन की दुति जनु जुगन मिल हरत ।

बिमल बहोनाथ कविवर छविन हिय ते टरत ॥^२

कवि की भक्तिभावना में किसी प्रकार की शका उपस्थित नहीं करनी चाहिये । क्योंकि कवि की सर्व प्रथम प्रकाशित कविता में ही उसकी भक्ति कविवर विहारीलाल की भाँति ही उस रंगीले लाल की तरफ आकृष्ट होती दीख पड़ती है—

मुरली राजत अधर पर सर बिनसत वनभास ।

आय सोई मन बसौ सदा रंगिलै ॥^३

कवि आगे कहता है—

जय मुमुक्षु मधुसूदन माधव भवन लज्जिन ।

जय मुरारि मधुरेश मधुर मुरलीहि बजावन ॥^४

कवि ससार की सम्पत्ति को तुच्छ समझता है, उसे तो भगवान् की कृपा की ही भाते हैं—

सम्पत्ति सुयस का न अत है बिचार देखा

तिसके लिये क्यो शोक सिधु अवगारिये ।

सोम की ललक मे न अमिमानीया के तुच्छ

तेवरा को देख उहे सखित सराहिये ।

दीन गुनी सज्जनो भ निपट दिनीत बने

प्रेमधन नित तातें नेह की निवाहिये ।

राग रोष औरो से न हानिलाम बुझ

उसी नन्द के बिसोर की कपा की कोर चाहिये ।^५

१ वही, पृ० ३३५ ।

२ प्रभाकरावर उपाध्याय (संपादक) प्रेमधन सर्वस्व, पृ० ४३६ ।

३ वही, पृ० १२१ ।

४ वही, पृ० १३८ ।

५ प्रभाकरावर उपाध्याय (संपादक) प्रेमधन सर्वस्व, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० २०० ।

प्रेमधन जी राधा कृष्ण के अतिरिक्त सूय भी उपासना करते हैं। वे सूय भगवान् से भवमय को दूर करने के लिये प्रार्थना करते हैं—

मैं पापी पामर परम तरयो पाप के ताप ।

द्रवहु दया वारिद क्षमहु नाथ सरन अब आप ॥^१

कवि की दीनता यहा चरम उत्कृष्ट पर है। अब वह सूर्य भगवान् से कहता है कि अब उसके उद्धार की अग्र्य आशा नहीं है—

आहि आहि हे दीन बन्धु कल्या के सागर ।

आहि आहि त्रय तान हरन तिहुँ लोक उजागर ।

तासो अब हे नाथ । त्यागि औरन की आसा ।

आयो तुमरी सरन लहन मन की अभिलाषा ॥^२

इस तरह प्रेमधन की भक्ति भावना में कृष्ण और उनकी परम आराधना राधा का स्थान विशेष है। उनकी भक्तिधारा में निगुण के घबल प्रवाह का एक अलग स्थान है। कविवर प्रेमधन जी उद्धव से निगुण की गाथा भी सुनवाते हैं लेकिन कृष्ण की गोपियों के सामने उनकी एक भी नहीं चलती। गोपियाँ सुनकर प्रसन्न नहीं होती बल्कि उल्टे उड़ झट देती हैं। उद्धव अपना सा मुन्न सेहर रह जाते हैं—

बादिह बडाओ वक बादिहि छुटै ना प्रीति

चन्द की चकोर की और सुमन मलिद का ।

लागी मोहि चाह की चुटेल कुञ्ज ऐसी मयी

भमरि के जासो लाज गुरजन-बृन्द की ।

‘प्रेमधन’ प्रेम मदिरा की मत बारी होय

खाये बुधि पैली गई मैं मनावरिन्द की ।

भूल्यो उमय लोक सोन बीर जबही सौँ आनि

बसी मन मेरे गवरी मूरति गुविन्द की ॥^३

श्रीकृष्ण गोपियों के प्राणबल्लभ हैं। कुञ्जा की प्रीति का वश उन पर नहीं चल सकता। लेकिन कुंजा जाहूगरनी हैं। उसके बशीकरण मात्र के प्रवाह में कृष्ण का आ जाना भी तात्कालिक बशीकरण मायता का द्योतक है।

कहावत तो हूँ स्याम सुजान ।

प्रीति करी कुञ्जा दासी सग सब अबगुन की खान ।

तजि राधा रानो सी रमनी के उर अन्तर ध्यान ।

कह बजरज कह्यो वह डाइत यह अचरज महान ।

श्री ‘वद्रीनारायन’ जू ये कठिन सगन लागि जान ॥^४

उद्धव का जानोपदेश गोपियों की प्रेम विवहता के सामने जलकर राख हो जाता है। वे अपने प्रियतम की चर्चा सुनना चाहती हैं। उनके लिये नान की गारमा को नहीं बल्कि प्रेम की महिमा की

१ वही, पृ० २४० ।

२ वही, पृ० २४३ ।

३ प्रभावेश्वरप्रसाद उपाध्याय (मपा०) प्रेमधन सवस्व, प्रयाग, पृ० १४० ।

४ वही, पृ० १५६ ।

आवश्यकता है। उसका विभाग अत्यन्त ही धीरे-धीरे का मन्त्र निर्गुणोत्पत्ति के पक्ष में पड़ी गयी है। वो रमिर है। उसके गन्धे म मरणा है, मीरगता नहीं—

उप्री, बात बड़ी कुछ नीची।

गुण-विशेष मन्त्र मोहनी, माधव प्यारे, पीरी।

मानि मानि मानि मितानु, मागो उबने छी नी।

हम प्रेमिन् तबि प्रेम नेम हि मानत बतिया पीनी।

बरताओ रम प्रेम 'प्रेमघन' गौर सग सब पीरी ॥^१

और सगुण के सदा से प्रकाशित हुनी हुई गगुण की स्वरूप माती ही धुन-पाई है। निर्गुण की अवस्थता हुई है। सगुण की सत्यता का निर्धार बरि पूर्ण रूप से करता है।

जब रीतिराम से प्रभावित है, सतिन उहाँ तब मन्त्रिभाव का प्रकाश है। वही उसकी बलिता म पुनीत मन्त्रिभावना का प्रकाश प्रकाशित होता है। जब अपने प्रवचन काव्य 'अलोकि' सीमा' म कृष्ण के जन्म से लेकर ब्रह्म छोड़ने तक की कथा सुनिर्गुणित कृष्ण से प्रस्तुत करता है। सतिन कथा मजाल नि बही ने शृंगार की अभिव्यक्ति हो गये। बहुत ही आवश्यक की बात है कि जब भी सत्यनी ने अपनी सुल्लुभाता की वीर छोड़ दिया है। मामुत्र प्रेमका जो का हृदय मन्त्रिभाव म भरपूर था। उनका रूप भी कुछ ताश्चर्या के समान था। वह उता मन्त्र भक्त हृदय की अनुभूति न होती, तो इस प्रवचन म दैवमति और राजमति की अभिव्यक्ति अवश्य होती। क्योंकि तदुपगुण समान की धमनियों में वही भाव हिनारे मार रहा था। अपनी मन्त्रिपरव रचनाओं म प्रेमका जो रीतिराम की विचारधाराओं को एक दम भूल ही गये हैं 'प्रेमका' दम युग के कवियों के सामने एक साहसिकता की भाँति अपनी मन्त्रि सम्बन्धी रचनाओं को लेकर खड़े हैं।

प० प्रतापनारायण मिश्र

कविवर मिश्र प्रतापनारायण प्रेम प्रभागी।

भारतेन्दु-अनुगामि रंगीली नवरम-स्वामी।

हिन्दी हिंदू प्राण विविध भाषा-गुन-व्याता।

पूरी प्रतिभायान, हास्य प्रिय ग्लान-विषाता ॥^२

जीवन रेखा

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का जन्म बानपुर म आश्विन कृष्ण ६ चन्द्रवार सं० १८१३ को हुआ था।^३ इनका नामकरण इनकी चाची ने किया। ये श्रीरामानुज सम्प्रदाय की थी, क्योंकि उनके पितृकुल के सभी लोग इसी धर्म को मानते थे, इसलिए मिश्र जी का नाम भी उन्होंने अपने सम्प्रदाय के अनुसार ही रखा था।^४ ये वायव्य ब्राह्मण थे। इनके पिता जी का नाम सक्ताप्रसाद मिश्र था। मिश्र जी अपने पिता के इकलौते पुत्र थे।

१ प्रभाकेश्वरप्रसाद उपाध्याय (सपा०) प्रेमघन सर्वस्व, प्रयाग, पृ० २०७।

२ वियोगी हरि पत्रिकीर्तन, पृ० ७१।

३ डॉ० सुरेशचन्द्र शुक्ल प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य, मुद्रावली प्रकाशन, बानपुर, प्रथम संस्करण, २०२१ वि०, पृ० ३।

४ ब्राह्मण, पण्ड ५, सं० ४ (प्रतापनारायण मिश्र प्रताप चरित्र)

उनके हृदय में भक्तिसत्ता की प्रस्फुटित क्रिया। ब्रजरत्ननाम ने लिखा है कि धर्म के प्रति भी यह परम उदार थे और इन्होंने अथ धर्मों से कभी घृणा नहीं की। यह थे जगत सनातन धर्मी। 'शैव सवत्स' ये शैव ज्ञात होते हैं। आर्य समाज, ब्रह्मसमाज सभी के उत्सवा में ये बहुधा सम्मिलित होते थे। इनका सिद्धान्त 'प्रेम एव परोधर्म' था और यह सच्चे भक्त थे।^१

मित्रजी में प्राचीनता के प्रति मोह कम है। यं सतवाक्य जगत अपनी आस्था कम रखते हैं। फिर भी इनके कुछ भजना पर कबीर का प्रभाव दृष्टिाचर होता है। कवि ने निस्सारता की चर्चा करते हुए लिखा है—

साधो मनुवा अजब निबाना ।

माया मोह जनम के डगिया तिनके रूप भुलाना ॥

छल परपत्र करत जगधूनत दुख को सुख करि माना ।

फिर फिर तहाँ भी तनिक नहीं है अत समय जह जाना ॥

यहि मनुवा को पाछे चलि के सुख का कहाँ ठिकाना ।

जो परताप सुखद को बिन्दे-सोई मरम सयाना ॥^२

कवि को विश्वास है कि यहाँ कोई किसी का नहीं है, केवल अपना कम ही सच्चा साथी है। अतः वह मानव मान के लिये चेतावनी देता है—

जागो भाई जागो रात अब कोरी ।

काल चोर नहि करन बहुत है जीवन धन की कोरी ॥

औसर चूके फिर पछितैहो हाथ भीवि सिर कोरी ।

काम करो नहि काम न ऐहँ बातें कोरी कोरी ॥

जो कुछ बीतो बीत चुकी सो चिन्ता ते मुख मोरी ।

आगे जाये बने सो कीजे करि तन मन ह्व ओरी ॥

कोऊ काहु को नहि साथी मात पिता सुत मोरी ।

अपने करम आपने सगी और भावना मोरी ॥

सत्य सहायक स्वामि सुखद से सेहु प्रीति जिय कोरी ।

नाहि तु फिर परताप हरी कोऊ बात न पूछिहि तोरी ॥^३

प्रतापनारायण जी भक्ति-साधना के क्षेत्र में फैले हुए मतवानों से अपने को बराबर अलग रखे। उनका कहना था—

भूठे भगवा से मेरा पिण्ड छुड़ाओ ।

मुझको प्रभु अपना सच्चा दास बनाओ ॥^४

कवि आगे अपनी प्रवृत्ति का उल्लेख करता है—

न जानी हूँ किसी मजहब का न पावन्द मिलत का ।

किसी अपन का कोई एक हूँ बन्दा मुहब्बत का ॥^५

१ ब्रजरत्नदास भारते दु मडल पृ० ६८

२ नारायणप्रसाद अरोडा एव सत्यभक्त प्रताप लहरी, मीरम एण्ड ब्रम्, १९४६ ई०, पृ० १८ ।

३ वही, पृ० १६ ।

४ वही, पृ० ८५ ।

५ ग्राह्य, खण्ड ५, सं० ६ (उसकी मुहब्बत) ।

मित्र जी भक्ति के क्षेत्र में एक असम राह ही अपना चुके थे, जहाँ तक जीर बाद विवाद का कोई महत्व नहीं था। वहाँ वे केवल समाज की सुरसरि में अपने को सराबोर पाते थे। एक प्रेम के प्याले में उन्होंने सभी मता को मिला दिया है। उनकी समन्वयात्मक दृष्टि स्तुत्य एवं वरेण्य है—

वाद विवादन में फसि प्राणी नाहन जनम गवावे रे।

सुख चाहे ती दुविधा तजि के बाहे न हरि गुण गाने रे ॥^१

व प्रेमोपासक थे। यह सृष्टि उनके ईश्वर की सृष्टि है। इसकी विशालता देखकर वे आत्मविमोह एवं विस्मित हो जाते हैं। यत्र तत्र सबत्र उम ईश्वर का प्रेम ही दिखलाई पड़ता है। विश्व में समुद्र में अग्नि में उसी की सत्ता विद्यमान है। कवि के प्रेमदेव की धृष्टा अच्यनीय है—

चहुँ ओर मेरे नाथ की महिमा अमित लखि परे हो।

सब भाति सब समर्थ है, अकथ प्रमुखा करे हो ॥

चल देख प्यारे विपिन में जह बिटप अगति खरे हो।

जल देन को तुम में गयो ? तौहूँ रहत नित हरे हो ॥

चल देख प्यारे समुद्र में अति अगम जल जह भरे हो।

बाधन न बहूँ कुछ देखिये हर और ते नहि टरे हो ॥

चल देख प्यारे अग्नि में जह सब प्यारय जरे हो।

बिद्वान् मूरख एक को तेहि बिन न कारण सरे हो ॥^२

और उसका ब्रह्म, वह तो सभी ज्ञान का भण्डार है, दया का सागर है। वह सदैव अहंकार का मिटाता है—

सभी ज्ञान का जो कि आगार है दया का बड़ा जोकि भंडार है।

है मिटाता सत्ता जो अहंकार है, उसे ही हमारा नमस्कार है ॥^३

उनका प्रेम तो चरममोक्ष पर तक पहुँचता है जब कि कवि सामाजिक प्राणियों से उन अरूप भगवान् को स्वरूप रूप में नष्ट नयन से देखने का कहता है। कवि भ्रम में नहीं डालता बल्कि स्पष्ट शब्दों में कह देता है कि सत्ता के सुंदर रूप को देख ला—

जो काउ ब्रह्म अरूप का, देखो चहै स्वरूप।

नेह नयन सौं लेहि लखि जग के सुन्दर रूप ॥^४

उसका ब्रह्म न तो सगुण है और न निर्गुण। वे प्रभु के सच्चे उपासक हैं। उनका प्रभु सत्ता है। उसकी आभा सत्ता में व्याप्त है। वह अरूप होते हुए भी हम प्रभार स्वरूप है। अतः उन्होंने सगुण और निर्गुण के दोषों को सृष्टि को प्रभु का रूप मानकर खत्म कर दिया है—

अगुण सगुण व्यापक पृथक् अगणित रूप अरूप।

अमित मर्तिम अचरज्जमय जय जय त्रिभुवन भूप ॥^५

यदि भक्त भगवान् का दर्शन चाहता है तो वह देख सकता है। कवि के अनुसार सारी सृष्टि ही भग

१ नारायणप्रसाद अरोड़ा (भपाव) प्रताप सहरो, वानपुर १९४६, पृ० १८३।

२ वही प्रेमपुष्पावली, पृ० १५१।

३ नारायणप्रसाद अरोड़ा (भपा०) प्रताप सहरो, वानपुर १९४६, पृ० २५६।

४ प्रेमस्तोत्र, ब्राह्मण, खण्ड ४, सख्या ४।

५ नमो प्रेम भगवान्, वही, खंड ५, सं० १।

वान् स्वरूप है। ज्योही प्रेम का सिधु उमड़ पड़ता है, ठीक उसी समय भगवान का दर्शन हो जाता है—

प्रेम सिधु उमगत उर जबही, ईश्वर मिलत ततच्छन तबही ॥

औरहु सुनि राखहु बुध भूषा, यदपि जगत पति अतनु अरूपा ॥

पै भक्तन की रवि अनुसारा, दरस देह नित प्राण पियारा ॥^१

अतः कवि प्रेम को ही सर्वोपरि मानता है। उनकी दिव्य दृष्टि के सामने मांसादिक माया मोह सभी सुच्छ है। यदि सच्चा है तो केवल ईश्वर। यह ससार ही वखेडा है। कवि के शब्दा में—

दीदारी दुनियादारी यह नाहक का उलभेडा है।

सिया इश्क के, यहा जो कुछ है निरा वखेडा है ॥^२

अतः कवि अपने प्रेमदेव का ध्यान करता है। उसी में वह तमय दोखता है। वह उसी का हो चुना है। उसकी तमयता इतनी बड़ी जाती है कि सिवा उसके ध्यान के उसे कुछ अच्छा नहीं लगता है—

सिवा तेरो सूरत के देखना और तो कुछ भाता नहीं।

मेरे प्यारे बिन मुझको तुझ बिना आता ही नहीं ॥

अतः वह उसकी आराधना में मस्त दोख पड़ता है—

प्रभु मन्दिर की नीरवता में

कर विलीन अपन मन प्राण

घर्म घुरीण हिंदुआ को है

घरते देखा मैंने ध्यान।

देखा है करते-करते मस्जिद में

मुल्ला को भी दीप पुकार

पड़ी कान में गिरिजाधर की

मधुर प्रायना की, स्वर धार ॥^३

यहाँ कवि की समन्वयात्मक दृष्टि बड़ी उज्ज्वल है। उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी है। नग बान् तब पढ़ूँचे का उसका रास्ता अनाथा है। वह मन्दिर मस्जिद और गिरिजाधर को एक में मिला देता चाहता है।

मिथ्र जी की भक्ति में उनका प्रेम-पथ बड़ा ही निराला है। वस्तुतः प्रेम-पथ निराला होता है। इस पथ पर कोई बिरला ही चलता है। मिथ्र जी इसके कष्टों को परवाह नहीं करते। उन्होंने अपने को उसका गुलाम स्वीकार कर लिया है, फिर तो कष्टों की क्या बात—

तुम्हारे जब हो चुके तो फिर अपने में रहा कुछ काम नहीं।

भरजी से तुम्हारी कमी सर फेरें हम वह गुलाम नहीं ॥

सहमे सब दुख आसो से उज्य का सेंगे नाम नहीं।

हाँ अब है इतनी कि बिन देखे तिल को आराम नहीं ॥^४

यहां 'साहब' कबीर का ही साहब दोख पड़ता है। निर्गुण परम्परा की छाप स्पष्ट है।

१ श्री प्रेमपुराण, वही, खंड ३, सं० ६१०।

२ नारायणप्रसाद अरोड़ा (संपादक) प्रताप लहरी, मन की लहर, पृ० ७३।

३ रामनरेश त्रिपाठी (संपादक) कविता कौमुदी, २ पृ० ४७७-७८।

४ नारायणप्रसाद अरोड़ा (संपादक) प्रताप लहरी, मन की लहर पृ० ८६।

कवि एक और पद मे भी अपने को भूल कर गुलाम मान रहा है—

कहने सुनने को था मुझ पास एक दिले नाबाम अपना ।
मुदत गुजरी, बनाया तूने उसे गुलाम अपना ॥
अब तो तेरे सिवा न कोई खुदा न कोई राम अपना ।
जो कुछ है तो तू ही है और से क्या है वाम अपना ॥
तेरी याद याद में भूल गया अब आज जो अंजाम अपना ।
बिसे खबर है, कहाँ है ? कौन है ? क्या है नाम अपना ॥^१

अतः वह अपने को भगवान् की भर्जी पर छोड़ देता है । इस तरह की अनन्यता देख पाठक विस्मय विमुग्ध हो जाता है । निणय नहीं हो पाता कि कवि भक्त-काल परम्परा का निर्वाह करता है कि सधिकाल मे खड़ा हो आधुनिक काल की जगवानी करता है । इस प्रकार वह यथा अपयश सभी को विस्मृत कर प्रेम की हर दशाओ के लिये तत्पर है—

इस मुरसाद के पैरा इम आका के खिदमतगार हैं हम ।
हर सूरत से, हजरते इश्क के तावेगार हैं हम ॥
इश्क अगर है खुदा तो उसके बदए गुनहगार हैं हम ।
इश्क जो बुत है तो उसके लिये अहले जुनार हैं हम ॥
इश्क अगर ईमान है तो पाबन्दे शरण दीदार हैं हम ।
इश्क कुछ है, तो कहते क्या डरिए कुष्कार हैं हम ॥^२

विशेष कर मिथ जी की भक्ति धारा दास्य और दाम्पत्य के क्यारो से होकर बही है ।

दास्य भाव में उनका दैय बड़ा प्रबल है । उसका विश्वास है कि भगवान् ने गनिवा, गज और गीध जैसे पापियों को तारा है । अब वे लोग नहीं हैं । यहाँ तो केवल अब पापी प्रताप ही बच गया है । अतः भगवान् से वह प्रार्थना करता है—

आये रहे गनिवा गज गीध सुती जब कोऊ दिखात नहीं हैं ।
पाप धरायन ताप भरे 'प्रताप' समान न आन कही हैं ॥
है सुखदायक प्रेमनिधे जग यो तो भले और बुरे सबही हैं ।
दीनदयाल और दीन प्रभो, दुम से तुमही हमसे हम ही हैं ॥^३

इसीलिये तो कवि अपने को प्रेमदास कहा करता था । प्रेम की प्रशस्ति में उसकी कवित्व प्रभा निखर उठी है—

प्रेम बिना नहीं देखेहु भावत पूत कपूत जो आतम जात है ।
प्रम भए निज सबसु वारिए तापर जासो न नेकहुँ नात है ॥
ब्रह्म सदा सबही ते परे, सोउ प्रेम के नाते सखा पितु मात है ।
'नेह सगा तो सगा' वस सत्य है सत्य है, प्रेमहि ते सब बात है ॥^४

अतः वह ईश्वर की शरण तज कर अयब नहीं जाना चाहता । उसका लघुत्व उसकी दैयता को प्रकट कर देता है—

१, बहो, पृ० ८० ।

२ नारायणप्रसाद अरोड़ा (स पा०) प्रताप सहरो मन की सहूर, पृ० ६५ ।

३ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु मण्डल, प्रतापनारायण मिथ, पृ० १०७ ।

४ नारायणप्रसाद अरोड़ा (संपादक) प्रताप सहरी, पृ० २०३ ।

मेरो दूसरो नहिं द्याय ।

दीन बधु हृपायतन ! म सवहिं भांति तुम्हार ॥

दाम्पत्य भाव की उपासना मे मिथ्य जी अपने को स्त्री तथा भगवान् को पुरुष मानकर सत परम्परा की कोटि मे जा बैठते हैं । कवि की यह प्रेमोपासना अवलोकनीय है—

करो प्रिय अब तो जीवन दान ।

तुम बिन बुरी बियोगिन की गति निरस पैठत प्राण ॥

कवहुं नैसेहु सुधिहु मई तो नाहिन दूजो ध्यान ।

द्वारे की दिशि देखि रहत घरि, पथ आहट पर जान ॥

मुख हैं बढत अघ खुले अखरन हा गुण रूप निधान ।

बिन तब दस सुधा परतापहि रहतो उपाय न आन ॥^१

कवि की अभिव्यक्ति मे भक्तिकालीन कनिया की भांति उपनैशात्मकता भी पाई जाती है । वह मनुष्य को इसपर उपर भटकाने से मना करता है । यहां वह कबीर की पक्तियां से मुकाबला करता है—

मनुआ बाहे इत उत्त धावै ।

भतवालेन की बाल सीसि के नाहक बुद्धि गवावै ॥

मसजिद मन्दिर औ गिरजे ये दौरत पाव धकावै ।

घट के भीतर साहब बैठा तेहिजे लो न लपावै ॥

अपने हाथन अपनी महिमा लिखि लिखि दुनिया गावै ।

बिना पडे एक प्रेम की पोषी कवहु मरम न आवै ॥^२

उसे तो केवल अपने प्रभु पर विश्वास है । उसी के आसरे वह बैठा है । वह जानता है कि उसके सिवा दीनो का हितकारी और कोई नहीं है—

शरणागत पाल कृपाल प्रभो ! हमको इव आश तुम्हारी है ।

तुम्हारे सम दूसर और कोऊ नहिं दीनन को हितकारी हैं ॥

परवाहि तिन्हें नहिं स्वगहु की जिनको तब कीरति प्यारी है ।

धनि है धनि है सुखदायक जो तब प्रेम-सुधा अधिकारी है ॥

सब भांति समर्थ सहायक हो तब आश्रित बुद्धि हमारी है ।

प्रतापनारायण तो तुम्हारे पद पकज पे बलिहारी है ॥^३

वह भगवान् जिनके कोई नहीं है, उनका वह कर्णधार है । उसकी महिमा अपार और अपरम्पार है । उसे कोई बिरला ही समझ सकता है—

पित मातु सहायक स्वामि सखा तुपही इक बाप हमारे हो ।

जिाके कहु और अपार नहीं तिनके तुम ही रखवारे हो ॥

भूले हम हो तुम धुम को तुम ता हमारी सुधि नाहि विसारे हो ।

उपकारन को कृप्य अत नही छिन ही छिन जो विस्तारे हो ॥

महाराज महामहिमा तुम्हारी समुझे बिरले बुधिबारे हो ।

शुम शांति निवेत्तन प्रेमनिचे मन भन्दिर के उजियारे हो ॥

१ प्रेमप्रमाण, ब्राह्मण खण्ड ३, स० ११ ।

२ नारायण प्रसाद अरोडा (संपादक) प्रताप सही, प्रेमपुष्पावली, पृ० १४५ ।

३ रामनरेश त्रिपाठी (संपादक) कविता कौमुदी, भाग २, १६७७, पृ० ६९ ।

यहि जीवन के तुम जीवन हो इन प्रानन के तुम प्यारे हो ।

तुम सो प्रभु पाप प्रताप हरी विहि के अब और सहारे हो ॥^१

यहा कवि अपनी बात कहते कहते लोकजीवन की बात कहने लगा है । इस तरह उसकी भक्ति-भावना में स्वात सुखाय की भावना नहीं बल्कि परान्त सुखाय की भावना प्राप्य है ।

और जब वह अपनी बात कहने लगता है तब वह सूर और तुलसी की भाँति ही भगवान् से कहता है कि हे प्रभु तुम्हें छोड़कर किसकी शरण में जाऊँ—

प्रभु तजि शरण बाको जाउ ।

आश करिये योग जन के एक ही तो ठाउ ॥

तिनहु की सुधि लेत जो जानत न दाहिन बाउ ॥

बोन ऐसो और जाको प्रणत पालक नाउ ॥

बोन मुख लूटत जो जग के फिरत पूजत पाउ ॥

बोन दुख मोको जो तेरे आसरे ऐडाउ ॥^२

मिश्र जी प्रेमी जीव थे । उनकी प्रेमोपासना में राधा का वियोग और संयोग का वर्णन न किया जाय तो लगता है कि भक्ति परम्परा का पूर्ण रूपेण निर्वाह नहा हो पाया है । अतः उनकी नाधुर्य भक्ति की ओर भी दृष्टपात कर लेना समोचीन प्रतीत होता है ।

कवि ने उद्धव-गोपी प्रसंग वर्णन करते ही कुशल कलाकार की भाँति प्रस्तुत किया है । राधिका के सामने उद्धव कृष्ण का सन्देश लेकर खड़े हैं । विरह विन्मय राधा का मन-मयूर संयोगवालीन सुखद स्मृतिपा से मुग्धित हो जाता है—

सीचि सीचि चदन मुगधन सी अग ऊधौ ,

फूलन सो सावरे छबीले छवि सटके ।

कुज कुज बेलिन में नवल-नवेलिन में ,

सैल प्रताप डोल ओट पीत पटके ॥

तै गात मेरे अब राखन चढाये को

सावरो पढाई जो पाती जग जटके ।

ऊधौ उपाय अब दूसरो न आनि रह्यो ,

तजि है परान अब काहू कान्हू रटिये ॥^३

इस तरह कवि गोपिया की भावना का वर्णन करने में अपनी काव्य प्रतिभा का पूर्ण परिचय देता है ।

अस्तु उद्धव जब मथुरा जाने लगते हैं तब गोपिया की दीनता प्रबल हो जाती है । उनका निवेदन बड़ा ही मार्मिक है—

आखिन ते आसू के प्रवाह नित व्यापे रहें ,

कोर भये शोभा प्रताप कुच पटके ।

१ रामनरेश त्रिपाठी (संपादक) कविता कौमुदी, भाग २, हिन्दी रत्नमाला कार्यालय, प्रयाग, पृष्ठ संस्करण, १९७७, पृ० ७० ।

२ नारायणप्रसाद अरोड़ा (संपादक) प्रतापलहरी, प्रेमपुष्पावली, पृ० १४५ ।

३ नारायणप्रसाद अरोड़ा (संपादक) प्रताप लहरी पृ० १८५ ।

आहू ने दाह मे दहत निशिवासर देह ,
कुशल कलेवर म खाल रह्यो सटके ॥
अघो जो कृपा करि कहियो सदेशो ऐ तो ,
गहि के चरण सरोज वा नट के ।
वज की नेवली बिरहाकुल वियोग घारी ,
तजि हैं परान अब कान्ह कान्ह रटिये ॥^१

इन प्रकार मिथ जी भक्तिभावना मे किसी प्रकार का मिथण नहीं है । उनके हृदय म एक प्रेम की टीस है जो सब्बे भक्त हृदय की विभूति है । उह भक्त हृदय प्राप्त था और उनकी अनुभूतियो मे भक्ति की भागीरथी तरगायित थी । डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल न लिप्ता है कि इनमे एक और कबीर की सी प्रेमाकुलता है तो दूसरी ओर तुलसी और सूर की-सी अनयता तमयता और समुणोपासना के प्रति निष्ठा है ।^२ मिथजी की भक्ति म भक्तिकालीन परम्परा का पूण निर्वाह हुआ है । कबीर, सूर, तुलसी आदि इनके प्रेरक रहे हैं । भक्ति के उद्गारो मे कवि की अनयता, तमयता और देयता दर्शनीय है । सचमुच म उनके हृदय की कोमलता ही भक्ति के रूप मे फूट पड़ी है । अत उहें निश्चल भक्त कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी ।

ठाकुर जगमोहन सिंह

कवि जगमोहन सिंह सत्ता थी भारते दु का ।
मधुकर लोनुप लीन काव्य-पिपूष बिन्दु को ॥
रितु सहार सु मेघदूत' रचना चित करप ।
स्यामा स्वप्न प्रबध अलौकिक आनंद बरपै ॥^३

जीवन रेखा

ठाकुर साहब का जन्म बिजयराघवगढ़ दुग म स० १६१४ वि० को हुआ । उस दिन श्रावण शुक्ल चतुर्दशी थी । आप अपने पिता सरयूप्रसाद सिंह की एक मात्र सतान थे । इनके पूज्य राठौर आमेराधिपति के वंशज थे । यह वंश लहुरे भाई के नाम स प्रसिद्ध था । पत्रस्वरूप जागीरें ही प्राप्त करने का अधिकारी हो सका ।^४ ठाकुर साहब के पिता को सन १८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के समय कालेपानी की सजा मिली थी । लेकिन आत्महत्या के लिये मृत्यु ही को इन्होंने वरण किया और स्वयं आत्महत्या कर ली ।

ठाकुर साहब अल्पवय म ही पितृ सुलभ मधुर प्यार से भक्तित्त हो गये । अत नौ वय की अवस्था मे सरदार की ओर से आपकी शिक्षा की व्यवस्था हुई । आँख महाप्रभुआ की कृपा से आप, वाद स इस्टिच्यूट, क्वीस कालेज बनारस भजे गये । यही आपन हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया । आप बड़े ही अध्यवसायी व्यक्ति थे ।

सन १८५७ ई० की प्रज्वलित अग्नि म ही आपकी मातृभूमि मे इतिहास का नया पृष्ठ खुल गया

१ वही, पृ० १८५ ।

२ डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल प्रतापनारायण मिथ जीवन और साहित्य, पृ० २२५ ।

३ वियोगी हरि कवि-जीवन, १९२८, पृ० ६६

४ डा० रामचन्द्र मिथ श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूव स्वच्छन्दावादी काव्य, पृ० ११० ।

राजधानी पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया था। अंग्रेजों द्वारा ही आपकी शिक्षा हुई थी। अतः अंग्रेजों ने अध्ययन के बाद तुरंत ही आपको तहसीलदार के पद पर नियुक्त कर लिया। ठाकुर रायबहादुर हीरालाल, बी० ए० के बतव्य से इस तथ्य की पुष्टि होती है। उन्होंने लिखा है कि 'विद्याध्ययन पूरा करने पर सरकार ने आपको तहसीलदार के पद पर नियुक्त किया, जिससे आपको मध्यप्रदेश के अनेक भागों में भ्रमण करने और जन-श्री का प्राकृत सौंदर्य देखने का अवसर मिला। आप सरकारी नौकरी में आगे से अतः तब तहसीलदार ही बने रहे, क्योंकि आप बड़े स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्ति थे। हिन्दी कमिशनरों अथवा कमिशनरों की भी कुछ परवाह नहीं करते थे।'^२

ठाकुर साहब ने बनारस में रहकर केवल उर्दू, अंग्रेजी, हिन्दी जादि भाषाओं की शिक्षा ही नहीं प्राप्त की, बल्कि कवि शिक्षा भी उन्हें यहीं प्राप्त हुई। बजरत्नदास ने लिखा है कि इन्हें छात्रावस्था ही में कविता करने तथा गद्य लिखने का शौक हो गया और उसी समय कई छोटे छोटे संस्कृत काव्यों के पद्यमय अनुवाद किये। इनमें से कई उसी समय प्रकाशित भी हो गये थे।^३

ठाकुर साहब बड़े ही प्रेमी जीव थे। काशी में रहने समय भारतेन्दु जी से आपने परिचय प्राप्त कर लिया। आप दोनों में अत्यन्त स्नेह हो गया। 'दोनों की प्रकृति प्रायः एक सी थी और प्रायः मिलते रहने तथा साहित्य चर्चा में ठाकुर साहब भी भातृभाषा की सेवा में दत्तचित्त हो गये।'^४ अतः भारतेन्दु जी का ठाकुर साहब के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रभाव स्पष्टरूपेण पड़ा है।

साहित्य सेवा की तरफ वाराणसी और विशेषकर भारतेन्दु के सहवास ने इन्हें प्रेरित किया। फलस्वरूप सरकारी नौकरी से ज्यादा कुछ अवकाश मिलता, ये साहित्य सेवा की तरफ जुट जाते। प्रलय नामक कविता तथा 'आकार चन्द्रिका' सण्टकाय इसी प्रयास के प्रसून हैं।

आप बहुत ही स्वतंत्र व्यक्ति थे। फलस्वरूप अपनी स्वच्छदता के कारण ये नौकरी में विशेष उन्नति नहीं कर सके। जीवन के अन्त में आप प्रमेह रोग से पीड़ित हो गये। अतः नौकरों से मुक्ति-साम प्राप्त कर ४ मार्च १८९६ ई० को दिवंगत हुए।

भक्ति भावना

ठाकुर साहब स्वच्छन्द प्रकृति के एक भक्त जीव थे। उनका जीवन बड़ा ही विलासपूर्ण था। एक तो वे विलास एवं विनोदप्रिय घराने के थे ही, दूसरे जीवन में प्रवेश करते ही उन्हें सरकारी नौकरी मिली। अतः श्यामा नामक एक सोनारिन से इनका अगाध स्नेह हो गया। इसी श्यामा के स्नेह से श्यामास्वप्न नामक उपन्यास का प्रणयन हुआ।

श्यामा के मधुर प्रेम से कवि का जीवन श्याममय हो गया। उनके अन्तःस्थल में भक्ति की जो पावन धारा निःसृत हुई वह श्यामा के मधुर सहवास से ही। श्यामा की सलोनी मूर्ति ने मानो ठाकुर साहब के मन मयूर को बाँध कर विवश कर दिया। अतः ठाकुर साहब ने अपने चित्र सग्रह में अग्रतम सुन्दरी श्यामा का चित्र सजोकर रखा था। फलस्वरूप कवि की कविता का समस्त वस्तुविधान श्यामा के इन्हीं गिरे चक्कर काटता है।

ठाकुर साहब को श्यामा के साहचर्य से प्रेमतत्त्व की सच्ची अनुभूति हो चुकी थी। इसीसे उनके काव्य में प्रेम-गरव शृंगार प्रभूत मात्रा में विद्यमान है, वस्तुतः भौतिक है। कवि स्वयं अपनी

१ राय बहादुर हीरालाल, बी० ए० कविवर ठाकुर जगमोहन सिंह, द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० १४६।

२ बजरत्नदास भारतेन्दु मण्डल, कमलमणि ग्रन्थालय, काशी, प्रथम संस्करण, २००६, पृ० ८८।

३ वहीं, पृ० ८८।

श्यामा का श्यामसुन्दर है । अतः वह उसके नयन शर से बचता नहीं, घायल होता है । फिर तो लोक लाज का बाध टूट जाता है और कवि प्रेमलक्षणा भक्ति की उद्बोध करता है—

लोक लाज की गाठरी पहिले देहु डुबाय ।
प्रेम सरोवर पथ मे पावै राखो पाय ॥
प्रेम सरोवर को यहै तीरथ गैल प्रमान ।
लोक लाज का बल को देहु निलुजुलि दान ॥^१

कवि को एक मात्र प्रेम का ही अवलम्बन है—

एक प्रेम अवम्ब तुमहि मूरति जु प्रेम कर ।
गावत श्रुति व्यासादि भक्त प्रन रोपि रोपि घर ॥^२

प्रेम सयोग और वियोग दाना की मधुर सोलाओ का केन्द्र स्थल है । ठाकुर जी के काव्य साहित्य में प्रेम की प्रमुखता है । उन्होंने श्यामा को आधार मानकर सयोग और वियोग की भावनाओं को अभिव्यक्त किया है । यही कारण है कि डा० रामचन्द्र मिश्र, ठाकुर साहब के काव्य में भक्ति भावना मान लेना एक साहित्यिक त्रुटि मानते हैं^३ । वस्तुतः ऐसी बात नहीं है । श्यामा है तो उनकी प्रेमिका श्यामा का साहचर्य सौतेले सुगन्ध का काम करता है । कवि की अनुभूतियाँ के मूल में वस्तुतः वासना की गंध होती तो वह श्यामा और श्याम की वदना भव भय तरन की कामना के निमित्त नहीं करता । कहाँ श्याम के पापिय शरीर से प्रादुर्भूत प्रेम कहाँ श्यामा श्याम के वदन से चारा फल के मूल की प्राप्ति । बड़ी ही अमहोनी बात लगती है । अतः निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कवि हरिवासी सम्प्रदाय के श्यामा श्याम का उपासक है । भावनाओं में माधुर्य की कल्पना या तद्गुणीय कविता की प्रमुख धारा है । अतः कवि का संव्यास उससे वचना असत्य तो नहीं, संविन कठिन अवश्य है ।

बड़ी श्यामा श्याम चारहु बल को मूल ।
करहु मार उर धाम हरहु पीर अन पाइनी ॥
विनय 'करी कर जोर सुनु जगमोहन लाडली ।
करहु दया की कोर तुअ प्रभाव भव भय तरत ॥^४

कवि के हृदय में भक्ति का बीज श्यामा के द्वारा पड़ गया है । उसे अनुकूल हवा, पानी और मिट्टी की आवश्यकता है । जब कभी अनुकूल वातावरण का सृजन होता है, तब कवि गायी या सत्तोभास से उपासना करने में चूकता नहीं । उसका भक्त हृदय जब राधा के विरहातुर हृदय की दुःशा को नहीं बर्दाश्त करता तो लौकिक मर्यादा का अतिक्रमण कर जाता है और तब कृष्ण वृत्तमानुभूतों के पाव पलोटे दृष्टिगोचर होते हैं—

मान समय वृत्तमानु सुता के चरन पलोटे ।
वस वियोग सहि विरह आचपरि सोस खरोटे ॥^५

१ डा० श्री कृष्ण लाल (संपादक) श्यामा-स्वप्न नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ६० ।

२ वही, पृ० १५८ ।

३ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिंदी का स्वच्छन्दतावादी काव्य पृ० ११८ ।

४ डा० जगमोहन सिंह श्यामा स्वप्न, संपादक डा० श्री कृष्णलाल, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० १६४ ।

५ वही, पृ० १५८ ।

ठाकुर साहब भगवान् के थे। उनके भगवान् पर भरोसा था। यदि उनका भगवान् भक्त की कृपा पुकार सुनकर द्रवीभूत नहीं हो जाता तो उससे दयानाथ आदि सभी नाम भूठे हैं—

कौन सुजस तुम नाथ गाइहो सो चिन भाखो ।
मेरी ओर न करी दया की को जु साखो ॥
तुमने अपने नाव सरिस गुन कौन दिखाये ।
कौन भरोसे आरत दुख दारत कहवाए ॥
सो न जाजु कहि देहु घनश्याम दुख दूरी करन ।
करि करिया अब हेरिए दीनभक्त जोरे करन ॥
तुम सबन कहाय जो न मम परिहि जोई ।
तो भूठे सब नाम तिहारे जगतल होई ॥^१

अतः कवि दुख सहते सहते थककर प्रभु से उसकी कृपा में विश्रम्भ नहीं चाहता है। वह अपने प्रभु को सुरत ही बुला लेना चाहता है—

जो तुम साचे दुख हरन प्रमिन अवलम्बन ।
बृदाविपिन मुचद चाह घरचित तन धदन ॥
तो न बर सनहु अहो दीनानाथ अमरन सरन ।
बरहु सुरत अब सुरत प्रभु जै जगमोहन दुख दरन ॥

उक्त पद से कवि सुरत आनाम्ना गोपी भाव की माधुर्य भक्ति की तरफ स्पष्ट संकेत करती है।

किसी काय का शुमारम करते उसके सुख अस्त की कामना भारतीय मनीषियों प्रबल इच्छा है। अतः वे भगवान् से नत सिर करना करते हैं। ठाकुर साहब भी इस की निर्वाह करने में सिद्धहस्त हैं। यह देखकर कि कवि की आधुनिकता प्राचीनता से परम्परा का कवि तुलसी की भाँति ही सभी देवोत्पत्ताओं की उपासना करता है। देव-^१ उपासने लगती है। करते हुए वह लिखता है—

सीताराम मनाय नाथ माध ^१
कीजे कवित सहाय ^२ ।वनवाँ बरुरि ।
कविता देनि ^३ तारहु मुहि निज दास गुनि ॥
जननी ^४ चार देवि, भारती भव हारनि ।
तनिक निहारि विश्वविमाहिनि त्रिषु बरनि ॥
बल्ल गिरा गवानि ना चारिउ पल दायिनी ।
तारनि तरनि निदानि आनि शक्ति अनपायिनी ॥
जाकी शक्ति अपार, ब्रह्मादि हारे कहत ।
वेद न पापा पार यह जड जन कैसे कहै ॥
दीजिय शक्ति अनत जिमि न सखनी मम रुक ।
आखर सलित लसत लिखत लिखत लेश न थकै ॥^२

१ ठाकुर जगमोहन सिंह श्यामा स्वप्न, सपादक डा० श्रीकृष्ण लाल नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० १५८।

२ ठाकुर जगमोहन सिंह देवयानी, भारतजीवन प्रेम, बनारस, प्रथम संस्करण, १८८६ ई०, पृ० १५।

कवि लौकिक प्राणी है। अतः उसे पाप पक्ष से सबथा अछूता रहना नितात असम्व है। फिर भी सो कवि के रसाभ्यासो हृदय को उमरती हुई जवानी में अनिष्ट श्यामा का साहचर्य प्राप्त होता है। कवि अपने अंतिम जीवन में इस पाप प्रवृत्ति का उत्तेज कर पश्चात्ताप करता है—

जब सौं जान्यों सदा विषय कीन्हों अनुराग ।

परदारा अपहरन चाटु पटु यह रस भागा ॥^१

और तब वह अपने पाप शमन के लिये शिव जी से प्रार्थना करने लगता है—

तुम्हरे समुख बिये सकल अपराध बबूला ।

जो चाहो सो करो परो तुम चरनन भूला ॥

छमिहो जो तुम आशुतोष करि गहि अपनाई ।

सो निहचै जग होय उमापति आगु बडाई ॥^२

कवि अपनी चूक को बालक की चूक मानता है। अतः भगवान् से निदुरता त्याग कर वाम कर पक ढने के लिये प्रार्थना करता है। कवि की यह दीनता स्तुत्य एवं वरेण्य है—

श्यामा अरु धनश्याम, छमहू चूक बालक अहो ।

छाडि निदुरता वाम कर गहि मुहि अपादय ॥^३

श्रु गारसवलित भक्ति की भागीरथी सम्पूर्ण ठाकुर काय-जगत् में प्रबहमान है। कवि ने प्रेम की रसवती धारा से अपन ब्रह्म की उपासना में कोई कसर नहीं उठा रखी है। लेकिन इसके अतिरिक्त भी उसने वात्सल्य भाव जगत् की अवहेलना नहीं की है। कवि का शुरु अपनी पुत्री के कदम विपाद से व्यथित होकर उसके विपात्पूर्ण वातावरण का मास करता है—

करन विपाद न रोवहुँ प्यारी

तोसो करै कौन दुख भारी

मुएहु कौन पुनि जीवन पावै

यह जिय मोचि न सोचहु आवै ॥^४

और इसके बाद ससार की नि सारता का सच्चा उपदेश कवि की भक्ति भावना का परिचायक है—

जाके ब्रह्म इद्र अरु देवा

असु ब्राह्मण अश्विनि करि सवा

सुर रिपु जगत् चराचर जेतै

नावै भाष मोहि सुर तेते ॥

जिय फेरि निषण हू तेहि होई

बसो करो पुनि सुन ओरी

अब नहीं कब तुहि मिले बहोरी ॥^५

१ ठा० जगमोहन सिंह आफार चंद्रिका, हरिप्रकाश प्रस, बनारस, प्रथम संस्करण १८६४ ई०, पृ० ८ ।

२ ठा० जगमोहन सिंह देवयानी, बनारस, १८८६ ई०, पृ० ६७ ।

३ वही, पृ० २६ ।

४ ठाकुर जगमोहन सिंह देवयानी, बनारस, १८८६ ई०, पृ० २६ ।

५ वही, पृ० २६ ।

यहाँ एक तरफ वात्सल्य की चारिधारा और दूसरी तरफ पिता का पुत्री के लिये उपदेश, तीसरी तरफ ससार की नि सारता का मधुर समन्वय देखते ही बनता है। इस तरह त्रिगुणी का (निगुण, सगुण एवं प्रेममार्गी) सगम बन जाता है। कवि एक ही सार से तीन तरफ प्रहार करता है। निगाना उसका अचूक है।

कवि श्यामा को राधा का प्रतीक मानकर अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है। सचमुच में उसके पास एक मक्त हृदय प्राप्त था। उसकी ममस्त रचनाओं में भक्ति की गंगा किलोले करती है। उनकी कविता में भक्तिभावोन्नत उपदेशात्मकता है जो प्रेम के प्रति सच्ची व्याकुलता भी दोल पड़ती है। कवि अपना प्रेम प्रशंसित करने के लिये बराबर छन्दोपादाता रहता है क्योंकि वह जानता कि तीना लोक में आनन्द भरपूर है, केवल कवि ही इस आनन्द से वंचित है—

जो आनन्द घन तीन लोक आनन्द भरपूर।

तो मैं दीन अवेस एक आनन्द अपूर ॥^१

इसलिये वह अपनी दीनता प्रभु के सामने प्रकट कर देता है—

बृष्ण जम आठ करी बिनती सुन्दर श्याम।

हरहु पीर तन हीर की मन की जानत राम ॥^२

कवि की श्यामा के बारे में साहित्यिक जगत् में अनेक प्रकार की मतभेदों का विवादन्तियाँ प्रचलित हैं। लेकिन विचारणीय प्रश्न यह है कि कवि जहाँ लौकिक उन्नत प्रेम की चर्चा करता है, वहीं नारी निम्बा का स्वर भी तरलाकित होता है। कवि सत्ता की भाति ही नारी को विष घट की उपमा से विभूषित करता है—

या जग नारि नैन के शर सो को बचि रह्यो बताओ।

आखिन देखि पियत घट विष यह सो मन्त्रि बौराओ ॥

यासो बार बार कर जोरे बहुहु देखि सब रग।

विष पूतरि सम बाहि तरारविये बाको परसग। ॥^३

मक्त प्रेमी जीव होता है। वह किसी भी हालत में उदात्त प्रेम की छी व्याख्या करेगा। उसकी सन्निकट लौकिक नारी का रूप भी राधा रूप में यजित हो सकता है। उसकी भावनाओं में वासना की बयार का आ जाना नितान्त असम्भव है। कवि अपनी श्यामा के सम्बन्ध के बारे में श्यामलता के समपण में स्पष्ट घोषणा करता है तो भी पता नहीं क्या साम उसे स्वीकार नहीं करते—

मैंने तुम्हारे अनेक नाम घरे हैं क्योंकि तुम भरे इष्ट हो न और तुम्हारे तो अनेक नाम शास्त्र, वे, पुराण, काव्य स्वयं गा रहे हैं। तो फिर भरे अकेले नाम घरने से क्या होता है। तुम्हारे सबके अच्छे नाम श्यामा, दुर्गा, पावती, लक्ष्मी, वृष्णवी, त्रिपुर-सुन्दरी, मनमोहनी त्रिभुवनमोहनी, त्रिलोक्य विजयिनी, सुमद्रा, ब्रह्माणी, अनादिनी, देवी, जग मोहनी इत्यादि—इनमें से मैं तुम्हें कोई एक नाम से पुकार सकता हूँ पर उपासना भेद से तथा इस काव्य को देख मैं इस समय केवल श्यामा ही कहूँगा।^४

इसी आध्यात्मिक आस्था और भक्ति का उनके व्यक्तित्व जीवन में इस प्रकार मेल हो गया है कि साहित्यिक जगत् उनके बारे में चूटि करता जायेगा। समस्त काव्य साहित्य के प्रचार में आने

१ ठा० जगमोहन सिंह श्यामा-स्वप्न, सपा० डा० श्रीकृष्णनाल, बनारस, पृ० १६०।

२ वही, पृ० १६०।

३ वही,

४ ठा० जगमोहन सिंह श्यामा-स्वप्न (भूमिका) पृष्ठ १

पर ही शोयन् वह निणय हो सके और नहीं भ्रम में भक्ति का भावधारा पाठनों के धोत्र की विषय बनी रहेगी ।

मुझे तो लगता है कि कवि इसी श्यामा को राधा मानकर अपने को समर्पित कर चुका है । वह कितनी तमयता से राधा कृष्ण के युगल विहार का चित्रण करता है वह अनुपम है और मौलिक है ।

कवि ने राधा और कृष्ण के मधुर प्रभाव को अक्षित करने में भगाल ही कर दिखाया है । उसका 'हैंस दूत' भक्ति-काल के सत जगत् का अनुपम उपहार है । कवि राधा कृष्ण के युगल विहार का चित्रण करने में कभी राधा का प्रभाव दर्शाता है ता कभी राधा को कृष्ण द्वारा मुग्व पाते हैं, का बर्णन करता है । इस तरह कृष्ण अपने अमिट प्रभाव को छोड़ने के लिये समस्त मधुबन को ही अपनी मधु रिमा से स्नात कर देते हैं । राधा का विरह चरम सीमा पर पहुँच जाता है । वह चिता-सरिता में डूब जाती है । गोपियाँ यमुना पुलिन पर राधा को इस चिता में पाती हैं ।

मुपुत्तो मे जैसे खबर सब भूली बदन की

भई राधा जैसे सुधि-बुझि सबै छूट तनकी

छुटे सो धूलि पै सखिन तिहि बेरी चहुँ तहाँ

तबै कालिन्दी हू नयन जल बाढी मिलि जहाँ

हलेना झोलेना नहिन कछु बोले विरहिनी ।

खिझोना सी बैठी बिजन नमिनी पल्लव सनी ।

करे शका भी की कुशल शत घ्यावै निसि दिना ।

अदोसो है भारी सखिन अति प्यारी पिय बिना ॥

तबै खोल नैना चलत कछु कठो सुरमई ।

गई आसा स्वासा सबन अब आसा जिय भई ॥

कहाँ है री मेरी उरज अचरा धूषट कहीं ।

सुनै हर्षी सारी करत धुनि भारी मुद कहा ॥^१

इस प्रकार कवि की भावनाओं में शृङ्गार की धारा जो प्रवहमान है उसमें भक्तिलता से खिले प्रसून बड़े ही अच्छे हैं । कवि की यह शृङ्गार भावना भक्ति-सरिता में आप्लावित है । कवि राधा-कृष्ण के चरित्र का परम्परावादी उद्घाटन करने में पूण सफल हुआ है । कवि ने इस चरित्राकन में रीति कालीन परम्परा का निर्वाह करते हुए भी अपने भक्त हृदय से न्वच्छ मोतियों की माला पिरो दी है ।

श्रीधर पाठक

जीवन रेखा

श्रीधर पाठक का जन्म जाधरी ग्राम में माघ कृष्ण चतुदशी स० १९१६ को रविवार के दिन हुआ था ।^२ इनके पिता का नाम प० जीलाधर पाठक तथा माता का नाम सादली देवी था । पाठक

१ ठा० जगमोहन सिंह हंसदूत, हस्तलिखित प्रति, नागरीप्रचारिणी सभा, पुस्तकालय संग्रह, काशी ।

२ ग्राम में, स्मरण रमणीय प्रिय-नाम में,
जन्म अपना हुआ । अद्ध जन्मीस सौ
लह अतित माघ निशि अद्ध चौदस रविज-
वार सन्म भूषित प्रयत्त घाम में ।

जी ही एकमान लीलाधर पाठक के, सात सतानो में जीवित रहे, जिससे परिवार फला एवं फूला । पाठक जी के पिता सद्गुरुस्थ ६५ घमपरायण व्यक्ति थे । लेकिन इनके चाचा प० धरणीधर पाठक न्याय और धर्मशास्त्र के विद्वान् थे । अतः श्रीधर पाठक के निर्माण में घर के सम्पन्न वातावरण का योगदान बहुत है ।

पाठक जी का अक्षरारम्भ संस्कृत से हुआ । उन्होंने वर्णमाला वही कठिनाता से सीखी । बचपन में स्मरण शक्ति, बड़ी मज्जा थी । पिता जी से 'कौमुदी का संधि प्रकरण' और भागे का प्रकरण भागीरथी पुरी की २० हायता से सीखा । इस तरह कभी पिता के निकट, कभी भागीरथी पुरी जो धरणीधर के शिष्य थे और पाठशाला में प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा होती रही ।^१ इस तरह ज्योही अध्ययन के क्रमिक विकास का अवसर आया कि पारिवारिक कलह के कारण इनके अध्ययन में व्यवधान उत्पन्न हो गया । लेकिन अध्ययन की अभिरुचि थी । अतः घर पर प्राचीन साहित्य जो संग्रहीत था उस लगन एवं उत्साह से पढ़ा । डा० इयामसुंदर दास के शब्दों में 'प्रारम्भ में इन्हें सम्स्कृत पढ़ाई गई और १०-११

पूर्व आपाठ नक्षत्र का जन्म का
चाम भूधर का तदनुसार रखा गया ।
किन्तु पश्चात् कब किसी को याद नहीं
नित्य का नाम किस प्रकार श्रीधर पड़ा
नामकरणानि का स्मरण कुछ भी नहीं ।
श्रीधर पाठक स्वजीवनी,

१ अक्षरारम्भ के बाद बहुत बाल तब
कठिन क्रम से नियत पठन चलता रहा
पिता जी के निकट कभी घर पर कभी
मदरसे में तथा कभी टलता रहा ।
पिताजी ने तब कौमुदी का करा—
या स्वयं सबिनि आरम्भ सुमुहूर्त स ।
संधि का भाग श्रम सहित उनसे पढ़ा
शेष क्रमबद्ध भागीरथी पुरी से ।
ये परिश्रमजक प्रवर वह विज्ञ भ्युत्
पन्न वैयाकरण सुमति सम्पन्न सद्
व्यसन सत्संग प्रिय यद्यपि सत्सार से
विरत, निस्संग अति सतत सु प्रसन्न मन,
प्रयत आचरण, मानव समा-जागरण
बिना-नय निपुण सौजन्य के सिन्धु, सद्
रुचि-सुजन-वचु और ध्यान थे वह स्वयं
पितृचरण भ्रात के नाम जिनका रहा
देश सुप्रहीत श्रीयुक्त शास्त्री जगद्
विदित धरणी पर ।

श्रीधर पाठक स्वजीवनी

वप की अवस्था में अपनी तीव्र बुद्धि से उस भाषा में इन्होंने इतनी योग्यता प्राप्त कर ली कि संस्कृत में बोलने और लिखने लगे ।^१

पाठक जी मे वाल सुलभ मौलिक प्रतिभा थी । अध्ययन के अतिरिक्त इनमें चित्र खींचने मिट्टी की मूर्तियाँ बनाने और प्राकृतिक वस्तुओं का संग्रह करने में बहुत उत्साह दिखाई पड़ता है । प्रकृति सहचरी के साथ आपका विशेष अनुराग था । फलस्वरूप आप प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में निर्माक भ्रमा करते थे । डा० श्यामसुन्दरदास ने लिखा है कि इस अवस्था में इन्हें आप ही आप चित्र खींचने और मिट्टी की सुन्दर मूर्तियाँ बनाने तथा प्राकृतिक शोभा की विविध वस्तुओं के संग्रह करने में अनिच्छा उत्पन्न हुई और इसी व्यवसाय में वे स्तपूर रहे ।^२

पाठक जी का जन्म एक रुढ़िवादी परिवार में हुआ था । फलस्वरूप अल्पवय में ही इनकी शादी कर दी गई । लेकिन इस परम्परा का पालन केवल सौभाग्य पर पाठक तक ही चलता रहा ।

१४ वष की अवस्था में उनका वांछित अध्ययन फिर प्रारम्भ हुआ । पहले तो कुछ फारसी पढ़ी और सन् १८७५ ई० में तहसीली स्कूल में हिन्दी की प्रवेशिका परीक्षा पास की । इस परीक्षा में प्रान्त में उनका सम्बन्ध पहला रहा ।^३ बाद में इन्होंने आगरा कालेज से अंग्रेजी मिडल और कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम्प्लेस की परीक्षा पास की । इन परीक्षाओं में भी आपने प्रथम श्रेणी प्राप्त की । कुछ दिन तक आपने कानून भी पढ़ा, लेकिन सरकारी कार्य से उनको नैनीताल जाना पड़ा, जिसमें कानून की परीक्षा न दे सके ।^४ इस प्रकार इनका क्रमबद्ध अध्ययन समाप्त हो गया ।

अध्ययन के समाप्त होने ही पाठक जी ने अपनी जीविका एक अध्यापक के रूप में प्रारम्भ किया । आप बड़े ही कमठ व्यक्ति थे और बड़ी लगन से काम करते थे । फलस्वरूप सेवाकाय में आपकी निरन्तर पदोन्नति होती गई । इस तरह आपने इरिगेशन कमिशन के सुपरिटेण्डेंट के पद तक को सुशोभित किया । डा० श्यामसुन्दरदास का वस्तुस्थिति है कि पाठक जी सरकारी काम बड़े परिश्रम और सावधानी से करते हैं और उत्तम अंग्रेजी लिखने के नियम रखा है । सन् १८८८-१८८९ की प्रान्तीय इरिगेशन रिपोर्ट में आपकी प्रशंसा छपी है ।

पाठक जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे । यही कारण था कि हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी पर समान अधिकार था । वे विशाल व्यक्तित्व के प्रकृति प्रेमी कवि थे । प्रकृति ही उनके माता की प्रेरणा का स्रोत थी । उनकी कविता में एक तरफ भारतेन्दु युग की भावना है, ता दूसरी तरफ द्विवेदी युग की दिक्ता, तीसरी ओर छायावादी युग का त्रिआकसाप किलोलें करता दिखाई पड़ता है । डा० रामचन्द्र मिश्र ने लिखा है कि उनहत्तर वष के जीवन में 'भारतेन्दु-युग' में प्रभावित होकर 'द्विवेदी-युग' की परम्पराभूत प्रवृत्तियों को चुनौती तथा 'छायावादी-युग' के लिये सुदृढ़ जिन्यास करते हुए पाठक जी ने अपनी स्वच्छन्दतावादी गरिमामय व्यक्तित्व से हिन्दी काव्य को चिर आगारी किया ।^५

१ डा० श्यामसुन्दरदास हिन्दी कोविद रत्नमाला, भाग १, इण्डियन प्रेस प्रयाग, पृ० १८० ।

२ डा० श्यामसुन्दरदास हिन्दी कोविद रत्नमाला, श्रीधर पाठक, प्रयाग, पृ० १८१ ।

३ वही, पृ० १८१ ।

४ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, त्रिलो, पृ० २१४ ।

५ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, त्रिलो, पृ० २३३ ।

भक्तिभावना

पाठक जी में भक्ति का बीज परिवार से ही मिल गया था। उनका परिवार बहुत ही धर्मनिष्ठ एवं कष्टकाण्डी था। इनके पिता धर्मपालन एवं भक्ति में विशेष रचि रखते थे। उन बालक पाठक पर परिवार की इस प्रवृत्ति की स्पष्ट छाप पड़ी। डा० रामचन्द्र मिश्र ने पाठक जी के पिता के बारे में लिखा है कि 'मिश्रक उनके घर से कभी निराश न जाता था। उनके स्वभाव और बोलचाल में स्नेह और सरलता का पूर्ण पुट था। अपने इन अप्रतिम गुणों के कारण वह शत्रु को भी मित्र बना लेते थे। भगवान् कृष्ण के प्रति उनकी अटूट भक्ति थी। सम्पूर्ण विश्व को गोपालमय मानते और हुए उनके अचन और आराधना में लगे रहते थे। अपने बछे के स्थान पर उन्होंने गोपाल जी श्रीनाथ जी के चित्र सजा रखे थे। वह उनकी आर घटा सारते बैठे रहते थे और भक्तिभावना से ओत प्रोत हो नाचने भी लगते थे। भक्तिभावना के भाववेश में वह कभी-कभी कृष्ण विषयक पद्यों की रचनाएँ भी करते थे, जो 'आराध्य शोकाज्जि' में समूहित हैं।^१ इस तरह सम्पूर्ण परिवार का वातावरण भक्तिमय एवं काव्यमय बना रहता था। पाठक जी की माता भी एक विदुषी धर्म-परायणा महिला थी। अतः श्रीधर पाठक को भक्ति माँ बाप से विरासत में मिली।

पाठक जी के पिता रामायण, महाभारत और भागवत के अनन्य भक्त थे। 'वे कोटला के भूमिपति ठाकुर उमराव सिंह के यहाँ इन ग्रन्थों का पाठ किया करते थे।' पाठकजी पर इन ग्रन्थों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

कवि राम का अनन्य भक्त है। राम के साथ वन प्रातःनगर का दशन करते वह दण्डकारण्य में सीता के साथ है। सीता का रावण द्वारा हरण होता है। राम का विरह विन्ध्य हृदय फूट पड़ता है। वह लखनलाल से अपने विरहातुर मन के उद्गार को प्रकट करते हैं। कवि इस प्रसंग का वर्णन बड़े ही मर्मस्पर्शी ढंग से करता है। पाठक द्रवीभूत हो जाता है। जैसे जलपूरित हो जाती है। यथा—

मैया लड़िमन हा सिया बिन दुख जीय ।

अनि मृदु गाते तात । कामल कृष्ण श्राणपियारी सीय ॥

बुही कुटी, बुही लता भवन धन बुही विटप बुही भूमि ।

बुही दण्डकारण्य मत जह विहरते द्विप-गन भूमि ॥

बुही सिला बुही बल मृगया कौ बुही सरित-तट स्वच्छ ।

बुही मत मधुकर मालति जह सवत लता अरु वृच्छ ॥

विना विन्हे-नदिनी-दरसन सगत न एकहु अच्छ ।

हिम कर किरन देखि दहकत तन मन सद्य यह मलमच्छ ॥^२

इस पद में वही शब्द का प्रयोग कवि ने बार बार किया है। यह व्याकरण सम्मत न होने पर भी कवि की भक्तिभावना पर कोई आँच नहीं डालता। श्रीधर पा. के अपने पिता के अनन्य भक्त थे। अतः उनके प्रसन्नार्थ भी भक्तिपरक रचनाएँ किया करते थे। इससे उनके भक्त हृदय की स्रोतस्विनी की सुधाधारा का दशन हो जाता है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

१ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिंदी का पूर्वस्वच्छतावादी काव्य, दिल्ली, पृ० २०६।

२ श्रीधर पाठक 'मनोविनोद', संपादक गिरिधर पाठक, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, १९१७, पृ० १२०।

सिय-सुधि-अबहु न पाई, एहा ! बरखा ऋतु बीति गई ।
बिमल अकास प्रवासित चदा, नम-नूतन छवि छई ॥
सूखे पथ, वास वन फूले, नलिनी विवसित भई ।
छोता, सरित, स्वतट ह्व आए निमल सर छवि नई ॥
खजन चपल दियो अज्जन ह्व रवि सोमा अधिकई ।
नूप-दल चल नूपन के देसन तिन प्रति जुढ़े ठई ॥
हम कायर सिय मिलन जतन की, अजहुँ न चिन्ता भई ।
स्थाति बूँद जल चातक पायो तृपा तामु बुझि गई ॥
लीलाघर हम निपट अमागे मन दुख दहकत दई ॥१

कवि म अयानुकरण नहीं है। उसकी अपनी जिज्ञासा ही काव्य सामग्री है। वह अकेला राम का ही नहीं कृष्ण का भी उपासक है। यह साहित्य जगत् को 'गोपिका-गीत' अपनी कृष्ण के प्रति अगाध श्रद्धा समर्पित करता है। कवि ने गोपियों के उद्दाम प्रेम को बड़ी ही विनम्रता से अमिष्यजित किया है। उसकी बाणी गोपियों के मानस पटल से अकुरित अनुराग को अमिष्यजित प्रदान करती है। डा० रामचन्द्र मिश्र ने इस कृति का अनुशीलन करने हुए लिखा है कि 'पाठक जी के इस स्वच्छन्द छापानुवाद से निस्सन्देह भागवत की भक्ति भावना की रक्षा ही हो सकी है। मूल में गोपियों के गान में जिस उद्दाम भक्ति का स्रोत उमड़ा है भुक्तमोगी होने के कारण उनके अंतरात्म का समस्त नियंत्रण एव स्वभाविकता से व्यक्त हो सका है और जिस अमिष्यता से अपने साठस के प्रति करता हुई वे उसकी बलैया ल सकी हैं—वह पाठक जी के काव्य में अवश्य ही उपलब्ध नहीं हो पाता' गोपियों के मानस-पटल के अनुराग को व्यक्त करने में उनकी बाणी असफल नहीं है। बरि निम्न से अपने उमन चित्त की अनुरागमयी भावनाओं को वे व्यक्त कर सकी हैं, जिनमें मर्यादा पद मर्याद-सुलभ वियोगजनित कर्षण व्यथा की अभिव्यक्ति है। २

ब्रजभूमि कृष्ण जन्म संध्य हुई । ब्रजवनिताएँ कृष्ण को पारर उनकी बड़ी सती हैं ।^१ उनके सौंदर्य और माधुर्य का देखकर आश्चर्यजनित हो जाती है। उनके नयन मन में श्रीकृष्ण का माधुर्य छिनि बठ जाती है। लेकिन गोपिकाएँ भी तो मानवीय थीं। वे उस अजिर्जरहारी की सीताओं का ही समझें। अतः उनके मानवीय मानस का विकार निम्नोक्त पद में भी स्पष्ट हो जाता है—

महर नद का पुन नहीं,

निखिल सृष्टि का साधि रूप है।

उदित हुआ बुधि बस में,

व्यथित विश्व के प्राण के लिय ॥४

१ वही, पृ० १२० ।

२ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिंदी का पूर्व स्वच्छन्तावर्ग काव्य, लिखा, पृ० ३०६ ।

३ एही सखि आज यह बजत बघाई कहाँ गौवत को घोर सुनि परियत बार बार ।
क्यों मन फूले से भूले से फिरत गोप कर दधि काद कीच कुसुम बार बार ।
श्रीधर जु सुधर सयानी सब गोपनारि सजत सुजावत क्या सरिकन भर भर ।
मौन काज गोकुल में इतिव आनन्द आज तोरण पताना क्यों फहरत द्वार द्वार ।

—हिन्दी प्रणेय, वि० १ म० २, १८८१, पृ० १४ ।

४ रामनरेश त्रिपाठी (संपादक) नवितानवीमुनी, भाग २, पृ० १३० ।

अतः उस महत्तम मंगल रूप के लिये प्रज-वनिताएं आनुल हैं—

स्वजन-वृद्ध के क्लेश हैं हरे,

सुकुन हैं करं वीरता भरे ।

हम प्रभो ! तेरो प्रेम निकरी,

बदन-चंद का दर्श चाहदे ।^१

श्रीकृष्ण सावल्या ॥ गोपिकाएँ यदि उनकी रासलीला के लिये प्रायना करता हैं तो क्यों न वह रासलीला रचायें । फिर तो यमुना पुलिन पर कदम की छाया म राम-जीवा का सुधामय सोत उमड़ पड़ता है । कृष्ण और राधा भूले पर आ जाते हैं । गोपिकाएँ आनंद विमोह हो जाती हैं—

यमुना तीर कदम की छाया भूलत राधा नन्दकिशोर ।

परसत देह नैह नव सरसत बरसत प्रेम अघोर ॥

भूमत भुवत भटव भेटा सगि भेंटत सपटि बजोर ।

खग मृग छबि अवलाकि किलोन्नत बोलत दादुर मोर ॥

श्रीधर हैं प क्यों न होय वह सरस कृपा दुग कोर ।

हरि सग डारि डारि गलबहियाँ भूलत बरसान की नारि ॥

करि आलिंग प्रेम रस मीजत अचल अलक उपारि ।

दूढ़े बोल हिठाल उठावत रवि रवि अग सवारि ।

श्रीधर ललित युगल छबि डारत तन मन बारि ॥^२

लेकिन प्रेमपथ तो बड़ा विकट हाता है । उस पर चलने वाले को असाध्य कष्ट सहन करना पड़ता है । साथ ही साथ यह भी विश्वास नहीं रहता कि उसका प्रेमी विश्वास को कहीं तक निभायेगा और उस पर, श्रीकृष्ण तो, छलियाँ है, चितचोर है, उसका क्या ठिकाना ।

पति सुतादि को लाग छाड़ के,

तब समीप है आ गई छत्री ।

मधुर भीत स मोह के हृद,

उचित है अहो त्यागना नहीं ॥^३

इस राधिका मान कर बैठती हैं । कृष्ण द्वार पर खड़े होकर माचक के समान तृपित नन्नों से राधा का ध्यान कर रहे हैं । राधा राधा रटते हुए वे व्याकुल हो जाते हैं—

ठाढ़े हरि द्वारे प्यारी छाड़ो यह मान ।

दरसन मिलन चाह चितवन के जाचक छुधित समान ॥

राधा नाम रटत व्याकुल ह्व करत तिहारो ध्यान ।

मानत तुम्हे आपनो सरबस तन मन जोबन प्रान ॥

पहला प्रीति रोति जो राखो सो अपने जिय जान ।

आदर देहु मोहि भुज श्रीधर हरि अपन प्रिय जानि ॥^४

१ डॉ० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिंदी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, दिल्ली, पृ० ३१० ।

२ बालकृष्ण भट्ट (संपादक) हिंदी प्रणेष अक्टूबर १८८१ ई०, जि० ६ स० पृ० १३ ।

३ डॉ० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिंदी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृ० ३१० ।

४ हिन्दी प्रदीप, १८८५ अक्टूबर, जि० ६, स० २, पृ० १५ ।

कवि की भावनाओं पर यहाँ राधावल्लभ सम्प्रदाय की स्पष्ट छाप विद्यमान है।

कवि अपने गोपाल का वणन बड़े ही सुंदर शब्दा में करता है

सुन्दर है गोपाल ।

सुंदर बदन मदन कोटि छवि सोमा रूप रसाल ॥

मोर मुकुट मकराकृत कुंडल गल बैजयंती माल ।

मकुटि-कुटिल सुघर अलकावलि तिलक रचिर वर माल ॥

नासा बर-बुलाकमुक्ता मज कौस्तुभ-वस्त्र विशाल ।

जलधर-वरन कमल-दल-लोचन मोचन मव भ्रम-जाल ॥

निगुन-गुन-आगर मट-नागर ललित त्रिमयी, चाल ।

मुरली अघर मधुर सरगम सुर मोहित गोपा खाल ॥

रत्नबारो ब्रज को गिरवर घर प्यारो जसुमति लाल ।

न-द-न-दन सुल-सदन प्रेम निधि सीलाघर प्रतिपाल ॥^१

कवि नवीनता का आग्रहों है, लेकिन प्राचीनता का मोह भी उसकी भावनाओं से छूट नहीं पाता। गंगा की स्तुति करते समय कवि का वणन विद्यापति की शैली में बहुत ही मधुर हा उठा है—

जै जग तारिनि अघम उधारिनि सुर धुनि जै ज श्रीगये ।

हिमगिरि गुहा विदारि करि विस्तारित निज अये ॥

अधिक अयाह प्रवाह प्रबल जल धबल धार संये ।

मकर ग्राह अवगाह पवन थल तरल तर तरये ।

श्रीघर पाप कलाप शमन कृत शमन मान भये ॥^२

कवि को उस जगन्निधिता पर पूर्ण विश्वास है। वह जानता है कि यह सर्वाट सारी उसी का रूप है। हम तुम जब चेतन समी उसी के रूप हैं। यही ससार या वर्त्ता है। ससार के सारे क्रिया-कलाप उसके खेल हैं—

सो है सब उसका ही खेल

उसका है सब बातों में मेल ।

बोही जग का करतार एव

कर रहा आप सीला अनेक ।

है हम तुम सब उस ही के रूप

सब जब चेतन अनगिन अनूप ।

इससे सबसे सब रखो। प्रेम

यह सब-मुख मय जीवन का नेम ॥^३

अतः कवि अति दीन होकर उससे प्रापना करता है—

मेरे जी में दया का विकास करो

पूणा। हिमा, अविद्या का हास करो ।

१ श्रीघर पाठक मनोविनोद, संपादक गिरिधर पाठक, पृ० ६, पद ४।

२ हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर १८८३, जि० ६, सं० २, पृ० १३।

३ श्रीघर पाठक मनोविनोद, संपादक गिरिधर पाठक, पृ० ६।

पूरी प्रेम प्रभा का प्रकाश करो
कल्याण-वल्याल, विश्वपते ॥^१

इस तरह कवि की भक्तिभावना पर राधावल्लभ सम्प्रदाय की छाप तो दृष्टिगोचर होती ही है, साथ ही साथ कवि में प्राचीनता का पूण निर्वाह पाया जाता है। उनकी कविता भारतेन्दुवालीन भक्ति की नींव पर सुदृढ़ खड़ी है। उसमें न प्राचीनता के प्रति आग्रह है और न नवीनता के प्रति लोभ। बल्कि उसकी कविता एक मत्त हृदय का स्वच्छ उद्गार है, जो स्वच्छद गति से प्रवाहित होती है। यत्र तत्र साम्प्रदायिक पुट तो तत्कालीन साम्प्रदायिक प्रवाह का आग्रह है। मुरपत कवि नवीनता का पोषक है।

महामहोपाध्याय प० सुधाकर द्विवेदी

जीवन रेखा

सुधाकर जी का जन्म स० १९१७ चैत शुक्ल ४ त्तिन सोमवार को हुआ।^२ इनके जन्म के समय द्वार पर हाजिया सुधाकर पत्र लेकर खड़ा था। अतः आपका नाम सुधाकर रख लिया गया। चूँकि दिन सोमवार था, इसलिये यह नाम और भी उचित जँचा। इनकी माँ इहे नौ महीने का छौडकर स्वर्ग सिधारी। परिणामस्वरूप उनका सालन पालन इनकी दादी ने किया। विशेष दुलार के कारण ये आठ वर्ष तक बालमण्डली के सरदार बने रहे। आठ वर्ष के बाल तो कहीं अक्षरारम्भ हुआ। इनकी स्मरणशक्ति बड़ी तीव्र थी। यही कारण था कि गणितशास्त्र में पूण दक्षता प्राप्त कर ली।

बाल्यकाल में ये बराबर बीमार रहा करते थे। इन्हें बचपन से ही स्वभाव में स्वतन्त्रता मिल गई। आठम्बर तो छू तक नहीं गया था। सत्यवादी थे और अपनी भूल स्वीकार कर एक आदर्श उपस्थित कर देते थे। इनमें सरलता कूट बूट कर मरी थी। बातें कम करते थे, ज्यादा काम करने के हिमायती थे। अतः आपने विष्णो पर बराबर विजय पाई।

आपने अपना जीवन अध्यापकी से शुरू किया। सबप्रथम संस्कृत कालेज में पुस्तकाध्यक्ष के पद को शोभित किया, बाद में वही गणित के प्रवक्ता बना दिये गये। संस्कृत और हिन्दी के भी ये कुशल विद्वान् थे। अतः तद्दुगीन नवियों और लेखकों से इनका विशेष सम्पर्क था। भारतेन्दु जी के तो आप अनन्य भक्त थे। आपमें आशुकिन्तव्यशक्ति विद्यमान थी। कहते हैं कि एक दिन भारतेन्दु जी के साथ राजघाट पुल देखने गये। वहाँ से लौटने पर उनकी कविताधारा फूट पड़ी—

राजघाट पर बघन पुल जह कुलीन की ढेर।

आज गय कल देखिके आर्जहि लौटे फेर ॥^३

इस बोहे की सुनकर भारतेन्दु जी और रावकृष्णदेवशरण सिंह गोप बहुत ही प्रभावित हुए और इन्हें पुरस्कृत किया।

सुधाकरजी बड़े अध्ययनशील व्यक्ति थे। इन्हें मूरनास, कबीरदास, तुलसीदास की कविताओं से विशेष प्रेम था। इन्होंने रामचरितमानस के बालकांड का संस्कृत में अनुवात् किया था। काशीना गरी प्रचारिणी सभा ने आप मृत्यु पयन्त सभापति रहे।

१ वही, पृ० ७।

२ डा० निशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, पृ० ३६५।

३ बजरत्नदास भारतेन्दु मण्डल, पृ० १३५।

ये एक बड़े धर्मप्रिय व्यक्ति थे। इनमें धार्मिक कट्टरता नहीं बल्कि उदारता थी। ब्रजरत्नदास ने लिखा है कि 'काशी के पंडित धार्मिक व्यवस्था देने में अपनी धर्माग्रता तथा कट्टरता के लिये प्रसिद्ध हैं और इस कारण उनसे किसी प्रकार की व्यवस्था लेना निराश्वयपूर्ण था। कुछ दिन पहले विलायत यात्रा का भगड़ा बराबर उठा करता था और विद्योपाजन कर लौटे हुए सज्जनों को जातिच्छुत कर देना सहज समाज धर्म समझा जाता था। द्विवेदी जी ऐसी व्यवस्था के पक्के विरोधी थे और अंत में इन्होंने ऐसे एक सज्जन को प्रत्यक्ष रूप में प्रायश्चित्त कराया। जहाँ का पंडित समाज इनके इस कार्य पर मौन रह गया।'^१ इस प्रकार वे अपनी धार्मिक उदारता के लिए जगतप्रसिद्ध थे।

भक्तिभावना

सुधाकरजी गणित के विद्वान् थे। इसलिये बराबर गणित में व्यस्त रहते थे। कविता करने का अवकाश कम मिलता था। लेकिन तदुयुगीन प्रभाव से बचना दूसरा था। अतः इन्होंने माधवपंचक और राधाकृष्ण दानलीला आदि काव्यों का प्रयणन किया। समस्यापूर्ति करना भारतेन्दुयुग के कवियों का महान् कर्तव्य था। इन्हीं समस्यापूर्तियों में इनकी भक्तिपरक रचनाओं के दर्शन होते हैं।

ये पण्डित थे। लेकिन इनकी भाषा में सरलता विद्यमान रहती थी। सस्कृत की समास-यदावली इनकी कविताओं में दृष्टिगोचर नहीं होती है। प्राचीनता के प्रति इनका दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण रहा है। यथा—

मल से उपजा मल बसा मल ही का व्यवहार ।

नाम रखाया सत हम ऐसे गुप्त ह्वार ॥^२

इस तरह कबीर का प्रभाव इन पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। कवि ने मन की मूर्त्ता की ओर लक्ष्य करते हुए बड़ी ही अनूठी सूक्ष्म प्रस्तुत की है—

ऐसी मूढता या मन की ।

परिहार रामभक्ति सुरसरिता आस करत ओम वन की ॥

धरम समूह निरखि चाटक ज्यो तृपित जानि मति चन की ।

नहिं सह शीतलता न बारि पुनि हाति होत सोचन की ॥

ज्यो गय बाँच बिलोकि स्येन जह छाह आपने तन की ।

दूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की ॥^३

द्विवेदी जी ने रामकाव्य के प्रयणन में मनोयोगपूर्वक कार्य किया है। उन्होंने फुलवारी प्रसंग का उद्घाटन किया है, जो रामकाव्य का बड़ा ही कविप्रिय एवं हृदयग्राही स्थल है। सीता के मुँह से उस अतीत का वर्णन बड़ा ही सुखप्रद प्रतीत होता है। अतीत की स्मृति बड़ी ही मधुर होती है—

पिया जब देखी मैं फुलवारिया ।

अस मन भयो घाइ गर लागै त्यागि सखल मुल गलिया ॥

सखनलाल मोहि सेप सो लागै विप सी सग की अलिया ।

साज भुजगिनि ह्वरति नादी निरखि बाग के कलिया ॥

मन चाहे पिय सग सग डोलू चुनू कुसुम की कलिया ।

गूँधि गूँधि अमरन पहिराऊँ करि पिय सग रगरलिया ॥

१ वही पृ० १३६ ।

२ रामनरेश त्रिपाठी कविता-बौमुदी, भाग २, पृ० १४० ।

३ वही, पृ० १४० ।

मनमह घसी सावरी सूरति फनी पिता पन जलिया ।
 प्रेम नेम दुविधा तरंग उठि मची हिये खलबलिया ॥
 घनुप भगि पितु नेम प्रेम मम राखि लियो विधि भलिया ।
 सो इच्छा इवात बिहरन पूरई गुज गर डलिया ॥^१

यन-यथ पर त्रिपूति है । सीता के सुकुमार पत्न म कुश का तीव्र अकुर चुम जाता है । वह बेचारी लखनलाल के लाजवश कुछ कह नहीं पाती है । इस मम का मर्यादा पुष्पोत्तम श्रीराम वृक्ष जाते हैं । लखनलाल को पानी के निमित्त दूर भेज देते हैं । लखनलाल उधर पानी के लिये प्रस्थान करते हैं, इधर श्रीराम जनक दुलारी को मोद म लेकर-समझाने लगते हैं । सीता अपार सुख का अनुभव करती हैं । कवि ने इस दृश्य का मनोमुग्धकारी वर्णन प्रस्तुत किया है, द्विवेदो जी को राम कथा प्रसंग म माधुय की सृष्टि करने में अप्रतिम सरलता मिली है—

पिया हो कसकत कुस पग बीच ।

लखन लाज सिय पियसन बाली आइ नगीच ।
 सुनि सुरत पठयो लखनहि प्रमुजल हित दूरि सुनान ।
 लइ अक सिय बोवत कुस बन घवित पद अमुवान ।
 बार बार बार भारत कर सो रज निरखत छल बिललात ।
 हाय, प्रिये भायो न कहायो मखु नहि बन बिच कुसलात ।
 सहस सठचरी त्यागि सदन मरि साधु ससुर सुखकारि ।
 हठकरि लाग भौ सग सहत तुम हा हा यह दुख भारि ।
 कहत जात या प्रमु बहु बतिया तिया पिया की छाह ।
 देह गलबहिया चली बिहसि कहि यह सुख नाथ अयाह ॥^२

जनक-जनया पति के साथ कुश की साथरी को ही अनुपम मानती हैं । उनके लिये महल का ऐश्वर्य राम के सहवास के सामने तुच्छ है—

नाथ कुस साथरी साथ सुहाई

जो सुख सुखनिषान निति पाई सो क्यों हैं न कहाई ।
 महल पहल निति राजमहल बिच बेरिन को समुनाई ॥
 सामु ससुर के अदब न दबकत दुइह तुम्हार जुलाई ।
 मनभावन मन भावत बतिया बतराई तह नाही ।
 तति तह ते सुगुन सुख बन बिहरत दे गलबाही ।
 जगन भगन सोमा मनलोमा देखत मसत निवाई ।
 जा छवि आये सोस महल की पवि छवि प्रगट फित्ताई ।
 आलस तजि आरसी बिलोकहुं मगल द्विज जुति भाई ।
 बिनु गुन माल भली छवि पिय हिय कहि मिय मुरि भुसकाई ॥^३

सिया के एकान्त बिहरन को लाजसा यहाँ जगन में पूरे हुई । वह भर नजर गरे मोन में कुन मर्यादा

१ रामनरेश त्रिपाठी (संपादक) कविता-कौमुदी, २ पृ० १४२ ।

२ रामनरेश त्रिपाठी (संपादक) कविता-कौमुदी, २ पृ० १४२ ।

३ यही, पृ० १४२ ।

के कारण राम को देख भी नहीं पाई थी। यहाँ आकर उसकी यह इच्छा पूरी हुई। नायिका की 'प्रबलतम इच्छा अपने नायक के साथ एकांत बिहार की होती है—

पिया हो ! मन की मन ही माहि रही ।

तुव सन निज कर केस सवारू लाजन नाहि कही ।

सो घर जरउ जहाँ निज मन मरि पिय मन राखि न रही ।

चाहि चाहि मन पछितायो बहु नाहक नाहि कही ॥

सहस सहचरी नित घर घेरत परी लाज के पद ।

अखिया मरि कबहू नहि निरखी तुव मुख पुरनचद ।

यह वन निज कर नाथ सवारत वेनी मुथत बनाय ।

को बड भागिनि मो सम तिहुँ पुर यह सुख जाहि जनाय ॥

कोटि मनोज लजावन भावन तुव धनि पीयत पीय

अखिया बहुत दिनन की प्यासी नेकु अघात न हिय की ॥^१

इस प्रकार द्विवेदी जी की भक्तिभावना में राम का स्थान विशेष है। द्विवेदी जी की भक्ति मर्यादा से पूर्ण है। माधुय का सृजन भी आपने जो किया है, वह मर्यादा वेष्टित है। कवि मर्यादा-वादी है। माधुय की सृष्टि में वासना का पुट नहीं बल्कि एक सच्चे भक्त के हृदय का सच्चा उद्गार परिलक्षित होता है।

गोस्वामी राधाचरण

राधारमनी पूज्य गुसाई वश उजागर ।

राधा चरण प्रवीन लीन बाव्याधृत-सागर ॥

भारतेन्दु को सरा सनेही प्रेम बिसासी ।

भजन भावना रम्यो रहत बुन्दावन वासी ॥^२

जीवन रेखा

गोस्वामी जी का जन्म फाल्गुन कृष्ण ॥ सम्बत् १६१८ को बुन्दावन में हुआ था।^१ इनके पिता जी का नाम गोस्वामी मल्हू जी था जो गुणमजरीनाथ के नाम से एक विख्यात कवि थे। इनका रचनाओ में एक श्रीराधाचरण पद-भजरी में नित्य सेवा के सतततर पद सगृहीत हैं, जो सन् १८८५ ई० में प्रथम बार प्रकाशित होकर बिना मूल्य वितरित हुआ था।^२ गोस्वामी राधाचरण योग्य पिता के योग्य पुत्र थे। अपन पिता की बहुत सी रचनाएँ इन्होंने अपन जीवन-काल में छपवाई थी। इनका परिवार वैष्णव सम्प्रदाय का जनय भक्त था।

गोस्वामी जी पाँच वर्ष की अवस्था में मातृहीन हो गये। अतः इनके पालन-पोषण का भार इनके पिता जी पर पड़ा। इसलिये इन्हें अपने पिता जी के साथ बराबर बाहर रहना पड़ा। इस तरह इनकी पगई यात्रा में ही यत्र तत्र होती रही। आप बड़े ही विलक्षण प्रतिभा के विद्यार्थी थे। परिणाम

१ रामनरेश त्रिपाठी (सपादक) कविता-बौमुदी, २ पृ० १४३।

२ वियोगी हरि कवि-चर्चन, पृ० ६८।

३ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु मण्डन, पृ० १४०

मिश्रबन्धु मिश्रबन्धु विनोद भाग ३ में स० १६१५ वि० जन्म तिथि अंकित है, पृ० १२७३।

४ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु-मण्डन, पृ० १४१।

स्वरूप पिता की यात्रा का आपने अध्ययन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। आपने संस्कृत का गम्भीर अध्ययन कर लिया। अंग्रेजी का ज्ञान भी कुछ दिखाने प्राप्त कर लिया। अंग्रेजी भाषा पढ़ने का समाचार सुनकर आपकी शिष्य मण्डली मड़क उठी और इन्हें घमको दो गई कि यदि वे इसे न छोड़ेंगे तो वे इन्हें गुरु न मानेंगे।^१ पिता जी सनातनी थे। उनका प्राचीन रुढ़ि परम्परा में पूर्ण विश्वास था। परिणामस्वरूप अंग्रेजी की पढ़ाई यहाँ छूट गई। फिर भी कुछ दिखाने आपने अंग्रेजी की अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

गोस्वामी जी बड़े ही गम्भीर सेवी व्यक्ति थे। इनके विचार बड़े ही उत्तम एवं परिष्कृत थे। आप समा-समाजों के प्रति वाक्यी गायक थे। हिन्दो के प्रबल हिमायती थे। शिवा कर्मोशन (सन् १८३६ ई०) के समय आपने हिन्दी के प्रति अपनी वक्तव्य निष्ठा का परिचय दिया था। हिन्दी के पक्ष में आपने इसीसे सहस्र समर्थन प्राप्त किया था। आप आज्ञावन हिन्दी के प्रबल समर्थक रहे। आपकी योग्यता को देखकर युवावा यामिना न आपको अपना श्रुतिमित्र समझकर भी निर्वाचित किया था। आपने इस पद की बड़ी ईमानदारी से सम्हाला। फिर उन्नी के आनन्दो मजिस्ट्रेट हुए। कांग्रेस जैसी विमल सस्था के भी आप प्रतिनिधि थे। इस प्रकार आप में सनातन प्रथा का प्राबल्य होते हुए भी समाज सेवा का सुगंध बड़ा ही सुरमिमय लगता था।

आपका धार्मिक दृष्टिकोण उत्तम था। वष्णव मतानुयायी होने के अलावे आप किसी धर्म के प्रति कटुभाव नहीं रखते थे। अन्य धर्म ग्रन्थों का आपने अध्ययन किया। ब्रह्म समाज सम्बन्धी आपके लेख ब्रह्म-अध्वर नामक पत्र में प्रकाशित हैं। आर्य समाज के प्रति इनकी सद्भावना थी। इन्होंने दयानन्द जी के दशान किए और उनसे अपने विचारों को परिभाषित किया। स्वामी दयानन्द जी को आप श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। स्वामी जी के बारे में आपने विचार बड़े ही पुनीत हैं। आपने लिखा है कि स्वामी दयानन्द जी के वाक्य मुझे वेद शश्वत् माय हैं और उनकी प्रत्येक बात मेरे उत्साहजनक स्वरूप हैं।^२ इस तरह उनकी धार्मिक जिज्ञासा बड़ी प्रबल एवं परिष्कृत थी।

गोस्वामी जी भारतेन्दु को अपना साहित्यिक गुरु मानते थे। उनके प्रति इनकी अटूट श्रद्धा थी। यही कारण था कि ब्रह्मसमाज के प्रति उत्तरमावना रखते हुए भी भारतेन्दु जी की व्यथनाणियों से आहत हो उस समाज से अपना सविचित्रित कर लिया। भारतेन्दु के प्रति गुह्यवभाषना को राजरत्नदास ने स्पष्ट किया है—“वह स्वयं लिखते हैं कि हरि बद्र हरिबद्र थे। उनके स्थान की पूर्ति करने वाला मुझे तो अब तक कोई दिखाई नहीं दिया।^३ भारतेन्दु जी के ये कपापत्र थे।

भक्तिभावना

ये वृत्तान्त के एक रईस थे। वष्णव सम्प्रदाय के उत्तम मनीषी थे। आर्य समाज और ब्रह्म समाज को आन्तर की दृष्टि से देखते थे। बल्लभ मत के अनुयायी होने कारण कष्ण और राधा के अनन्य उपासक थे। मिथवन्तु विनोद भाग ३ में इनका परिचय दिया है। वहाँ लिखा है ये महाशय बल्लभाय सम्प्रदाय के गोस्वामी हैं और हिन्दी पर सदैव भारी प्रेम रहा है।^४ ये मत्त कवि थे। सस्कृत का अगाध ज्ञान था। इनकी भक्तिभावना के बारे में इनका अपना वक्तव्य उद्धृत है—

१ राजरत्नदास भारतेन्दु-मण्डल, पृ० १४१

२ राजरत्नदास भारतेन्दु मण्डल, पृ० १४३।

३ वही, पृ० १४३।

४ मिथवन्तु मिथवन्तु विनोद, भाग ३, पृ० १२७३।

‘जीवितश, हमने तो अपना जीवन पयत तुम्हारे अर्पण कर दिया है, फिर तुम क्यों सकोच करते हो। हे मधुररस के एवमात्र आश्रय ! मत्नमोहन अब हमारे जीवन की मर्यादा आ पहुँची है, यदि तुम्हारे हमारे सुख देखने का मनोरथ हा तो वेगही दशन दीजिये और हम अपनाय लीजिये नहीं तो पश्चाताप करागे। यही हमारी अंतिम प्रार्थना है।’^१

आप ब्रजभाषा के नाता ही नहीं बल्कि दिग्भज पंडित थे। ब्रजभाषा आपने अनुसार स्वर्गद्वार की सीढ़ी है।^२ सचमुच ब्रजभाषा में जितना भक्ति साहित्य है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। ब्रजभाषा में कवियों ने कलि उद्धारन के हेतु कविता की। कृष्ण की रूपमाधुरी का जितना वर्णन ब्रजभाषा में हुआ है, उतना और कहीं नहीं हुआ, कवि का ऐसा विश्वास है। ब्रजभाषा से सम्बंधित उनके विचार द्रष्टव्य हैं।

ब्रजभाषा भाषा ललित कलित कृष्ण की केलि।
या ब्रजमंडल में उठो ताकी घर पर बेलि ॥१॥
हृषी से चहुँ दिसि बिस्तरी पूरब पच्छिम देस।
उत्तर दक्षिण ती गई ताकी छटा असेस ॥२॥
सूर सूर तुलसी ससी उडगन केशवदास।
देव बिहारी दयानिधि पद्माकर हरिदास ॥३॥
श्रीहरिवंश हरिमिय आनंदधन हरिवंद।
ललित किशोरा माधुरी, ब्रजवासी अब बुव ॥४॥
इन कविजन कविता करी, बलि उद्धारन हेत।
कृष्ण-कपा भवसिंधु के उद्धारन हित सत ॥५॥^३

प० अम्बिकादत्त व्यास

जीवन रेखा

प० अम्बिकादत्त व्यास का जन्म चैत्र शुक्ल ८ सं० १६२८ वि० का जयपुर में हुआ था। इनके पिता का नाम प० दुर्गादत्त जो था ये सत्सक्त और हिंदी के अच्छे विद्वान् थे। ये लोग जयपुर से काश चले आए। उस समय व्यास का केवल एक बच के थे।^४ दत्त जी अपने समय के एक लब्ध प्रतिष्ठ कवि थे। ब्रजरत्नदास ने लिखा है कि इनका समस्या पूर्तिवा भारतेन्दुवाल के सग्रहा में मिलता है।^५

व्यास जी का परिवार शिक्षित था। जब इनकी शिक्षा पाच बच की अवस्था में शुरू हुई। इनके घर की जीरते सुशिक्षिता थी, जिसमें खेल-बूढ़ हो म इन्होंने अमरकाप, श० ल्पावली आदि का अभ्यास कर लिया और सत्सक्त की शिक्षा अच्छी तरह चलने लगी। इनके पिता इन्हें सत्सक्त में बात चीत करने, सुभाषिता का कण्ठस्थ करन में सहायता देते रहे।^६

इनने पिता जी अपनी विद्वता के लिये प्रसिद्ध थे। जब उनका घर कवियों का जवाहा था। गोस्वामी जीवनलाल जो स इनके पिता जी को आत्मापता थी। ये गोस्वामी जी के यहाँ बराबर जाया

१ कविवचन मुद्रा, पृ० ४ २३ जुलाई, १८७७ ई०।

२ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, काशी, पृ० ४२१।

३ वही, पृ० ४२१।

४ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, काशी, पृ० ४०८।

५ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु मण्डल, पृ० १११।

६ वही, पृ० ११२।

करते थे। गोस्वामी जी एक प्रसिद्ध कवि थे और उनसे यहाँ बराबर कविया का समागम रहता था। व्यास जी को कविता की पहली शिणा यही से मिली और गोस्वामी जी ही इनके का प गुप्त हुए।

व्यास जी हिन्दी अंग्रेजी और संस्कृत तीनों जानते थे। कुश्ना लहना भी जानते थे। गायन वादन में उस्ताद थे। आशु-वचित्र तो आपको विरामत में मिला था। कवि सत्तम आपका वचन से ही मिला। फलस्वरूप १० वर्ष के अल्प आयु में ही आप अपनी कविता में मकरा चरित करने लगे। उस समय कविता के क्षेत्र में समस्यापूर्ति का जमाना था। आपने सामने जोषपुर के राजगुरु श्री तुलसीदास ओझा की उनके काशी आगमन पर काव्य समस्या थी 'जनि तोरहु नेह को बाचो तगा'। जिस समस्या की पूर्ति में व्यास की कविता फूट पड़ी थी। देखिए—

चमकि चमाचम रहे हैं मनिगन चार
सोहत चहँया प्रमथाम धन धाम की।
फूल फुलवारी चल फैलि बै फन हैं तह
छबि छटबीली यह नाहिन आराम की॥
बाया हाड धाम की हूँ राम बिहारी सुय
जाम की को जाने बात करत हराम की।
मन्वादत भापै अमिलाप क्या करत भूठ।
मूढ गई आँखें सब साथ बन बाम की॥^१

व्यास जी के पिता का देहान्त स० १६३७ वि० में हुआ और इनकी माता छह वर्ष पहले मर चुकी थी। पिता के मरने के बाद इनकी स्वतंत्रता जिन गई। इनके बड़े भाई साहब इनमें असन्तुष्ट रहा करते थे। परिणाम स्वरूप इन्हें भी अपनी जीविका के लिए कुछ व्यवस्था करना पड़ी। अतः आप गोस्वामी जीवन लाल जी के साथ चलकर चल गये। चलकता में आपको अपनी विद्वत्ता के चलते काफी सम्मान मिला, लेकिन जीविका का प्रश्न हल नहीं हो पाया। पश्चात् य वहाँ से चल आये। स० १६४० वि० में आप मधुवती में एक संस्कृत पाठशाला में एक अध्यापक का पद स्वीकार किया। यही तो आपके जीवन का प्रथम उद्देश्य प्रारम्भ होता है। आप बिहार में स० १६५५ तक कार्य करते रहते रहे।

आप कट्टर सनातन धर्मी एवम् विष्णु के उपासक थे। आप बिहार की कई संस्थाओं के संस्थापक बने। शास्त्रार्थ करने में आपका बुद्धि बड़ी विलक्षण थी। आपसमाजियों से बराबर शास्त्रार्थ करते थे।

पिता जी का गुण इनमें प्रचुर परिणाम में वर्तमान था। ये पिता जी के साथ ही मारतेन्दु-दरबार में जाया करते थे। मारतेन्दु जी इनकी कवित्वशक्ति से बहुत प्रभावित थे। मारतेन्दु जी के सामने ही व्यास जी ने चिरजीवी रही त्रिवटोरिया रानी' समस्या की पूर्ति की। इनकी पुस्तकों की संख्या सत्तर बहत्तर के करीब है। हिन्दी और ब्रजभाषा में इनका समान अधिकार था। दशन और धर्म पर आपका विशेष अध्ययन था। बिहारी बिहार' इत्यादि मञ्जरू प्रथ है जिसके बारे में ५० रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है 'बिहारी' बिहार में व्यास जी ने बिहारी के दाहा पर कूडनियाँ रची हैं। बिहारी के दोहे रूपी छोटे-छोटे घडों में जो अमृत भरा है 'याम जी ने कूडलियों के लपट से उसको छलकाकर बाहर लाने का प्रयास किया है।' ^२

१ बजरत्ननास मारतेन्दु पृ० १२२।

२ सपा० रामनरेश त्रिपाठी, कविता कौमुदी, २ पृ० ८१।

भक्ति भावना

व्यास जी निम्बाक मतानुयायी कविवर विहारीलाल जी की भक्ति भावना से पूणत प्रभावित थे। उनका सुकवि सतसई नामक ग्रंथ जो आज उपलब्ध नहीं है उनको प्रेम भक्ति का परिचायक है। आप श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनकी बाल-लीला का वर्णन करने में आपकी लेखनी ने कमाल दिखाया है। सात सौ दोहों में श्रीकृष्ण की बाल-लीला का वर्णन करना आपकी ही लेखनी के दूते की बात थी। ब्रजरत्नदास जी के शब्दों में इनकी 'सुकवि सतसई' में श्रीकृष्ण की बाल लीला पर सात सौ दोहों हैं जो उत्तिवचिन्त्य तथा प्रेम भक्ति से परिलुप्त हैं।^१

कवि भव बाधा से छुटकारा पाने के लिये श्रीकृष्ण एवम राधा से प्रार्थना करता है। मुगल छवि का वह अनन्य उपासक है—

मेरी भव बाधा हरी राधा नागरि सोय ।
जा तन की भाई परै स्याम हरित दुति होय ॥
श्याम हरित दुति होय परत तन पीरी भाई ।
राधा हृ पुनि हरी होत लहि श्यामल छाई ॥
नयन हो लखि होत रूप अरु रस अगाधा ।
सुकवि जुगन छवि हरहु मेरी भव बाधा ॥^२

श्रीकृष्ण के रूप सौन्दर्य पर कवि मुग्ध है। वह उसके स्वरूप को देखकर सन्त प्रसन्न चित्त रहता है। भक्त का भयातुर हृदय भगवान् के प्रति अपना लघुत्व और भगवान् के प्रति गुरुत्व भाव दिखलाया है। भक्त हृदय की सच्ची कसौटी यही है कि वह लघुत्व का भाव व्योक्त करने में पूर्णतः सिद्ध है।

सोहत ओढे पीत पट स्याम सलोने गात ।
मनो नीलमनि ली पर आतप परयो प्रमात ॥
आतप परयो प्रमात ताहि सो खिल्यो कमल मुख ।
अलक और लहराय जूय मिलि करत विविध मुख ।
चक्का से दोउ नैन देखि इहि पुलकत मोहत ।
सुकवि बिलोकहु स्याम पीत पट ओढे सोहत ।
जस अपनस देखत नही देखत सावल गात ।
कहाँ करी सालब भरे चपल नैन चलि जात ।
चपल नैन चलि जात श्वेत रोके न किहू विधि ।
मूखत भीगत दरत कहाँ धौ भयी हाय विधि ।
सदा उनमने रहत भये ऐसे कछु परवस ।
सुकवि स्याम पै मोहे निरखत नहि जस अपजस ॥^३

ब्रजभाषा के अतिरिक्त आप खड़ी बोली में भी कविता करते थे। नवीन युग के वातावरण में पलकर, नवीनता की छाप से वंचित हाना नितान्त असम्भव था। अतः प्रौढ, कविता का मिनो ब्रजभाषा को छोड़ खड़ी बोली के क्षेत्र में आकर नववय विशोरी के रूप में बन ठन कर शृङ्गार करने लगी। लेकिन इस शृङ्गार में भक्ति का जो पुट है, यह भारतेन्दु जी का साहसिक कदम था। इस साहसिक कदम में

१ ब्रजरत्नदास, भारतेन्दुमठन पृ० १२१ ।

२ संपा० रामनरेश त्रिपाठी, कविता कौमुदी, भाग २, पृ० ८२ ।

३ वही, पृ० ८२ ।

वदम मिला कर चलने वाले व्यास जी की भाव भोगी भक्ति भावना के उद्गार अप्रतिम हैं। वह अपनी कविता के सौन्दर्य से सौंदर्य सम्राट् श्रीकृष्ण को मोह लेना चाहता है। वह उससे रूप का घातक है। उसके दर्शन के लिए कविता बनाता है। कविता सुनाकर मनमोहन को रिभाने की यह सूझ व्यास जी की अनूठी है।

अमृत के रस की मरी सी उस मुरली को,
बब प्यारे आके मेरे सामने बजायेगा।
घड़के बंदम्ब पर चारो ओर देख भाल,
हाथ को उठावे बब बच्छो को बुलावेगा।
अम्बान्त कवि की रसीली कविता को सुन,
मुकुट भुजा के बब फिर मुसकावेगा।
मुक्ते गवार को पुवार बार बार सुन,
साँवरे सलोने बब दरस निखावेगा ॥^१

इस तरह व्यास जी की भक्ति भ्रम का माधुर्य सनिहित है। कवि श्रीकृष्ण और राधा के मनोमुग्ध रूप का उपासक है। वह युगल छवि की राम-लीला एवम् रूप सुधा का अहर्निश पान करता है।

राधाकृष्ण दास

जीवन रेखा

राधाकृष्ण दास का जन्म श्रावण शुक्ल १५ सवत् १८२२ को काशी में हुआ। ये भारतेन्दु जी के फुफेरे भाई थे। इनके पिताजी का नाम कल्याणदास जी था। ये राधाकृष्णदास के जन्म के एक साल बाद ही स्वर्ग सिंघारे। अब इनके भरण पोषण का भार इनकी माता पर पड़ा। काशी में रहने के कारण भारतेन्दु और इनमें अपार स्नेह था। भारतेन्दु जी इन्हें बच्चा बाबू ही कहकर पुकारा करते थे।^२ ये बचपन से बहुत ही कमजोर थे। अतः पढ़ाई लिखाई की व्यवस्था ठीक से नहीं हो सकी। लेकिन भारतेन्दु की विशेष कृपा रहने के कारण स्वाध्याय से इन्होंने विशेष योग्यता प्राप्त कर ली। साहित्य की तरफ विशेष अभिरुचि भारतेन्दु बाबू के सम्पर्क से ही हुई और गोकुलचंद की सहृदयी कृपा से इनके जातीय सत्कार व्यावसायिक बुद्धि में विवश हुआ। इस तरह ये भारतेन्दु परिवार के अभिन्न सदस्य थे।

राधाकृष्ण दास का स्वभाव सरल तथा ये बड़े विनम्र एवम् विनोदप्रिय व्यक्ति थे। इनमें समन्वयात्मक सूक्ष्म दृष्टि थी। अहंकार तो शेषमान भी न था। शांति एवम् सरलता की भूति थे। ब्रजरत्नदास ने लिखा है कि कभी इन्हें किसी पर क्रुद्ध हुए किसी ने देखा हो।^३ आप बड़े ही व्यवहार कुशल व्यक्ति थे।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा के उद्घाटनको भ स आप भी एक है। आपके ही समय से सभा में खोज का काय संपन्न हुआ। प्रेमचन जो न आपके कार्यो से द्रवीभूत होकर बड़े प्रेम से याद किया है—
हे प्रिय राधा कृष्ण दास ! विश्वास न ऐसो।
रह्यो तिहारे साहस ॥ देख्यो हम जैमो ॥^४

१ आचार्य चतुरसेन हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास पृ० ४६२।

२ संपादक ब्रजरत्नदास भारतेन्दु मंडल, पृ० १६०।

३ वही पृ० १६१।

४ डा० विशारी लाल गुप्त, भारतेन्दु और उनके अग्र सहयोगी, पृ० ४२७।

राधा कृष्ण दास का जन्म एक धार्मिक परिवार में हुआ था। साहचर्य भी मिला तो राधा के चाकर का ही। अतः सनातन धर्म पर इनकी अटूट धृढ़ता थी और उस धर्म पर इनका अटल विश्वास जीवन पर्यन्त बना रहा। इस धार्मिक उदारता में अथ परम्परा का स्थान नहीं था। ये बराबर धर्मो-प्रति के लिये क्रियाशील रहे। धार्मिक अवनति के कारणों पर आप बराबर प्रकाश डालते रहे। तनिक भी आपमें प्राचीनता नहीं थी। आप रुढ़िवादियों के कट्टर विरोधी थे। यही कारण था कि स्त्री शिक्षा, बाल विवाह और विधवा विवाह के बारे में आपके विचार काफी गम्भीर हैं। इन विचारों के कारण पुराने अर्थविश्वासों को तोड़ते आप समाजी कहने लगे थे।^१

धार्मिक प्रवृत्ति होने के कारण आपकी चेतना को शुद्ध तीर्थयात्राओं ने भी विशेष बल प्रदान किया। साहित्यिक यात्राओं के अतिरिक्त आपने मधुरा बुढ़ानन, अयोध्या आदि स्थानों के दर्शन किये। आपका नवधा भक्ति में पूर्ण विश्वास था। इन यात्राओं में आपके साथ भारतेन्दु का परिवार भी था।

राधाकृष्ण दास कवि, लेखक, नाटककार और उपन्यासकार थे। ये बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। संपादन-कला में आपकी चयन प्रतिभा और कारयित्री प्रतिभा का संयोग बड़ा ही आवश्यक लगता है। इन्होंने कई एक महत्वपूर्ण ग्रंथों का सम्पादन किया।

भारतेन्दु जी का प्रभाव इनके व्यक्तित्व से स्पष्ट भलकता है। उनके साहचर्य ने सोने में सुगन्ध का काम किया। भारतेन्दु जी कीति पताका का दिग-तथ्यापी सुगन्ध प्रदान करने का श्रेय आपको ही है। आप भारतेन्दु जी के अनन्य भक्त थे। उनके प्रति अपार धृढ़ता आपके हृदय में फूट-फूट कर भरती हुई थी। अतः भारतेन्दु जी के प्रभाव से अधिक होना चाहे वह किसी प्रकार का क्षेत्र हो, असमभव है। ब्रजरत्नदास ने लिखा है “श्री राधाचरण दास में भारतेन्दु जी के निरंतर साहचर्य के कारण उन्हीं की छवि बहुत कुछ उत्पन्न हो गई और उनमें भी प्रेमरस का कुछ न कुछ संचार हो गया।”^२ भारतेन्दु जी का अमूर्त नाटक सतीप्रसाद आपने ही पूरा किया।^३

भक्ति भावना

राधाकृष्णदास की भक्ति भारतेन्दु के साहचर्य से फूली और फली। अतः उनकी ही भाँति ये भाव बलमाचाय के मतानुयायी थे।^४ अतः कृष्ण भक्ति से उनका हृदय आतप्रोत था। कवि भारतेन्दु की भाँति ही य राधा की तरफ विशेष आकृष्ट थे—

हमरो चौध बदा का करिहै ।

श्रीगुजचन्द चंद मुसी प्रेमी औरन सो का करिहै ।

मुसबोरिन सब कहत गाव म और नाम का करिहै ।

दास' कलबहु हम प्रेमिक के ढिग आवत घरहरिहै ।^५

कवि राधा रूप की उपासना में अपने को 'योद्धा'वर कर देता है। उस मानिनी की छवि का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

१ ब्रजरत्नदास, भारतेन्दु मंडल, पृ० १६३।

२ वही, पृ० १७२।

३ चतुरसेन शास्त्री, हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, पृ० ४८३।

४ ब्रजरत्नदास, भारतेन्दु मंडल १६३।

५ सपा० श्यामसुन्दर दास, राधाकृष्णदास प्रयासती (पृष्ठ ५), पृ० ६४।

हो बलि जाऊ मानिनी छत्रि पर ।

बैठि भोह चढ़ाय रिस भरो, गोल वपोलनि कर घर ।
नन बंद अलकावनि छूटो जचल पट खसकखो सर ।
साल मनावत मानहि रहि गए, घरि के प्यारी के पय पै कर ।
विरह देखि प्रान प्रीतम को, मिली मन तजि प्यारे के घर ।
वरनि सके छविहि दास जो, जग में ऐसो नाहिन कोउ नर ॥^१

अतः वह राधा लाडली के परो को छोड़कर अजन जाने की अभिलाषा नहीं करता ।

लाडली ऐसी भति माहि दोज ।

चरन छोडि नहि जाऊ जनत कह्यु सरन आपनी दीजै ।
नित उठि दरस कह्यु पिय प्यारी हृदय पखान पसीजै ।
इतनी अरज दास की सुनिये, निज जन कपा करी जै ॥^२

इसी लाडली की दशा देखकर तो चदा चंचल हो गया था । वह बदरी में अपना मुँह ढांप कर नीर बहाता है—

देखी लाडली की दसा चदा गयो मुकाय ।
बदरी में मुह ढाकि के नीर बहावत हाय ॥^३

कवि राधा का अन्तर्गत है । वह उनके मुखचंद की तुलना चन्द से करता है—

जनम लियो है सज प्रेम सुधा सागर वा ।
बापुरो मयक प्रगटयो है जल खारी को ।
घटत बढ़त सजहीन तजमान हात
बान दिन दूनो तेज कीरति कुमारी को ।
वह सकलक 'दास' दुखद चरोर, वह
भेटत बलक भव पोपत विहारो को ।
घन में छिपत यह घन स्याम सग सदा ॥
मद करै चढ़हि अमद दुति प्यारी को ॥^४

दास जी बलमसप्रदाय में दीप्तित थे । अतः उहाने राधाकृष्ण के बिहार का बड़ा ही विभूषणकारी वर्णन किया है । उनकी राधा कृष्ण के साथ हिंदोले पर झूठे वृष्टिगोचर होता है । काँच का भावना में शृङ्गार का पुट है लेकिन भक्तिरस की प्रधानता है—

भीनी भीना बूँदनि परति बडो सोभा अति,
चमकि चमकि विजु जिय डरपात्र है ।
साल मखमली बोर बहू भूमि डालें मानो,
बूँद अनुराग नेह मेह बरसावे है ॥
मरे अनुराग बैठे प्यारे प्यारी मूले माहि
ससीजन गावत बजावत भुलावे है ।

१ किशोरीलाल गुप्त, भारतेन्दु और उनके अग्र्य सहयोगी, पृ० ४३० ।

२ किशोरीलाल गुप्त, भारतेन्दु और उनके अग्र्य सहयोगी, पृ० ४३१ ।

३ सपा० श्यामसुन्दरदास, राधाकृष्णदाम प्रभावला (फुटकर ४), पृ० ६४ ।

४ किशोरीलाल गुप्त, भारतेन्दु और उनके अग्र्य सहयोगी, पृ० ४३१ ।

‘दास’ देखि सोमा यह भूलि जात दुख सबै
प्यारी भू डरति प्यारा अग लपटावै है ॥^१

कवि प्रेमोपासक है। अन प्रेममयी युगल सरकार की मूर्ति से भगल कामना करता है—

लखि प्रम विवम पिय जब भुक् अति अति सकोच डारी गरै।

यह प्रेममई मूरति दोऊ नित नित नव भगल करै ॥^२

प्रेम का पथ ही विचित्र होता है। प्रेम सरोवर में जो गितना हो डूबता है, डूबता ही जाता है—

मन सो मन अरु हार सा हार उरभि रहे देह।

धनि उरभनि यह प्रेम की घय घय यह नेह ॥^३

कवि में दैन्य की प्रवृत्तता है। वह मासारिख माया मोह और फल से अपने को विलग करना चाहता है। फलस्वरूप अपने प्राणनाथ से प्राथना करता है। कवि का स्वकीय भाव यहाँ बहुत ही सरस और हृदयप्राही हुआ है—

प्राणनाथ प्रीतम ललन, पूरन परमानन्द।

राखी अपन चरन म करि सकल भव फट ॥^४

राधाकृष्णदास ने बहुत कम कविताएँ लिखी हैं।^५ इसलिये उनकी कविता करने वाला के रूप में विशेष प्रसिद्धि नहीं हुई है। फिर भी जितना काव्य साहित्य उपलब्ध है इससे सिद्ध होता है कि कवि में भक्ति-भावना का प्रवाह अच्छा है, वह कृष्ण का ही नहीं बल्कि राम और जानकी का भी अनन्य भक्त है।

६क पद द्रष्टव्य है—जिसमें सीता अपन माय्य की सराहना करते हुई कहती हैं—

यह कोकिल रख शीतल छाया यह तुम सग बिहार।

प्राणनाथ बहै भाग हमारे यह सुख सहज पियार।

ज्यो ज्यो घन गरजत बरसत इत ल्यो त्यां तुब गर लागि।

परमानन्द अलौकिक सूनत नित नित नव अनुरागि।

यह गिरि अबनि सोहावनि भरना भरते चारुहँ ओर।

प्रबल प्रवाह पहाडी नगिया बहनि करत कल रोर।

राज मवन सुत साज सबै, पै तुम बिन हमको फीको।

हमरे भाग सुहावत बिराजत प्राणनाथ सुख दीना।

तुम मेरे जीवन घन प्यारे तुम चरननि सुख दीजै।

राधाकृष्णदास की जीवनि नैन प्रेम जल धीज ॥^६

कवि राम की कृपा का आकांक्षी है। वह जानता है कि वह मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम भव भय से दूर कर देता है। वह अपने जना के रजन के निमित्त समस्त म्वाधों को त्याग देता है। अतः कवि उसकी आराधना में अपने का लीन कर देता है। वह राम का अनन्य भक्त है। राम के नर रूप को भव भव मजनकारी मानता है।

१ सपा० श्यामसुन्दर दास, राधाकृष्णदाम ग्रथावली, (फुटकर ३) पृ० ६३।

२ वही, पृ० ६६।

३ विश्वरीलाल गुप्त, भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, पृ० ४३४।

४ सपा० श्यामसुन्दर दास, राधाकृष्णदास ग्रथावली, पृ० ६५।

५ विश्वरीलाल गुप्त, भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, पृ० ४३४।

६ सपा० श्यामसुन्दर दास, राधाकृष्णदास ग्रथावली, पृ० २५।

जाने लगा। गुप्त जी को संपादन कला में पूर्ण सफलता मिली। उनकी प्रतिभा अनुभूत अक्षर से चमक उठी। श्यामसुन्दरदास ने इनके संपादनकला को भूरि भूरि प्रशंसा की है।^१

गुप्त जी का हिन्दी पत्र 'हिन्दोस्थान' से संवत् १८७७ ई० में एक सप्ताहिका के रूप में स्थापित हुआ। बाद में १८८६ में आप इसके संपादक हुए। इस प्रकार गुप्त जी ने हिन्दी संज्ञाती, भारतमित्र आदि कई एक पत्रों का संपादन किया। आप एक कुशल संपादक के नाते हिन्दी साहित्य में विशेष भाग्य हैं।

गुप्त जी की केश भूषा बड़ी साधारण थी। ये शरीर से स्वस्थ थे। आपका शरीर बड़ा ही प्रभावकारी था। आप नियमित रूप से गंगा स्नान करते थे। स्नानादि के उपरांत वैष्णवीकृत प्रसाद के कारण सध्यावन्त, गीता और विष्णु सहस्रनाम का पाठ करते थे। इसके बाद तो आप कुछ लिखने बैठते थे। इस प्रकार गुप्त जी में हृदय की शुद्धता, निष्पटता और पणपातहानता थी। आप बड़े गंभीर लेकिन मृदुभाषी थे। हास आपका बड़ा ही तोता होता था।

भक्ति भावना

बालमुकुन्द एक भक्त कवि थे। उन पर किसी संप्रदाय की छाप नहीं पड़ी थी। स्वतंत्र रूप से वे प्रभु चिन्तन किया करते थे। राम और कृष्ण में भेद न मानकर वे दोनों की उपासना किए हैं। विरोधकर वे एक राम की तरफ ही आश्रित रहे। राम की उपासना करने में उनकी भक्ति निरंतर आई थी। प्रभु कृपा प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि प्रभु के समक्ष अपने देह का प्रशसन किया जाय। अतः हमें रामस्तुति के पद मिलते हैं जिनमें भक्त अपने अवगुणों का उल्लेख कर अपने आराध्य देव का अनुग्रह प्राप्त करने की कामना प्रकट करता है। वह सब प्रकार से अयोग्य है। अपनी दशा के बारे में जब जब सोचता है उसको आँखें जल पूरित हो जाती हैं। अतः यह कर्म-फल पर विश्वास कर मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के रूप को हिय में बसा लेना गहना है। वह प्रभु की तारण-श्रुति से अपरिचित नहीं है—

हम प्रभु दीन मलान हीन सब साँति दुखारी।

धम्मरहित धनरहित ध्यान व्युत बहु अविचारी ॥

यदपि न काहूँ भाँति मुख मोगत कर मन फल।

सोचि सोचि निज दशा मर्यो आवत आँखिन जल।

ये तदपि होत सूखो हियो,

हृदयो मुमरि दिन आज को।

राज तिलक हिय में बसो,

श्रीरामचन्द्र महाराज को ॥^२

कवि अपनी दीनता के अन्तर्गत सब भगवान् के ऐश्वर्य की तरफ आवर्तित होता है तो प्रभु अपनी अपार लीलाओं से उसे बाह्य जगत् में रमा लेते हैं। वह उन्मत्त और तल्लीन होकर अपने इष्टदेव का ऐश्वर्य रूप दर्शन करता है और वह एक अपूर्व और सरस आनन्द का अनुभव करता है। उस

१ श्यामसुन्दर दास हिन्दी कोविद रत्नमाला, प्रथम भाग, इण्डियन प्रेस, प्रयाग प्र० सं०, १९०६, पृ० ६६।

२ बालमुकुन्द गुप्त, स० यशोनाथद अक्षरी, स्फुट कविता (एक स्तुति), भारत मित्र प्रेस कलकत्ता, पृ० ३।

जगन्निघता की सासारिक सीलाएँ उसके मानस को उत्फुल्ल और आनन्दित करके एक ओर जहाँ उसे स्वान्त सुख प्रदान करती हैं वहाँ दूसरी ओर उसकी भक्ति-भावना को एक अतीन्द्रिय जगत् में और अपने उपास्य भूतगाकर वाणी को रख स्निग्ध करती हैं। निपाद और सुग्रीव से प्रभु की मित्रता का वर्णन कर कवि अपने का ध्येय समझता है। उसके अग-अग पुलकित हो जाते हैं। गुप्त जी अपने आराध्य देव के ऐश्वर्य रूप को बहुत ही तल्लीनता और आत्मविमोहता से व्यक्त करते हैं—

नेही जानि निपाद नीच छाती सो सायो ।

सछमन सम प्रिय भापि प्रेम सो हियो जुदायो ॥

स्वाद बसानि बछानि भीलनी फल खाये ।

निज कर पकज ताहि दाह कर आये धाये ॥

जय बालि सुतहि पायब करन,

निरखि जाहि पुलकित हियो ।

करि तिलक माथ करि राय के

भीत रम राजा कियो ॥^१

विष्णु के अवतारों में राम और श्रीकृष्ण को सर्वाधिक प्रसिद्धि मिली। राम सबसे रमने वाले हुए और कृष्ण गोपीवल्लभ के नाम से प्रसिद्ध हुए। कवि राम के रमने वाले रूप का वर्णन करते उनके शिशुत्व की भाँकी प्रस्तुत करता है। वह अपने भक्त जनो के रञ्जन के निमित्त दशरथ के सदन में अखिल ब्रह्म का रूप भुला कर शिशु रूप से क्रीडा करता है—

शिव विरचि अहिराज पार कोऊ नहि पावै ।

सतकादिक सुक नारद सारद ध्यान लगावै ॥

मुनिगन जोग समाधि करहि बहु विधि जा करन ।

तदपि रूप वह सबहि न करि उर अतर धारन ॥

सो अखिल ब्रह्म रूप धरि,

खेलत दशरथ के सदन ।

बौशल्या निरखत मुदित मन,

जपति राम आनन्द धन ॥^२

गुप्त जी विष्णुव थे। उनका भगवान् के अवतारों में पूर्ण विश्वास था। वे राम को विष्णु का अवतार मानते थे। इस प्रकार उनके राम भक्तचित्तमान हैं। कवि उन्हें सर्वशक्तिमत्पन्न मान कर अपना दैव्य प्रदर्शित करता है—

जप बल तप बल बाहु चौकी बल है राम ।

हमरे बस एकी नहीं पाहि पाहि श्रीराम ॥^३

कवि अपनी लघुता का वर्णन करते हुए दोनता की चरम सीमा पर पहुँच जाता है—

अपने बल हम हात की रोटी सकल न राम ।

नाथ बहुरि नैमे मरै मिथ्या बल करि साख ॥^४

१ बालमकुन्द गुप्त, स० यशोदानन्द अखौरी, स्फुट कविता (एक स्तुति), मारत मित्र प्रेस कलकत्ता, पृ० ३ ।

२ वही, (राम स्तुति), पृ० २ ।

३ वही, (श्रीराम स्तोत्र), पृ० ६ ।

४ बालमकुन्द गुप्त, यशोदानन्द अखौरी, स्फुट कविता (श्रीराम स्तोत्र), पृ० ६ ।

गुप्त जी के इष्टदेव का व्यास व्यक्तित्व (विषयूजिव पर्सनाल्टी) वैष्णव धर्म में ईश्वर की सार्वभौम शक्ति ही है। कवि उसकी शक्ति पर पूर्ण आस्था रख उसमें तमय हो जाता है और उसकी प्रेम विमोचता भगवान् की भक्तवत्सलता पर अपना सुध-बुध गाँव देती है। कवि पर दुःख वातरता तथा दीन दुखिया की ओर प्रेम भाव की अनन्यता का जब वर्णन करने लगता है तो साधु नयन नाम की महत्ता का गुण गान करता है। ऐसे समय वह भगवान् की गरिमा का वर्णन करते हुए धक्का नहीं—

अब आय तुम्हारी सरन हारे के हरिनाम ।
साख सुनी रघुवशमनि निबल के बल राम ॥
जब सौं निज बल नर रह्यो सरयो न जग को काम ।
निबल हूँ हारे मज्यो छाये आये नाम ॥
छलबल करत कपीस को मिट्यो न नाथ बलेस ।
निबल हूँ जब पद गहे मयो सालि को सेस ॥
दीन सुदामा के किये छल मे कवन धाम ।
दशरथ गति भई गीय की जपत नाथ को नाम ॥^१

मनुष्य का अन्त मन बड़ा चंचल होता है। उसकी चंचलता का वर्णन सभी कवियों ने किया है। गुप्त जी को मन की चंचलता का बोध शून की भाँति वेधता है। उन्होंने मन की विषय भाग में अनुरक्ति का बड़ा ही सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है। कवि यहाँ कबीर की भाँति ही अपनी अकम्बलता का परिचय देता है। उसे इसकी परवाह बिल्कुल ही नहीं है कि सासारिक सुखों में लिस समाज उसे क्या कहेगा। मन की चंचलता तथा विषयासक्ति का वर्णन इस प्रकार है—

मन तू फिर धूँत फिर घाटत ।
बबहु बन जब, बन मत गजे बीतराग भगु हाटत ।
बबहु विषय भोग कर परतिय धूँक सार तक घाटत ।
मन लसचाति बहुरि हर पद रति कर मुख मूम न बाँटत ॥
वृथा जनम जग जीव विषय मुख करिसन योव्य काटत ।
ज्यो शत छिद्र पेन की बसता फिर काटत फिर साटत ॥^२

गुप्त जी वैष्णव मतावलम्बी थे। लेकिन अर्थ धर्मों की इज्जत करते थे। इन्होंने कभी किसी धर्म पर प्रहार नहीं किया। उनके अतमक धार्मिक सकीर्णता का भाव नहीं था। हिंदू धर्म की विशिष्टता स्वीकार करते हुए भी वे हिंदू और मुस्लिम ऐक्य की बात कहकर कबीर के निकट स्थान बना लेते हैं यथा—

अल्ला गाढ अह निराकार मे भेद न जानो भाई रे ।

इन तीनों को जी मे अपने जानो भाई भाई रे ॥^३

हिंदू धर्म में प्रचलित कुप्रथाओं का उन्होंने धीरे विरोध किया। धर्म के प्रति अविश्वास वेद, पुराण, गीता आदि की बिगड़ी मर्यादा के प्रति उन्होंने आक्रोश प्रकट किया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कवि कट्टर सनातनधर्मी है। उन्होंने लिखा है—

१ वही, पृ० ६ ।

२ डा० नत्थन सिंह, बालमकुन्द गुप्त जीवन और साहित्य, पृ० ३६४ ।

३ बालमकुन्द गुप्त, स्फुट कविता (रामानुज), पृ० ११ ।

पै हमरे नहिं धम्म कम्म कुल कानि बडाई ।
हम प्रभु लाज समाज आज सब छोय बडाई ॥
भेटे वेद पुरान याय निष्ठा सब छोई ।
हिंदू कुल मरजाद आज इन सबहिं छोई ॥
पेट भरन हित फिर हाथ बूकर से दर दर ।
चाटहिं ताके पैर लपकि मारै जो ठोकर ॥^१

गुप्त जी राम के अनन्य भक्त हैं । उनके हृदय में राम के प्रति निरन्तर प्रेम है, वह अवगणीय है । कवि अपनी करनी पर परचासाप करता है । उसे विश्वास है कि वह खुद ही भगवान् को भूल गया है । वह पतित है, उसके हृदय में तो भक्ति है और न तन म बल है । यथा—

तुम नहिं भूले राम प्रभु हमही भूले हाथ ।
जहाँ तहाँ मारै फिर तुमसो नाथ बिहाय ॥
तन महीं सकित न होय महीं भक्ति हमारे राम ।
अधम निकम्मे आलसी पाजी डील हराम ॥
हूबत अम्बु अगाध महीं बेगि अबागे आप ।
हम पतितन को नाथ बिन नाहिन आन उपाय ॥
अब तुमसो बिनती यहै गरीब नवाज ।
इन दुखियन अखियान महीं बसै आपको राज ॥^२

गुप्त जी साकार ब्रह्म में आस्था रखते थे । अब प्रभु की सेवा में निरत रहना उसके जीवन का लक्ष्य था । नर देह की सार्थकता तभी सिद्ध होती है जब कि वह प्रभु के किसी काय में सहयोग प्रदान कर सके । यदि ऐसा करना संभव न हो सका तो कवि परचासाप की दृष्टि में अपने को भस्मीभूत समझता है । अपने को वह बहिर और गिद्ध से भी हेय समझता है क्योंकि जटायु ने तो प्रभु की सेवा में आत्म समर्पण कर दिया—

और मुनो हम गीघ एक लखो तुम्हारे हेत ।

जब सो तन महीं बल रयो तज्यो नाहि रन खेल ॥^३

फिर तो कवि मानस में उषल-पुषल मच जाता है । वह जाग्रोष भरे शब्दों में वह उठता है—

बानर गीघहैं ते गये प्रभु हम नर तनु पाप ।

नाथ तुम्हारे एकहु नाम न आये हाथ ॥^४

अतः उसकी प्रबलतम इच्छा है कि—

नाथ कबहूँ नथु आइहे हमहूँ तुम्हारे नाम ।

ऐसी अवसर है कबहूँ पावेंगे हम राम ॥^५

कवि बार बार सासारिक वासनाओं से व्यथित जीवन को धिक्कारता है—

१ बालमकुन्द गुप्त, स्फुट कविता (राम स्तुति) पृ० ११ ।

२ बालमकुन्द गुप्त स० यशोदानन्द अवधौरी स्फुट कविता, (राम स्तुति) पृ० १५ ।

३ वही पृ० १४ ।

४ बालमकुन्द गुप्त स० यशोदानन्द अवधौरी, स्फुट कविता (रामस्तुति), पृ० १४ ।

५ वही, पृ० १६ ।

धर्म न अर्थ न काम के नाहि राम सा प्यार ।

ऐसे जीवन पोच वहै बार बार धक्कार ॥^१

उसे पूर्ण विश्वास है कि दयालु दीनबन्धु का वरद हस्त जिन पर पड़ जायेगा वह भवसागर से मुक्त हो सकता है। वही अनाथों का नाथ है। उसके बिना जीवन तैया भ्रमघार ही में चक्कर काटती रह जाती। अतः भगवान् से प्रार्थना करता है—

नाहिन पार वसात बछु बुद्धि करत नहि काम ।

सूझत नाहि सुपय प्रभु दया करो श्रीराम ॥

राम आप बिन का गहे परे गिरे को हाथ ।

नाथ अनाथन के सदा तुम हो हो रघुनाथ ॥

बूझत है भवसिंधु मह बेगि उबारो राम ।

नाथ आप सा दूसरो बिगरो देहि बताय ॥^२

ईश आराधना के साथ साथ कवि गुप्त जो ने भक्ति स्वरूप सखी और दुर्गा की भी आराधना की है। सखी को वे जगत्-माता मानते हैं। उनका विश्वास है कि जगत का कल्याण दुर्गा की कृपा दृष्टि से ही समझ है। विद्या-बुद्धि आदि जगत्-माता दुर्गा की अनुकम्पा का ही फल है। उनके विश्वास में अनप्यता परिलक्षित होती है। कवि के शब्दों में—

बहा भयो जो मरि पवि कै बहु विद्या पाई ।

पोषि पत्रन की घर मह अति भीर लगई ॥

रही मात तब दया बिना सब विद्या छूठी ।

बहुत पसारे हाथ बास काहू नहि पूछी ।

नहि जननी विद्या बुद्धि को तब बिनु नेक उठाव है

धिव जीवन तब करना बिना सोसोकहा दुराव है ॥^३

वह दुर्गा से गौरीशंकर के चरणों में चित्त रमा देने के लिए प्रार्थना करता है। वह दुनियाँ के समस्त वैभव को ठोकर मारता है। कवि को विश्वास है कि दुर्गा महारानी की कृपा से ही शिव गौरी की आराधना समझ है। इस प्रकार कवि यहाँ भव घोषित होता है।

मांगता हूँ गति मुक्ति बछु अरु नाहि विभो की सुवाहना मेरी ।

नाहिन चाहत हूँ बहु नान नही कछु सोलुपता सुख कैरी ।

जाचत हूँ जननी अब तोहि दया करिकै मोहि सी बर देरी ।

जीवन जीतै सुनो मन री शिव गौरी ही गौरी सदा जप ते री ॥^४

दुर्गा माता को वह शक्ति का अवतार, दारण दुःख दाहक और पाप-पुण्य मजक मानता है। अतः वह तद्गुणीन प्रवाह में बहते हुए देश के कल्याणाय माँ दुर्गा का आवाहन करता है।

जयति सिंहवाहिनी जयति जय भारत माता ।

जय असुरन दल दलनि जयति जय त्रिभुवन माता ॥

१ वही, पृ० १६ ।

२ वही, पृ० ६ ।

३ बालमकुन्द गुप्त, संपा० योशोना अखोरी, स्फुट कविता (देवीस्तुति), पृ० ४८ ।

४ वही, पृ० २० ।

सग सरस्वति अर नमला सोमा बाढी बाँति ।
चारहु ओर गगन वारे सेना सुर सेनापति ॥
बब जननी चाही हम सा, सदा वास भारत करी ।
घनधान्य अनद बढाय बै, दरिद सोक ससय हरी ॥^१

गुप्त जी में कविकुल तुलसीदास और भक्तशिरोमणि सूरदास की भाँति ही आत्मनिवेदन का पक्ष प्रवल है। वे पाप-पुत्र भजक दारुण दुःख निवारक परम पद दायक भाग्यवन से अपना दैन्य प्रकट कर नाम स्मरण करने की शक्ति की याचना करते हैं। यहाँ उनकी भक्ति भावना स्तुत्य है। कवि के अन्तर्मन की यह सालसा अवलोकनीय है—

हम कोऊ लायक नहीं सब लायक प्रभु आप ।
दोनहु ते अति दोन हूँ बेगि मिठावहु ताप ।
तुम बिनु प्रभु की दूसरो बिगरी कहि बनाय ।
दया करी केरो दसा होहु कृपातु सहाय ॥
राज पाट धन बल गयी जावहु कृपाधिधान ।
ऐ न जाय यह अरज है तुम्हारे पन् को ध्यान ।

इस प्रकार गुप्तजी की भक्ति-भावना में वैष्णवता कूट कूट कर मरी हुई है। उनकी भक्ति-भावना में सद्गुणीन कविता धारा का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होने के कारण देशभक्ति का स्वर ऊँचा था। इनकी भक्ति भावना में भारतीयता और देशप्रेम के स्वर ही विशेष रूप से अभिव्यजित हैं।

राव कृष्णदेवशरण सिंह गोप

जीवन रेखा

राव साहब भरतपुर रियासत के श्री दुर्जन साल के वसन्त थे। कहा जाता है कि ये उनके पीत्र थे।^१ इनके जन्म और मृत्यु की तिथि अभी अज्ञात है। मृत्यु तिथि के बारे में ब्रजरत्नगम और त्रिशोरी साहब, गुप्त दोनों विद्वज्जनों के विचार एक स हैं लेकिन निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि १८६६ या १८६७ ई० में उनकी मृत्यु हुई।

राव साहब ठाकुर जगमोहन सिंह की भाँति ही काशी बाइस इस्टिबूट में पढ़ने के लिये सरकार द्वारा भेज गये। यही घर उनकी नागरी नागर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से मुलाकात हुई। प्रथम परिचय में ही ये भारतेन्दु के अनन्य भक्त बन गये। राव साहब काशी में शिवपुर मुहल्ले के भरतपुर कोठी में रहते थे।

राव साहब एक सज्जन पुरुष थे। काशी में इन्होंने अपनी प्रवृत्ति के अनुसार ही समाज सुलभ हुआ। भारतेन्दु जी तथा अन्य कवियों के समागम से आप की छिपी नवित्व प्रतिभा का विकास पल्लवित हुआ। ब्रजभाषा पर आपका जगमग अधिकार था।^२ आप भावुक और सद्गुण्य थे ही। गायन वादन में आप प्रवीण थे। फलस्वरूप आपके वामन हृदय की सरल प्रतिभा ने आपको भी भारती

१ बालमकुन्द गुप्त, स्फुट कविता (देवीस्तुति), पृ० २६।

२ वही, पृ० ६।

३ ब्रजरत्नगम, भारतेन्दुमहल, पृ० ३४।

४ वही, पृ० ३६।

मन्दिर का पुजारी नियुक्त किया। आप एक सरस कवि हो गये। कविता की गेयता के लिए तत्कालीन कवि समाज में आपकी ख्याति हो गई।

आप बड़े ही कलाप्रिय व्यक्ति थे। वीणावादिनी की उपासना में आपकी 'दिलराम' नामक वीणा के तार जब बोलम उगलियो का साहचर्य पाते तो मधुर स्वर लहरियाँ से समस्त काशी की काया को वपन बना देती। इस तरह आप वीणा के बड़े शौकीन थे। कहा जाता है कि शुतुभुग के अडे का एक छोटा सा सितारा आपने स्वयं बनाया था। आपकी कारीगरी का इससे उत्तम उदाहरण और क्या हो सकता है। इसके अतिरिक्त भी आप की कारीगरी के अनेक उदाहरण मौजूद हैं। कहा जाता है कि इन्होंने लोहे का एक बहुत बड़ा फव्वारा स्वयं ढाला था, जिसमें बहुत सी गोपियाँ हाथ में पात्र लिये चारों ओर खड़ी हैं और इनके बीच में एक पहाड़ बना हुआ है, जिस पर श्रीकृष्ण ऊपर की छोड़ने के भाव से हाथ में पिचकारी लिये हुए बैठे हैं तथा, उनकी गोद में सिर रखकर राधिका लेटी हुई है। पिचकारी से बराबर फुहार छूटा करता है। यह फव्वारा बोल फीट के घेरे में बना हुआ है। इसका मूल्य एक अमेरिकन सज्जन अस्सी सहस्र दे रहे थे।^१ इस प्रकार की कारीगरी से गोप जी की कला प्रियता और उनकी भक्ति भावना दोनों का पता चलता है। कला का किसी कवि के हाथ से ऐसा सौन्दर्यपूर्ण स्वरूप अत्यन्त दुर्लभ है। राव साहब फोटोग्राफी भी जानते थे। राव साहब बड़े ही मिलनसार स्वयं विनोदप्रिय व्यक्ति थे। खानदानों रईस होने के कारण विलासी भी थे। मावुक्ता इनमें इतने थे कि मानाप्रमान का विस्तृत क्वाल ही नहीं करते थे। इसी मावुक्ता के प्रबल प्रवाह में पड़कर जीवनसम की अर्निध सुन्दरी पुत्री के पीछे पीछे बम्बई तक गये। जब वह अपने देश के लिये जहाज पर चढ़न लगी तो इनके रसान्ध्यासी हृदय की मोह निद्रा टूटी।

आप विनोदप्रिय स्वयं साहित्यमर्मज्ञ थे। कवि समा में आपकी ख्याति विशेष थी। सुबान्तर जी आपसे विशेष प्रभावित थे। भारतेन्दु जी जो के तत्कालीन समाज के आप सदस्य थे। आप अपनी गलती को स्वीकार करते में सकोच नहीं करते थे।

भक्ति भावना

गोप जी एक भक्त कवि थे। वे रागानुगा भक्ति के पायक थे। उनकी भक्ति भावना में प्रेम का मनमाहक वपन मिलता है। कवि का विश्वास है कि भगवान् के भेद के बारे में सभी अनभिक्त हैं। वह अपने बृद्ध निश्चय से सबको परिचित करा देता है। उसके रूप के बारे में मतभय नहीं हो पाया। वेद, पुराण आदि बृद्ध निश्चय पर नहीं पहुँच पाये। तब कवि के विश्वास को बल मिल जाता है। वह अपने प्रेम की गोपनीयता के बारे में स्पष्ट संकेत कर देता है कि जो प्रेम को छिपा कर रखता है उसे परम पद कहा सुलभ है। यथा—

नाथ तेरी भेद न जानत कोय ।

निगुन बहुत अल्प गिनत पुनि जडहूँ मानत सोय ।

छुद्र जीव अति मूढ़ ग्रसित भल ताकतो तोहि समोय ।

यदि सिद्धान्त निवारि यहै जिय आपु रहे सब खोय ।

वेद पुराण बाण नाना करि हरि थकि पुनि रोय ।

गोप परम पद पावै क्यो जो प्रेमहि राख्यो गोय ॥^२

१ ब्रजरत्न दास, भारतेन्दुमठल, पृ० २७ ।

२ हरिश्चन्द्र मैगजीन, १८३३ ई० दिसम्बर, सख्या ३, पृ० ७७ ।

गोप श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हैं। उन्हें शृंगार सम्राट श्रीकृष्ण पर पूर्ण विश्वास है। उनके प्राण उनके लिये तड़पते रहते हैं। कृष्ण उनके हैं और वे कृष्ण के हैं—

ब्रजराज राखिये मेरा मन ।

सब जानत हम आपूहि के हैं काहू की नहिं करत कान ।
यापे जो मोहि बिसरायो तो इस बिहारी होय नादान ।
मिलो बिलम्ब न करो पियारे तुम बिन तलफ्त पापी प्राण ।
गोपहि दै विश्वास मिलन की चाहत हो ययो अब भगि जान ॥^१

कवि का प्यारा भगवान् बड़ा ही सुकुमार है। उसने दीनो को आशा बहुत बार पूरी की है। कवि का पूर्ण विश्वास है कि वह नन्दकुमार छोड़ेगा नहीं—

प्यारे दीखत सो बहुते सुकुमार ।

कठिन बानी कसे यह मोहन घरी जीय अतिहि निरधार ॥
दीनन की आसा हूँ पूरी करत सुनो तुम बहुतै जार ।
ललकि रहे लोचन निरखनि को चरन युगल जन सुख दातार ।
जो भक्तन केवल सुख दीवै प्रगट्यो भूमि हरन बहु भार ।
गोपहि सो पहिचान छाडि हैं नहिं कबहुँ वह नन्दकुमार ॥^२

कवि सासारिक प्रपञ्चों से ऊँचकर भगवान् से प्रार्थना करता है कि हे कृष्णसिन्धु तुम अपने गोप की लाज बचाओ। तुम अशरण के शरण हो और तुम्हारे जन की यह दुर्दशा। भक्त भगवान् को उपासम्म देता है—

भाषो यह गति तुम्हरे जन की ।

बूझत है धराय सोई प्रभु चरन चाह जिहि रही लखन की ॥
सरनागत प्रतिपाल होम हरि सुरत बिसारत अपने जन की ।
भूलत नहिं गज धाय अबारन मुकुट समारन पैँट कसन की ॥
तुमको कहा बहुत अब कहिये अन्तरजामी जानत मन की ।
कृष्णसिन्धु काहू अपनेये लाज राखिये गोप लखन की ।^३

ससार में किसी चीज का विचार नहीं है। भगवान् के भजन में भी बाधा है। जो उसका ध्यान करता है वही भूल और गँवार है। लोग अपन विवेक से काम नहीं लेते। वे कम रज्जु में बंध कर बार बार देह धारण करते हैं, लेकिन उस प्रभु से प्रेम नहीं करते—

प्रभु यह कहा जगत विचार ।

तोहि जो सब त्यागि निसदिन भजत होत सो खार ॥
लोग सबही गिनत निज के ताहि मूर्ख गवार ।
हँसत निंदा करत मद्यपि लहत नहिं कछु सार ॥
कर्म रज्जु बंधे पावत नीच देह अनेक ।
गोप नहिं जिय प्रेम लावत ॥^४

२ वही, पृ० ७६ ।

१ हरिश्चन्द्र मैगजीन, सन् १८७३ ई०, दिसम्बर सम्ख्या ३, पृ० ७६ ।

२ वही, पृ० ७७ ।

३ हरिश्चन्द्र मैगजीन, सन् १८७३, दिसम्बर, संख्या ३, पृ० ७७ ।

नन्दलाल धीवृष्ण के मधुरा गमन पर सभी को दुःख है। गोमुन के ब्यालवाल, बछड़े आदि सभी उनके लिये व्याकुल हैं। समस्त गोकुल में शोक का समुद्र सहरा उठा है—

अब बहा गयो वह मोहन पार ।

गोहन बछरन गोप गोपिजन सबसौ धनी पियार ॥

जमुना बूल निबुज धलन भ सबवे^१ वर तो पूर बरार ।

मेया याप विपाकुल छोड़े नहिं काहू की सुनी पुनार ॥

सब सो तोरि गयो ब्रज सो बडि सोग बखेरयो घरन मभार ।

गोप कठिन भई दसा सबन की बरनन पावै कोऊ पार ॥^२

ब्रज के लतापता में व्याकुलता क्यों न हो ? कृष्ण तो सबके समा थे। सभी को वे प्यारे थे। वे दुराव नहीं जानते थे। यदि जानते थे तो कवि उनसे इस दुराव के लिये बड़े ही ममगुण वाणी में निवेदन करता है—

तू तो मोहि प्रानन ते प्यारी है काहे को करत दुराव ।

आओ मेरे ललना चारि घरी को मोहन मुख दरसाव ॥

अग मनग भरोरत जारत हिय लागि साहि बुझाव ।

गोप पियासी जानि बहुत मन भावन अघर पियाव ॥^३

वह और अभीर होकर कहता है—

प्यारे अब नाही रहि जात ।

सह्यौ न जगत दुसह दुख मोहन जाव न घीर घरात ॥

बब लौ तुम बिन प्रान देह मे रहि हैं नाहि ललात ।

तुम सो सुरत न करत ललन पै विरह जराबत गात ॥

बेहि अपराध लागि मन फेर्यो सो नहि माहि जनात ।

हूँ ब्रजराज गोप कह निसरत जात न सहि यह बात ॥^४

कवि अपनी दीनता को प्रकट करते हुए अपने को सर्वथेष्ठ पापी घोषित करता है। उससे और उसने प्रभु में होठ लगी है। वह पतित ही नहीं बल्कि पतित शिरोमणि है। उसके पापों का लेखन करने में चित्रगुप्त थक गये हैं—

पाप करन मे कोउ सरि मेरी नर तन नाहि लखाय ।

मेरे पातक भार अपाराहि घरनि घरे न सहाय ॥

सीसहि स्वेद होत नाहि सहरत सीसन रह्यो नवाय ।

चित्रगुप्त हूँ हारे करि करि लेखन ही ठहराय ॥

जम हूँ उचित देउ नहि पाव अचित रह्यो सिरनाय ।

नक लल भली परयो देखिबे भीरीन तहा समाय ॥

बहुत कहा कह्यो गुरसरि हूँ जिहि वेदन महिमा गाय ।

सोऊ समरथ भई न तक कह्यु शुचि करिवे भो काय ॥

हरि हूँ पावन पतित रहे तऊ चली न कछु बसाय ।

समा भेद उल्लसि गये सो पातक रोस बढ़ाय ॥

१ वही पृ० ७६ ।

२ वही पृ० ७६ ।

३ हरिवचन्द्र मैगधीन, दिसम्बर १८७३, संख्या ३, पृ० ७७ ।

क्यो न होय मोहिं गव होड मे हरि सो जीती जाय ।

पतित शिरोमणि गोप कहायौ किन्ही पाप अघाय ॥^१

उस परमात्मा के प्रति गोप का अनन्य प्रेम है । उनके बिना उनके प्राण निशदिन तड़फते रह जाते हैं । उसकी गति के बारे में कवि हिरान है । कवि की इस अज्ञानता में उसकी कातरता स्पष्ट झलकती है—

अब प्रभु तलफन लोप प्राण ।

अति कठोर दुःख सह्यो जात नहि विसरत तुम्हरो ध्यान ॥

जोय नहि धीर घरत बैसहु दरस रूप लखान ।

अंतरजामि होय कृपानिधि दुःखानि कठिन किमि ठान ॥

नैन दिये को कहा दयानिधि जौ नहि रूप लखान ।

कहा रहत क्यो का पर रोझत गोप परत नहि जान ॥^२

कवि की उपासना में सखी भाव की उपासना की अप्रतिम स्थान है । वह अपने साबलिया के विरह से घायल है । उसे पता ही नहीं चलता कि यह विरह-दुःख कब तक सहना पड़ेगा । वह अपने प्रेमीपासक के लिये अघोर हो उठा है । उसने धैर्य का बाध टूट गया है । क्या न टूटे ? वह तो उसका मन तन प्राण सब कुछ है । कवि अपने प्रियतम ब्रजराज पर अपने को 'यबछावर कर चुका है—

विरह दुख सजनी कब सौं सहिये ।

हरि चरन ते विमुख रहे जे तिन सय बसि जिय सहिये ॥

कोउ नहि मिलत बियोगी पिय को जासो मिलि कछु कहिये ।

नहि जीय धीर घरन अब बैसहुं छिन छिन विषा उलहिये ॥

गोप प्राण तन मन तुम सरबस लालन विसरि न चाहिये ॥^३

अत ऐसी परिस्थिति में अब वह इस ससार में रहना ही नहीं चाहता । प्रेम की इस तरह की अभिव्यक्ति अयम दुःख है—

अब मोहि भावत नहि जग रहियो ।

भावत मुरति हियो फाटत पिय यह दुःख कासो कहियो ॥

कहू बे रास बिलास जमुना तट प्रीति रीत को कहियो ॥

अति एकान्त फुञ्ज की लीला आनन्द सिंधु उमहियो ॥

निसदिन नैनन हेरि हेरि मुख सोमा अति सुख सहियो ।

गोप राज ब्रज मुरति बिसारी परयो विरह दुःख सहियो ॥^४

कवि अपने प्रियतम की इस रीति की अनीति की सज्ञा देता है । उसे वह उपात्तम्भ देता है कि उनकी यह रीति उपहास्यास्पद है ।

गोहन क्यो अनीति मन भाई ।

सब सो तोरि नेह चरन म जोरि यह मन भाई ॥

ताहू पै परतीति न मानो जग उपहास कराई ।

यद्यपि हृती अघम निदित अति पै निब और लगाई ॥

१ वही, पृ० ७८ ।

२ हरिश्चन्द्र मैगजीन, दिसम्बर १८७३ ई०, संख्या ३, पृ० ७८ ।

३ वही, पृ० ७७ ।

४ हरिश्चन्द्र मैगजीन दिसम्बर १८७३ ई०, संख्या ३, पृ० ७७ ।

गोप निरास [होय जग जीवति पूरे भूठ बसाई ।

वेदहु मानत जाकी बातें तिनहि हाथ ठगाई ॥^१

उसकी प्रबलतम सालसा है कि वह प्राण प्यारा मोहन मनो मे वास करे । एक दण में लिये मो वह अपने प्यारे से विलग नहीं होना चाहता—

प्यारे नैनन भरिये वास ।

दिन मति टरो युगल आये ते रहो सग अब पास ॥

नहि जानत कब प्राण निवसि हैं दुख नित बाढत जात ।

सपनहूँ मे जो नहि तुम देखि क्यों हूँ न दिवस सिरात ॥

देह पर रहि ठौर प्राणपति जिय तुमसो नहि दूर ।

गोपहि जानि प्रसति रज भारी दोऊ दरसन मूरि ॥^२

और फिर उनके आनाकानी करने पर उसे विश्वास न्तिजाता है कि इसमें तुम्हारी हानि ही क्या है—

यामे बहा तिहारी हानि ।

भलब तनिक निज रूप जुगल की जो दिखरावहु आनि ॥

नहि जायै नहि कुछ फिर मागे मौन गहे जिय आनि ।

हूँ है बीच छूटि हैं दुख सो यह निहये जिय मानि ॥

छाडि सब धन धाम नाम जप तप सज्जा कुल कानि ।

गोप बिचारि ब्रजभूमि रैन दिन साम गिनै नहि हानि ॥^३

गोप जी में अपने प्रभु के प्रति अगाध प्रेमा है । उनकी विह्वलता में सूर का सा भाव स्पष्ट व्यजित होता है । वह सूर की भाँति ही अपने को दीन^४ और पतित^५ की सजा से विभूषित राधा-कृष्ण की युगल रसीली मूर्ति के सामने भाव विह्वल हो जाता है । विलम्ब उससे सहा नहीं जाता । युगल चरन की शीतल छाँह ही उसके लिये अलम् है । कवि की वाणी में कितनी कश्मकश है, यह देखते ही बनता है—

१ वही, पृ० ७७ ।

२ वही, पृ० ७७ ।

३ हरिचन्द्र मँगजीन, दिसम्बर १८७३ ई०, पृ० ७६ ।

४ अहो हरि दीनन पर करि छोह ।

अपने जनहि न नाथ विसारिये करिये कुछ जिय मोह ॥

प्रभु जिन गहे चरन अति गाढे रहे जात हैं सोह ।

दरस सालसा जिय अति गाँगी नहि पावत कहूँ जोह ॥

भटकत फिरत लहत फल कछु नहि होय तिहारो दास ।

गोप भली नहीं रीति रावरी बिसरत है विश्वास ॥

वही, पृ० ७६ ।

५ सुनो हरि या पतितहु की डेर ।

बहुत दीनन को परयो पुकारत भई अब बहुत अवेर ॥

कधणासि घु चरन पवज की छाँह राखिये चाहै ।

पुरवहु यह अमिलाख कृपानिधि गोप न कछु जग चाहै ॥

वही, पृ० ८०

अहो हरि अब मति बिलब लगाओ ।

बेगि कृपानिधि सुरति कीजिये छिन न मोहि बिसराओ ॥

प्रीति बाधक जे सान सनेही तिनसो मोह धुराओ ।

तुम दोउन को अधिक रसीली मूरति हिये बसाओ ॥

प्रेम नेम हिय एक धारि निसि वासर नीर बहाओ ।

गोपहि प्रभु अब युगल चरन की सीतल छाँह बुलाओ ॥

अन्त मे मक्त भगवान् को चुनौती देता है—

प्यारे कब ली अरज करौं ।

तुमरो हिय तो कठिन कुलिस ते याही ओच मरौं ॥

जो मूरति दिन टरै न नैनन बिरह बढाय जरौ ।

ताहि मूँद दृग ध्यान धारियत यह दु ख क्यो बिसरौ ॥

मेरी बेर अवसि कहना करि परखहु मन अगिलाख ।

गोप जगत नाहो ! तो तुमरी जैहँ सबरी साख ॥

अध्याय ६

भारतेन्दुयुगीन अल्पज्ञात भक्त कवि एवं उनकी भक्तिभावना

बाबा रघुनाथ रामसनेही

जीवन रेखा

बाबा रघुनाथ रामसनेही अयोध्या के मह्य थे। इनका जन्म स० १८७३ वि० में 'जिला बारा-बंकी के चैतेपुर ग्राम में हुआ था। इनका रचनाकाल स० १९०० वि० है।^१

ये बड़े सपत्नी और मगधमत्त महात्मा थे। ये सरपू के निकट छावनी में रहा करते थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'ये अयोध्या के एक साधु थे और अपने समय के बड़े भारी महात्मा माने जाते थे। स० १९११ वि० में इन्होंने 'विश्रामसागर' नामक एक बड़ा ग्रन्थ बनाया जिसमें अनेक पुराणों की कथाएँ सन्नेप में दी गई हैं। भक्त जन इस ग्रन्थ का बड़ा आदर करते हैं।^२ भक्ति सम्बन्धी उत्कृष्ट वाक्य रचना आपने की है जो साधारण श्रेणी की हैं।^३ आप हिन्दी और संस्कृत दोनों के ज्ञाता थे। आपा आपकी गोस्वामी तुलसीदास से मिलती जुलती है।

आप रामानुज सम्प्रदाय के मह्य थे। आपने देवनाग जी से दीक्षा ली। विद्योगी हरि ने इनके सम्बन्ध में लिखा है—

रामभक्त रघुनाथ दास जू रामसनेही,
रामानन्दि भदन्त सहज सन्तन गुन गेही।
विरचित ग्रन्थ विश्राम सागरहि हरिगुन पायो,
घर घर भी परचार जासु पद ऊँची पायो ॥^४

आपका विश्राम सागर एक बड़ा ग्रन्थ है। आप राम हो नहीं कृष्ण के भी परम भक्त थे। कवि इसमें मंगलाचरण के अतिरिक्त चौर पुरुषों महात्माजी, सती नारिया और पुनीत त्यक्हार का वर्णन करते हुए नवधामभक्ति और पदशास्त्रों का भी उद्घाटन करता है। समस्त ग्रन्थ में दोहा और चौपाईयो की छटा गोस्वामी तुलसीदास की याद ली जाती है। कवि वाल्मीकि के बारे में कहता है—

मारा मारा कहे तो मुनीस ब्रह्म सीन भयो
राम राम कहे तो न जाना कौन पद है।
जनम हराम कह्यो राम जू की धाम पायो
प्रगट प्रभाव सब पोषिन में गय है ॥
ऐसेहू समझि सीताराम नाम जो न भवै
जब रघुनाथ जानी तासो पेरि हय है ॥^५

१ मिश्रबन्धु 'मिश्रबन्धु विनो', भाग ३, हिन्दी ग्रन्थप्रसार मंडली, प्रथम संस्करण, १९७० वि० पृ० १०६५।

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ० ५३२।

३ मिश्रबन्धु 'विनो' 'मिश्रबन्धु विनो', भाग ३, पृ० १०६५।

४ विद्योगी हरि 'कवि जीवन', साहित्य भवन ग्रं० वि०, प्रयाग, प्रथम संस्करण, १९८० वि०, पृ० ५६०।

५ मिश्रबन्धु 'मिश्रबन्धु विनो', भाग ३, पृ० १०६५।

युगलानन्दशरण

आपका जन्म पटना जिले के इस्लामपुर नामक ग्राम में सन् १८७५ वि० (सन् १८१८ ई०) की वार्तिक शुक्ल सप्तमी को हुआ था ।^१ आप ब्राह्मण परिवार के सुत्र थे । बाल्यावस्था में ही आप की माता का देहान्त हो गया । अतः मातृस्नेह आपको नहीं मिला । बचपन में ही आपका उपनयन संस्कार हुआ । आपके दो भाई और दो बहनें थीं । बचपन में आपके कृष्ण जी नामक विद्वान् से विभिन्न शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त की ।

आपने स० १८९० वि० में सत युगलप्रिया जी से दीप्ता ली । युगल प्रिया ने ही आपका नाम युगलानन्दशरण रखा । इसके पूर्व आप हेमलता के नाम से पुकारे जाते थे । कहते हैं कि आप बचपन से ही विरक्त स्वभाव के थे । आपकी बस्ती फल्गु नदी के तटवर्ती होने के कारण प्राकृतिक सुपमा का केन्द्र है । अतः आप प्रकृति की धुनीत गोद में किसी झड़ी के नीचे बैठकर भगवद्भजन में तल्लीन हो जाते, भूल-व्यास बिसर जाती । बड़े प्रेम से भगवान् शंकर की आराधना करते ।^२

आपका व्यक्तित्व बड़ा ही विशाल था । आप बहुभाषाविद् थे । आप यात्रा, संगीत और मूल्य युद्ध के प्रेमी थे । स्वामी युगलप्रिया का शिष्यत्व ग्रहण करने के बाद से आपकी रूचि तीर्थाटन की तरफ हुई । इसी उद्देश्य से आपने काशी, चित्रकूट और अयोध्या आदि पुण्य तीर्थों के दर्शन किये । अयोध्या का लक्ष्मण किला तो बाद में आपका निवास स्थान हो बन गया । इस तरह आपने यात्रा में अपने जीवन का बहुभाग खर्च किया । आपकी यात्राओं के दो उद्देश्य थे । एक तो भारतीय धर्मसाधना के इतिहास में इन स्थानों की पुण्य प्रतिष्ठा है, दूसरे इनके भक्त हृदय को इन स्थानों के भ्रमण से एक प्रकार की शान्ति मिलती थी ।

- आपकी रचना के बारे में कोई स्पष्ट तिथि तो ज्ञात नहीं है, लेकिन इतना निर्विबाध है कि आप भारतेन्दुकाल के प्रमुख रामभक्त कवियों में से हैं । आप प्रभु के निराकार और साकार रूप के विमर्द का कारण स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि निराकार में सुख नहीं है । साकार रूप ही सरस है । विवेकहीन पुण्य ही यत्र तत्र भटकता फिरता है—

निराकार सब में बसत, भक्तन हिय साकार ।

युगल-अनय विचार विनु भटकहि अघ गवार ॥

निराकार में सुख नहीं केवल व्यापक रूप ।

सरस रहस साकार मधि श्री श्रुति शेष निरूप ॥^३

इस विमर्द के कारण ही भक्तों की विभिन्न कोटियाँ बन गई हैं—

कोई नाम रूप भजि शक्त हुए, कोई अस्मृति शासन ब्रजे हुए ।

कोई निगुण ब्रह्म समझते हैं सुप मात्र आमन करते हुए ॥

१ डा० भगवतीप्रसाद सिंह रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, अवध साहित्य मन्दिर, बलरामपुर, प्रथम संस्करण, स० २०१४ वि०, पृ० ४६५ ।

२ शिवभूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, सन् १९६३ ई० प्रथम संस्करण, पृ० ८ ।

३ रामलाल शरण परमाचार्य युगलानन्दशरणजी, भक्तचरित्रांक, वर्ष २८, सं० १, सं० २००८ वि० पृ० ५१७ ।

४ डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र भाषव रामभक्ति साहित्य में मयूर उपासना, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पृ० २६५ ।

कोई महा विष्णु का जाप किए उर माल छाप मुज लसे हुए ।

जालिम ! हम हाथ वहाँ जावे तेरे जुल्म जाल में फसे हुए ॥^१

कवि उसे सीमाप्यशाली समझता है, जो राम रस का पात्र करता है—

रामरस पीवत जो न सुभायो ।

तिनके माग अलग सराहत सुर मुनीश अनुरागी ॥

लाय लाय लय लगन मन मगन अतन तीन तम त्यागी ॥

होय रहे मदहोश जोश छकि परा प्रीति मति पायो ।

शुभन-अनय शरन सांचे सद शौकी विमल बिरागी ॥^२

रामभक्ति सम्प्रदाय का रसिक भक्त विधि मर्यादा की सामा का अतिक्रमण करने का साहस नहीं करता । यह विधि-मर्यादा रसिक भक्त की प्रमुख उपलब्धि है, लेकिन युगलान्तरण के निम्नोक्त दोहे में इसका उचित निर्वाह नहीं हो पाया है । यहाँ उगस्य युगन की मधुर सीलाओ के वर्णन में कवि ने मर्यादा की अवहेलना कर दी है ।

मधुर मनोहर चरित बर, दम्पति केलि कलाव ।

निरखे हरखे एक रस, परि हरि अमित विधान ॥^३

प्रस्तुत दोहे में कृष्ण-काव्य का प्रभाव स्पष्ट लक्षित है । कृष्ण भक्त कवियों के पन्ने में सखियों का लता गुल्मों से राधाकृष्ण की रति के रस के दशन का वणन बहुलाश पन्ने में प्राप्य है । यह कृष्ण काव्य की सखी भावोपासना का प्रमुख अंग है ।

भारतेन्दु के प्रादुर्भाव के समय आपके हाथ में लेखनी थी । आप एक वैष्णव भक्त थे । लेकिन आपके बारे में यह किंवदन्ती है कि स्वयं भगवान् शंकर ही आपको पञ्चरत्न (छै रासायन) धन का उपदेश दिया । आपकी भक्तिभावना से प्रभावित होकर रीवा नरेश 'महाराज सिंह' और मौलाना हक तथा अन्य सूफी सन्त भी आपके दशनाथ आये थे ।

आप बहुभाषाविद् तो थे ही, साथ ही साथ संस्कृत और हिन्दी पर आपका पूर्ण अधिकार था । आपकी काव्य रचनाभक्तिभाव से ओतप्रोत है । आपके रचे हुए कुल ८४ ग्रन्थ बतलाये जाते हैं । इनके ग्रन्थ प्रणयन प्रवृत्ति के बारे में हिन्दी के शीर्षस्थ विद्वान् श्रीशिवपूजन सहाय ने लिखा है कि ग्रन्थों की संख्या की दृष्टि से सम्प्रदाय के पूरे इतिहास में इतना अधिक पुस्तकाकार रचना और किसी की नहीं मिलती ।^४

इस तरह युगलान्तरण जो की भक्तिभावना में विशेष कर साधनिया बिहारीलाल का ही प्रमुख स्थान है । कवि की उपासना में श्रद्धा र सम्राट् श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी का माधुर्य भक्तजन के मन की रसाव करता परिलक्षित होता है । कवि कृष्ण के रूपसागर में सदैव मस्त रहता है ।

आचार्य गुरुदत्त दास

आप बाराबकी जिला-तर्गत पुरखा देवीदास के रहने वाले थे । आपका जन्म वि० सं० १८७७ में हुआ । आप सत्यनामी महंत थे । बचपन से ही रामनाम की धुन में लग गए थे । आप रामभक्त

१ वही, पृ० २७३ ।

२ डा० मुबनेश्वरनाथ मिश्र माधव रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृ० २७४ ।

३ डा० मगवती सिंह रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४६७ ।

४ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ६ ।

कवि हैं। राम की भक्ति ही आपके जीवन का लक्ष्य था। भारतेन्दु से तीस वर्ष बड़े होने पर भी आपने भारतेन्दु युग की अवधि को स्पष्ट देखा था।

यदि जग राम रूप सब जानहु ।

एकै राम रमेव सबहि माँ अंबर न दूसर मानहु ॥

दोन अधीन रहो सबही तैं हरिजस सदा बखानहु ॥

सुमिरत रहो नाम दुइ अच्छर अनत डोर नहिँ तानहु ॥

जन 'गुरुत्त' जने अनुभवै उर जो प्रतीत मन जानहु ॥

काम ब्रूय उपज नहीं, लोभ मोह अमिमान ।

यदि पायन ते बचि गये, ते ठहरे चौपान ॥

दम अपराध मचाय कै, भजे राम का नाम ।

'गुरुत्त' साची कहै पावै सुख विश्राम ॥

रामनाम गुप्तै रहै, प्रगट न देय जनाय ।

'गुरुत्त' तेहि भक्त की बार बार बलि जाय ॥

भज न सीताराम को करे न पर उपकार ।

'गुरुत्त' तेहि मनुस तैं सग रहो हुसियार ॥'

गुरुदत्त जी एक साधु प्रवृत्ति के कवि थे। राम के अनन्य उपासक होने का कारण इनका वाणी राममय हो गई थी। इनका विश्वास था कि 'राम-नाम' अनमोल मन्त्र है। इसके जपने से ससार-सागर से मनुष्य पार उतर जाने का सामर्थ्य उपलब्ध कर सकता है। 'राम-नाम' नहीं जपने वाले मनुष्य पर आप विश्राम भी नहीं करते थे। रामनाम ही इनके जीवन का सार है। कवि के हृदय में राम के प्रति अगाध श्रद्धा है।

महात्मा बनावदास

जीवन रेखा

ये भारतेन्दुगुणीन रामोपासक कवि थे। यद्यपि इनका जन्म भारतेन्दु युग से पहले हुआ है, लेकिन इनकी साहित्य साधना का प्रस्फुरन भारतेन्दु के आतिर्भाव के बाद ही हुआ है। इनका जन्म सन् १८२१ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम गुरुदत्त सिंह था। गोहा जिले के अशोकपुर ग्राम के वासी थे। ये क्षत्रिय वंश के सुशोभित करने वाले एक महात्मा थे। इन्हें साधारण शिना मिली थी, लेकिन ज्ञान की अतः सतिना इनके पास प्रकृति से विरासत रूप में आई थी। परिणामस्वरूप बचपन में ही आपने पुनर्जन्म न लेने का व्रत ले लिया।^१

बचपन में ही आप शिवपूजा-मानस पाठ आदि धर्म साधनाओं में जुड़ गये। पिता जी को यह शुष्क व्यापार अच्छा नहीं लगा। अतः आपकी शागै कर दी गई। शादी से आपकी पूजा, उपासना में कितना प्रसार का अवरोध उपस्थित नहीं हुआ। कुछ दिनों के पश्चात् आपको एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। उसने भी आपकी भक्ति साधना में बाधा न डालने के क्लृप्त से अल्पवय में ही साथ छोड़ दिया।

१ कल्याण सतवाणी विशेषांक, वर्ष २६, सं० २०११ वि०, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ० ३६४।

२ बाबू थरदा हिये बालपन ते अतिमारी।

यदि तन नाघी जक्त फिरौं नहिँ अबकी पारी ॥

डा० भगवती सिंह रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४८२।

बनादास शव के साथ ही अयोध्या चले गये । फिर क्या था ? सासारिक मोह माया छोड़कर परम विवश महात्मा हो गये । यही से आपके जीवन में एक बान्तिशारी परिवर्तन होता है । आप तीर्थ यात्रा को निकल पड़े । तीर्थयात्रा में ही आपने भक्ति का ज्ञान परमहंस सियावल्लभमरण से लिया ।

आप इस युग में रामभक्तिशाखा के प्रमुख कवि थे । राम ही आपके आराध्य थे । आपने ६४ ग्रन्था की रचना की । इन ग्रन्था से आपके अध्ययन और ज्ञान का विशद परिचय मिलता है । आप बड़े ही निस्पृह व्यक्ति थे । धन का लोभ तो आपकी विल्कुल ही नहीं था । शिक्ता ती है कि एक बार महाराज रघुराज सिंह आपको दस हजार की धैली देना चाहते थे, लेकिन आपने यह दोहा—

जाचव, जाव, जमाति, जर जोरु जाति जमीन ।

जतन आठ के जहर सम, बनागस तजि दीन ॥^१

पढ़कर उन्हें निस्तर कर दिया ।

आपका व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली था । आपने किसी को सिर झुका कर प्रणाम नहीं किया । आपका अटल विश्वास था कि जब सिर भगवान् को अर्पण कर दिया तो दूसरे के सामने सिर झुकाने से इष्टदेव का अपमान होगा—

सिर दिया सरकार को सो और को कैसे जब ।^२

आप बड़े ही मधुनापी थे, लेकिन कठोर सत्य के पुजारी थे । आपको जीवन में मिश्रा मागने की आवश्यकता नहीं पड़ी । बाह्याङ्गमय से आपको बड़ी चिढ़ थी । निर्गुण परम्परा प्रवक्त कबीरदास की भाँति ही आप इनकी बहुत आलोचना करते हैं । आपका अनुभव अगम्य है । आप कितने कुशल पारखी थे । देखिये—

अजब रंग अनुमी भरसी लाग ।

राम शोध मद आस बासना, अक जवासहि भरसी लाग ॥

लोभ-मोह परद्रोह दोष दु ख कलि कुचाल सब तरसी लाग ॥

जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनि गुन विधि निषेध को गरस लाग ॥

इन्द्रो दमन अमन सब भातिहि अरवि होन अब छरसी लाग ।

मन बुधि चित हकार धूरि मे, जग बेवहार सो जरसी लाग ।

धीर विवेक बोध अनुरागहि ज्ञान बिरागहि परसी लाग ॥

क्षमा सील सतोष सुराई साति सहज सुख सरसी लाग ।

दास बना अपि नाम सो उपजा मुक्त करत नहि अरसी लाग ।^३

×

×

×

आप राम और जानकी के अनन्य भक्त थे । जनकनन्दनी जानकी को ही आप माता समझते थे । अतः आप सान पान औषध उपचार आदि की फिक्र किञ्चित मान भी नहीं करते थे । यथा—

भोजन सिय क भेजो पेहो ।

रुखो सूखो सरो नकारो परम प्रेम ते खेहा ।

१ हा० भगवती सिंह रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४८३ ।

२ कल्याण, मत्तचरिताक (विशेषाक), वष २६, २००८ वि०, पृ० ५५७ ।

३, कल्याण भक्तिचरिताक (विशेषाक), वष २६, स० २००८ वि०, पृ० ५५८ ।

जगत आस तजि मयी आपु को अब पर घर नहि जैहो ।
बनादास किमि आस करै पर आपु को दास कहै हो ॥^१

और भी—

को तन ताप हरै सीता विन ।
बात सीत ज्वर जुरे और करि जानि अबल मोहि अति त्रासा इन ।
बहु उपाय करि कै हारयो हिय आय सुभ्रत कोऊ नाहिन ॥^२

×

×

×

आपकी भक्ति दास्य भाव की है । आपका विश्वास है कि राम भजन से यह शरीर राममय हो जाता है—

राम भजे मये राम यही तन, जे मन बुद्धि औ चित्त अह सब ।
विधि और निषेध न जानत बेद, मये सब छेन अनद मये अब ॥
सृष्टि प्रसै चित्त भूलि गई नहि जानत देस औ काल अहै कब ।
'दास बना' हम ब्रह्म, हमी स्वर, आवत है उठे स्वास जबै जब ॥^३

×

×

×

सेवत सेवत सेव्य के सेवकता मिटि जाय ।
'बनादास' तब रोकि कै स्वामी उर सपटाय ॥
माचत बोले बहुत दिन रीझ्यौ नहि रिझवार ।
'बनादास' तेहि नाथ को बार बार धिरकार ॥
बला कुसल तो सुन्दरी धूँषट को नहि दीन ।
बनादास जाकी अदा एक तास बस कीन ॥^४

×

×

×

रहना एकान्त सब वासना को अंत बिये,
सात रस साने औ न छेद उत्साह है ।
धीर कुटिछायें, जाल जटा को मुढायें, मोह,
कोह को नसायो सदा बिना परवाह है ।
उधिम की डारें, मन मारे, ओ बिसारें बेद,
हार हक सारे औ बिचारें गुन गाह है ।
तरक तकरीरी औ जगीरी तीनिहूँ लोक ।
'बना' आस फरक तो फरीरी वाह वाह है ॥^५

बनादास की कविताओं में रचनाशैली की विविधता, प्रबंध की पटुता और काव्य सौष्ठव का अद्भुत संयोग पाया जाता है । डा० भगवतोप्रसाद सिंह ने लिखा है कि गोस्वामो तुलसीदास के बाद बनादास रामभक्ति शाखा के सर्वोत्कृष्ट कवि ठहरते हैं । इनकी कृतियों में निगुणपथी, सूफी और रीतिकालीन

१ वही, पृ० ५५८ ।

२ वही, पृ० ५५७ ।

३ संतवाणी विशेषांक, कल्याण, वष २१, अ० २००८ वि०, पृ० ४३६ ।

४ वही, पृ० ४३६ ।

५, वही, पृ० ४३६ ।

रचना-पद्धतियों का भी प्रयोग हुआ है।^१ इनकी भक्ति-साधना का आधार रामभक्ति है। आप रसिक सम्प्रदाय के सिद्धहस्त कवि थे। आपने तुलसी के भाग का ही अनुसरण नहीं किया बल्कि रामकाव्य को भवर जाल में पड़ी नौका का मार्ग प्रदर्शन किया। रामकाव्यधारा राजनीतिक प्रपञ्चों में पड़कर क्षीण होती जा रही थी। राम का उज्ज्वल चरित्र भक्तजनो के मानस-पटल से प्रायः लुप्त हो चला था। वना दास की लेखनी ने रामकाव्य की सुरसरि बहा पुनः मा भारती के मज्जुल भास में राम को महिम का स्थान सिद्ध कर दिया। इस प्रकार रामकाव्य की धारा पुनः प्रतिष्ठापित हुई। कवि मानस राम के मर्यादापुरुषोत्तम रूप को शृङ्गार की धारा में अववाहित कर भूम उठा। उनका मनमयूर नाच उठा। भक्तों को वाणी भावपूरित हो गई।

महाराज रघुराज सिंह

जीवन रेखा

य एक अत्यन्त सत्कारी और उन्नत जीव थे। इनका जन्म सन् १८८० वि० में हुआ था।^२ पिता के महाराज विश्वनाथ सिंह आपके पिता थे। इस राज्य परिवार की भक्ति निष्ठा और काव्य प्रेम आदि इतिहासगत तथ्य है। यह परिवार बड़े बड़े सत्तो विज्ञान और पण्डितों का आश्रयदाता रहा। महाराज रघुराज सिंह की भक्ति और शिक्षा परिवार से विरामस में मिली थी। बचपन से ही आप पढ़ने में बड़े मेधावी थे। साधु-सत्संग सुलभ होने के कारण आपने हृत्प्रेम में धम की धारा प्रवाहित हुई। परिणामस्वरूप आप राम और कृष्ण के अनन्य उपासक हो गये। आपकी धमनिष्ठा अत्यन्त स्तुत्य और सराहनीय थी। आप त्रिपाल सञ्चारवन्दन के अम्पासी थे। कहा जाता है कि बिना एक हजार गायत्री मन का आप किये आप जल तक ग्रहण नहीं करते थे।^३

आप के दीक्षा गुरु वज्रव महात्मा मुकुन्दाचाम थे तथा विद्या गुरु रामानुजाचार्य थे। मुकुन्दाचार्य को आपने राजगुरु के पद प्रतिष्ठित किया था।

आपका व्यक्तित्व बड़ा ही विशाल था। आप कुशल प्रशासक, कवि और कलाकार थे। कविता तो आपकी पैतृक सम्पत्ति ही थी। पूरा जीवनवास्था में ही आपने तीर्थयात्रा आरम्भ की। उस समय आप २८ वर्ष के थे। द्वारका, मथुरा, पुष्कर, काशी आदि स्थानों की यात्रा से भक्ति का बीज जो आपके अंतःस्तर में था वह पुष्पित हो नहीं बल्कि फलदाता भी बना। जाधवापुरी भगवान् की मूर्ति के सामने पहुँचते ही मन्दिर का पट बन्द हो गया। भक्त विरल हो उठा। विरह विदग्ध हृदय से कल्याण की धारा छन्दा के रूप में प्रवाहित हो 'जगदीश शठव प्रभु' के चरणों में समर्पित कर दिया। इस समय आपकी अवस्था तत्तीस वर्ष की थी। यही आपकी पहली रचना है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आप भारतेन्दुगुण कुशल कवि थे, क्योंकि आपकी इस यात्रा का आपके जीवन में बड़ा महत्व है। यह यात्रा सन् १९१२ वि० में सम्पन्न हुई थी। यही से राजनीति साहित्य के सामने माथा टेक देती है। महाराज रघुराज सिंह ने भगवान् राम और शृङ्गार सन्नाट कृष्ण की परमपवित्र कथा लिखने में अपनी कवित्व शक्ति का सदुपयोग किया। भगवान् कृष्ण यदि आपके उपास्य थे तो राम में आपकी महती निष्ठा थी। यदि राम के चरणों में 'रामस्वयंवर' समर्पित किया तो रसिकराज कृष्ण के सामने

१ डा० भगवती प्र० सिंह रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४८५।

२ रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, भा० प्र० समा, काशी, पृ० ५३२।

३ कल्याण भक्तचरिताव विशेषांक, वर्ष २६, सं० २००८ स० १, पृ० ७६१।

मनोमुग्धकारी वातावरण उपस्थित करने के लिये 'रक्तिमणी परिणय' की रचना की। आपकी भक्ति दास्यभाव की थी।

भारते दुकालीन पुरानी घारा के प्रधान कवियों में आपका स्थान है। आप वणानात्मक प्रबंध काव्य लिखने में सिद्धहस्त थे। 'रामस्वयम्बर' लिखकर आपने एक बड़े अभाव की पूर्ति की है। यदि बनादास गोस्वामी तुलसीदास के बाद रामभक्तिशाखा के सर्वोत्कृष्ट कवि ठहरते हैं तो प्रबंध पटुता में आपकी प्रतिमा उनसे होड़ लेने लगती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार आपके चार ग्रंथ राम स्वयम्बर, रक्तिमणी परिणय, आनन्दाम्बुनिधि और रामाष्टयाम काफी प्रसिद्ध हैं।^१

आप वैष्णव भक्त ही नहीं थे बल्कि वृष्णव मत के प्रचारक भी थे। वैष्णव भक्ति के प्रचार एवं प्रसार में आपने भक्तिविलास और भक्तमाल आदि ग्रंथों की रचना की। आप सत्कार को राममय मानते थे। आपने एक स्थान पर स्वयं कहा है कि 'मुझे ऐसा लगता है कि इस सत्कार में राम से बढ़कर कोई दूसरा क्या है नहीं है।'^२

आप एक रामभक्त कवि थे। राम के अनन्य उपासक थे। राम के एश्वर्य का वणन आपने बड़े ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

अनल उदह को प्रकाश नव लह छाये,
ज्वाल चह मानो ब्रह्मह फोरे जाय जाय।
पुरी ना लखात ज्वालमालै दरसाति एक
लोहित पयाधि मयौ छाया एक छाया छाय ॥
देवता मुनीस सिद्ध चारण गवर्ष जते,
मानि महा प्रलै बेगि ब्योम और घाय घाय।
देखि रामराम हेत दीन्ही सक लाय सदै,
चाप मरे चले कविराय यश, गाय गाय ॥^३

—रघुराजसिंह

आपका देहावसान स० १६३६ वि० में हुआ।

स्वामी जानकीधरशरण जी

आपका जन्म कैलाश जिलान्तगत कलाफरपुर नामक ग्राम में सन् १८७६ वि० में हुआ था^४। आपके पिता का नाम मेहरबान मिश्र था। आप सरयूपारीण ब्राह्मण थे। बचपन में ही आपने संस्कृत और फारसी का गम्भीर अध्ययन प्राप्त कर लिया। जीवन प्राप्त करते ही आपके पिता जी ने आपको गृहस्थी में लाने के विचार से विवाह कर दिया। लेकिन आपके हृदय में भक्ति लता का अंकुर बचपन से ही अंकुरित हो रहा था। अतः स्वामी युगलानन्दशरण ने इन्हें 'श्रीसीताराम' युगल मंत्र की दीक्षा दी। तदुपरान्त आपने काशी, चित्रवूट, कामाख्या आदि तीर्थस्थानों के भ्रमणार्थ गृहत्याग किया।

१ आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ५३२।

२ कल्याण, भक्तचरितक विशेषांक, वर्ष २१, स० १, स० २००८ वि०, पृ० ७६२।

३ चतुरसेन शास्त्री हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, गीतम नुकडियो, निल्ली, द्वितीय संस्करण, १९४६ ई०, पृ० ४२५।

४ डा० भगवती सिंह रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४८०।

आपको भगवत्प्राप्ति प्राप्त हुई। युगल उपासना ही आपके जीवन का लक्ष्य बना। आप सीताराम की युगल छवि का मधुर दर्शन प्राप्त करने के लिये बराबर विवश रहते थे। आपने अनेक लोगों को साधना की सुधा सलिला में अवगाहन कराया। आप करुणा और उदारता की भूति थे। निवदन्ती है कि आप अवध से मुलतानपुर जाकर कई मास रहे। वहाँ से वही जाते समय एक भयंकर जंगल में जा पहुँचे। जंगल में ही रात्रि हो गई। ये एक वृक्ष के नीचे भूखे ही पड़े रहे। उस समय सीतामय ने सुन्दर बालक का रूप धारण करके इन्हें भोजन बनाकर खिलाया और तुरन्त अदृश्य हो गये^१। आप द्वारा रचित मिथिला महात्म्य नामक ग्रन्थ का पता चलता है। स्फुट कविताएँ ज्यादा उपलब्ध हैं। आपका उपनाम प्रीतिलता था।

आप स० १६५८ में माघी अमावस्या के दिन परलोक सिधारे^२। आपकी रचनाओं में से भक्ति-भावना प्रकट करने वाला एक पद यहाँ प्रस्तुत है—

चित्त ले गयो चुराय फुलफाँ म भला ।

हम जानी, थे कृपासिन्धु हैं तब उनसे भई प्रीति भला ।

बिरहो जनको दुःख उपावत करत नयी नयी अलख्य बला ।

प्रीति लता पीतम वेदरदो छाडि हम बित गयो बला ॥^३

सत सालिगराम

सत सालिगराम का जन्म आगरा शहर के पीपलमण्डी मुहल्ले में स० १८८१ वि० की फाल्गुन सुनी ८ शुक्रवार के दिन साढ़े चार बजे प्रातःकाल के समय एक प्रतिष्ठित माधुर कायस्थ कुल में हुआ था^४। इनका उपनाम हज़ूर साहब था। इनके पिता का नाम रायबहादुर सिंह था। ये बड़े शिवभक्त थे। कहते हैं कि सालिगराम अपनी माता के गर्भ में १८ मास रहने के बाद उत्पन्न हुए थे। इनकी शिक्षा फारसी से प्रारम्भ हुई और वी० ए० तक शिक्षा चलती रही।

ये बड़े मेधावी तथा कमठ व्यक्ति थे। सब प्रथम आपने डाक विभाग में मौकरी गुरु की। इसी विभाग में आप पोस्टमास्टर जेनरल तक उन्नति करते चले गए। इसी योग्यता के कारण इन्हें राय बहादुर की उपाधि मिली।

ये राधास्वामी सत्संग के दूसरे गुरु थे। इन्हें इस सत्संग की शिक्षा शिवदयाल सिंह से मिली थी। शिवदयाल सिंह स साक्षात्कार सयोगवश सिखों की पुस्तक 'पंचग्रन्थी' के गूढ़ रहस्यों को समझने के लिये हुआ। शिवदयाल सिंह से प्रथम मुलाकात में ही ये काफी प्रभावित हो गये। और उन्हीं गुरु मानकर उनकी सेवा करने लगे। प्रसिद्ध है कि 'स्वामी जी महाराज के प्रभावशाली व्यक्तित्व की इन पर ऐसी धाक जम गई कि ये उन पर पूणत भुग्ध हो गये और उनके निकट प्रति सप्ताह, फिर सप्ताह में दो-तीन बार तथा अतः प्रति दिन जाने लगे और फिर उनकी सेवा-टहल तक करने लगे। इनका सेवा-काय कुछ दिनों के अनन्तर यहाँ तक पहुँच गया कि ये तृतीय सिख गुरु अमरदास की भाँति अपने गुरु के आराम के लिये प्रत्या छोटा से छोटा काम भी करने लगे और इस प्रकार इन्होंने अपने को उनके चरणों में अर्पित कर दिया^५।

१ भक्तचरिताक विशेषांक कथाण वर्ष २६, स० २००८ वि०, पृ० ७१८।

२ सतवाणी अंक, कल्याण वर्ष २६, स० २०११ वि०, पृ० ४०६।

३ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, वर्ष २६ स० २०११, पृ० ५०६।

४ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ० ६६२।

५ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ० ६६४।

आप हुजूर महाराज साहब के मरने के बाद सत्संग कराने लगे। आपका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। आपकी रचनाओं का एक सग्रह 'प्रेमवाती' के नाम से प्रसिद्ध है। आपने राधास्वामी मत प्रकाश नामक एक ग्रन्थ अंग्रेजी में लिखा है। इस ग्रन्थ में राधास्वामी-सत्संग की मुख्य बातों पर प्रकाश डाला गया।

आप एक सत कवि थे। अपने गुरु के परमभक्त थे। अपने गुरु के प्रति कृतज्ञता की भल्लव आपके हर कामो से स्पष्ट भल्लवती है। वे गुरु के प्रति परम कृतज्ञ हैं और उन्हें परम पुरुष पूरन घनी राधास्वामी कहकर अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। उदाहरण द्रष्टव्य है—

सतगुरु पूरे परम उदारा दया दृष्टि से माहि निहारा ॥
दूर देश से बसकर आया दरशन कर मन अति हरलाया ॥
सुन सुन बचन प्रीत यह जागी चरन सरन में सुरत पागी ॥
करम भरम सशय सब भाया राधास्वामी चरन बड़ा अनुरागा ॥
पहुँची फिर सतगुरु दरबारा, अतब अगम की जाय निहारा ॥
वहा से भी फिर अघर सिधारी मिल गए राधास्वामी पुष्य अपारी ॥
वहा जाय कर भारत गाई, पूरन दया दासने पाई ॥^१

कवि की भक्ति के स्वरूप के बारे में जो विचार हैं वह बहुत ही महत्वपूर्ण हैं, यथा—

तन मन धन से भक्ति करा री।
कोरी भक्ति नाम नहि आवै, याते हिये में प्रेम भरा री ॥
परम पुरुष राधास्वामी चरनन में जो सतसंग में प्रीत घरोरी ॥
दया कर गुरु भेद बताव तब धनु सग सुत अघर चढोरी ॥
दीन गरीबी पार हिये में उमम उमग गुरु चरन पढोरी ॥
राधास्वामी मेहर कर जब अपनी भवसागर से सज्ज तरोरी ॥^२

कवि प्रेमाभक्ति का अनन्य उपासक है। उसके विचार से घर का कोई भी काम प्रेम के बिना सम्पन्न नहीं हो सकता। उदाहरण प्रेषित है—

प्रेम बिन चले न घर की चाल।

सतसंग करे समझ तब आवै गुरु चरनन में प्रीत सम्हाल।
गुरु भक्ती की रीत सम्हारे छोटे जग की चाल औ ढाल।
गुरु स्वरूप का धारे ध्याना शब्द सुने तज भाया स्थाल।
घट में देखे विमल प्रकाशा, भगन होय सुन शब्द रसाल।
प्रीत प्रतीत बड़े तब ग्नि ग्नि पावे राधा स्वामी दरग विशाल ॥^३

वह अपने प्रभु का अनन्य उपासक है। वह उससे विनय करता है। उसकी प्राथना में उसका दैन्य प्रबल है।

रगीले रग देओ चुनर हमारी।

ऐसा रग रमो किरपा कर जग से हो जाय यारी।

१ परशुराम चतुर्वेदी (संपादक) सत काव्य, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९५२ ई०, पृ० ५५६।

२ परशुराम चतुर्वेदी सत काव्य, इलाहाबाद, १९५२, पृ० ५६३।

३ वही, पृ० ५६३।

यह मन नित उपास उठावत, याको गढ सो सारी ।
निर्मल होय प्रेम रग भोजे, जावे गगन अटारी ।
तुम्हारी दया होय जब मणि सुरत अमम पद धारी ।
रावास्वामी ध्यारे मेहर करो अब जल्दी सेव सुधारी ॥^१

कबीर की भाँति ही इन्होंने साखी भी लिखा है—

घुपके घुपके बैठकर, करो नाम की याद ।
दया मेहर से पाइहो तुम सदगुरु परशाद ॥
पिया मेरे और मैं पिया की कुछ भेदो न जानो कोई ।
जो कुछ होय सो भोज से होई पिया समरप कर सोई ॥
जो सुख नहीं तू दे सके सो दुख काहू मत दे ।
ऐसी रहनी जो रहे सोइ शब्द रस से ॥^२

इस प्रकार हुजूर साहब की भक्तिभावना मे प्रिया प्रियतम के भाव की प्रधानता है । कवि परमारमा को पिया मानता है । उसके पिया ओर उसम किसी प्रकार का भेद नहीं है ।

इसका देहान्त स० १६५५ म हुआ^३ । इस प्रकार इन्होंने पूरे भारतेन्दु युग को अपनी रचनाओं से सुवासित किया ।

पं० राधावल्लभ जोशी

जीवन रेखा

इसका जन्म स० १८८८ वि० मे ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी, शुक्रवार को हुमराव (शाहाबद) म हुआ था ।^४ ये गौड ब्राह्मण थे । आपके पिता का नाम काशीराम जोशी था । ये वही शिवालय के पुजारी थे ।

बाल्यकाल से ही अपने पिता की इच्छानुसार वेदों का अध्ययन प्रारम्भ किया । बाद मे सस्कृत, व्याकरण, बौध, वाक्य, छन्द आदि का अध्ययन करने लगे ।

ये सस्कृत, प्राकृत और हिन्दी के शीर्षस्थ विद्वान थे । इनके यहाँ अम्बिकादत्त व्यास, ठग मिश्र अज्ञान कवि आदि पढ़ने आया करते थे । आप बहुत ही उदारमना व्यक्ति थे । सदैव ही देवाराधन, समाजसुधार, लोकोपकार आदि कामों म लगे रहते थे । मगर आप राज्याश्रित तथा हुमराव महाराज के शिवालय के पुजारी थे, फिर भी आप म दूता का पूरा बिकाम हुआ था । आप बड़े ही निभीक थे । आप वही दरबारी कवि थे । समस्या पूर्ति करने म बड़े सिद्धहस्त थे । तदनुगीन पत्र पत्रिकाओं मे आपकी कविताएँ प्रकाशित होती थी ।

आप राम और कृष्ण दोनों के अनन्य भक्त कवि हैं । दोहा, चौपाई छन्द मे श्रीरामचन्द्र की विजयादशमी के उत्सव का वर्णन करते हैं तो साथ ही श्रीकृष्ण की स्तुति मे श्री कृष्ण की लीलाओं का वर्णन भी । लीला वर्णन का माधुर्य बड़ा ही चित्ताकर्षक एवं मनोमुग्धकारो है । वल्लभ सम्प्रदाय

१ वही, पृ० ५६१ ।

२ परशुराम चतुर्वेदी सन्त काव्य पृ० ५६१ ।

३ वही, पृ० ५६५ ।

४ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० ३८ ।

भारतेन्दुयुगीन अल्पनात भक्तवचि एव उनकी भक्तिभावना

की स्पष्ट दृष्टि आपकी भक्तिभावना पर परिलगित होती है। आपके जीवन काल में ही निम्नांकित भक्ति-ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ—

- १—रसिक रजन रामायण
- २—रसिकोत्सास भागवत
- ३—विजयोत्सव
- ४—वष्णुलीलामृतध्वनि
- ५—वल्गुम-भुतबोध
- ६—वल्गुम विनोद
- ७—वल्गुमोत्साह।

उदाहरण प्रस्तुत है—

वामन बमठ मान गुरार वपुन धारे भक्त मुखनारे
सखु राम रसवारे हैं।
वल्गुम निहारे नुहरी बल की पद सुपारे
देवकी के बारे वपुने के दुलारे हैं।
आप भरतारी अवतरन कर निहारे
राधा सुख सरि सुख सीता रसिकारे हैं।
पीत पटवारे कर मुरली धरन हारे,
मोरपन वारे सो हमारे रसवारे हैं॥१
राधा राधा रमन के धरण कमल पुग पीत।
सुमिरत ही भवतिषु त पार गुरत ही होत ॥२
राधा वष्णु के विहार का दर्शन कर उसी के ध्यान में सदा लीन रहना ही कवि की उपासना एवं मजन की रीति है। कवि अपना हृदय मजन रीति के अनुरूप ही राधावष्णु के मूलन प्रलय को उद्घाटित करता है। निम्नांक सम्प्रदाय का माधुय छातस्विकी का प्रथम प्रवाह हृदय को बरबस ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। यथा—

वासिल्लो व' बूलनि वदवन की डारल में,
डारयो है सुरग भूलो रसम के डोरे में।
वहै 'विप्रबल्लभ' या सावन सुगवन में,
आप गई आली छोटी बूँत भगोरे में॥
तै लै मपरल्लन को सुमन सुगवन को,
वहै पुरवाई सुमदाई कुज कोरे में।
हली-हली आली ह्या भुलावै मोन फसि फसि,
स्यामा-स्याम मूल वहाँ हेम के हिडोरे में॥३

१ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (संपादन) कविचरणसुधा, १६ नवंबर, १८८३ ई०। पृ० २।
२ वही, पृ० २।
३ हिन्दी साहित्य और विहार, भाग २, पृ० ४१।

कवि का एकमात्र सहारा वही धनोदानन्दन है जिसकी प्रशंसा में वह स्वयं कहता है—

उदधि मथैया बालीनाग को नथैया प्रभु
 द्रुपद-मुता को वर चीर चीर बढवैया है ।
 ब्रज उबरैया कर छिगुनी धरैया गिरि,
 इन्द्र को भरैया मद बल को सुभैया है ।
 मुरली ररैया मोर मुकुट लसैया सीस,
 पाप को हरैया, धर्मधुर को धरैया है ।
 मन्द को बन्हैया नदरानी को पियैया दूध,
 विश्व को भरैया 'विप्रवत्सल' सहैय है ॥^१

कवि सखाभाव की उपासना में सिद्धहस्त है। वह सखि ललिता के माध्यम से इस सत्य का उद्घाटन करता है कि जहाँ भक्ति का योग है, वही श्याम का वास है, अवन नहीं। यथा—

ललिता ललित सुभे गोपिन के सग जूरि
 एहो ब्रजराज उषो बसे ठाम कामै है ।
 सुनि ह्य मूदि करि खोजन समे हैं जाकी
 रहै चहुँ वेन्न की श्रुति हूते लामे हैं ।
 तब धबराय दुग खोनि यह बोल उठे,
 जोग की जुगति मई मेरी ये निवाम हैं ।
 भक्ति जोग जामे है बसत स्याम लामे नित
 बाह डारका मे है पै प्राण राधिका मे है ॥^२

बैजनाथ कुरमी

जीवन रेखा

बैजनाथ कुर्मवशी का जन्म बाराबंकी जिला के डेहतामानपुर गाँव में स० १८१० वि० की शरद पूर्णिमा को हुआ था।^१ इनके पिता हीरानन्द उसी गाँव के जमीन्दार थे। सुखापमोग के अनेक साधनों के होते हुए भी लड़कपन से ही वे विरक्त से रहते थे। इसी अवस्था में इन्होंने अपने चाचा फकीरेराम से जो गृहस्थ वेस में सत थे मन दीक्षा ले ली। दैवयोग से स० १८१८ वि० में फकीरेराम के गुरु महात्मा वैष्णवनाथ मानपुर आये। वहाँ कुत्र निन ठहरकर वे अयोध्या चले गये। इस घटना के बाद आठ वर्ष तक किसी प्रकार फकीरेराम घर पर रहें। स० १८०६ वि० में घर का सारा भार बजनाथ के पिता हीरानन्द पर छोड़कर वे अयोध्या चले गये। स० १८१४ वि० में पिता का स्वर्गवास हो गया। तब से गुरु जाना लेकर बैजनाथ गाँव में ही पुस्तक रचना तथा सत्संग करते हुए जीवनयापन करने लगे। बजनाथ कुरमी आरम्भ में दास्यभाव के उपासक थे। इनकी गुरु परम्परा निम्नोक्त है—

१ वही, प० ४२।

२ कविवचन सुधा, २६ नवम्बर १८८३ ई०, पृ० २।

३ डा० भगवती सिंह रामचन्द्रि में रसिन् सम्प्रदाय, पृ० ४७७।

४ बैजनाथ कुर्मी (टीकाकार) श्रीतुलसीकृत रामायण बालकांड लखनऊ, १९२७ ई० पृ० १।

१ स्वामी रमानन्द	११ जगृष्णदास
२ अनन्तानन्द	१२ सन्तोषदास
३ गयादास	१३ रघुनाथदास
४ लक्ष्मीदास	१४ पूषदास
५ माधनदास	१५ ब्रह्मादास
६ खोजीदास	१६ श्यामदास
७ चतुरदास	१७ रामदास
८ रामदास	१८ वैष्णवदास
९ हरिदास	१९ फकीरेराम
१० कृपाराम	२० बैजनाथ

आप रामावत सम्प्रदाय के परम प्रवीण भक्त माने जाते हैं। ये मानस के कथावाचक भी थे।^१ किन्तु आगे चलकर इनका भुभाव श्रृंगारोपासना की ओर हो गया। उस रस का स्वाद इन्होंने रसिक महात्मा सियावल्लभाशरण से लिया। निम्नलिखित पंक्तियों से इसका समर्पण होता है—

रसिकलता अवलम्बित, कल्पदुम सीता
गुरु सिय बल्लभशरण कहि बैजनाथ पितृपाद ॥^२

इनकी 'रामायण की टीका' में अनेक स्थानों पर रसिकभाव की झलक मिलती है। अध्यायों के अन्त में भी कई पुष्पिकाओं से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि वे इसी सम्प्रदाय के भक्त थे। इनके निम्नांकित ग्रन्थ हैं—

काव्यकल्पदुम
कवितावली की टीका
रामचरितमानस की टीका
रामसतसैयाभावप्रकाशिका
रामसियासयोग पदावली।

बैजनाथ कुरमी रामावत सम्प्रदाय में दीक्षित थे। उनकी भक्ति मधुरभाव की थी। प्रभु की माधुर्यपरक लीलाओं का आपने मनोयोगपूर्वक वर्णन किया है। जनवतनया जाकी के अग्रनिम सौंदर्य का अवन कवि ने भूल पर कितनी रसिकता में किया है, जो अवलोकीनीय है—

भूलत सीय भुलावत नारी।

मनव जटित भणि दबिर पालने शोभित आगन रूप उज्यारी ॥

वर कमलन सजि दबिर पहुँचि या पगल पहुँचिया ललभुनवारी ॥

सुखमा सदन बदन आनन्दनिधि जननी निरखि जात बलिहारी ॥

छवि देखि भगन रघुनन्दन की मिथिलापुर की सब कामिनिया ॥

श्रुति कृण्डल लोल छुटी अलकै मुखचन्द्र मना सित यामिनिया ॥

१ भुवनेश्वरनाथ मिश्र भावव राममक्ति साहित्य में मधुर उपासना, विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० ४०४।

२ बैजनाथ कुरमी (टीकावर) श्री तुलसीकृत रामायण, सूचिका पृ० १।

३ डा० भगवतो सिंह राममक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४२७।

घनश्याम शरीर पै बारि घरी पट पीत मनो धिर दामिनिया ॥
 लखि सुंदर रूप शिखा मस्त लौ, सब मोहि गई गज गामिनिया ॥
 अब बैजनाथ सयोगवयो वर योगि मिल्यो सिय स्वामिनया ॥^१

सीता रूप रस का चतुर चित्तरा कवि राम की छवि का भी गणन बड़े ही मधुर ढंग से करता है—

राम बना पस अजब सलोना ।

तस नहि सुना दोख नहि नैन ज्यो न है नहि आगेहु होना ।
 श्याम अनूप भूप सालन को रूप समान विरचि रचोना ।
 भूलनि लखि मुखचंद माधुरी कामिनि [देह] गेह सुधि होना ।
 औसर आशु राज मन्दिर मे लेवै लाम लाज धरि कोना ।
 सो पड़िताइ छाड़ विप मरि है खोलि नयन लखि लेवे रि जोना ।
 मैं मरि अक सफल तन भरिहा उमगो मैं न लाज उर भोना ।
 बैजनाथ सीतावत्सल पै निश्चय आयु पतिव्रत खोना ॥^२

कवि राम जानकी को हिंडोरे पर लचकर बहुत ही प्रभावित होना है । इस प्रकार वह मुगल रूप की उपासना में अपने को 'यवछावर कर देता है । यथा—

हिंडोरे माई मृत्यु मुगल किशोर ।

दशरथ सुत अह जमकन-दनी अरस परस भुज ओर ॥
 शीश मुकुट मणि भाज दूलन की पलन चलन बिनचोर ।
 सुखमा सर युग कमल नयन लवि कुण्डल अनुरवि भार ॥
 मद हसन तन लसन बिभूषण बसन कसन जर कोर ।
 जनु घन ताडित त्रिलास विविध लखि सखि दुष चरित मयोर ॥
 भाल तिलक सखि भलक अलक को पलक सहत नहि कोर ।
 ज्यो जस को तस ह्व रस की वस हाथ फस्यो मन मोर ॥
 नील पीतपट अदभुत रात श्याम वपुष दिप मोर ।
 बारो मै बैजनाथ यहि छवि पर रति युत काम करोर ॥^३

कवि राम का अनन्य उपासक है । उसके नयन में राम का लोकोपकारी मधुर रूप घर कर गया है । उसके नयन राम छवि के लिये लालायित हैं—

तिहारी छवि चाहत नयन पिये

चंद चकोर मोर घन दामिनि जल ज्यो मीन जिये ।
 श्रवण सुयश मुख गान चरित की चाहत रूप हिये ॥
 बैजनाथ गति एक रावरी नहि कछु चाह रिये ।
 राम तेरो माधुरी प्यारी मो दुग लखि न अघाय ॥^४

१ भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्रथम सत्करण १९५७ पृ० ४०४ ।

२ वही, पृ० ४०६ ।

३ भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृ० ४०७ ।

४ वही, पृ० ४०६ ।

कवि को ज्यो ज्यो दर्शन अपने प्रभु का नहीं होता है, त्यो त्यो उसके धैर्य का बाध टूटता जाता है—
लास बिन कैसे मन धीर धरे ।

बिन देखे मुख श्याम को शोभा नैनन नीर भरै ॥

होइ प्रभात बदन कब देखौ जियरा नल न परै ।

बैजनाथ कोऊ श्याम मिलावे उर की तपनि हरै ॥^१

इस प्रकार कवि भारतेन्दुगुणीन बाण्य भ रामभक्ति का प्रचार एवं प्रसार करने में पूणतया सफल होता है ।

दीनदासजी महाराज

जीवन रेखा

आपका जन्म स० १८६२ वि० भ हाथगावाड जिलातगत रहट नामक ग्राम मे हुआ था । बचपन का नाम आपका सदाशिव शुक्ल था । आप नामनीय ब्राह्मण कुल को सुशोभित करते थे । आपके पिता का नाम नरोत्तम शुक्ल था । कृष्णानन्द जी रचनाय से आपने शिक्षा ली । आप भारतेन्दु से १५ वर्ष बड़े थे । भारतेन्दु के आधिनाय के बाद ही आपने भक्ति की शिक्षा ली । फलस्वरूप भारतेन्दुगुणीन प्रभाव आप की कविताओं में स्पष्ट परिलक्षित होता है । आपके गुरु कृष्णानन्द जी आपने ही पुल के थे और उसी जिले के रहने वाले थे । आप एक उच्च महात्मा थे । कृष्णानन्द से दीक्षित हान के बाद से आप दीनदास जी महाराज के नाम से विख्यात हुए ।

आप एक रामभक्त कवि हैं । राम का नाम ही आपको प्यारा है । रामनाम का भजन आप भक्ति मृदंग और करताल बजा बजा कर करते थे । आपका विश्वास है कि रामनाम रमायन है । इसे पाकर ही बाल्मीकि महामुनि का पद प्राप्त कर सकने में सफल हुए । रामनाम में जिसकी अगाध श्रद्धा हो जाती है उसे परम पद सुलभ हो जाता है । राम नाम के सुमिरन से नय तापा का विनाश हो जाता है—

गुन गाई लीजो रामजी को नाम अति मीठो ॥ टेक ॥

राम रस मीठो सो तो मीठो नहीं कोई रे,

जाने जितने पियो दूजो स्वाद लागे सीठो ।

जो नर राम रसायन खाये तेखे जमका

दूठ दूटी दूटी कर पीठो ॥

राम नाम बाल्मीकि भजन करियारे ।

लगी समाधि उपर हुई गयो मीठो ।

महामुनि की पदवी पाई भोल,

करम तन मन से छूट्यो ॥ -

निश्चय कर आवे तेसे प्रभु पद पावे रे,

जैसे गुड में लपटत चीठो ।

गुड की टूटे बाकी चगुल नहीं छूटे रे,

ऐसी भजन में मन कर डीठो ॥

दीनदास जी सत हृदय के कवि थे। अतः उनकी भक्तिभावना में उपदेशात्मकता झूट झूट कर मरी हुई है। वह कबीर आदि निगुणमार्गी सत कवियों की भाँति इस ससार को बाजार मानकर चेत जाने को आग्रह करता है। उसके आग्रह में विश्ववच्युत्व की भावना स्पष्ट भासित होती है—

जाग सबेरा चलना बाट ॥ टेक ॥

जाग सबेरा नहीं तो होयगा अबेरा बच उतरोगे भब चौडौ पाट ॥
मोह बीच भ्रम वम मन फस गया मान मनीकी सिर बाधी गाठ ॥
या मन चचल हाथ न आवत मन छे गठीलो मैया आठौं गाठ ॥
भजन करार करनि तू आयो भूल गयो धन देखित छाट ॥
दीनदास रघुवीर भजन विन छूटे नहीं तेरे मन को गाठ ॥^१

कवि मानव जीवन के अन्त की ओर सज्य करने बहना है—

पड़े बाधी बसत कोई आवै नहीं चाम ॥ टेक ॥

तन मन से धन धान सवारो जियो सग्रह धन बस कर चाम ॥
बात पित पिफ बठ कु रोनत ठरमन देखत सुत अरु बाम ॥
जब बाया म आग सगाई मये लोग देखे जरतो चाम ॥
बाणी बस्त को राम बसीलो सीतापति शुभ सुन्दर श्याम ॥
दीननाम प्रभु कृपा करे जब अत समय दुख आवत राम ॥^२

दीनदास जी की रचना में रसना का राम रस स्नात रूप बहुत ही चित्ताकर्षक है। कवि रसना को मगवान् रूप रसमाधुरी का वर्णन ही करने को बहता है, क्योंकि रसना ही एकमात्र साधन है जिससे हम राम के रूप का निवृत्त से अवलोकन कर सकते हैं। अतः सुन्दर नरमुख पाकर रसना को सुधा स्नात घाणी से पवित्र करना चाहिये। उदाहरण प्रेषित है—

रसना रामनाम क्यों नहीं बोलत ॥ टेक ॥

निशिदिन पर-अपवाद बखानत क्यों पर-अध को बोलत ॥
सत-समागम प्रेम बटोरा राम रसायन बोलत ॥
तहा जाप कुशब्द उचार के क्यों शुभ रस तू बोलत ॥
जो कोई दिन आवै तब स-मुख भर्म बचन बहि बोलत ॥
भर्म बचन में सार न निवसत ज्या कादे खु बोलत ॥
नर मुख सुन्दर पाप के सुधा बचन क्या तू बोलत ॥—
दीनदास हरि चरित बखानत आनद मुख क्यों न बोलत ॥^३

कवि आयु पर विश्वास नहीं करता। वह ससार के समस्त रिश्ते नातो को तुच्छ समझता है। उसका विश्वास है कि सभी मुख के साथी है। ज्यों ही उनकी स्वार्य सय जाता है, वे इन सभी सरस सबधों को टुट्टा देते हैं। अतः रामनाम धाम जाने के लिये तन मन मन से भगवद्भजन आवश्यक है।

भजन कर आयु चली दिन रात ॥ टेक ॥

या नर देही सुन्दर पाई उठो बडी परमात ॥

राम भजन कर तन मन धन से मान ले इतनी बात ॥

१ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, पृ० ५४० ।

२ वही, पृ० ५४० ।

३ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, पृ० ५४० ।

कुटुम्ब कबीला सुख के साथी अतः कू भारत जात ।
दोनदास सुत राम घाम तजि कथा जमपुर को जात ॥^१

कामदमणि जी

जीवन रेखा

आपका जन्म गया जिला के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था ।^२ अनुमानतः आपका जन्म सन् १८३८ ई० में हुआ था ।^३ आरम्भिक अध्ययन के पश्चात् ही आप गृहस्थी में जुट गए । गार्हस्थ्य धर्म को निवाहते हुए आपको एक पुत्री हुई । तदनन्तर आप सपरिवार अयोध्या चल गये । यही आपने भक्ति-रस का अध्ययन मनोयोगपूर्वक किया । आपकी भक्ति-साहित्य में प्रगाढ़ रचि थी । अयोध्या में ही रामसखे जी की तपोभूमि 'नृत्यराघव-कुञ्ज' के समीप शसकुत्र में रहने लग और आजीवन वहीं रहे ।^४

आपका अध्ययन विशाल था । आप हिन्दी और संस्कृत दोनों पर बराबर अधिकार रखते थे । दोनों भाषाओं में आप रचनाएँ करते थे । हिन्दी में आपकी ११ महत्वपूर्ण रचनाएँ उपलब्ध हैं—

(१) पंचभक्ति रसा के पद्यवद्ध पत्र, और

(२) कैलाश कहि न जाय का कहिय ।

आपका देहान्त सम्बत् १९७५ में हुआ । आपकी भक्ति सत्यभाव की है । आप रामभक्त हैं । राम की उपासना में मन्त हा उससे मिलने की इच्छा प्रकट करते हैं—

स्वस्ति सखा श्री सहित श्री जानकी जीवन पास ।

पहुंचे पाती ललित यह, कनक भजन आवास ॥

कामद नर्मसखा लिखित, काया-सहर निवास ।

तन को मन भावत नहीं, बलन त्रिरह की स्वास ॥

गुण भावत आँसू बहत, मनो सिधिल तन बीर ।

बन प्रमाद की सुरति करि, श्रीसरयू को नीर ॥

मैं चाहौ तुससो मिल्यो, कोटि कल्प सत जाप ।

सुम चाहौ दिन में मिलौ, दुसह बिपत्ति बिहाय ॥^५

कामदमणि जी की भक्तिभावना में शत का सरस चित्त विद्यमान है । उनका विश्वास है कि काम, क्रोध, मत्त, लोभ से यह मानव शरीर सतत है । इस प्रकार वह ससार सागर से पार उतरने में अपने को पूर्ण असमर्थ पाता है । अतः वह लिलदार लिल में मिल जान की इच्छा प्रकट करता है—

मदन भजन करि सहर को जूट लिया करि क्रोध ।

लोभ विनस्तिया ध्यान का क्राघ बिनास्या बोध ॥

पान विरागादिक सबै, भागे से से प्राण ।

नर्मसखा तब जीव यह, कैसे वचै सुजान ॥

१ वही, पृ० ५४० ।

२ डा० मगवती सिंह रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ५२३ ।

३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और विहार, भाग २, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, पृ० ११२ ।

४ वही, पृ० ११२ ।

५ डा० मगवती सिंह रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ५२४ ।

याते बेगि बुलाय क, रखिये अपन पास ।
नर्म सखा निज जानि कै, दास कीजिये खास ॥
विपुल विनोद बिहारहित, उपवन सखिन समेत ।
समन सपन निरुपत बबहु, लखिही मोद निवेत ॥
मधुर वचन पिपूष पिय, सुनिहौं चित्त लपाय ।
पढ सग्न दिलदार दिल, हिय ते मिल न जाय ॥^१

वह अपने दिलदार के लिये लालायित है । उनके बिना वह एक क्षण भी अकेले नहीं रह सकता । वह भगवान् के अनाथ के लिये प्रायना करता है—

हा दिलदार यार कब पेहा ।

जाके बिन छन बल न परतु है ताके जिना कसे जनम गवैहा ।

अग अग लखि मधुर मनोहर द्वै भुन पकरि जंन मब लेहौ ।

‘कामन्मणि’ यह माच रैनि निन कमे के जानद माहि समेहौ ।

इस प्रकार कामदमणि की भक्तिभावना में मत्-हृत् की सरलता, उपदेश की पावनता और मिलन सुख की तीव्र लोलुपता की मधुर भांकी मिलती है । वह अपने मित्र के प्रति असाध्य एवं अपूर्व श्रद्धा रखता है । कवि की अंशुता अमिताभा मित्र के दिन में मिल जाने की है । वह सखियों के सरस वातावरण के वातावरण में मधुरतम भांकी का अवलोकन करता है ।

नमदेवप्रसाद सिंह

जीवन-रेखा

आपका जन्म जगन्नीशपुर (गाहावा) के राजपराने म स० १८६६ वि० (सन १८३६ ई०) की आश्विन पूर्णिमा को अश्विनी नक्षत्र के प्रथम चरण में हुआ था ।^२ आप इतिहास प्रसिद्ध वीर बाबू कुबेरसिंह के राजघर थे । आपके पिता का नाम नुनसीप्रसाद सिंह और माता का नाम पनवाम कुबेर था । आप सा भाई थे । आपके अग्रज का नाम मुकनेश्वरप्रसाद सिंह था । आपकी पत्नी का नाम धर्म राजकुबेर था । इनमें आपका तीन पुत्र रत्न और दो कन्याएँ प्राप्त हुईं ।

‘होनहार विरवान के होन चीकने पात बहावन आप पर चरितार्थ होती है । आप बचपन से ही बड़े होनहार एवं अध्ययनशील थे । अपना कुशाग्रबुद्धि का कारण अमरकोष लघुसिद्धांतज्ञान आदि संहृत ग्रंथों को कठ्ठप कर गये । पश्चात् आपने धर्मशास्त्रों, पुराणों और काव्यों का गम्भीर अध्ययन किया । अरबी, फारसी आदि सा अध्ययन आपकी अध्ययन लिप्ता का ही स्रोतक है । काव्या का अनुशीलन एवं सम्भार विन नर दम अनकार एवं छन्द म बहूल्य कुशलता प्राप्त कर लेने में आप सूर्यम थे । साथ ही साथ लत्रियाचित गुणों में भी आपने अस्त्रशास्त्र का संचालन और घुड़सवारी की कला में दक्षता प्राप्त कर ली ।

सिपाही विद्रोह के पश्चात् आपने अंग्रेजी का भी अध्ययन किया । आप ५० नक्छेरा निवारी के साहित्यिक सहयोगी थे । आपने विद्याव्यसना स्वभाव से बौद्ध आर्कात्रि नहीं हो सचा । यही नहीं आप एक कुशल चित्रकार भी थे । आपका बनाया हुआ शेर, बकर का चित्र अब तक आपने बराबरी के पास सुरक्षित है ।^३

१ यही, पृ० ५२४ ।

२ साहित्य, वर्ष ३ अक्टूबर १९५२ ई०, हिंदी साहित्य सम्मेलन बिहार, पटना पृ० ६० ६८ ।

३ शिवपूजन सहाय हिंदी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ५२ ।

आप हिंदी साहित्य के कुशल पारंगत थे। हिंदी कविता-नान के कुशल प्रहरी थे। छन्दशास्त्र में आपकी गहरी पठ थी। सम्प्रति आप स० १९३२ वि० से काव्य स्रष्टा के रूप में का योधान में उपस्थित हुए। या तो आप प्रथम स्वतंत्रता सभाम के परगना हो रचना करने लग थे।

आपने हिंदी साहित्योद्यान में चार पुष्प उगाए। वे ये हैं—

(१) शिवा शिव शतक (२) शृ गारदर्पण, (३) धर्मप्रदर्शनो, और (४) पंचरत्न।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त तत्कालीन पत्रिकाओं में आपकी कविताएँ उद्यत होती हैं। शोधकर्ता का 'शिवशिवशतक' का बहुत अण कविवचनसुधा (सन् १९३२) नामक पत्रिका में प्राप्त हुआ। इनमें कवि शिव-भावती की स्तुति करता है। इनके अध्ययन से यही आभास होता है कि कवि शिव की उपामना में अपना सब कुछ यथोचित कर देना चाहता है। कवि के पास भक्त हृदय है। उसकी समस्त पुस्तकों में भक्तिपरक रचनाया की बहुलता है।

आप स० १९७० वि० (सन १९१५ ई०) की फाल्गुन शुक्ल सप्तमी को स्वयंघात गये।^१ इस समय आपकी अवस्था ७६ वर्ष की थी।

आप एक शिवभक्त कवि थे। शिव हो आपके एवमात्र उपास्य थे। शिव की उपासना में कर्म सदैव लग्न रहता करता है। भारतभूमि देवभूमि है। यहाँ अनेक देवता वास करते हैं। उन सभी देवताओं के पूजा विधान भिन्न भिन्न प्रकार के हैं। लेकिन कवि के शिव की चान नहीं है। वे केवल आर्क की माला से ही प्रसन्न हो जाते हैं। उनके शिव तो अनाथों के नाथ हैं। नाथ के नाथ हैं। त्रिदेव हैं। जब कोई किसी का हाथ नहीं गहता तो शिव उसको अपन शरण में रखते हैं। इस प्रकार के अशरण को शरण देने वाले सार्वकालिक देव हैं—

देव अनेक सुने निज धोन मैं एक महादेव हो पुर साल ।
ईश तो और घनै बने पै भूषण तो आपुही तीनहुँ बाल ।
होत प्रसन्न व पूजा विधान तै आपु को चाहिये आर्क की माल ।
नकु निहारे निहाल करो शिव साईं तिहारी नई यह बाल ॥^२

×

×

×

नाथ के तुम नाथ सही हो अनाथ के नाथ तु ही जगपाल ।
हाथ गहे नहीं जावा कोऊ तेहि साथ रही तुमही सब बाल ।
देव के नाथ के नाथ निन्दे ली हीं तिनहुँ न के नाथ विशाल ।
नेकु निहारे निहाल करा शिवसाईं तिहारी नई यह चार ॥^३

कवि शिव की उपासना में रत है। वह शिव के प्रति दैव प्रकट करते हुए उसका उपामना के योग्य अपने को नहीं पाता है।

अस्तुति रावरो कैस करौ मत मेरी ही थोरी न साद्व रावरी ।

पै मन मेरी न मेरे अधीन हैं चल है अलि के सम बावरी ।

१ कुछ विद्वानों के अनुसार आपका निधन ॥ सन् १९७१ वि० (१९१५ ई०) की फाल्गुन शुक्ल अष्टमी को हुआ था।

माधुरी, वर्ष ५ खंड २ स० ६ जुलाई १९२७ ई० पृ० ५४४।

२ कविवचनसुधा, वि० १६ स० ११, १२, १३ दिसंबर १८८४ ई० पृ० २।

३ वही, पृ० २।

जे है विपैरस फूल तापे भ्रमि नाही अघात ह्वै जात जो भावरी ।
तो पन्कज मरद को दोरे जैहैं रम्यौ रगत मो गुन सावरी ॥^१

उनके शिव कामधेनु की भाँति समस्त फलों के दाता हैं । व भक्तिरस के स्रोत हैं । वे अवशेष को विनाश कर सुख पुत्र के बरसाने वाले हैं । इस प्रकार कवि उस कलाशयासी शंकर भगवान् को स्तुति करता है ।

कामधेनु मैया तहि समता करैया,
फल कामना करैया भक्तिरस वरसैया व ।
तो सो को द्वैया दास दुख को दरैया,
अथ ओष सघरैया सुख पुञ्ज वरसैया तू ।
छेम को छवैया तू नसास की बसैया,
निज सरन परैया ताहि पर दरसैया तू ।
गापति मैया सुधारस की पिवैया,
गिरिराज की तनैया ईश अग बसैया तू ॥^२

कवि का विश्वास है कि इंद्र, वरुण कुबेर विष्णु आदि देवता अनेक हैं । अग्नी अनगी जड़ चेतन नदी-नद बहृत हैं । इनका वर्णन वेदों में धार्मिक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है । लेकिन शिवशंकर का रूप तो विचित्र है । उसका रूप तो भूत भविष्य, वर्तमान दोनों से परे है । यथा—

इंद्र, जम, वरुण कुबेर विधि विष्णु,
रुद्र रवि रजनीस आदि देवता अनेक हैं ।
पावन पवन पितृ असुर प्रसिद्ध सिद्ध,
नदी नद वारिधि चराचर जितेक हैं ।
ईश्वर प्रसाद जग अग्नी औ अनगी जेते
वेद हैं वरनि नहि सक एक एक हैं ।
मय अह होत ह्वै जेते तिहुँ कालसग
भृकुटि विलास शिवा रावरे तितेक हैं ॥^३

सिंह जी अब को ब्रह्म की रानी मानते हैं । अब ही एकमात्र अथ, धर्म, काम और मोक्षदात्री हैं ।

धमनि को उपजावनि बातें तुही एक वेदन को जननीया ।
अपन को एक भूल तुही नितही हो धनस हुते नमनीया ॥
कामहि, पूरन वारी तुही जग कामना आदि हिये जननीया ।
सस के मुक्ति के बीज तुही पर ब्रह्म की रानी सदा मननीया ॥^४

कवि कृष्ण के विशाल रूप का वर्णन करते हुए कहता है—

जड अह चेतन ल्यो सुखम सखल जात
है जहाँ लो देपो जौन रूप है ।

×

×

×

१- वही, पृ० २ ।

२ कविवचनसुधा, जिल्द ६, सख्या ६ ७, १ सितम्बर १८८४ ई०, पृ० २ ।

३ वही, पृ० २ ।

४ वही, पृ० २ ।

नद को तनैया कसमद विनसैया निज
 नैया को बचैया ऐसो भगिनी कहैया तू ।
 जगत भ्रमैया भव भी की भजैया सत
 मारग चलेया बिसरैया जे फन दिया तू ।
 गुन की कहैया सर्व संशय की हरैया बहु
 बहु वेप को धरैया है गुनह बचसैया तू ॥
 सकल खबैया तेहि क्यों न होहु सैया
 पै न कोउ बिगरया जा मुपवारि लेजया तू ॥^१

कवि जिस प्रकार उमापति महादेव का वणन करता है उसी प्रकार उमा का भी वणन प्रस्तुत करता है—

कैधो सोव-शोक म कपूर धूरि पूरि रह्यो
 कैधो ए चमेसिन की अवलि बरसति है ।
 कैधो सची हास को प्रकास दम निमि फैलो
 कैधा यह छीरनि का छदै दरसन है ।
 ईश्वरप्रसाद हिममयी सब दलि परै
 कैधो चन्द किरनि समूह भरसति है ।
 कैधा अमीरस सो लिप्यो है पवभूत
 कैधा गिरिजा निहारी प्यारी कीरति लसति है ।^२

× × ×
 तुम पावनि की करनो हा अपावन ईश्वरी तू हम दीन खरो ।
 तुम तो जगत्तारनि हो जग म हम सोर मरो तुम सोव-हरो ।
 सितु 'ईस प्रसाद हो अम्बिका तू अघमाप्ति हो तुम दाया करो ।
 और कछु कहते न बने सरनागत हो रचे सोई करो ॥^३

× × ×
 जग उपजया मन मोल सिरजया
 सद्बुद्धि प्रगटैया तिहुँ ताप ते रितैया तू ।
 दारि दरैया कम रेख को टरया
 मुनि मानम रमैया पापी पावन करैया तू ।
 ध्यान के धरैया हिम का विकसैया
 प्रभा पुज पसरैया तम-ताम को नसया तू ।
 ७ रो जगमैया कौन दूसरो सहैया
 परी भोर साज नैया यागी एव ही मेवैया तू ॥^४

१ कविवचनमुद्रा, जिल्द ६, सख्या ६७ १ मितम्बर स. १८८४ ई०, पृ० २ ।

२ शिवाशिवशतक साहित्य, वष ३ अंक १, अप्रैल, १९५२, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, बिहार पटना, पृ० ६८ ।

३ शिवाशिवशतक, साहित्य वष ३, अंक १, अप्रैल १९५२ पृ० ६८ ।

४ वही, शिवाशिवशतक भारत जीवन प्रेस, बनारस १८९२ ई०, छ० ७, पृ० ७ ।

कवि निर्गुण परम्परा की कविताओं की रचना में भी सिद्धहस्त है। यथा—
 इस तुम्हारे अंग में ब्रह्माण्ड के तोम ।
 ऐसे बिलसत है सखत ज्यो शरीर में रोम ॥
 अपने में देखत नहीं दूढ़त वनन बाजार ।
 बिलसत बालक गोद में डौंडी नगर मभार ॥
 करो अनेकन जोग जप तप मख पूजन दान ।
 वह जुलमी रीभत विन आप बलिदान ॥
 जो जानत सो बहत नहि बहत सो जानत नाहि ।
 बंद चरित हू नेत वह जोर कहै का ताहि ॥^१

सीतारामशरण भगवान प्रसाद

जीवन रेखा

आप भक्ति-जगत् में श्री रूपवला जी के नाम से विस्थान हैं। आपका जन्म इलाहाबाद के आलमगज मुहल्ले में सन् १८६७ वि० (सन् १८४० ई०) थावण कृष्ण नवमी को हुआ था।^२ आपकी माता का नाम श्रीमती शिवव्रती देवी और पिता प्रसिद्ध रामोपासक सत मुंशी तपस्वी राम थे।

आपकी भक्ति अपने पिता जी से विरासत में मिली थी। बचपन में ही साधुआ के सत्संग की सुलभता ने भक्ति के बीज को अंकुरित कर दिया। जब आपकी अवस्था आठ वर्ष की थी, आपके पिता किसी कारणवश मुबारकपुर (सारन) चले जाय^३। यही आपकी शिक्षा का प्रश्न हल हुआ। आप पढ़ने में बड़े मेधावी थे। यही कारण है कि जीवन में प्रवेश करते ही आपने सांप्रति कर्मचारी तक के पद को सुगोमित किया।

आप धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। भोजन में बराबर आप भगवान् का प्रसाद ही लिया करते थे। सीताराम सीताराम कहकर ही आप काम करते थे। आपके धार्मिक गुरु, परसा (सारन) मठ के बाबा रामचरणदास थे। रामायण, गीता, भक्तमाल आदि ग्रंथों का अनुशीलन तथा साधु महात्माओं का सत्संग करना ही आपको प्रिय था। आप हिन्दी, संस्कृत और फारसी के ज्ञाता थे।

अन्त में गृहस्थाश्रम से मुक्ति पाकर अयोध्या में आप सत्यास ग्रहण कर नियमित रूप से रहने लगे। यही आपने भगवद्भजन, कीर्तन तथा प्रवचन में अपने ध्यान को एकाग्र कर लिया। अयोध्या में रूपवलाकुंज जानकी नवमी के दिन आपकी याद दिला देता है। आप थे तो रामानन्दी सम्प्रदाय के वातावरण में पले, लेकिन आपकी भक्ति चैतन्य की सन्तोषन पद्धति का मधुर समन्वय बड़ा ही आकर्षक है। प्रिया प्रिय भाव की भक्ति से स्नात स्फुट पङ्क्ति की रचना आपन की है। आपके निम्नान्वित प्रार्थों

१ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार भाग २, पृ० ५६।

२ हरिऔष अभिनन्दन ग्रन्थ, नागरीप्रचारिणी समा आण, पृ० १०२।

शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, २ पृ० ८।

सरस्वती, भाग १२ सं० १०, अक्टूबर सन् १९११ के पृ० ४८२ पर आपका जन्म दिन सं० १८६७ थावण शुक्ल नवमी अंकित है।

३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ५८।

डा० भगवती मिह रामभक्ति में रचित सम्प्रदाय, पृ० ४८०।

की चर्चा मिलती है—(१) भागवत भुटका, (२) श्रीमगवद् वचनामृत, (३) भगवनामकीर्तन, (४) श्री सीताराममानस पूजा, (५) भक्तमाल की टीका, (६) मीराबाई। इन ध्याये आपकी भगवद्भक्ति की स्पष्ट झलक मिलती है। ये भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध भक्त कवि थे। इनका आकषण विशेषकर जानकी का रूपमाधुर्य रहा। यथा—

जय चकोर जानकि मुखचन्दा । मिथिला युवति वृन्द मन पन्दा ॥
 मोहि राब भाति तुम्हार मरोयू । समझो पिय गुण अरु निज रोसू ॥
 जोरि पाणि बर माग एहू । जय जय सियराम सनेहू ॥
 जेहि बिधि पिय प्रसन्न मत होई । करुणा सागर कीजिय सोई ॥
 पिय सनेह चितवन की प्यासी । रूपकला श्री सिय की दासी ।
 मुख मयक की माधुरी, मधुर बचन मुसुनान ।
 चितवनि जनमन हरिणी, जपति जानकी जान ॥^१

और भी माधुर्य का मनोरम दृश्य देखिए—

- १

सुधि न सीन्हि पिय बिरहिन हिय की ।

सखि । मोहि कल दिन तरसत बोले, सुधि न सीन्हि पिय बिरहिन हिय की ॥

आह धुआ मुख हिय बिरहागी, ठाँ जरी बैसी बाती न्य की ।

अधिक दाह चित चातक कोविन, बिरह अनल जिमि आहुति दिय की ।

सब उर व्यापक अतरवामी, जानत है पिय खि तिय जिय की ।

साध हू सनेहू कब लगि देखिहूँ, मनु मनोहर छवि तिय पिय की ॥

छमानिधान बिलोकिहूँ निज दिसि करिहूँ खोज न मारे किय की ।

कृपानिधान दया-सुख-सागर, मनिहूँ सखि बिनती लघु तिय की ॥

रूपकला बिनवत हनुमत ही चढ़कला अरु गिरिवर पिय की ।

एकौ उपायन सुभक्त आली मोहि आसा केवल श्री सिय की ॥^२

×

×

×

धन धन जे व्यावही करण बिह सिय राम के ।

धनि धनि जन जे पूजहा सामु सत श्रीधाम के ॥

सजि कुसग सरसग नित कीजिय सहित बिबेक ।

सम्प्रदाय निज की सदा राखिये सादर टेक ॥

देह देह बद्ध कम मह पर यह मानस नम ।

कर जोडे समुख सदा सादर लडा सप्रेम ॥

सन मन धन सब वारि मन चित हिय अति प्रेम ते ।

सम्मुख आखिन चारि चितइये राजिव नयन छवि ॥^३

आपु सहित सब धूर, विषय वासना तनु भमत ।

कर्म मनन मजदूर आपन करता मैं नहीं ॥

१ श्री सीतारामाय, प्रथम पुस्तक, प्रथम संस्करण, स० १९६८ वि० पृ० ३४ ३५ ।

२ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ६२ ।

३ कल्याण, संतवाणी विशेषांक, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ० १०७ ।

सरन सुखद निष्ठा अचल, अति अनय घतनेम ।

पिय सुभाव स्तुति मगन नयन चारि सुख प्रेम ॥

प्रियतम तुम्हारे सामने काहू को न बसाय ।

अनहोती पिय करि सको हानिहार मिट जाय ॥

प्रियतम तुम्हारे छोह ते शात अचचल धीर ।

बचन अल्प, अति प्रिय मृदुल शुद्ध सप्रेम गमीर ॥

धोखानकि-पद कज सखि करहि जासु सर ऐन ।

। बिनु प्रयास तेहि पर द्वयहि रघुपति राजिव नैन ।^१

रूपकला जी अपने को राममय कर देने में हिचक नहीं रखते । उनका विश्वास है कि—

होठ पर नाम वही चित्त वही देह कही,

हाथ में कज चरन जाय वही आप वही ।

दृष्ट पर ध्यान वही चित्त वही देह कही,

खात पियत बीती निसा, अवबत भा भिनुमार ।

रूपकला धिब धिक्तोहि गर न लगायो चार ॥

दोष-कोष भाहि जानि पिय जो कछु बरहु सो थोर ।

अस बिचारि अपनावहु समक्ति आपुनी ओर ॥^२

कवि रामभक्त है । राम की महती कृपा का उन्हें भरोसा है ।

कवि जम जम भक्तवत्सल श्रीराम का स्नेह चाहता है । यही उसकी प्रार्थना है । कवि राम का अनय उपासक तो है, लेकिन उसकी वाणी में संतो की वाणी का वैभव देखते ही बनता है । वह अपने को कबीर की भाँति ही भगवान् की बहुरिया मानता है । कृपानिधान दया-सुखसागर माने हैं सखि विनती लघु तिय की मे कवि का यही भाव है । इस तरह उसकी भक्तिभावना में संतो की वाणी का विशेष आग्रह है । आपका निघन जनवरी, १९१२ ई० में हुआ ।

रामलोचनमिश्र

जीवन रेखा

उनका जन्म सं० १८६८ वि० (सन् १८४१ ई०) में चैत्र शुक्ल ५ शनिवार को सारन जिलान्तर्गत मन्झली ग्राम में हुआ था ।^१ आपके पिता का नाम प० रोहिणी मिश्र था । आप सख्य प्रतिष्ठ रामायण भक्त थे । रामायण का गहन अध्ययन आनेका था । आप रामभक्त थे । आप बहुत ही प्रतिभाशाली व्यक्ति थे । रामभक्ति काव्य-जगत् के आप आधुनिक कवि थे । भक्ति साहित्य के निम्नांकित ग्रन्थों की रचना आपने की थी—

१—श्रीसत्यनारायण कथा का हिंदी पञ्चात्मक अनुवा^२,

२—रामायण महत्व,

३—रामनाम महिमा,

४—रामनाम भजनावली,

१ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, पृ० ५०७ ।

२ वही, पृ० ५०८ ।

३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २ पृ० ६६ ।

५—गंगा सरयू महिमा,

६—हनुमत्प्रार्थना ।

कवि राम का अन्त्य उपासन है । रामनाम की महिमा का वर्णन करते हुए आप कहते हैं कि राम नाम का प्रभाव चारों युग में प्रचल है । कलिकाल में तो रामनाम ही तब काम का आधार है । यथा—

राम नाम कहा करो पाप सब दूर करो तू,
भरा करो कान में सदा ही रामनाम को ।
पर में रहा वा गिरिकन्दरा वसो तू जाय,
बिना रामनाम मुख चाम कौन काम को ।
नाम को प्रभाव चारों युग में प्रचल जान,
कलि में प्रधान रामनाम तब नाम को ।
कहे रामलोचन दुःखमोचन रामनाम ही है,
साते राम नाम में बितावो आठो याम को ।^१

कवि पूर्ववर्ती कवि रसवान से निम्नांकित पद्य में स्पष्ट ही प्रभावित होगा दीख पड़ता है—

पिता यदि दीजे तो श्री दशरथ महाराज ऐसी
बन्धु यदि दीजे तो श्रीराम चारों पैया सो ।
माता यदि दीजे तो श्रीकौशल्या सुमित्रा जी सो
भर्षा जो दीजे ता अरुषती सुक्या सो ।
पुत्र यदि दीजे तो सुपुत्र श्रीधरवर्ण ऐसी
मित्र यदि दीजे तो सुगमा जी कहैया सो ।
कहे रामलोचन जीने ही योनि जन्म दीजे
रामभक्ति दीजे जह प्रीति स्फुरै सो ।^२

गोस्वामी तुलसीदास जी की विनय पद्धति का अपनाकर कवि ने अपनी भक्तिभावनाओं में बार-बार धौद लगा दिया है । विनयपत्रिका वाली शैली को अपनाकर कवि को कमाल ही हासिल है—

अवगुन जी प्रभु हेरो हमारो ।

तौ नहि कल्प कोटि कृत्नानिधि यहि जन का निस्तारो ॥

नद-पुरान कहत कृत्नाकर बर बर अधम उधारो ।

पाप करत निसि नासर बीतत अब लौं हिय नहि हारो ।

मटवत फिरत न सुभत मारग सै निज सिर जघ मारो ।

अनमत मरत दुसह दुख पावत तुम बिनु कौन उधारो ।

गिद्ध न हो गनिकादि अजामिल सब पतितन तै मारो ।

नाम पतित पावन तब शकर कागधुशुण्डि उचारो ।

रामलोचन पर बरहु कृपा अब जाऊ तजि चरन लिहारो ॥^३

कवि राम के साथ ही कृष्ण को भी नहीं भुलाता । वह एक ही पद में मुक्ति के लिये राम कृष्ण और शकर तीनों की प्राप्ति करता है—

१ शिवपूजन सहाय हिंदी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ७० ।

२ वही, पृ० ७० ।

३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ७० ७१ ।

गजु मन राम सिया मुखरासी ।

रामचंद्र रघुनन्दन रघुवर राघव अवध निवासी ॥

रघुबुल तिलक सिया ने स्वामी कातु हैं जम फासी ।

मनमोहन भधुसूदन माधव ममथ मथुरा वामी ।

माधनचौर मुकुन्द मुरारी अरिमर्दन अविनासी ।

चारो युग चतुरानन कर्ता चारि लाख चौरासी ।

चारि पदारथ करतल ताके जाकर माया दासी

पावत मुक्त सुनावत शकर मरत जीव जो नासी ।

रामलोचन एक जघम सरन मह राख दुसह दुखनासी ॥^१

आपका देहांत ७२ वर्ष की अवस्था में स० १९७० वि० में माघ शुक्ल ११ को हुआ ।

अक्षयकुमार

मैथिल देश सोहावनो मध्य बस एक ग्राम ।

वापीनाम प्रसिद्ध है, तहा जम को ठाम ॥^२

जीवन रेखा

उपर्युक्त दोहे के अनुसार आपका जन्म स्थान मिथिला तगत बाबी नामक ग्राम है । आपका जन्म स० १९०० वि० (सन् १८४३ ई०) में हुआ था । आपके पिता का नाम नदलाल सिंह था ।

आपका घर शारदा मंदिर था । संस्कृत तथा हिंदी पुस्तक का विशाल सग्रह आपके घर पर था । परिणामस्वरूप अध्ययन की प्रेरणा इन्हीं पुस्तक से आपको मिली । आप हिंदी, संस्कृत और फारसी के ज्ञाता थे । आपकी एक रचना रसिक विलास रामायण आपकी भक्ति भावना का उद्घाटन करके मेरे पूरे समय है । तब बड़े 'अग्निप्रिय' शक्ति भी थे । काय जगत् में प्रवेश के दिना में आपने श्रीराम का बालवर्णन स्फुट कटिताली के रूप में मा भारती के मध्यमवन में प्रस्तुत कर भवत्पारमक हृत्प का परिचय दिया । आपने रसिकविलास रामायण का निमाण कर रामभक्तिशाला के कविया की कड़ी में एक स्थान प्राप्त कर लिया है ।

आपने भारतेन्दुशैली की भक्ति-पारा में रामभक्ति का अजस्र प्रवाह प्रवाहित किया । आपकी कविता भक्तिभावा से ओत प्रोत तो है ही, साथ ही साथ भाव बहुत ही सरल और स्वच्छ है । कवि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के मिथिला गमन पर बड़ी ही गूढ़ बात कह सुनाई है । महाराज जनक का ब्रह्मज्ञान ही बिसर जाता है । ऐसी छवि है उस भक्तवत्सल राम की । राम के साथ उनके अनुज और कौशिक मुनि भी हैं । उदाहरण देना यहाँ अपेक्षित है—

राघो जो अनुज-सहित कौशिक मुनि संग में ,

मैथिल-पति नग निकट जगेहि प्यारे हैं ।

शोर मया शहर में अद्भुत छवि छटा देखि,

देखन हित वृन्द वृन्द आइ के जुहारे हैं ।

१, वही, पृ० ७१ ।

२ अक्षय कुमार रसिकविलास रामायण, बिहार बज्र प्रेस, बाँकीपुर, प्रथम संस्करण, १९३६ ई०, पृ० १ ।

गिरत बाहु भुजत बाहु सरसरात पाव घरत ,
देह को न खबर जानि परत मतवारे हैं ।

निरखत विदेह को ब्रह्मज्ञान गिसरि गय ,
दूजे मन प्रेमनिधि मिलत ना निनारे हैं ॥^१

भारतेन्दु पूव हिंदी साहित्य की वाच्यधारा रोतिषागन के रसविलास में ही सम्मस्त थी । अतः पूर्वानुवर्ती कवि का होना अनिवार्य है । यही कारण है कि कवि रघुवीर के एक नमनत्राण से कभी पायल सी घुमी गिरि अपने ठकानो पर की मधुर मृष्टि कर एक कथमलग पैरा कर देता है तो कभी टोना और डिठोना का संकेत कर माधुर्य भक्ति की अपूर्व मृष्टि कर देता है । यथा—

बामिनी को सैन बाज जुड़यो है विदेह नगर
चितवन को तीर चडे भृगुटी बमाना पर ।
सीस-फूल भादि बहु भूषण सवारे सिर
सारो जरतारी लहरा रही निशाना पर ।
चाहतो है बार करन देखति सब दाव पात
खचित बमान ताकि ताकि थैठ बानो पर ।
जैसे ही रघुवीर की छुगी एक नैन बान
पायल-सी घुमी गिरि अपने ठकानो पर ।^२

और भी—

जनक-नन्दनि बिलोकि रघुवर घनश्याम-रूप
नैनन में लाय प्रेम दिवस पलक डार सी ।
प्यारे को रूप को बिलाके नहि और कोउ,
और रूप देखू नहि चाहि अत धार सी ।
बीतो बहु बाल भग सखियाँ सर्गक भ-
बोली उठि हा हा यह करत बाह लाइली ।
कि-ही बाहु टोना कि डिठोना बाहु डारि निहि,
सुनि सकोच लाग दिवस नैन उपार सी ।^३

कवि हनुमान की दास्य भक्ति का भी उल्लेख बहुत ही स्पष्ट शब्दों में चौपाई छंद में यत्न करता है—
हरये सुनत बानी । श्रूमश की सम्मति मन मानी ॥
धरि रूप बिगल भये ठाडे । प्रजा सेत तन तेज प्रजा बाडे ॥
कहि बसहु इहा दुख सहि सबलों । सीता सुधि में लाऊँ जब त्यों ॥
जय जानकि जीवन कहि पाय । गिरि गहन सिख पर चढ़ि जाये ॥^४

इस प्रकार सम्पूर्ण रामायण में राम का यशोवर्णन बहुत ही सरस ढंग से प्रस्तुत किया गया है । प्रबंध की पटुता, रचना वैशिष्ट्य और छंदों की विविधता में रवि गोस्वामी तुलसीदास का अनुचर सा प्रतीत होता है ।

१ अक्षयकुमार रसिकविलास रामायण, बाकीपुर, १९३६ ई०, पृ० ४ ।

२ वही पृ० ४५ ।

३ अक्षयकुमार रसिकविलास रामायण, बिहार वधु प्रेस, बाकीपुर, प्रथम संस्करण, सन् १९३६ ई० पृ० ६ ।

४ वही, पृ० ८७ ।

प० बालकृष्ण भट्ट

जीवन रेखा

भट्ट जी भारतेन्दु युग के प्रमुख गद्य लेखक थे। कवि रूप मे इनकी प्रतिष्ठा कम है। लेकिन शोधकर्ता को इनकी कुछ मतिपरक अप्रकाशित और प्रकाशित कविताएँ प्राप्त हुई हैं। अतः यत्नशुभ्र गीत अल्पज्ञात मक्त कवि हैं। इनका जन्म त्रिवेणी के पुरीत सगम पर बमी प्रयाग नगरी मे अपाढ कृष्ण द्वितीया रविवार स० १६०१ वि० (३ जून १८४४ ई०) को हुआ।^१ इनके पिता का नाम वेणीप्रसाद था। ये दो भाई थे—बालकृष्ण भट्ट और बालमुकुन्द भट्ट।

भट्ट जी का लालन-पालन ननिहाल मे हुआ। ननिहाल बाल सस्कृत के बड़े प्रेमी थे। परिणाम स्वल्प ही शिक्षा का प्रारम्भ मस्कृत सं हुआ। इह लडकपन सं ही विद्वानो का सत्सग मिला। इनकी माता सुशिक्षिता बुद्धिमती, उदार तथा दूरदर्शिणी थी और उन्ही की प्रेरणा से इन्होंने इतनी अधिक योग्यता प्राप्त की थी। माता जी के प्रयास से इन्होंने अंग्रेजी का अध्ययन भी प्रारम्भ किया और मैट्रिक तक अंग्रेजी माध्यम से पढ़ा।

भट्ट जी बड़े अध्ययनमयी और मेधावी थे। सस्कृत के अतिरिक्त ये ईसाई विषयक पुस्तकों का भी अध्ययन करते थे। ब्रजरत्नदास ने लिखा है कि इन्होंने बाइबिल-परीक्षा मे एक बार प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया था।^२

भट्ट जी बड़े ही विद्याभ्यसनी थे। ये सजीवता और सहृदयता की प्रतिमूर्ति थे। इन्होंने जीवन पर्यन्त हिंदी की सेवा की। हिंदी के उत्थन के लिये 'हिंदी-वर्द्धनी समा की स्थापना' की।

भट्ट जी एक कुशल अध्यापक, निर्भीक सम्पादक और सच्चे देशभक्त थे। आपका 'प्रदीप' पत्र आपकी विद्वत्ता का शिरोर पीटता है। हिन्दी प्रदीप की सचिकाओं मे भट्ट जी का व्यक्तित्व खूब निखरा हुआ लक्षित होना है। श्रीधर पाठक ने इनकी विद्वत्ता, स्वदेश प्रियता तथा हिन्दी के प्रति सेवा-परायणता के बारे मे ठीक हा कहा है कि—

जीवन तव अति घय सबहि विधि अहो पूयवर।
अनुदित अनुकरणीय चरित पावन प्रशस्यतर॥
घनि स्वदेश सुचि प्रेम नेम प्रिय प्रान्तु सो पर।
सादिक शुद्ध विचार सतत भारतेन्दुवार कर॥
घनि हिन्दी प्रणय प्रवांसि जग मूर्खता-तम नास हर।
तव पुण्य नाम प्रिय 'भट्ट श्रीबालकृष्ण' जग म अमर॥^३

भट्ट जी गद्य के गौरवस्तम्भ थे। उन्हीं कविता निखने का प्रयास ही नहीं किया वरन् भक्ति की गमीर रचना प्रस्तुत की हैं। शोधकर्ता को हिन्दी प्रणेय की संविकात्रा मे कुछ मतिपरक रचनाएँ प्राप्त हुई हैं जिससे पता चलता है कि उनका हृदय भक्तिभावना मे ओतप्रोत था। उनकी भक्तिभावना मे वैयक्तिक सुख की आत्मा नहीं थी बल्कि उनकी भक्ति समाजोन्मुख है। उनकी भक्ति भावना में ऐश्वर्य की प्रधानता है—

१ ब्रजरत्नदाम भारतेन्दु भण्डल कमलमणि ग्रन्थमाला कार्यालय, वाराणसी, पृ० २।

२ वही प० २।

३ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु भण्डन, कमलमणि ग्रन्थमाला कार्यालय, वाराणसी, पृ० ३६।

जय जय करुणाकर माधव अशरणशरण मुरारी ।
 पतित पतन हीनपति पति को तुम प्रभु भटिति उवारी ॥
 बेर खेद तारन के वारन मच्छ सुमग तनघारी ।
 ह्वै बराह कनकाक्ष असुर पति बसुधाहि त्वरित उवारी ॥
 कच्छप वपु विमान करि जग सब निज सुपीठ पर घारी ।
 हरनाकशिपु बिदारव नरहरि भक्त प्रणत दु खटारी ॥
 बलि छलि प्रगटि अलौकिक लीला मुरण विपति निवारी ।
 भृगुपति जहि बराल शस्त्रन कह भलिन छत्र सहारी ॥
 रघुकुल तिलक विप्रश्रुति पालक हृत दशमुख मद भारी ।
 बसुधा भार निवारक पदुकुल हलधर कण्ठ बिहारी ॥
 करुणासिन्धु असुर सम्मोहन बुद्ध रूप अनुसारी ।
 गोद्वज नासक दुष्ट दमन लगि डूबै हौ फिरि जसिघारी ॥
 द्रुपद सुता जग आरति मोचन लखि विभु रीति तिहारी ।
 भारत आरत शरण पुकारत धावहु बगि खरारी ॥^१

मद जी कण्ठ और राधा की तरफ विशेष आकृष्ट थे । वे बुद्धावन को तीर्थ के समान मानते थे । वे युगल रूप के उपासक थे ।

धन बुद्धावन धन यशोवर ।

रूप उज्जगर सब सुख-सागर छवि आगर बिहरत नागर नट ॥
 धन गोपी ओपी श्री हरि रस चित्त चापी टोकी अति दुर्घट ।
 लोकलाज कुल कानन ताडो तोडी निगम नियम तिनका चट ॥
 पिय हिय पायन छपनि कूजन की चख भव भपन तपन तन या तट ।
 परखी निपट निपट हो परखी मरखी नहि हरखी जो हा पट ॥
 गावत गावत पार न पावत जाको यश दश आठ चारि छट ।
 युगल जाहि शिव घरत समाधी ताहि लगी राधादाचा रट ॥^२

उन्हें भगवान् की महिमा पर पूण मरोसा है । ससार में एकमात्र भगवान् ही सच्चा है । अतः कवि काम, क्रोध आदि को त्याग कर भगवान् का ध्यान करने का कहता है—

जय जगदीश परेश परात्पर शमन दमन मननारे ।
 जटाजूट पुट बद्ध समुद्र तल सुर तटिनी वारे ॥
 भूति विभूषित भोगि विराजित दुस्तर भव ससारे ।
 भक्त जनाश्रय दीन दयामय कुरु करुणा निपुसारे ।
 काम क्रोध तजि हरि भजो यही जगत का सार ।
 पर जाहु भवविभु के राधारमन निहार ॥^३

शोधकर्ता को भट्ट जी की कुछ अप्रवाणित रचनाएँ भी प्राप्त हुई हैं जिनसे उनकी भक्तिभावना पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है—

१ हिन्दी प्रदीप, मई १८७८, जिल्द १, सख्या ६, पृ० ६ ।

२ वही, पृ० ७ ।

३ हिन्दी प्रदीप, मई १८७८, जिल्द १, सख्या ६, पृ० ७ ।

राम नास एक अंक है सबे साधना सूत ।

अंक रहित कुछ हाथ नहि अब सहित दस गून ॥

×

×

×

दाता विधाता तू ही अन्नदाता जगत को पालन हार ॥

मुर नर मुनि घर तेरो ध्यान करवे ।

×

×

×

ठिकाना सनम का बताते कही है पता तो हटवा सब से सगता नहीं है ।

मैं दानो जहा दूँड के हार बैठा बम धूमने की भी ताकत नहीं है ॥

जरा आँव को खोल देखो तो साहब कौन वो जगह है जहा वो नहीं है ।

समाया है सबमे अलग है जो सबमे जो है कौन भी जगह जो नहीं है ॥

यह आँखो मे गफलत का परना पडा है इसी से कमी भूझवा कुछ नहीं है ।

अपर है न खालिब न नीचे है मोला ये बातें हैं झूठी कही कुछ नहीं है ॥

जरा आपको आप ही गौर कीजै जो है सो तू ही है और कोई नहीं है ।

यह धरिया को कूजे म मैंने भरा है यह वासिद का नाम तो झूठा नहीं है ॥^१

भट्ट जी ७१ वय की उम्र मे २० जुलाई १६१४ ई० को इस अमार ससार को छोड़ चल
बसे ।

प० ठग मिश्र

जीवन रेखा

साहाबाद जिला मे हुमराव अपनी साहित्य-साधना के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध है । आप यही के शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे । आपके पिता का नाम प० जानकी मिश्र था । मिश्र जी का परिवार यही कई पीढ़ियों से रहता आ रहा था । इसी कुल मे प० ठग मिश्र का जन्म स० १६ २ वि० (सन् १८४५ ई०) मे हुआ ।^२

आप पढ़ने मे बड़े तीव्र बुद्धि के थे । छोटे ही समय में आपने हिन्दी-संस्कृत और सगीतशास्त्र का गहन अध्ययन कर लिया । व्याकरण और पिंगल मे भी आपकी गहरी पैठ थी । आप फारसी और उर्दू अच्छी तरह जानते थे । धर्म में आपका पूर्ण विश्वास था । सम्भाषन करना, तीथयात्रा करना पिंड दान आदि में अटल श्रद्धा थी । आप विष्णुवासिनी देवी के अन्त्य उपासक थे । दुर्गासप्तशती का पाठ तो बिना किये आप जल तक नहीं ग्रहण करते । देश भ्रमण आपने शुरू किया । अनेक राजदरबारों में आपको सम्मान प्राप्त हुआ ।^३

आपकी स्मृति बड़ी तीव्र थी । यही कारण है कि इन्हें प्राचीन हज़ारों कविताएँ कठस्थ थी । सरस्वती के आप वरद पुत्र थे । आशुकवित्व शक्ति आपको प्राप्त थी । समस्यापूर्तियों मे आपने अपनी

१ भट्ट जी की डायरी, से जो डा० मधुकर भट्ट, प्राध्यापक हिंदी विभाग, काशीनरेश डिप्लोकालेज ज्ञानपुर के पास सुरक्षित है ।

२ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २ पृ० ८५ ।
मिश्रबन्धुओं ने आपका जन्म स० १६०३ (सन् १८४६ ई०) माना है ।

मिश्रबन्धु विनोद, भाग ३, ब्र० सं० २२५५, पृ० १२३० ।

३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ८६ ।

जाती है। किंवदन्ती है कि आपने १८ वर्ष की अवस्था में एक बाघ को लाठी से मार डाला था।^१

आप सच्चे देशभक्त थे। हिन्दी की सेवा आप मृत्यु पयन्त करते रहे। प्राचीन साहित्य से आपका उत्कट प्रेम था। उपनिषद् एवं भगवद्गीता का आपने गहरा अध्ययन किया था। गोस्वामी तुलसीदास आपके प्रिय कवि थे। आप ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली दोनों में रचनाएँ करते थे। भारते दुधुगीन की भक्तिधारा में आठ निपुण परम्परा के एक अद्वितीय कवि थे। उदाहरण अवलोकनार्थ प्रस्तुत है—

काया बीच में जाकर बठा देखत, सकल समासा है,
देखा यह है अजब खिलाडी समझ में नहीं आता है।
पच बपारि लगे मन डाले तिहूँ लोक भरमाता है,
जह जह मनुआ खेल करत है, तह तह खेल खिलाता है।
चित्त माया दोउ नाच नचावत कुल परिवार बनाता है,
घसे रहत चहुँ ओर से मन को ता बिच आप न आता है।
है वह सदा सबन ते यारा छाया कर दरसाता है।

मन धिर करके देखहु 'मगलू' आप आप सखाता है।^२

आप द्वारा रचित पदा में 'मगलू' नाम आता है। यह नाम प्रचीन होता है कि आपका उपनाम हो लेकिन स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता।^३ आपका जन्म काल कतिपय शुद्धी गोपाष्टमी स० १६७४ वि० को हुआ।^४

सत मोरार साहब

जीवन रेखा

आप कबीर साहब क सम्प्रदाय के जन्य भक्त थे। आपका जन्म मारवाड़ के धराद नामक राज्य में वि० स० १६०२ में हुआ था। आप रवि साहब के शिष्य थे। एक निपुण मार्गी सत कवि थे। कवि का अपने प्रभु पर पूर्ण विश्वास है। अतः वह उसके चरण मुख की कामना करता है। देखिए—

मुजरो आप करत मुरार।

सरनागत मुख मुजस श्रवण, कर आए गरीब नेवाज ॥

१ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ८८।

२ मिथबघु मिश्रबघु विनोद, भाग ४, पृ० १०४।

३ भागतपुर निशामी प० शिवरत्न मिश्र के कथनानुसार आपने सारी रचना मगलू तिवारो के नाम से की थी। ये कुछ कविता करना भी जानते थे, ललित आक्रमला (मामिफ) ने लिखा है कि न जाने क्यों आप मगलू मिश्र के नाम से ही कविता छपवाते थे।

मिथबघु मिश्रबघु विनोद, भाग ४, पृ० १०४-१०५।

श्रीरमला, गिम्बर सन् १६१३, भाग २, अ० १२, पृ० ४५०।

४ हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ८८।

मिथबघु विनोद के अनुसार यह स० १६७२ वि० है।

मिथबघु मिश्रबघु विनोद, भाग ४, पृ० १०५।

अजामिल, गज गनिका, तारी आरत सुनि के आवाज ।

श्रृष्टि की नारि अहल्या तारी चरन सरन सुख साज ॥

वह अपने प्रभु से परम पद की आशा करता है, क्योंकि धना, सेना व्याघ्र गीघ आदि को तो उसने ही तारा है—

धना, सना सजन कसाई किये सवन के काज ।

व्याघ्र, गीघ, पशु पारघि तारे पतितन के सिरताज ॥

पतितपावन नेह निभावन, राजत हो रघुराज ।

दास मोरार मोज यह मागै दीजे अमय पद आज ॥

कवि को पूरा विश्वास है कि मोह भ्रमता त्याग कर भजन करने से परमपद की प्राप्ति हो सकती है—

गोविन्द गुण गाया नहीं, आलस आवी रे अमागी ।

अतरे न टली आपदा, जुगने न जोयु जागी ॥

जन्म गयो जजाल भा, शब्दे लक्षण लागी ।

भजन तू भूल्यो रामनु मोह भ्रमता नव त्यागी ॥

× × ×

धन रे जीवन न और मा बोले आँख चटावी,

सत चरण ने सेव्या नहीं कम कुबुद्धि आवी ।

भल्लह ब्रह्म ने ओलखो सुन्दर सदा रे सोहागी,

मोरार कहे महा पद तो भले मनबो होय रे बेरागी ।^१

५० शिवदयाल शुक्ल

जीवन रेखा

शिवदयाल जी का जन्म नागपुर के सीतावहीं मुहल्ले में सन् १९०२ में हुआ था ।^२ ये संस्कृत, उर्दू और हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् थे । इनका सारा जीवन नागपुर ही में बीता । नागपुर आपका केन्द्रस्थल आपने जीवनपथ पर रखा । कांग्रेस की स्थापना से आपके हृदय में गाँव माता के प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गई । अतः आपन मन ही मन गो-माता की सेवा के लिये गोरक्षणी समा की स्थापना की । ५० निबचरणलाल की सहायता से नागपुर गोरक्षणी समा की स्थापना हुई । भारतेन्दु युग में गो-सेवा के निमित्त गोरक्षणी समा की विशेष आवश्यकता थी । आपके अदम्य उत्साह से यह समा अखिल भारतीय स्वरूप प्राप्त कर सकी ।

आप बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे । गद्य और पद्य दोनों में आपकी पैठ अच्छी थी । गद्य लिखने में आपको कुशलता प्राप्त थी । फलतः आपने गोरक्षणी समा से एक गोरक्षा पात्रिक पत्र का भी सम्पादन किया । आपकी माया अकधी मिश्रित व्रजभाषा है ।

आप एक भक्त कवि थे । आपकी भक्ति भावना में राम और कृष्ण दोनों का स्थान बराबर है । राम वाक्य एवं कृष्ण वाक्य के प्रणयन में आपकी कोई विशेष रुचि नहीं लिखाई पड़ती । लेकिन स्पष्ट पदों में आपन दोनों की महिमा का गुणगान किया है । कवि राम के बारे में लिखता है कि वही

१ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, पृ० ४५२ ।

२ प्रयागदत्त शुक्ल हिन्दी साहित्य को विदम की देन, विदम हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागपुर, प्रथम संस्करण, १९६० ई०, पृ० १३४ ।

मनोरथो को सिद्ध करता है। उसके बिना दुःख हरने वाला कोई नहीं है। जनवतनया श्री जानकी के मुख से कवि उनकी महिमा की यशोगाथा कहलवाता है—

चन्द्रकला मृदुभाषत राम सो नाथ सुनी तुम्हारी प्रभुताई ।
भारि सुबाहु उढाय मरीचहि ताडवा नाथ करी सुखदाई ॥
राज समाज में ताडि पिनाचहि कीरत है मुखमडल छाई ।
गाठें न छूटत कवन की अवलान के बीच बना कठिनाई ॥^१

कवि के विचारों से उसका ऐश्वर्य भाव परिलक्षित होता है। वह राम के माधुर्य भाव का उपासक नहीं है। उसकी भक्ति में भक्त की भीरता प्रबल रूप में है, तभी तो वह सत्ता की भाँति उपदेश देता है—

भज राम मनोरथ सिद्ध करे । जग में हरिनाम सुसिद्ध करे ॥
नर ईश बिना दुःख कौन हरे । रघुनाथ बिना सुख कौन करे ॥
हठ छाड़ विचार करा मन में । रसना रिपुराज बसै तन में ॥
हरि भक्ति सुधार करे छिन में । रमणी रति ज्ञाड बसो वन में ॥
भवजान महा दुःख सागर है । बनिता दुःख भूल उजागर है ॥
तप भक्ति विवेक सुधारक है । रह जाय सुकीर्ति वही नर है ॥
मतिमान वही सुख दुःख सहै । तज शोक सदा घन धामद है ॥
ठरिये खल सो जु समीप रहै । रख घोरज शुक्ल विचित्र कहै ॥^२

आप कृष्ण के सावलियाँ रूप के उपासक नहीं थे, बल्कि कृष्ण के बीर रूप की उपासना में अपनी वाणी को लगाना धर्म समझते थे।

सुजान जान की यथा सुनी प्रमान की
तथा न हीत जान की जहान न लखी गई ।
समेन केस सैय को, पठाए देव ऐन को,
बिठाय उपसेन राज, आप चाकरी ठई ॥
रही जू एक सेव की कुजात औ कुदेव के
बहू कहात देवकी, लगाय हीयरी लई ।
अमग अग ज्यो हरि, कुदग नारि त्यों बरी,
उमग है घरी घरी अरी अली भली भई ॥^३

इस प्रकार कवि स्पष्ट पदों में राम और कृष्ण का मनोरथ चित्र उपस्थित करता है। उसके लिए राम और कृष्ण दोनों बराबर हैं। दोनों ही उसके उपास्य हैं। दोनों के लिए भक्त काव्योद्यान से सरस सुमना को चयन करता है। इन पुष्पा से सरस सुगंध स्नात समीकरण प्राप्त होता है। कवि आत्मविभोर हो जाता है।

गुरुसहाय लाल

जीवन रेखा

इनका जन्म म० १९०३ वि० में (३० जून १८४६ ई० में) हुआ था।^१ आपके पिता नाम

१ प्रयागदत्त शुक्ल हिन्दी साहित्य को विदर्भ की देन, विदर्भ साहित्य सम्मेलन, नागपुर, पृ० १३५
२ वही, पृ० १३५।

३ (क) कल्याण मानसाक विशेषांक, वर्ष १३ म० १२ अगस्त सन् १९३८ पृ० ६१३।
(ख) यशोदादा अखौरी आपका जन्म स्थान पटना जिले के जोडा नामक ग्राम में मानते हैं।
वही, पृ० ६१७ तथा बिहार की साहित्यिक प्रगति, पृ० २६६।

मुन्शी नरनारायणलाल था। आप गया जिला-तगत नाटिश ग्राम के निवासी थे। वायस्थ परिवार के बड़े ही शान्तप्रिय व्यक्ति थे।

शशदास्या में आप बड़े ही विलक्षण प्रवृत्ति के थे। खाने-पीने की इन्हें सुष-नुष नहीं रहा करतो था। किसी ने खिला दिया तो खा लिया अथवा चुपचाप पड़े रहते। किसी प्रकार का मय आपको नहीं था। वे जहाँ चाहते चल देते। इस तरह सत्तार से विराग की भावना ने इन्हें भगवद्भक्ति की ओर उमुख किया। वचनन में ही आप 'हरे कृष्ण गोविन्दाय वासुदेवाय नमोनम' का मंत्र कठस्थ कर जप करने लगे थे।

आपका अक्षरारम्भ आपके पिता द्वारा हुआ। पिता ने ही आपको हिन्दी पढ़ाई तथा आपने अपने बहनोई मुशीलाल से फारसी पढ़ी। पढ़ने में भी आपका दिल नहीं लगता था। अतः पिता ने इन्हें गृहस्थी की ओर आकर्षित करने के लिये १२ थप की अवस्था में ही इनकी शादी कर दी। लेकिन यह वैवाहिक सम्बन्ध भी आपको मोहपाश में न बाध सका। आप सासारिक प्रपञ्च से दूर रह साधुसन्ता का सत्संग करने लगे। इस तरह आपके हृदय से भक्ति भविरल धारा फूट पड़ी।

बाबा सोहनदास आपके गुरु थे। आप योगाभ्यास की दीप्ता भी प्राप्त कर चुके थे। स्वामी विश्वम्भरादास आपकी योग-साधना के गुरु थे। आपने श्रीमद्भगवद्गीता का भी गहरा अध्ययन किया था। साधु स्वभाव की पूर्ण प्राप्ति के पश्चात् विद्यानुरागिता में प्रगति आई और आपने पिंगल, व्याकरण आदि शास्त्रों का गहरा अध्ययन किया।

आपकी लिखी ग्यारह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।^१ जिनमें निम्नांकित से भक्तिभावनाओं को भागीरथी प्रवाहित होती है—(१) सज्जन, (२) निर्वाणशतकम्, (३) शीतलचिन्तामणि, (४) श्रीसद्गुरुस्तवराज आदि।

कवि त्रिगुण परम्परावादियों के अनुसार योग की शिक्षा से पूर्णतः कुशलता प्राप्त कर चुका था। उस पर नायपय या कबीर की साधनाओं का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। कबीर की भाँति ही कवि समाज के स्वर के साथ न चलकर वह हिन्दू मुस्लिम ऐसम की प्रशानता बतलाता है। उसका राम कबीर का ही राम है, दूसरा नहीं—

तत्त्वो को देखा स्वास मे स्वर से गये ब्रह्माण्ड में ।
नि तत्त्व पद पाया नहीं स्वरोदय सधा तो क्या हुआ ॥
कोई नासिका हिय तिरुंटी ब्रह्माण्ड ॥ आ जा पुनें ।
कुछ भी मरम अनबूझ ना अनुभव हुआ तो क्या हुआ ॥
अनह्म में सुरती जा लगी आनन्द में जीती पगी ।
निज राम की धुन की गम नहीं ध्वजा कजा तो क्या हुआ ॥
पद पद के नाना ग्रथ को वृत्ती अह ब्रह्मास्मि ।
अनुभव न तुरीयातीत का बक बव हुआ तो क्या हुआ ॥
हिन्दू बने कोउ मुसलमान और पंडित बने कोउ गीलवी ।
पाया नहीं पिरतम कभी मजहूर मिला तो क्या हुआ ॥
पूज्यो न माना देवता और अत तीरथ भी किया ।
सतगुरु शरण पाया नहीं रच पथ मुआ तो क्या हुआ ॥^२

१ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० ६१।

२ वही, पृ० ६१।

कवि कबीर की भाँति ही गुरु शरण की प्रतिष्ठा करता है। उसकी भावनायें ब्रह्म तक पहुँचने की बही गूँत हैं। साधारण पुरुष वहाँ तक नहीं पहुँच पायेगा।

इनका देहान्त सम्वत् १६६२ वि० चैत्र कृष्ण पक्षमा (१४ भाव, सन् १६०५ ई०) का हुआ।^१

चतुर्भुज मिश्र

जीवन-रेखा

गुण नम पुनि चन्द्रमा विरम सवत् बजार।

रामजन्म नवमी तिथी जन्म दीन करतार ॥^२

इनका जन्म उपर्युक्त दोहे के अनुसार वि० स० १६०३ में (सन् १८४६ ई० में) रामनवमी के दिन हुआ था।^३ आपके पिता का नाम प० यदुराज मिश्र था। ये गया जिला-तहत डुमरिया नामक ग्राम के रहने वाले थे। पिता चलता है कि आपके एक जेठे भाई थे। आपकी शिक्षा-दीक्षा सबप्रथम घर पर ही हुई। स्कूली शिक्षा केवल तीन साल तक मिली थी। घर पर इन्होंने हिन्दी और संस्कृत का गहरा अध्ययन किया। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् आप गृहस्थ जीवन में विभिन्न द्रविण और हाई स्कूलों में संस्कृत पढ़ित की जगह नाम करते रहे।

आप हिन्दी और संस्कृत के प्रगाण्ड पण्डित थे। साहित्यिक अभिव्यक्ति वचन सही इनमें थी। मेवावृत्ति से अवकाश पाते ही आप साहित्य-साधना की ओर झुके। भक्ति-साहित्य में आपकी गूँठ बूँठ अत्यधिक थी। भक्तिकाव्य के आप प्रणेता ही नहीं थे, बल्कि भक्ति वाङ्मय का बराबर अध्ययन भी करते थे। यही कारण है कि भक्तों के बीच आज की रचनाओं को आज भी सम्मान प्राप्त है।

आपकी रचनाएँ निम्नांकित हैं—(१) आल्हा रामायण, (२) गयावासी रामायण, (३) गया वासी भागवत, (४) सरोज रामायण, (५) उद्देश्य आनन्द क्लोलिनी, (६) मनोहर रामायण, (७) सुबोध चन्द्रोदय (८) गीतासार आदि।^४

आप राम और कृष्ण दोनों के अनन्य भक्त हैं। कृष्ण की माधुर्य लीलाओं का आपने सरस वर्णन किया है। शृङ्गार सम्राट् श्रीकृष्ण की रासलीलाओं के वर्णन करने में कवि जाल्मविभोर हो जाता है। रसवल्लभा धीराधिका का मधुना पुलिन एक कुञ्जी मरसराज किञ्चोर श्रीकृष्ण से मिलना बड़ा ही हृदयप्राही है। देखिए—

समय को पायकर बन्दुआ, तुरत घर स पधारा है।

मिनी पुनि राधिका जाकर जहाँ मधुना किनारा है ॥

नही कोई तीसरा बहवाँ, मिल दाउ वीर हैं जहँवाँ।

बिहरत तीर पै तरुतर, मानो गाटा किनारा है ॥

चहुँवटे डार पै चिड़िया, मिले दस बीस एक बिरियाँ।

लगे पुनि गूँजने भोरा, कुहुक कोकिल के गारा है।

१ कल्याण, मनसाक विशेषांक, पृ० ६१८।

अजनीमन्दनशरण के मतानुसार यह तिथि १८६८ ई० है।

२ शिवपूजन सहाय हिन्दी-साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ६२।

३ वही, पृ० ६२।

४ वही, पृ० ६२।

मिली ज्यो आप से आखें, अघर रत धूमकर चाहें ।
 चमा चम सीस पै बेंदी, जगी जनु सुक तारा है ॥
 दई गल बाह बाह ने, भुकाई सीस राधा ने ।
 लचक गई अग धारी के, दिया कहुआ सहारा है ॥
 आधारि छा गई रातें, भयो लो काम से राते ।
 चयन के रग मे राते, भयो चन्दा उजारा है ॥
 मुनो मुजवार की बातें मय रसरग म राते ।
 बसे पुनि गीत को गाते वही यमुना किनारा है ॥^१

कवि रामभक्तशाखा को भी अपनी रचनाओं से सुशोभित करता है। उसे साता के आकुल हृदय का अंकन करने में पूर्ण सफलता मिली है। कवि अनुमान की सेवा को भी नहीं भुला पाता। उसकी भक्ति यहाँ दास्य भाव को परिलम्पित होती है। उदाहरण देना अपेक्षित है—

सीता को सोच भारी रोन लगी बेवारी ।
 भूले मुझे खरारी, सुख ना लिया हमारे ॥
 अब प्राण ही को खोवें, मिलने की आस खोवें ।
 भर नींद नाथ सोवें, हम बाट कब लो जोवें ।
 निजटा न देख पाई, सपना तुरत सुनाई ।
 महरा तुरत उठाई, पैठी चिनार जाई ॥
 हनुमान ने बिचारा, कैते करू सहारा ।
 परतीत हूँ हमारा, त्या मुद्रिका चिनारा ॥
 अंगुठी तुरन्त डार, मानो गिर अगारा ।
 सीता करे बिचारा दूटा सरग से सारा ॥
 मन मे बिचार आई, अंगुठी तुरत उठाई ।
 ठहै राध नाम पाई, कैसे बहा पै आई ॥
 बनबास की महानी, हनुमान ने बखानो ।
 यह बात मैंने जानी, तूही है राम रानी ॥^२

आपका देहान्त ७२ वय की आयु में स० १६७५ वि० में हुआ ।

स्वामी निरञ्जनानन्द जो तीर्थ

जीवन रेखा

आपका जन्म स० १६०३ वि० में भाद्रपद शुक्ल तृतीया को उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद के काया ग्राम हुआ था। इनके पिता का नाम गयादीन मिश्र था। बचपन से ही इनकी रचि आध्यात्म परवर्षी थी। ये शिवसिंह सरोज के प्रणेता शिवसिंह के परम मित्र थे। शिवसिंह के सप्रसंग से ही काव्य तथा संगीत विद्या में इन्हें निपुणता हासिल हुई। व्यक्तिगत जीवन में दानों का सम्बन्ध बढ़ा ही संपुर बहुते दिनों तक बना रहा ।

१ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ६३ ।

२ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० ६३ ।

सन् १८५७ ई० के विप्लव के उपरांत दोना के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। शिवसिंह गोडा के थानेदार नियुक्त हुए और वहीं निरजनानन्द जी उनके सहायक के रूप में बाग़् रुपये मासिक पर काम करने लगे।

निवृष्ट सेवावृत्ति और आध्यात्मिक प्रवृत्ति से भेल कब तक खाता। दोनों वृत्तियों का संघर्ष कुछ दिनों तक चलता रहा। अतत इन्हें गृहस्थाश्रम का परित्याग करना पड़ा। गोडा के प्रसिद्ध वैष्णव भक्त विश्वेश्वरदास से 'नारायण भक्त' की दीक्षा ली और घर पर ही एक हनुमान मन्दिर में रहकर हनुमान की भक्ति करने लगे। हनुमान के आप परम भक्त थे। अक्षर मिलने पर आपने तीर्थ यात्रा भी की। इस प्रकार आप निवृत्ति मार्ग के पूर्णावलम्बी हो गये।

स० १९६२ वि० में आपने काशी की यात्रा की। यही स्वामी परमानन्द जी से सत्यास-दीक्षा लेकर एकान्त साधना में लीन हो गये। रामचरणदास ने लिखा है कि 'सत्यास ग्रहण' के पश्चात् के सई नदी के तट पर एकान्त तथा रमणीय स्थान पर कुटी बनाकर विरक्ताभाव से भजन करने लगे।^१

आप भजन कीर्तन आदि के बड़े शौकीन थे। रामायण पर आप की अटूट श्रद्धा थी। रामायण पाठ बड़ी श्रद्धा से करते थे। आप नानो महात्मा और भक्त ही नहीं थे बल्कि एक उच्चकोटि के भक्त कवि भी थे। आपने विनय वसीठी, निरंजन भजनावली, धनुषपञ्च और राम-संग्रह ये चार ग्रन्थ रचे।

आप स० १९८१ वि० में इस ससार को छोड़ कर परलोक सिधारे।

आपकी भक्ति सगुण भाव की थी। आप राम, हनुमान और देवी की उपासना किया करते थे। भक्तिभावना पर रामानुज के विशिष्टा द्वैतवाद की छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है। आपके रचे कुछ पद नीचे उद्धृत हैं—

मन से सीताराम फिरत मन काहे भटका ॥ टेक ॥
 गुरु पद सेह सत सगति करि अहंकार को पटका।
 रामनाम का रहहि निरंतर सीखि भजन का लटका ॥
 है संसार कछु नहि माया मोह भ भटका।
 तेहि छूटन का वेगि जतन कर बिषय भोग को सटका ॥

छाडि उरासा मन का तन का धन का सुख का लटका।

निश्चल मन ते प्रेमभाव से लखि ले स्वामी भटका ॥

बीति गई आपुही इतनी हाय न मन को हटका।

विषयकासना का नहि छूटा ई तन ते यदि चटका ॥

अत समय पड़ितावा करि है करि जग के टोटका।

सो आई कछु काम न जब ही परी यमन का भटका ॥

तीर्थ निरजन कहि समुभावत राम भजन का पटका।

मकमागर ते पार करइया है बेढा बेसटका ॥

आत्मा में परमात्मा लखहु सुमिरि ओवार।

ज्योति सरूप ह्वि ध्यान करि उतर जाय भव पार ॥^२

१ कल्याण, भक्तचरिताव विशेषांक, (ब्रह्मानन्द जी मिश्र स्वामी निरजनानन्द जी तीर्थ), पृ० ७८४।

२ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, पृ० ५७४।

पण्डित पीताम्बर

जीवन रेखा

आप बच्छ देश के निवासी थे। आपका जन्म स० १६०३ वि० में हुआ था। भारतेन्दु जी से आप चार वर्ष बड़े थे। आपकी भक्ति-परक रचनाओं में तत्कालीन भक्तिभावनाओं का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। नीचे आपकी कविताओं के कुछ अंश उद्धृत हैं—

जब जनत है निज रूपहि नूँ । जब जीवमुक्ति समीपहि कूँ ॥
भ्रम बूढ़ निवृत्ति सदेहहि नूँ । सुख सम्पत्ति होवत गेहहि नूँ ॥
विद्वान् तजै इस देहहि कूँ । सब पावत मुक्ति विदेहहि हूँ ॥
सम लेश भजे सद नाशहि हूँ । तज देत प्रपपष अमासहि कूँ ॥
सरित इव सागर देशहि कूँ । चिन मात्र मिलाप विशेषहि कूँ ॥
चित होय भजे अवशेष हि कूँ । नहि जन्म पीताम्बर शेषहि कूँ ॥^१

आप एक सतमार्गी कवि हैं। आपकी रचनाओं से एक विरोगी का भाव द्योतित होता है। आपका विश्वास है कि विद्वान् मोक्ष प्राप्ति के हेतु इस देह को त्याग देने में सन्नोच नहीं करता है। पुनर्जन्म को आप नहीं मानते हैं। इसलिये भगवद्भजन परमावश्यक प्रतीत होता है इस प्रकार कवि निर्गुण ब्रह्म का उपासक है।

रामकृष्ण बोवा करतालकर

जीवन रेखा

इनका जन्म १८४६ ई० में मध्य प्रदेश के किसी नगर में हुआ था। मोमला राज्य के अस्त होते ही ये नागपुर में आ बसे। उस समय राजा बहादुर जानोजी राव गद्दी को सुशोभित कर रहे थे।^२ ये बड़े ही विद्वान् थे। अतः इन्होंने रामकृष्ण को अपने यहाँ आश्रय दिया।

रामकृष्ण सत्कृत और ज्योतिष के विद्वान् थे। गायन और वादन में भी आप निपुण थे। ये बराबर करताल बजाया करते थे। करताल लेकर प्रायः भगवद्नाम कीर्तन में तल्लीन रहा करते थे। करताल बजाने के कारण ही लगता है लोग इन्हें 'करतालकर' कहने लगे। ये तीर्थयात्रा के बड़े प्रेमी थे। इसी उद्देश्य से इन्होंने समस्त भारत का भ्रमण किया था। ये गृहस्थ सत थे। भक्तिभावों से परिपूर्ण इनके कई आख्यान अप्रकाशित हैं।

ये भगवान् के अनन्य उपासक हैं। नाम कीर्तन में इनकी अगाध श्रद्धा है। इनका पूर्ण विश्वास है कि ससार सागर से पार उतरने के लिये एकमात्र हरिनाम ही आधार है। क्योकि नाम कीर्तन से ही प्रह्लाद अजामिल, गणिका, वाल्मीकि, ध्रुव आदि सभी परमपद को प्राप्त हुए। अतः सुख कामना की आशा छोड़कर भगवान् का नाम भजो—

जगत मो तारव हरि को नाम ।

भज ले तो प्रह्लाद प्रेम से आया दौड कर श्याम ॥

पापी अजामिल गणिका तारी दिया बैकुण्ठ मो सुरधाम ।

वाल्हा कोली वाल्मीक भया है उलट जपत मुखराम ॥

१ कल्याण, सतवाणी विशेषण, पृ० ५४१ ।

२ प्रयागदत्त शुक्ल हिन्दी साहित्य को विन्म की देन, पृ० ५६ ।

ध्रुव बालक आगमनी देखा, दिया अबल पद ग्राम ।

रामकृष्ण हरिदास कहत है, छोड़ो बिप ये सुखनाम ॥^१

कवि कबीर की मति ही ससार को नि सारता की ओर लक्ष्य करके चेतावनी देता है—

राम भजन कर लेना एक दिन जाना है भाई ॥

सोना पहरे चाँदी पहरे पहरे पीतल बाँसा ।

साहेब के घर चिट्ठी आई, छूटी देह की आसा ॥

राजा गये काजी गये, गये बड़े बड़े अधिकारी ।

साहेब के घर आया बुलावा, छोड़ चले सरदारी ॥

हैंस छोड़ के जात पलक या पल तत्व का चोला ।

जान भूभकर क्या बे भूला रहे रामकृष्ण बाता ॥^२

कवि शरीर को, रेल का रूप मानकर बड़ा ही सुन्दर घणन प्रस्तुत करता है । यहाँ शरीर रूप रेल में आध्यात्मिक तत्व की कमी नहीं है । कवि को इस पद में पूर्ण सफलता मिली है । कबीर के भावजगत् में कवि की पूरी पैठ है । प्रतीक योजना के माध्यम से वह आध्यात्मिक जगत् में अपना अच्छा स्थान बना लेता है—

प्रभू ने कैसी रेल चलाई ॥

तन की गाड़ी बल का इजन क्रोध की आग जलाई ॥

श्वास की सीटी बजाई ॥

नाड़ी तार सम खबर सेन को दशम द्वार फैलाई ॥

इंद्रिया के बनाई टेसन पान कि घटी बजाई ॥

सुनो तुम कान लगाई ॥

उत्तम मध्यम अधम तीन है दरजे इसके भाई ।

कम अकर्म की टिकट बटत है पाप पुण्य पहुँचाई ॥

धर्म कर्म की खेप लगाई ॥

जीवात्मा इसमें बैठे टिकट अपना लिखलाई ।

देखने वाला जो जगन्निश निसने रैन बनाई ॥

रामकृष्ण रहे मुझ प्रभू ने हित की रेल दिलाई ॥^३

ये एक अच्छे कौतूहल का फल है । संगीत की स्वर लहरी में भावित तत्वों का समावेश सोने में सुहागा जैसा फलता है । आप एक सत कवि थे । सत्तों की बाणी की प्रभावामिष्यजनता आपके पन्ना में मौजूद है ।

आपका देहांत सन् १६०३ ई० में हुआ ।^४

बिहारोलाल चौबे

जीवन रेखा

आपका जन्म जौनपुर जिला तहत मधुरापुर नामक ग्राम में स० १६०५ वि० (सन् १८४८ ई०)

१ प्रयागदास शुक्ल हिन्दी-साहित्य को विद्वान को देन, पृ० ५६ ।

२ वही, पृ० ६० ।

३ प्रयागदास शुक्ल हिन्दी साहित्य को विद्वान की देन, पृ० ६० ।

४ वही, पृ० ५६ ।

मे हुआ था। आपके पिता का नाम रक्षापाल चौबे था। ये जाति के सरयूपारीण ब्राह्मण थे।^१ घर पर ही पिता से आपने व्याकरण का अध्ययन किया। बाद में काशी आकर आप ने संस्कृत और हिन्दी का अध्ययन किया। विद्यार्थी जीवन से ही आपने साहित्यिक जगत् में प्रवेश पा लिया था। तत्कालीन पत्र पत्रिकाओं में आपके निबन्ध और कविताएँ प्रकाशित होती थीं। सदाशं, कविबचन-सुधा, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका आदि में आपकी रचनाओं को स्थान मिलता है। अतः यह निर्विवाद सिद्ध है कि आप भारतेन्दु युगीन कवि और लेखक हैं। आप एक कुशल अध्यापक थे। बिहार के कई एक स्कूलों में आपने हिन्दी और संस्कृत का कुशलतापूर्वक अध्ययन किया। आपकी ब्रजभाषा में रचनाएँ बहुत ही राचक और सुबोध तथा सरस हैं। आपकी अधिकतर रचनाएँ विद्यालया में पढ़ाने के निमित्त लिखी गई हैं। लेकिन तद्दुगीन प्रभाव से वंचित होना अत्यन्त ही अवश्यम्भावी है। अतः युग की छाप के अनुसार शृङ्गार सर्वात्म्य भक्ति-पदा की रचना कवि ने ब्रजभाषा में की है। कवि सखिभाव का उपासक है। हरिदासो सम्प्रदाय की माधुय भक्ति का सखीभाव स्पष्ट ही कवि की रचनाओं में परिलक्षित होता है, यथा—

राजा जो बापा हरे जग की हरि हेरि न बूज के बीच ठगी सी।
पत्र आगे परे नहि पीछे परे पुनि स्वासे चले जनु शाक लसी सी।
सोचति शोक विमाचलि शोक शिमोचन कौ जनु बाधा लसी सी।
अवलोकति एव ही ओर लखी सुमृगो इव जाल विशाल फसी सी ॥^२

शिवप्रसाद

जीवन रेखा

इनका जन्म सन् १८५० ई० के आस-पास हुआ था।^३ ये जाति के श्रीवास्तव कायस्थ थे। आप एम रामभक्त कवि थे। रामभक्ति सम्बन्धी आपने कई मौखिक ग्रन्थों का प्रणयन किया। आप की माया भत्री हुई है। आपका रामायण लिखने की कला पात थी। आपकी तीन पुस्तकें—सप्त छंद रामायण, छन्द रामायण, हरदण्ड रामायण—का पता चलता है।

आप राम के अनन्य उपासक थे। आप राम की ही उपासना में सदा मग्न रहा करते थे।

अबध जन्म ली बटो राम जानकी सुशोभा।
पितु आयसु मुनि वेप जाइ बन बत बहुलोला।
सुया हरण पुनि गुढ मरण सुभीक राज पुनि।
हनुमतादिगण गमन दहन लवा सिय सुधि सुनि ॥
बर वारिधि बाधि सबीश दल। उतरि पार परिवार सह।
रण गिवप्रसाद रावण हत्यो रामायण बुध जान यह ॥^४

इस पद में कवि रामचरितमानस के कथानक को केवल छ पंक्तियों में ही प्रस्तुत कर देता। वह अपने वाक्यघातुय के लिये प्रसिद्ध है। काव्य पर तुलसी का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। वह भगवान् राम की पूजा में तुलसी की कवितावली और विनयपत्रिका से प्रसून चुने हैं—

१ सरस्वती, हीरकजयन्ती विशेषांक, पृ० ५३८।

२ वही, पृ० ५४०।

३ कामेश्वर शर्मा हिन्दी साहित्य की बिहार का, देन, मुहूर्त सध, मुजफ्फरपुर, प्रथम संस्करण, २०१२ वि०, पृ० १६०।

४ वही, पृ० १६०।

जय जय गुणराशो सब उरबासी अज अबिनासी
 जन प्राता सब सुमदाता ।
 जय विश्व दुखारी देखि अघारी जय हितकारी
 पितु माता बुद्धि बल प्राता ॥
 धरि यारि सुभग तन राम भरत सपन सनुदुहन
 जम गले दशरथ घर लें ।
 करि भय रक्षवारी मुनि तिपतारी शिवधनु मारी
 राम दले त्रिभुवन बिचले ॥
 कहि भृगुपति जय जय फिर धनुष दै कुटिल नपन्हो,
 गावहि रुदन नम भरे सुमन ।
 मिथिलेश अनन्दे कौशिक बन्दे रघुकुल चन्दे
 राखे पन हर्षे पुरजन ।
 तारि अहिल्या तौरि हर धनुष भृगुपति मद भयि सिया विवाहि ।
 व्याहि आई सब दुलहिनि सै घर आये सो मुख कहि ॥ सिराहि ।
 बाधि समुद्र पार उत्तरे प्रभु सकल घोर रण भारि ।
 करि लजपति जन विभीषणहि चले पुष्पकारुहि रथराशि ॥^१

इस प्रकार कवि की भक्तिधारा में स्वान्त सुखाय कविताओं का सृजन जब तक हुआ है। माया पर उसका अधिकार है। माया और भाव खेलकर यह सहज ही में मान हो जाता है कि यदि उसे आसनस्थ होकर लिखने का मौका मिला होता तो वही मा भारती के पूजाचर्च में सुन्दर सुमनों की माता प्रस्तुत करता। इस तथ्य उसे भारतेन्दुश्रीन रासभक्त कविया में विशेष स्थान प्राप्त होता है।

केशव हरि

जीवन रेखा

आपका जन्म वि० सं० १६०७ में हुआ था। भारतेन्दु का जन्म भी इसी सम्बत् में हुआ था। आप सौदागु के रहने वाले एक अच्छे महात्मा थे। आपने द्वारा रचित पद्य में भक्ति की भागीरथी का प्रवाह देखते ही बनता है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

जो शाठ दात सुममाहित बीतराग,
 जेने नयी जगत भाँ रतिमात्र राग ।
 जेने सग परम बोध पवित्र धाम,
 एने अमे प्रणय की करिए प्रणाम ॥
 जेनो ययो सफल जय नृजाति रूप,
 जेने सग सुख एक निज स्वरूप ।
 जेनो सुपाथम विषे समये विराम,
 एने अमे प्रणय की करिए प्रणाम ॥^२

१ कामेश्वर शर्मा हिन्दी साहित्य की बिहार की दन, पृ० १६२ ।

२ बत्स्यान, सतवाणी विशेषांक, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ० ४४६ ।

आप एक सत कवि थे । निगुण परम्परा में प्रणय की विशेष महत्ता है—

देखाय तोय पण अन्तर मोहि शूढ,
जेने विवेक विनयादि बिचार रूढ ।

जो आत्मसाम थरि केवल पूण नाम,
एने अमे प्रणय थी करिए प्रणाम ॥

जो त्यागवान पण केवट एक रागी,
रागी जणाय पण अन्तर मा विरागी ।

जेनु सदा रटण केयव राम नाम,
एने अमे प्रणय थी करिए प्रणाम ॥^१

यज्ञवत्त त्रिपाठी

जीवन रेखा

ये एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इनका जन्म सन् १६०७ वि० (सन् १८५० ई०) में सारन जिलान्तर्गत बलुआ नामक ग्राम में हुआ था ।^२ इनका उपनाम 'यज्ञ' था ।

आपके शरीर की आकृति बड़ी ही सुन्दर थी । आप भारतेन्दु के मित्र थे ।^३ सितारवादन की कला आप जानते थे । हिन्दी, फारसी और संस्कृत का ज्ञान आपको अच्छा था । शिव जी के आप अनन्य भक्त थे । उन्हीं के गुणगान में आप पदा की रचना करते थे और उन्हें सितार पर गाया करते थे । शिव की स्तुति में आपने एक ग्रन्थ की रचना की है जिसका नाम 'यन सहरी' है ।^४ आपकी रचनाओं से निम्नलिखित पद्य उदाहरण के लिये उपस्थित हैं—

एकटक हेरत न केरत अनत नैन,
मुदित चकोर निमि षड्र छवि ध्याये ते ।

नटत मयूर जैसे मन में आनन्द मरयो,
देखि देखि, गगन सघन मन ध्याये ते ।

जैसे गजराज सुख सिन्धु में मगन होत,
भावत न माने रेनु खेह सन लाये ते ।

जैसे 'यज्ञ' जन-मन-मधुप प्रमोद मरयो,
सम्पु-पद-पदुम-पराग-पुञ्ज पाये ते ॥^५

एरे मन मेरो मैं तौंसो वहाँ डेरो होय,
शकर की बेरो मानि काटत भव-फन्दे रे ।

मग है अघेरो यहा कोई नाहि तेरो,
चोर विप आनि धरो सब छाड छल छन्दे रे ।

१ वही, पृ० ४४६ ।

२ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, बिहार राष्ट्रमाया परिषद्, पटना, पृ० १०४ ।

३ वही, पृ० १०४ ।

४ वही, पृ० १०४ ।

५ वही, पृ० १०५ ।

प० अडकूलाल वैद्य

जीवन रेखा

आपका जन्म स० १९०८ वि० माघ वसंत पंचमी को ललितपुर में हुआ था ।^१ आपके पिता जी का नाम प० माधवप्रसाद था । आप बचपन से ही अध्ययन कुशल थे । अप्र सवत् १९२४ में मिडल तथा स० १९२७ में इंट्रेंस की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए । यही आपका अध्ययन अर्थात्मात्र के कारण अवरुद्ध हो गया । अतः आप गृहस्थी के काय में जुटे । सब प्रथम आपका जीवन किरानी से प्रारम्भ होता है । आपकी बुद्धिमत्ता ने आपको मोपाल स्टेट के प्राइवेट सेक्रेटरी के पद तक पहुँचा दिया । आप स० १९३६ से १९८२ तक दीवान विजय बहादुर मजबूत सिंह नौधरा के मुख्तार रहे । स० १९८३ में आपने वहाँ से अवकाश ले लिया फिर भी आप परामर्श देते ही रहे । आपका रचना काल स० १९१३ वि० है । आपके स्फुट पद काफी मिलते हैं । आपने एक पारजात 'रामायण' की रचना की है । सुकवि सरोज के लेखक का विश्वास है कि गोस्वामी तुलसीदास की भाँति रामायण का दूसरा ग्रंथ इस काल में प्राप्त नहीं होगा । यह ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित है । उनकी रचनाओं से निम्नांकित अंश उद्धृत किया जाता है । इस पद में कवि एक ही साथ शेष, महेश, त्रिनेश, हनुमान और मुनिगण तथा निराकार साकार प्रभु की 'ब'दना करता है ।

सिंदुरी प्रणत्रहें प्रथम श्रुति तज शेष महेश ।

निराकार साकार प्रभु हुमत गिरा दिनेश ॥

बालमोक्ष व्यासादि मुनि विश्वामित्र वशिष्ठ ।

नात्वा भारद्वाज मुनि काक भृशुड वरिष्ठ ॥

×

×

×

जात रूप भणिगण बसन भूषण धेनु समेत ।

हय गज रथ जुत साज तब दीन द्विजन नृप केतु ॥

कौतुक सखन हेतु तेहि काला । काक भृशुड महेश कृपाला ॥

घर मानुष तन अवध पधारे । जहाँ प्रकट हरि नर तन धारे ॥

जिहि पुर प्रगटे राम पविना । भरत जुगल सुनु सीमित्रा ॥^२

अडकूलाल जी प्रसिद्ध रामभक्त कवि हैं । इस ग्रंथ में उनकी प्रबन्ध पद्धता, रचना वैविध्य, वर्णन की बहुलता आदि का सुन्दर दर्शन होता है । कवि रामजन्म का वर्णन इस पद में करता है—

जो भव द्वन्द मिटावन हारा । हरन भार भू जग आधार ॥

तिहि पुर शोभा बरणि कि लाई । पकहि शेष जो करहि बडाई ॥

मे प्रतिगृह आनन्द बधाए । मंगल साज समाज सजाए ॥

वरणे को अवघेस विभूती । सक्र फोटिहैं ते सु अकूती ॥

नुपत जाचकन कीन अजाची । त्रियगण धून मंगल पुर राची ॥

समय जान भत्री बुधवता । चुलवाए वशिष्ठ वर सता ॥

१ गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' (संपादक) सुकवि सरोज, सनातनान्ध्र, ग्रन्थमाला, टीकमगढ, बुन्देल खण्ड, प्रथम संस्करण, पृ० ६९०, पृ० १६६ ।

२ गौराशंकर द्विवेदी 'शंकर' (संपादक) सुकवि सरोज, प्रथम संस्करण, १९६० वि०, पृ० १६६ ।

हूँ प्रसन्न भुनिवर तह आए । नृप पूजन कर तिन बैठए ॥
 धीन भूप अस्तुति बहुमाती । बैठ नृप सह गुस्जन जाती ॥
 पुरजन परिजन सब तह आए । सादर तिनहि भूप बैठए ॥
 यदि मुनिहि पुनि भूप उचारा । जम लग्न ग्रह कहहु विचारा ॥
 निरालस भुनि ज्ञान निधाना । कर विचार बोले तप माना ॥

एक लग्न गुरु उच्च शशि है, जुग तन सुख दैन ।

राहु तीसरे दसय रवि, शनि तुना है अँन ॥

सप्तम कुज कवि केतु मीन के । एकादसम् बुद्ध वृष गृह के ॥
 पंच उच्च ग्रह अनुपम सौहैं । रवि कुज गुरु शनि भृगु सुत जौहैं ॥
 स्रग् ग्रही विधि अस जोम अनूपा । अथ लग्न लखे मुने नहि भूपा ॥
 सकल जोग फल शुभ शुचि जेते । धरित तीन तुष सुतविच तेते ।
 सब ग्रह तोर सुवन के ताता । है शुचि सुन्दर फल के दाता ॥
 लोक प्रसिद्ध ज्ञान सुत भूपा । भेति विधि ग्रह अनुकूल अनूपा ।
 अज अद्वैत ज्ञान विज्ञाना । अजय अवध अजर भगवाना ॥
 अमल अनत अछड अनूपा । अद्भुत ईश तोर सुत भूपा ।

भूपति भूतल सर्वे को ही हरि है भू भार ।

रघुकुल मदन तोर सुत तीन लोक भर्तार ॥^१

कवि का 'पारजात रामायण' इस युग का गौरव स्तम्भ है । इसे रामकथाकाव्य के उद्घाटन में जल्लोक्षनीय सफलता प्राप्त हुई है ।

रसिक सत सरस माधुरी जी

जीवन रेखा

आपका जन्म ग्वालियर राज्य के भदसौर ग्राम में क्रि० सं० १९१२ में हुआ था । इनके पिता का नाम धासीराम तथा माता का नाम पावती देवी था । आप जाति के ब्राह्मण थे । आप कृष्णभक्त कवि हैं । नवधा भक्ति में आपकी जगध श्रद्धा है । भक्तिभावनाओं से स्नात आपकी कविता बड़ी ही सरस एवं हृदयग्राही है । आप युगल उपासना को मायता देते हुए वेन की सहता को स्वीकार करते हैं । भक्ति से मुक्ति मिलती है, ऐसा आपका विश्वास है, आपकी कविता माया से लयमय है—

जय जय श्री युगल बिहारी ।

कृज भूपति नव नागरि नागर,

रस सागर रसिकन रिञ्जवारी ॥

अधम उधारन जन निस्तारन,

सारन सरन भक्त भय हारी ।

प्रयामल गौर निशोर किशोरी,

जोरी मोरी अति सुकुमारी ॥

बिधि हरि हर विनवत निशि वासर,
 अवतारन हूँ के अवतारी ।
 कीजिये कृपा कमल पद सेवा,
 सरस माधुरी शरण तिहारी ॥^१

कवि नामभजन की महत्ता को स्वीकार करते हुए इसे कल्युग का आधार मानता है ।
 भजो श्रीराघे गोविंद हरी ॥

युगल नाम जीवन घन जानो, या सम और धर्म नहि मानो ।
 वेद पुराणन प्रगट बखानो, जपै जोइ है धन्य घरी ॥
 कल्युग वैवल नाम अधारा, नरघामन्ति सख्य श्रुति सारा ।
 प्रेम पराफल सहै सुखारा, रमना नाम लगावो भरी ॥
 नृत्य करै प्रभु के गुन गाव, गद गद स्वर तन मन पुलकावै ।
 टहल महल कर हिय कुनसार, सरस माधुरी रग भरी ॥^२
 भज मन श्री राघे गोपाल ।

करुणानिधि कोमल चित तिनको, दाता को प्रतिपाल ॥
 जिनको ध्यान किये सुख उपजै दूर होत दुख जाल ।
 माया रहत चरन को चेरी, डरपत जिन सो बाल ॥
 बिहरत श्रीगुदावन माही, दोउ गल बैया डाल ।
 बिलसत रास बिलाम रसीले, गावत गीत रसाल ॥
 हस हस छीन सेत मन छल कर चचल नैन विशाल ।
 सरस माधुरी शरणागत का दिन मे करें निहाल ॥^३
 राधिकावल्लभ ध्याय धरो उर, राधिका बल्लभ हृष्ट हृमारे ।
 राधिकावल्लभ नाम जयो नित राधिकावल्लभ ही हिय पारे ॥
 राधिकावल्लभ जीवन है मम राधिकावल्लभ प्राण ते प्यारे ।
 राधिकावल्लभ नैन बसे सरस माधुरी होत नही छिन पारे ॥

भक्त श्यामाश्याम को युगल छवि से प्रभावित हो श्याममय हो जाता है—

गावैं श्यामा श्याम को, ध्यावैं श्यामा श्याम ।
 निरखैं श्यामा श्याम को यही हमारा काम ॥
 यही हमारी काम नाम दपति लो लागी ।
 निज सवा सुख रग महल सीता अनुरागी ॥
 सरस माधुरी रग रगें मदमाते बोलैं ।
 मिले सजाता सग खोल अतस गूढु बालैं ॥

कवि एक रसिक गक्त है । वह भक्ति की महत्ता पर प्रकाश डालता है—

जगत म भक्ति बडो सुखदात्री ।

जो जन भक्ति करे केशव की सर्वोत्तम सोइ प्रानी ।
 आपा अपन करे कृष्ण को प्रेम प्रीति मन मानी ॥

१ कल्याण, संतवाणी विशेषांक, पृ० ४४२ ।

२ कल्याण, संतवाणी विशेषांक, पृ० ४४२ ।

३ वही, पृ० ४४२ ।

सुमिरे सुरचि सनेह श्याम को सहित कर्म मन बानी ।
 श्रीहरि छवि मे छवो रहत नित, सोइ सच्चा हरि ध्यानी ॥
 सब मे देखे इष्ट आपनो निज अनन्य पन जानी ।
 नैन नेह जल द्रवत रहत नित, सर्व अग पुलकानी ॥
 हरि मिलने हित नित उमगे चित, सुष-बुष सब बिसरानी ।
 बिरह व्याधा मे व्याकुल निशि दिन ज्या मझनी बिन पानी ॥
 ऐस भक्तन के बल भगवत वेदन प्रकट बखानी ।
 सरस माधुरी हरि हस भेटें भेटें आवन जानी ॥^१

कवि रसिक जी भजन के बिना मनुष्य को कभी मरघट का भूत मानते हैं तो कभी नर रूप मे पशु की सना से अभिहित करते हैं । उनका विश्वास है कि एक दिन प्राण निकल भागेगा । उस समय किसी का वश नहीं चलेगा—

भजन बिन नर मरघट को भूत ।
 श्यामा श्याम रटे रसना से तिन को जान सपूत ॥
 बिन हरि भजन करम सब अकरम, आठो गाठ कपूत ।
 एक अनन्य भक्ति बिन कीये घुग करनी करतूत ॥
 निश दिन नरत कपट छल बाजी, समझे नहीं अजुत ।
 सरस माधुरी अतकाल मे मारेंगे ममदूत ॥^२
 भजन बिन सब नर पशु समान ।
 खान पान मे उमर बितावत, और नहीं कुछ जान ॥
 मिल्पो आप भागन सा नर तन, अब तो समझ अजान ।
 सत सगत मे बैठ ऐंठ तज, कर गाविद गुणगान ॥
 छिन पल घड़ी भटत है स्वासा, काल रह्यो सर तान ।
 आप अधानक तक मारेगो, मौत सरूपी बान ॥
 फेर बन्धु नाही बनि आवे, निक्स जाप अब प्राण ।
 सरस माधुरी सब तज हरि भज बही हमारी मान ॥^३

कवि भक्तिकालीन कविया की भाति चेतावनी देते हुए नाम-नाव से भवसागर पार उतरने का उपदेश देता है—

जगत मे रहना है जिन चार ।
 पत हेत कर हरि सा, प्यारे हरि सुमिरन की बार ॥
 धरो पलक का नहि भरोसा, मौत बिद्याया बार ।
 इंद्री भोग विषय बस हुये पम सबल नर नार ॥
 कर ले भजन सत गुर सेवा सब करनी को सार ।
 सुकृत सोदा सत्य यही है जीत जनम मत हार ॥

१ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, पृ० ४४२ ।

२ वही, पृ० ४४२ ४३ ।

३ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, पृ० ४४२ ४३ ।

चलाचलो लग रही रैन दिन, मन मे सोच विचार ।
 चला गया कोई चला जात कोई चलने को तैयार ॥
 स्वास स्वास मे सुमिर श्याम को दया धर्म उर धार ।
 सरस माधुरी नाम नाव चढ उतरो भव जल पार ॥^१
 जगत मे सबल बटाऊ लोग ।

कोई आवत कोई जात गहा ते, भूछो सुख सजोग ॥
 भुगते करम भरम चौरासी, जनम भरन दुख रोग ।
 जो उपजे सो निश्चै बिनसे, काका कीजे सोग ॥
 करै भजन निष्याम श्याम को, फिर नहिं होत बियोग ।
 सरस माधुरी साथ कहैं करे अमरपुर भोग ॥^२

× × ×
 थोडा जीवन जगत मे, सुन मेरे मन चार ।
 सरस माधुरी सबन सो करो परस्पर प्यार ॥
 रात्री राखो सबन को, राजी रहिये आप ।
 सरस माधुरी सुहृदयता भेटत नय विधि ताप ॥
 जग हम्पति सब छाड के जावे खाली हाथ ।
 सुमिरन सेवा भावना चले जीव के साथ ॥
 सपना यह ससार है मोह नीद से जाग ।
 नेकी करो प्रभु से डरो, हरि सुमरन को साथ ॥
 जो जन सुमरे नाम हरि जाये ताके भाग ।
 सरस माधुरी होइ सुखा, सहै युगल अनुराग ॥
 यही ज्ञान अरु ध्यान है यही योग तप त्याग ।
 सरस माधुरी समझ मन विषयन भ भत पाग ॥^३

कवि ससार को निशा का सपना मानता है । यहाँ सभी स्वार्थ के साथी हैं । केवल हरिनाम ही सच्चा साथी है । यथा—

जगत यह ज्ञान रैन का सपना ।
 माता पिता परिवार नारि नर हरि बिन कोई न अपना ।
 निज स्वार्थ के सगे सनेही, त्रिविध ताप मे अपना ।
 विधुरन भरन मिलन जीवन मे करिये नहीं कलपना ।
 माया जाल जेव उरझायो, उपज उपज फिर खपना ।
 सरस माधुरी समझ मूढ मन, साचा हरि हरि अपना ॥^४

आप एक प्रसिद्ध कृष्ण भक्त कवि हैं । युगल उपासना ही आपके जीवन का लक्ष्य है—

१ वही, पृ० ४४२-४३ ।

२ कल्याण सन्तवाणी विशेषांक, पृ० ४४३ ।

३ वही, पृ० ४४३ ।

४ वही, पृ० ४४३ ।

जो सेवा श्रीगुगल की, तन सौं बनै न मित्त ।
 सो मन सौं कर भावना समय-समय की 'नित्त ॥
 गृह बन में जित नित रहौ, गहो मानसी सेव ।
 सरस माधुरी भाव सौं, सहचरि बन मुख सेव ॥
 मुख की दपति रासि हूँ, तिन सौं प्रेम बढाव ।
 सरस माधुरी टहल को नित प्रति रख चित पाव ॥
 जुगल लगन में मन मगन राखहु आठो जाम ।
 सरस माधुरी मुरति सौ सुमिरहु श्यामा श्याम ॥^१

आप सनातन धर्मावलम्बी वैष्णव भक्त हैं। आपकी आराधना में शुचिता का विशेष स्थान है।

कवि ने भगवत् सेवा के बत्तीस अपराधों की चर्चा निम्नांकित की है—

वाह्तादि असवार हो, पहर खडाऊँ पाय ।
 पदनाग को पहर के हरि मन्दिर नहि जाय ॥
 जम अष्टमी आदि, मे हरि उत्सव दिन जान ।
 सेव करे नहि श्री हरी, यह अपराध पिछान ॥
 हरि मन्दिर में जाय नै, करे नहो परणाम ।
 नमन करे नहि प्रेमसो श्रीमत श्यामा श्याम ॥
 अशुचि अग जूठे वदन, लघुशकादिक जान ।
 बिन धोये कर दडवत यह अपराध प्रमान ॥
 एक हाथ सो ही करे श्रीहरि चरण प्रणाम ।
 गुगल हस्त जाड़े नही यह अपराध निकाम ॥
 श्रीहरि मुरति सामने करे प्रदक्षिणा कोय ।
 मन में निश्चय कीजिये यह अपराधहि होय ॥
 हरि मुरति के अगाडी बैठे पाव पसार ।
 यह पातक प्रकट है कियो शालनिर्धार ।

श्रीहरि समुख बैठ के मौजन करे जो जान ।
 यह भी पाप प्रत्यक्ष है समझे सत सुजान ॥
 हरि मन्दिर में बैठ के मिथ्या बोले जोय ।
 झूठ वसान वार्ता, यह भी पातक होय ॥
 हरि मुरति समुख कोई करे पुकार बचवाद ।
 यह भी है अपराध ही करनो वाद विवाद ॥
 हरि मन्दिर में बैठ के जग चर्चा अनुवाद ।
 मनुष्य मढली जोड़ के करे सहित उमाद ॥
 मृतक मये प्राणनि को, और जगत सताप ।
 रोवे मन्दिर बैठ के सौ भी कहिये पाप ॥
 मन्दिर माही बैठ के करे ईर्षा जोय ।
 द्वेष करे प्राणीन सा यह भी पातक होय ॥

हरि मूरति के सामने देहि किसी को दण्ड ।
 ब्रोध करे मारे होने, यह भी पाप प्रचण्ड ॥
 श्रीठाकुर के सामने, जग लोगन को जान ।
 देवे आशीर्वाद ही सोहू पाप पिछान ॥
 हरि मंदिर म बैठ के बोले बचन कठोर ।
 चित्त दुखाने और को यह पातक सिर भोर ॥
 ऊन उपरणा ओढ़ के हरि सेवा म जाय ।
 बाल गिरे मन्दिर विषे, यह अपराध सखाय ॥
 ठाकुर समुप बठ के निंदा करे बखान ।
 यह भी पाप पिछानिये होय पुण्य को हानि ॥
 श्रीहरि मूरति सामने अस्तुति माछे और ।
 करे बढाई लोकहित यहै पाप अति घोर ॥
 ह्रास्य करे जिय और की बोले बचन अयोग ।
 मंदिर माहौ बठ के जीव दुखारे सोण ॥
 मन्दिर भाही बैठ के छोड़े कुछ बायु अपान ।
 शुचि पवित्रता नष्ट हो यह भी पातक जान ॥
 निज समर्थ तजि लोभ बश करे कृपणता जान ।
 सेवे नहि श्रीहरी को यथाशक्ति हित मान ॥
 बिना समर्थ प्रभु के भोग लगे बिन जान ।
 भले वस्तु जो जीव यह सो पातक अनुमान ॥
 ऋतुफल भोग घरे नही, श्रीमत राधेयाम ।
 लाज लडा सेवे नही, सो भी पाप पिछान ॥
 भूत पितर अरु देवता तिन के भोग लयाय ।
 सोह समर्थ प्रभु को यह भी पाप कहाय ॥
 पीठ फेर के बठनो, श्रीठाकुर की ओर ।
 यही अवना विमुखता, अतिशय, पाप कठोर ॥
 ठाकुर सेवा करत में जग जिय करे प्रणाम ।
 बभन करे डर लोभ बश, यहै पाप को काम ॥
 गुरु महिमा कोऊ करे सुनत रहे चुप चाप ।
 निज मुख अस्तुति नहि करे सो भी कहियत पाप ॥
 और देवता को करे निंदा आप बखान ।
 यह भी कहियत पाप है मन मे समझ मुजान ॥
 अपने मुख ही सौं करे आप बढाई जान ।
 लघुता गुण धारे नही, यही पाप ले मान ॥
 यह बत्तीस जो पाप है, त्याग करो हरि सेव ।
 अपनावे ताको प्रभो, हूँ प्रसन्न हरि देव ॥
 श्रीबाराह पुराण म यह सेवा अपराध ॥
 इनको तजि के प्रीति सौं भगवत पर आराध ॥

भक्तिभाव कर सेदये, श्रीअरवा अवतार ।
सरस माधुरी कर कृपा, मिले मुगल सरकार ॥^१

इस प्रकार भक्त रसिक जी की उपामना में श्यामाश्याम का विशेष स्थान है। कवि नवधा भक्ति में विशेष विश्वास रखता है। भजन ही उसके जीवन का सार है। इस घोर कलिकाल में ससार-सागर से पार उतरने के लिये भजन ही एक मात्र सहाय है। कवि की रसिकता हरिदासी सम्प्रदाय से विशेष प्रभावित है। आपकी भक्ति-सुधा सलिला में सुरमरि का सरस प्रवाह पाठकों के मन-मयूर को मत्त कर देता है।

विनायकराव

जीवन रेखा

विनायकराव का जन्म पौष शुक्ल सं० १९१२ वि० में त्रिला सागर में हुआ था।^२ ये सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके पिता का देहान्त बचपन में ही हो गया। फलस्वरूप इनके लालन-पालन का भार एक मात्र इनकी माता पर पड़ा। सागर में ही इन्होंने विद्यारम्भ किया और यहीं से एट्रेंस पास किया। इनकी शिक्षा एफ० ए० तक हुई।

आप बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। एफ० ए० तक शिक्षा समाप्त कर ये सब प्रथम एक अध्यापक के रूप में जीवन में पदापण किये। शिक्षा विभाग में सहायक शिक्षक से प्रधान शिक्षक और फिर आपकी सुपरिटेण्डेंट तक तरक्की हुई। आप की कार्यकुशलता देखकर बराबर पदोन्नति होती गई। शिक्षा विभाग में रहकर आपका हिन्दी प्रचार काय बड़ा सराहनीय रहा। आप एक कुशल अध्यापक थे। एक सच्चे प्रशासक भी थे। आप बड़े ही उदार व्यक्ति थे।

आप हिन्दी भाषा के बड़े प्रेमी थे। ब्रजभाषा के आप कुशल कलाकार थे। आप द्वारा रचित १९ पुस्तिका का पता चलता है।^३ आप रामचरित थे। रामचरित सम्बन्धी आपकी स्फुट कविताएँ हिन्दी कविता-जानन में अपना अच्छा स्थान रखती हैं। कवि जनक-सनया जानकी के हृदय की आकुलता का बड़ा ही ममस्पर्शी वर्णन करता है। पतिव्रता का यह उदाहरण कवि को सनातनधर्मी घोषित करने के लिए पर्याप्त है—

जनक दुलारी सुकुमारी सुधि पाई पिय,
बहुत चलन बन इच्छा नर नाह की।
उठि अबुलाय धराराय संग जान हेतु,
सकुचति विनय सुनाइ चित्त चाह की।
सासु समुमाई राम निविध कुमाई कहि,
बन दुखलाई कठिनाई बहु राह की।
पतिपद प्रेम लखि नायक कहत सत्य,
तिया हुतो पतिव्रता मानी नाही नाहकी ॥^४

१ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, पृ० ४४३-४४।

२ रामनरेश त्रिपाठी (संपादक) कविता-कौमुदी, भाग २, पृ० ५४।

३ वही, पृ० ५८।

४ रामनरेश त्रिपाठी (संपादक) कविता-कौमुदी, भाग २, पृ० ५८।

नारायण स्वामी

जीवन रेखा

आपका जन्म रावलपिण्डी (पंजाब) स० १८८५ वि० में हुआ था ।^१ जन्म से ही आपको भक्ति विरासत में मिली थी । अतः स० १९१६ वि० में आप एकासी वास के निमित्त घर छोड़कर वृन्दावन चले गये । यही लाल बाबू के मन्दिर के कार्यालय में नौकरी कर ली । आप विरागी स्वभाव के थे । परिणामस्वरूप नौकरी छोड़ कर आप सन्यासी हो गये और केशीघाट पर सटपटिया बाबा के घेरे में रहने लगे । स० १९५५ में आप गोवर्द्धन का दशन करने गये । यह स्थान अपनी रमणीयता के लिये काफी प्रसिद्ध है । अतः यहाँ का मोहक वातावरण ने इनके मन-मगूर का बाध लिया । अतः यही आप जीवन पर्यन्त कुसुम सरोवर पर स्थित उद्धव जी के मन्दिर में रहने लगे ।

आप पंजाबी थे । आपकी मातृभाषा गुजमुखी थी, लेकिन ब्रजभाषा पर आपका असाधारण अधिकार था । ब्रजभाषा पर जितना अधिकार आपका है उतना किसी और पंजाबी का नहीं । आपका 'ब्रजभाषा' नामक ग्रन्थ अपनी प्रसादता के लिये भक्तों में काफी समादृत है । इस ग्रन्थ में प्रसाद गुण के अलावे कवि की सरलता और सहृदयता भी परिलक्षित होती है ।

कृष्ण भगवान् के आप अनन्य भक्त थे । उन्हें आप लाल जी कहकर सम्बोधित करते थे । एक बार किसी व्यक्ति ने आपमें हरिद्वार चलकर गया स्नान करने का आग्रह किया, तो आप बोले कि लाल जी हम तो महलों में रहने वाली प्रिया प्रियमम की सहचरी हैं, हरि के अंतःपुर में ही रहती हैं द्वार पर नहीं जाती ।^२ आपके सम्बन्ध में राधाचरण ने प्रस्तुत पद अपनी नवभक्तमाल में लिखा है—

अच्छर अर्थ अनूप अलकरण सु अवकृत
भाव हृदय गभीर अनुप्रासन-गुन गुफित ।
राग नवीन नवीन प्रवीनन को मन सोई
मृत्य करत गति भरत रास मडल अति सोई ।
देश विदेश प्रचार श्रीवृन्दावन विधाम
श्रीनारायण स्वामी नवल पद रचना सलित सलाम ॥^३

स्वामी जी के हृत्त विभेषण से यह भ्रम होता है कि वे कोई दम्भी सन्यासी हैं और अद्वैत मत के मानने वाले । लेकिन ऐसी बात नहीं । वे सन्यासी तो थे, पर सावल्या बिहारी लाल के रस रङ्ग में नल से सिख तक श्रीकृष्ण का प्रेम भीगें हुए । मन्दकुमार के मयनों के चोट से कवि आकुल-व्याकुल है ।

श्याम हृगन की चोट बुरी री ।

ज्यो ज्यो नाम लेति तू बाकी, मो धायल पै नैन पुरी री ॥

१ पंजाबी श्रीकृष्णभक्त नारायण स्वामी ।

रास बिलास विमोर प्रबोधानन्द अनुगामी ॥

नई ख्याति जग बीच रेखता अनुपम गई ।

ब्रज बिहार रचि रसिक-मडली सहज रिभाई ॥

वियोगी हरि कवि-कीर्तन, पृ० ६३ ।

सतवाणी अक, (कल्याण विशेषांक), वष २९, स० १, स० २०१

२ डा० वासुदेवधरण अग्रवाल (सपा०) पोन्ना ग्रन्थ, पृ

ना जानो अब सुध-नुष मेरी, वीन बिपिन मे जाय दुरी री ।

‘नारायण’ नहिं छूटत सजनी, जाकी जासा प्रीति जुरी री ॥^१

कवि का अकाट्य तर्क है कि जब नन्द लाल दृष्टियन पर आ जाता है तो फिर ब्रह्मवाद पर भला उनकी आख कैसे टिक सकती है ।

चाहे तू जोग करि भ्रुकुटी मध्य ध्यान धरि,

चाहे नाम रूप मिथ्या जानि के निहारि लै ।

निगुन, निमय, निराकार ज्योति व्याप रही,

ऐसो तत्त्व भान निज मन मे तू धारि लै ॥

‘नारायण’ अपने को आपुही बखान करि,

भोले वह भिन्न नहीं या बिधि पुकारि ल ।

जौ लौ तोहि नन्द को कुमार नाहि दृष्टि परयो,

तौ लौ भले बैठि ब्रह्म को विचारि ल ॥^२

प्रीतम, तू मोहि प्रान ते प्यारो ।

जो तोहि देखि हियो सुख पावत सो बढ भान निवारो ॥

तू जीवन धन, सरबस तू ही, तुही दुगन को तारो ।

जो तोको पल भर न निहारूँ, दोखत जग अधियारो ॥

मोद बढावन के कारण हम मानिनि रूपहि धारो ।

‘नारायण’ हम दोउ एक हैं फूल सुगंध न प्यारो ॥^३

×

×

×

जाहि लगन लगी घनस्याम की ।

घरत कहूँ पग परत कि तैही, भूलिजाय सुधि घाम की ॥

छवि निहार नहि रहत हार कछु धरि पल निसि दिन घाम की ।

जित मुँह उठै तितैही धावै, सुरति न छाया भाम की ॥

अस्तुति निग्न करौ मल ही, भेड तजी कुल ग्राम की ।

‘नारायण’ बीरी नई बोले, रही न बाहू काम की ॥^४

भूरख छाडि बृथा अभिमान ।

जीसर भीत चलयौ है तेरो दो दिन को महमान ।

भूष अनेक भये पृथ्वी पर रूप तेज बलवान ।

बान बन्धो या काल-व्यास तैं मिटि भये नाम निसान ।

धवल धाम, धन, गज, रथ, नारी चन्द्र समान ।

अत समय सबही को तजि कं जाय बसे समसान ।

तजि सतसग भ्रमत बिषयन मे, जा बिधि मरकट, स्वान ।

छिन भरि बैठि न सुमिरन कीन्हो, जासो होय कल्याण ।

१ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, ४२३ ।

२ वही, पृ० ४२३ ।

३ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, वर्ष २६, संख्या १, सं० २०११, पृ० ४२३ ।

४ वही, पृ० ४२४ ।

रे मन मूढ अनत जनि मटवै, मेरो कह्यो अब मान ।
नारायन वज्रराज कुवर सो बेगहि करि पहचान ॥^१

मोहन बसि गयो मेरे मन मे ।

लोक लाज कुल-वानि छूटि गई, याकी नेह-लगन मे ।
जित देखू तितही वह दोसै घर बाहर आगन मे ।
अग-अग प्रति रोम रोम मे, छाप रह्यो तन-मन मे ।
कुइल भक्तक कपोलन सोहै, बाजूबद मुजन मे ।
कवन कलित ललित वनमाला, नूपुर धुनि चरनन मे ।
चपल नैन, भृकुटी बर बाकी ठाँवै सपन लतन मे ।
नारायन बिन मोल बिकी हो याकी नेक हसन मे ॥^२

नयनो पैं रे, चित घोर बताओ ।

तुमही रहत भगवान रखवारे, बाके बीर कहावौ ।
तुम्हरे बीच गया मन मेरी, चाहे सोहैं खावै ।
अब क्यों रोवत हौ दहमोर कहैं तौ याह सगावौ ।
घर के भेदी बैठि द्वार पै, निन मे घर लुटवावौ ।
'नारायन' मोहि वस्तु न चाहिये, लेवनहार दिखावौ ॥^३

भारते-दु युग ऐतिकालीन परम्परा में पला हुआ युग था । तत्कालीन समस्त कवियों की वाणी में लावनी का स्वर मुखरित हुआ था । तत्कालीन भक्ति साहित्य का बहुत अंश लावनी में ही छिपा है । लावनी सदयुगीन काव्य जगत् की एक छद्म विधा है । भक्त नारायण स्वामी भी लावनी में भक्ति की भावभूमि को अभिसिंचित करते हैं ।

रूप रसिक, मोहन, मनोज मन हरन, सबल-गुन गरबीले ।
छैल-छबीले चपल लोचन चकोर चित चटकीले ॥टेक॥
रतन जटित सिर मुकुट लटक रहि सिमट स्याम लट घुघुरारी ।
बाल बिहारी कहैया लाल चतुर, तेरी बलिहारी ॥
बाल बिहारी कहैया लाल चतुर, तेरी बलिहारी ।
लोलक मोती कान कपोलन भनक बनी निरमल प्यारी ॥
ज्योति उज्यारी हमैं हर बार दरस दै गिरिधारी ।
बिज्जुछाँसी दत-छटा मुख देखि सरद ससि सरमोले ॥
छल छबीले, चपल लोचन चकोर चित चटकीले ।
गान बाम बिलास चरित हरि सरद ऐन रस रास करे ।
मुनिजन मोहैं, कृष्ण कसादिव खल-दल नास करे ॥
गिरिधारी महाराज सदा श्रीव्रजवृन्दावन बास कर ।
हरि चरित्र को सवन सुन सुन करि अति अमिलाप करै ॥

१ वही, पृ० ४२४ ।

२ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, वष २६ स० १ स० २०११, पृ० ४२४ ।

३ वही, पृ० ४२४ ।

हाथ जोरि करि वरै वीनती 'नारायन' दिल दरदीले ।

छैल छबीले, चपल सोचन चकार चित चटकाले ॥^१

कवि वृष्णभक्त है । कृष्ण उसके आराध्य देव हैं । वह उसी के सुख में निज सुख समझता है । मिम्बाक सम्प्रदाय की स्पष्ट छाप उसकी रचनाओं पर परिलक्षित होती है । निज सुख की कामना तो केवल आलवार भक्ता में पाई जाती है । कवि निज सुख तो श्री वृष्ण की मधुर छवि के अवलोकन में ही समझता है । वह श्रीवृष्ण के स्वरूप सौंदर्य का वर्णन करता है—

रति पति छवि निदत बदन, नील जलज सम स्याम ।

नव जीवन मृदु हास बर रूप रासि सुख घाम ॥

श्रुतु अनुमार मुहावने अद्भुत पहरे थीर ।

जो निज छवि सा हरत है, धीरजहू को धीर ॥

×

×

×

मोर मुकुट की निरखि छवि साजत मदन किरोर ।

चद्र बरन सुख सदन पै आवुक नैन चकार ॥

जिन मोरन के पल हरि राखत अपने सीस ।

तिन के आगन को सखी कौन कर सके रीस ॥

धुधरारी अलवावली, मुख पै बेत नहार ।

रसिक भीन मन के लिये, काटे अति अनियार ॥

मकरावत कुण्डल श्रवण, भाई परत कपोल ।

रूप सरोवर माहि है, मछरी बरत कतोल ॥^२

×

×

×

कवि ने चैतावनी और वैराग्य सम्बन्धी पदों की रचना भी की है—

बहुत गई धोरी रही, 'नारायन' अब बेत ।

काल चिरैया चुग रही निस दिन आयु खेत ॥

नारायन सुख भोग में, तू लपट दिन रैन ।

अत समय आयो निकट देख खोल के नैन ॥

घन जीवन या जायगो जा बिधि उडत कपूर ।

नारायन गोपाल भजि, क्या चाहे जग धूर ॥

नारायन या काल ने, किर सक्त भट बूर ।

जमक सुभ निसुभ अरु त्रिपुर आदि जै सूर ॥

हिरन्याच्छ जग में विदित हिरनकशिपु बलवान ।

नारायन छन में भये, यह सब राख भसान ॥^३

सत-न्याय के बारे में कवि लिखता है कि—

१ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, वष २६, सं० १, सं० २०११, पृ० ४२४ ।

२ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, वष २६, सं० १, सं० २०११, पृ० ४२५ ।

३ वही, पृ० ४२४ ।

तजि पर औगुन नीर बने, धीर गुनन सों प्रीति ।
 हस सत की सर्वना, नारायन यह रीति ।
 तनव मान मन म नही, सब सा राखत प्यार ।
 नारायन ता सत पै, बार बार बलिहार ।
 परहित प्रीति उदार चित विगत दंभ मदरोप ।
 नारायन दुख म सखी निज बर्मन को दोष ॥
 भक्ति बल्यतष पात गुन, बषा फूल बहुरंग ।
 नारायन हरि प्रेम फल, चाहत सत विहंग ।
 सत जगत मे सो गुपी, मैं मेरी को त्याग ।
 नारायन गोविन्द पद दुः राखत अनुराग ॥^१

× × ×

आज मैं हरि घर देखरी बघाई ।

सुम लब्धिन सुंदर सुत आयी, बढभागिन है जसुमति माई ॥
 मृदु-बधू सब जुनि मिलि आई जया जोग कुल रीति कराई ॥
 दान, मान बिप्रन की दीने मनि मुक्ता पट भूषणताई ॥
 मृगमैनी बल बोविल बैनी बरि सिंगार बैठो अगाई ॥
 ली ली नाम मन्द जसुमति की गावत गारी परम सुहाई ॥
 धुजा, पताक, तोरन मनि जाला द्वारन बन्न बार बघाई ॥
 'नाराइन' ब्रज आनन्द छापी प्रगट भये जहाँ कुवर बन्दाई ॥^२

आप का देहावसान पाल्गुन कृष्ण ११ वि० स० १९५७ गोवर्धन के समीप मुसुम सरोवर पर स्थित उदय मंदिर में हुआ ।

ग्रन्थाशंकर मिश्र 'महाराज साहेब'

जीवन रेखा

आपका जन्म बाशी के गियरी मुहल्ला में स० १९१७ वि० चैत्र बनी २, तन्नुसार १८६१ ई० की २८ माघ को हुआ था ।^१ इनके पिता का नाम प० रामवल्लभ मिश्र था । ये मिश्र ब्राह्मण थे । इनके पिता जी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे ।

मिश्र जी बड़े मेधावी छात्र थे । वे कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण हुए । इनका परिवार बहुत ही गिणित था । इनके अलावे इनके तीन भाई और थे । ये तीनों भी एम० ए० पास थे । इन्होंने अपना जीवन प्रोफेसर से शुरू किया । कुछ दिनों तक आप इलाहाबाद जेनरल आफिस में एक्जिटेड भी थे ।

१ कल्याण सतवाणी विशेषांक, वष २९, स० १ स० २०११, पृ० ४२५ ।

२ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल (संपादक) पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ, ग्रंथ साहित्य मण्डल, मथुरा, स० २०१०, पृ० ५८१ ।

३ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सत-परम्परा, भारती भण्डार, प्रयाग, प्रथम संस्करण, स० २००८ वि०, पृ० ६६८ ।

आप वचन से ही साधु प्रकृति के थे। ये आध्यात्मिक साधना व सत्संग में बराबर लीन रहा करते थे। हुजूर महाराज साहब से ये बड़े प्रभावित थे। हुजूर साहब के ग्रंथ 'सार वचन' की इनके जीवन पर स्पष्ट छाप पड़ी थी। हुजूर साहब के मरने पर ये गद्दी के उत्तराधिकारी बने और इलाहाबाद के क्षेत्र में बराबर सत्संग कराते रहे।

इन्हें अग्रजी का अच्छा ज्ञान था। अग्रजी से 'डिस्कासेज आन राधास्वामी फेम' नामक एक अग्रजी पुस्तक से आपकी भक्ति भावना एवं विद्वत्ता का पता चलता है। इसके बारे में परशुराम चतुर्वेदी का कथन है कि 'इसके अतपत सच्चे धर्म, आध्यात्मिक उन्नति, सृष्टि विकास व भगवद् के विषय में बड़ी गम्भीर व विस्तृत विवेचना की गई मिलती है और इसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में राधा स्वामी सत्संग का सम्पन्न परिचय तथा उसकी केन्द्रीय प्रवचन समिति के वैधानिक नियमों का सार भी दिया गया है।' इसके अन्त में कुछ भक्ति परक रचनाएँ भी दी गई हैं।^१

इनके देहान्त आश्विन शुक्ल ५ सं० १९६४ वि० को काशी में हुआ।

ब्रजवल्लभ देव

जीवन रेखा

य मधुरा के मैथिल ब्राह्मण थे। इनके पूर्वज दरभंगा जिले के सरस गांव से आकर यहीं बस गए थे। यहीं इनका जन्म ज्येष्ठ शुक्ल १०, सं० १९२७ वि० को मधुरा में हुआ।^२ वचन में ही आप मातृ एवं पितृ प्यार से वंचित हो गये। कूर-काल ने बचपन से ही आप पर यह वज्रपात निपातित किया। इसलिये आप केवल नवी कथा तक ही शिक्षा प्राप्त कर सके। आपकी बुद्धि बड़ी ही विलक्षण थी। अतः आपने घर पर ही स्वाध्याय से हिंदी, संस्कृत और फारसी का अध्ययन किया।

आपको संगीत और चित्रकारी का शौक था, कविता वचन से ही करते थे। संगीत और चित्रकारी दोनों के माध्यम से कृष्ण की बाल-लीलाओं का मधुर रस आपके स्फूर्त हृदय का उद्गार था। आचार्य बल्लभ की स्पष्ट छाप आप पर बचपन से ही पड़ गई थी। सूरदास आपके प्रेरणा स्रोत थे। धुन नियामक भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी श्रीधर पाठक से आपकी यही गैट हुई थी।^३

आपका हृदय पुष्टिमार्गीय भक्तिधारा से पालित एवं पोषित हो बहुत ही सरल एवं सौम्य पुन था। आप सखा भाव के उपासक थे। अतः आपका रसिक विनोदी होना अत्यंत आवश्यक है। आपने श्रीमद्भागवद्गीता का पद्यानुवाद किया है। आपने राम रास, प्रेम प्रीति-माला, ज्ञानगीता, नवशिक्ष और सुवल सखा आदि बाध्य ग्रंथों का प्रणयन किया। इनमें भक्ति के सरस सुमना को पुन चुनकर गूँथा गया है। वियोगी हरि ने 'प्रेम प्रीतिमाला' की प्रस्तावना में लिखा है—'ब्रजवल्लभ के अनन्य सखा श्रीवल्लभ जी ने यह 'प्रेम प्रीतिमाला' का यन्त्रिबुद्ध के सरस सुमना को चुन चुन कर गूँथी है। यह छाटी सी पुस्तिका कैसी मजबूत है, कैसी कोमल है और कैसी हृदयहारिणी है—यन्त्रे से ही प्रवट

१ वही, पृ० ६६८।

२ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सत-भरम्भरा, भारती भण्डार, प्रयाग, प्रथम संस्करण, सं० २००८, पृ० ६६८।

३ प्रमुखायल मोतल (सप्तक) ब्रजभारती, वर्ष ११ अंक १, सं० २०११, पृ० ४७।

४ वही, पृ० ४७।

होगा । स्मरण आता है कि ब्रजविहारी अवश्य इस माला को धारण करेंगे, ऐसी धारणा है । सहृदय बल्लभ जो ब्रज के घूल भरे हीरे हैं, सचमुच आप मनमोजी या मस्तुराम हैं ।^१

कवि राधा के पदा की अगुरियो का वर्णन करते समय मर्यादा स्नात माधुर्य रस की वर्षा वही कर देता है । शृंगार माधुर्य के मद से नतमस्तक हो जाता है—

साचे की ढरी है, बँधों कज पधुरी हैं, बँधा,
घरमघुरी हैं, कै कला हैं कलाघर की ।
छोटी-छोटी सुमग सुढोल लाल लाल नोकी,
देवी दसो दिस की हैं, भेवो विश्व भर की ।
बँधो ऋतुराज जू की क्रीट की कपूरी मह,
बल्लभ मुकैयो चित चोरिखे की परकी ।
कैया पद आगुरी हैं भानु तनया की वीर,
बँधो कज देवी सर पाँव पच सर की ॥^२
जिहें शीश धारे सों मनात मानिनी को मान,
सखत उवात मैं चूरन की पूरिया हैं ।
विदुम लता सी खासी तज सुख रासी पूर,
प्रेम की पताका रति खोलिख की गुरिया हैं ।
बल्लभ निहारे नख-चन्द्रिका बिछात भूमि,
आली चितचोर चित चोरिख की दुरिया हैं ।
श्याम उर बासिनी निकुंज की विलासिनी,
श्रीराधे ब्रज-वासिनी के पद की अगुरिया हैं ।^३

कवि दास्यभाव एवं सत्ता का रसिक भक्त है । सदेह असवारो की छटा में अगुरियो की छटा भक्त हृदय को मोह लेती हैं । वह बड़ी ही मस्ती से उनका दशन करते हुए अपनी सुधि बिसार देता है । आपका देहान्त स० १९६२ वि० की अपाढ़ पूर्णिमा को हुआ ।^४

सियालालशरण 'प्रेमलता'

जीवन रेखा

आपका जन्म स० १९२८ वि० में हुआ था ।^५ आपके पिता का नाम मौजीराम था । आप चैतन्य सम्प्रदायी भक्त थे । आपकी भक्ति भावना पर महाप्रभु चैतन्य की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती है । आप रसिक भक्ति-मदति के मर्मवेत्ता थे । आप द्वारा रचित ३३ ग्रंथों का पता चलता है ।^६ आपकी कविता के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१ प्रमुखायल मीतल (संपादन) ब्रजभारती, वर्ष ११ जं० १, स० २०११, पृ० ४८ ।

२ वही, पृ० ४८ ।

३ प्रमुखायल मीतल (संपादन) ब्रजभारती, वर्ष ११ स० १, स० २०११, पृ० ४८ ।

४ वही, पृ० ४८ ।

५ डा० मणवतीप्रसाद सिंह रामकाव्य में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४६८ ।

६ वही, पृ० ४६९ ।

मानुस सरोर मित्यो बेवल भगति हित,
ताहि बिमराय घावे भोगन की ओर है ।
गर्म मे करार कियो पायो अति दु ख जहा,
बार-बार प्रभु-सनमुख कर जोर है ।
रावरी सपथ नाथ । रटिहो सुनाम तब,
नासिये कृपालु बेगि यहै नक घोर है ।
'प्रेमलता' मूलि ने करार रह्यो त्रिपि हत,
रटत न नाम सियाराम सोई चोर है ॥

माम को स्वाद लियो न सुजीम तं काहँ को साधु भये तजि गेहा ।
जाति जमाति बिहाय मसी बिधि नाम-सनेही सा कीन्ह न नेहा ॥
काहे को स्वाग बनायो फकीर को भावै जो मौज अमीर की येहा ।
'प्रेमलता' सियाराम रटे बिनु भोग विरक्त कौं स्वान की सेहा ॥^१

कवि नाम की महत्ता को स्वीकार करते हुए कहता है कि नाम रूपी नाव पर चढ़कर ही बिना
श्रम के भवसागर को पार किया जा सकता है । यथा—

नाम-नाव पर चढ़हि जे इहि बिधि जन कलिकाल ।
सोइ बिनु श्रम तरि घोर भव, पैहहि श्रीसिय साल ॥
राम नाम सजीवनी, श्रीसिय नाम गिरीस ।
'प्रेमलता' हनुमान रट ज्यायो जीव अहीस ॥
रटहि नाम जो जीव जग, जीह पुकारि पुकारि ।
बिचरहि महि मन मोद भरि, आसा पास निवारि ॥
रटु भुल सीताराम नित तबि सुख नाना सग ।
प्रेमलता अनुपम, अमल चढ़हि सुरग अमग ॥^२

आपके बारे में सियारामनाथशरण के स्नेहलता लिखा है कि आप रामवल्लभाशरण के शिष्य थे । अतः
आप सियाराम सियाराम ही रटा करते थे । भोगविलास एवं सासारिक ऐश्वर्य से कोसों दूर रहा करते
हैं । सियाराम की रसिक लीला में ही मस्त रहा करते थे । यथा—

मगि मधुकरि साहि अजब मस्तान सुपाला ।
बिचरि अवनि प्रभु भजहि सबन ते डग निरासा ॥
कछु दिन मियसा कछु अवध कछु दिन रहिकाशी ।
नाम रटन बल कलि मह सियवर भक्ति प्रकाशी ॥
नहि रामवल्लभा शरण गुह शरण मये सारण तरण ।
सियालाल शरण जी सतवर नाम प्रचारक दुखहरण ॥
मल गुदरो अनका सुअग फिर टोप बिराजै ।
भोरि कमडल खप्पर घरे फकीरी साजै ॥

१ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, वर्ष २६, सं० १, स० २०११, पृ० ५०६

२ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, वर्ष २६, सं० १, स० २०११, (जनवरी, १९५५), पृ० ५०६ ।

कण्ठी युग लर कण्ठ भाल लस तिलक रसांला ।
 बिंदु और चंद्रिका सहित सोहत श्रीलांला ॥
 श्रीवैष्णव रसिक विरागि वर नाम प्रेम छकि रहैं ।
 जय सियाराम जय जय सियाराम नाम अहर्निश कहैं ॥^१

आपकी कविता में भक्ति भावों की भागीरथी का कल कल निनाद हृदय को द्रवीभूत कर देता है ।

आपका का देहांत थावण जमावस्या सं० १९९७ को हुआ ।

रामरतन सनाढ्य 'रतनेश'

जीवन रेखा

आप कानपुर के रहने वाले थे । वही रसिक समाज, के मंत्री थे । आप बड़े ही मनमौजी थे । प्रतापनारायण मिश्र के सहयोग से आपने कविता करना सीखा । हिन्दी तथा संस्कृत का अच्छा ज्ञान इन्हें था । ये ब्रजभाषा के अच्छे कवि हैं । इन्होंने कई एक ग्रंथों की रचना की । शृंगार धारा का आपकी कविताओं में सुंदर परिपाक हुआ है । रसिक भाव को भक्ति आपकी कविताओं का मूल उद्देश्य है । आपकी एक पुस्तक 'रतनेश' शतक श्रोतवर्ता को प्राप्त हुई । उसके प्राक्कथन में आपने लिखा है कि 'मेरा तो बूढ़ विश्वास है कि प्रेम ही ईश्वर है प्रेम ही जीवन है और प्रेम ही परमपिता के सन्निकट पहुँच सकने का एकमात्र साधन है ।'^२ प्रस्तुत पुस्तक में कवि राघवमाधव की भक्तिरसपूर्ण प्रेममयी ललित लीलाओं का मधुर वर्णन करता है । उसके लिये ईश्वर और प्रेम में कोई मित्रता नहीं । वह रसिकशिरोमणि श्रीकृष्ण का जन्य उपासक है । कवि भगवान् श्रीकृष्ण से साक सकारे निकुंजों में मिलने की प्रायना करता है—

जैसी प्रीति रावरे की मोसो लगी प्यारे श्याम,
 ताते अति अधिक ह्यारे रही छाय छाव ।
 बज के चवाई लोग चारिहु दिशाते देखो,
 चौबड़ भयावन को रहे मुख बाय बाय ॥
 रतनेश साँभ जीर सकारे माहिं कूजन के,
 मिनिबो भली है आछे औसर का पाय पाय ।
 दिनती हमारी चैती मानिये बिशरी हहा,
 आछो नाहि आइबो तिहारो इतै हाय हाय ॥^३

कवि कृष्ण की बाल लीला का मधुर अंकन कर सूर के साथ जा बैठता है—

भवन अघेरे में घरे जो दधि दूध तड़ा,
 भणि भूपनन को करत उजियारो० है ।
 छीके घरो जान विधि ठानत सुजान आन,
 पीढा पै उलूखत घरत मैं निहारो है ॥
 सखाहि चनाय तापै सखा पै चढत आप,
 सखा को समूह देत चहुँघा सहारो है ।

१ कल्याण, भक्तचरिताक विशेषांक, वर्ष २६, जनवरी, १९५२, पृ० ७२३ ।

२ रामरतन सनाढ्य रतनेश रतनेश शतक, नेशनल प्रेस, कानपुर, पृ० ५० ।

३ वही, पृ० ५१ ।

भाजन उत्तार अटपट नटपट भाजे,
माह काह तेरो बढौ हिवमत वारो है ॥^१

ओर भी,

मानस महेश मानसर के भराल मजु,
जा हित करत ध्यान योगी बरजोरी के ।
प्राकृत भनुष्य तिह रचक न पाव देखि
पुण्य पुज रहित अमक्त मति थोरी के ।
रतनेश' शेष औ महेश गिरा गोरवान,
गाय गाय हारि गये गुनन करोरी के ।
साह नन्द नन्दन समस्त जग बन्दन हूँ,
बन्दन पनारबिन्द कीरति किशोरी के ॥^२

कवि कृष्ण नाम की महत्ता देते हुए कहता है कि—

जाकी मधुराई देखि सिता सिकता सी भई
उल्ल सूख सूख भई निपट निकास है ।
दाख भयो राख कद मद तर परि गयो,
बाम की अघर सो तो कुम्भीपाक घाम है ।
'रतनेश' बसुधा के बीच सुधा सुधा भयो,
स्वाद नहिं दूजो देखि परत लसाम है ।
आगम निगम जाकी महिमा न जानि सक,
मधुर महान ऐसो एक कृष्ण नाम है ॥^३

इस प्रकार रतनेश जी कृष्ण के अनन्य उपासक हैं । उनकी भक्ति भावना में कृष्ण बाल-लीला की प्रमुखता है । उसके लिये कृष्ण अगम निगम है । उसकी महत्ता वर्णनातीत है । आप भारतेदुयुगीन कृष्ण काव्य के रगमच पर बालसखा भाव की उपासना का मधुर स्थान प्रतिष्ठित करते हैं ।

धामनाचार्य गिरि

जीवन रेखा

आप भारते दुकालीन पुरानी परिपाटी के कवि थे । जन्मस्थान आपका मिर्जापुर है । आप बड़े ही प्रतिभाशाली थे । ब्रजभाषा में आपकी सुन्दर पैठ थी । कविवर प्रेमधन जी से आपका सम्बन्ध बड़ा ही अच्छा था । आप में आशुविविध शक्ति वसतमान थी । तत्कालीन प्रमुख पत्रों में आपकी रचनाएँ मुखपृष्ठ पर ही छपा करती थी । आप बड़े ही रमिक व्यक्ति थे । आपकी प्रकृति हसोड थी । कवि प्रेमधन भी हसमुख थे । वे सभी को हसाया करते थे । सभी लोग चाहते थे कि उन्हें भी बनाया जाय । धामनाचार्य गिरि को एक दिन मौका मिल गया । वे जब चूकने वाले थे । प्रेमधन सबस्व की भूमिका में लिखा है कि एक दिन वे चौधरी साहब के ऊपर एक कवित्त जोड़ते चले जा रहे थे । अन्तिम चरण

१ रामरतन सनाढ्य रतनेश रतनेश शतक, पृ० २ ।

२ वही, पृ० २ ।

३ रामरतन सनाढ्य रतनेश रतनेश शतक, पृ० २ ।

रह गया था कि चौधरी साहब अपने बरामदे में कच्चा पर बाल छिटकाये खम्भे के सहारे खड़े दिखायी पड़े। भट्ट कवित्त पूरा हो गया और वामन जो ने नीचे से वह कवित्त ललकारा जिसका अन्तिम चरण था 'खम्मा टेकि खड़ा जैसे नारि भुगलाने की।' प्रेमघन जो सबको बनाते थे, अतः उन्हें और लोग भी बनाने की चेष्टा करते थे।^१

उनकी कविताओं में भक्ति की स्रोतस्विनी प्रवाहित है। कवि या तो बहुदेवोपासक है, लेकिन दुर्गा ही आराध्या हैं। दुर्गा की उपासना में ऐश्वर्यभाव का भक्ति स्पष्टतः उनकी कविताओं में लक्षित होती है। दुर्गा ही सब देवों के ऊपर हैं। यही तीना सोन का आधार है। अतः कवि उनके चरणों की बन्दना करता है। यथा—

मगल बरनि दुख बरनि बरनि तोहि,
तरनि बरनि तेज भगुन समानी जू।
वेद ब्रह्म बरने अभेद स्योहैं चकृत ह्यै,
चक्रपानि सरनि सरनि सुखदानी जू ॥
मनत विचिन तल मिलल रसातल सौं,
उड्डव उमण्ड घाय भ्रमत् भूलानी जू।
तेरो महा महिमा अलख अम्ब आठो जाम,
जे जे जगदम्ब प्रणमामि रदरानी जू ॥^२

और भी

तू ही निराधार को आधार तिन्ह सोकन को,
सोकन की समुद्र सुखावन समानी जू।
तू ही तीन रूप तीन कान तीन दैव तू ही,
तू ही चर अचर सुपालनि प्रमानी जू ॥
मनत विचिन तू ही वेद भेदवारी माँ तू
तू ही परचण्ड मारतण्ड ही मयानी जू।
तू ही खल दल दैत्य दानव दहन अम्ब,
जे जे जगदम्ब प्रणमामि रददानी जू ॥^३

गिरि जी प्रसिद्ध देवी उपासक हैं। कवि जगदम्बा को ही एकमात्र अवलम्ब मानता है। अतः वह उसके चरणों की शपथ रखता है—

तू ही जक्त करनि भरनि भौन आनद सो
तू ही पुवि ठीक प्रलयजाल ठहरानी जू।
तू ही महाविद्या महासत्ती महामोक्ष वारी,
तू ही महादेवी छिति गगन समानी जू ॥

१ प्रमाकेश्वर उपाध्याय (सपादक) प्रेमघन सर्वस्व, भूमिका, पृ० ७।

२ पद्म सिंह (सपादक) हरिवंश कौमुदी, भाग १, स० १ फाल्गुन स० १६५०, पृ० २०।

३ वही, पृ० २०।

मनत बिचिन ब्रह्मडे तू ही तीन लोक,
तू ही चक्रपानि चित्त चचल करानी जू ।
तू ही हो आचार अवलम्ब अज तेरो अम्ब,
जै जै जगदम्ब प्रणमामि ख्दरानी जू ॥^१

कवि भगवती जगन्मा को देवताओं के मध्य महत्त्व, प्रभापुज, दिव्य द्युति महाप्रलय और नारायण आदि अवतार मानता है । अतः बार बार भगवती के चरणा की बन्दना करता है —

तू ही महारूप देवतान की समाज मध्य,
कोटि मारतण्ड पर नख की प्रभानी जू ।
तू ही प्रगटात परचण्ड परमा की पुज तू ही,
तू ही दिव्य द्युति की धरिया ठहरानी जू ।
मनत बिचिन तू ही महा प्रलय काल समय,
महा विवरास रूप धारन भवानी जू ।
तू ही नारायण अनादि एक आठो जाम,

ज जै जगदम्ब प्रणमामि ख्दरानी जू ॥^२

कवि भवानी का दास है । वह उसके ऐश्वर्य का वणन करते हुए अघाता नहीं । वह शक्ति स्वरूपा हैं, दैत्यो का दलन करनेवाली हैं । और दासो का दुःख दारिद्र्य निवारण करनेवाली है—

तू ही चण्ड मुण्ड को विमुण्ड कियो,
सना हीन तू ही शम्भु दलनि निसुम मद्रिमानी जू ।
तू ही रक्त बीज रन खडनि करनि,
तू ही लेकर प्रचड खग खप्पर प्रभानी जू ॥
मनत बिचिन तू ही प्रबल प्रचण्ड चण्ड,
मननी मवुकैदम अखण्ड खण्ड भानी जू ।
तू ही सना दासन को आपदा विशारे मातु,
जै जै जगदम्ब प्रणमामि ख्दरानी जू ॥^३

भगवती जगदम्बा भूमिमार के निवारण हेतु अवतार लेती हैं । वह एकमान ससार का पालन करनेवाली, विद्याओं का विधान और अभूतपूर्व महिमाशालिनी हैं । उनकी महिमा वणनातीत है । फल स्वरूप सेस आनि मुनिगन भी उनके ऐश्वर्य का वणन करने में अपने को असमर्थ पाते हैं—

तू ही अवतार तूही हरनि सुभूमिमार
तू ही निराधार ससार सर सानी जो ।
तू ही खटचक्र दस विद्या की विधान तूरी
तू ही तिहुँ लोकन की पालन करानी जू ।
मनत बिचिन तेरे महिमा सुनाने सबै
पावत न पार सेस मुनिगन शानी जू ।

१ पचम सिंह (संपादक) हरिश्चन्द्र कौमुदी, भाग १, स० १, फाल्गुन, स० १९५०, पृ० २० ।

२ वही, पृ० २१ ।

३ पचम सिंह (संपादक) हरिश्चन्द्र कौमुदी, भाग १, स० १, फाल्गुन, स० १९५०, पृ० २१ ।

तू ही महानाली कर कठिन कृपान वाली

जै जै जगदम्ब प्रणमामि रघुरानी जू ॥^१

छेदालाल

जीवन रेखा

आपके जन्म एवं वंश के बारे में अभी तक कोई ठोस प्रमाण नहीं उपलब्ध हो सका है। हाँ, प्रयाग के लोकनाथ मुहल्ले में आपकी दूध और भलाई की दुकान थी। इससे स्पष्ट होता है कि आप प्रयाग के ही रहने वाले थे या वही ज़िमी निवृत्तस्थ गाव के वासी रह गये। आप जाति के अहीर थे। भट्ट जी के आप परम भक्त थे। उन्हीं की प्रेरणा से आप लिखने लगे। भट्ट जी के यहाँ बराबर उठते बैठते थे। आप भारत-दु युग के एक अच्छे भक्त कवि थे। शोधकर्ता को इनकी हिन्दी प्रदीप की सचिकाओं में निम्नोक्त कविताएँ उपलब्ध हुई हैं—

(१) ईश्वर से विनय

(२) कवित्त

इन दोनों कविताओं में कवि देश के प्रति जागरूक है। उसका हृदय देशभक्ति की भावनाओं से लबालब भरा है। देश के प्रति जब ईश्वर से विनय करता है तो उसके स्वच्छ हृदय से भक्ति की स्फीत धारा प्रवाहित हो जाती है। दैयभाव उससे झनक मारने लगता है। कवि में दीनता का स्वर मुखर है। उदाहरण अपेक्षित है—

ईश्वर से विनय

सह रहा ब्रज आयात हुआ भारत है।
जगदाश तुम्हारी शरण दीन भारत है। टेक।
हे विश्वम्भर तुम्हीं विश्व उपजाया,
फिर क्या तुमने भारत से नह घटाया।
अति माठ ताल में फसा खूब भटकाया,
दुख नहीं किसी ने इसका तनक बढ़ाया।
यह प्लेग दुष्ट नित लाखन नर भारत है,
जगन्नीश तुम्हारी शरण दीन भारत है।
जिस समय दुष्ट यह प्लेग जहा जाता है,
फिर वहा प्रेम जठ सहित नाश पाता है।
सब तजे परस्पर मेल घटे नाता हैं,
नही कोई किसी के पास तहाँ आता है।
ये मिल जम के पल में मन फारत है,
जगन्नीश तुम्हारी शरण दीन भारत है।^२
य नई विपत्ति पै विपत्ति हाथ क्यों डारी,
सब जग भेजि परदेश सुगो ब्योपारी।

१ वही, पृ० २१।

२ हिन्दी प्रणेष, भाग १६०८, ई०, पृ० १३१४।

दिन दिन यह पापी घोर रूप धारत है,
जगदीश तुम्हारी शरण दीन भारत है ।^१
बिनु अन पेड़ की छाल पीस खाते हैं,
दिन रात परिश्रम करे न सुख पाते हैं ।
अन्न अन्न करि हाय ! प्राण जाते हैं,
नहिं तोभी इधर धनवान ध्यान लाते हैं ।
नहिं कीई बचावे घोर पीर टारत है ।
जगदीश तुम्हारी शरण दीन भारत है ।^२
सब साथ असौना खाय उदर भरते हैं
इस घोर शीत में बख्शीन फिरते हैं ।
निशि ताप सताप सहा करते हैं
सब तत्क तत्क वे मौत हाथ भरते हैं ।
यह देवि दीन दुःख हियो हारत है
जगदीश तुम्हारी शरण दीन भारत है ।^३
सब युवा बाल औ चूड़ दीन गोहराये,
नित कोटि सबट सहेँ चैन नहिं पावें ।
नहिं बिप भी सस्ता मिलै खाय सो जायें,
इस शीत सुधा से कैसे बचावें ।
मह हाय तुष्ट दुर्मिज्ञ प्रलय धारत है ।
जगदीश तुम्हारी शरण दीन भारत है ।^४
प्रभु सदा आप हो धेनु विप्र रखवारे,
तुम दीन अबु दुखीन जनो के टारे ।
किस घोर पाप से तुमने हाय ! बिसारे,
यह कालव्याल बन दुख भ बिप भारत है,
जगदीश तुम्हारी शरण दीन भारत है ।^५
प्रभु आप जगत पति क्षमा पाप सब कीजै,
अब दूबत है मभधार बाह गहिं लोच ।
दुख बहुत निनो से सहा अमय कर दीजै ।
यह सबने प्यारा देश तुम्हारा है ।
छेना लाल प्रभु तुम पर सब वारत है,
जगदीश तुम्हारी शरण दीन भारत है ।^६

१ वही, पृ० १३ १४ ।

२ वही, पृ० १३-१४ ।

३ वही, पृ० १३ १४ ।]

४ हिन्दी प्रदीप मार्च १९०८ ई०, पृ० १३ १४ ।

५ वही, पृ० १३ १४ ।

६ वही, पृ० १३ १४ ।

कवि भगवान् का अन्य उपासक है वह भगवान् से अपने अनाथ पन को दूर कर सनाथ बन जाने के लिये प्रार्थना करता है । भगवान् के सिवा उसकी जीवन नौका को पार करने वाला अन्य कोई नहीं है—

भरन हूँ, तुम्हारी सुधि भूले, यथो हमारी दुःख
रैन रदन भारी दुःख ध्यान इत लगाइये ।
आप ही बचैया कोई पास ना विवैया यह,
हूबत है नैया प्रभु पार तो लगाइये ।
बहै तुच्छ दास प्रभु दीनन की हरी नास,
सुमति को विवास करि कुमति को नगाइये ।
बार बार नाथ भाय डेरत है अनाथ दीन,
करके सनाथ प्रभु हाथ तो गहाइये ॥^१

छेवालास जी का दैव्य प्रबल है । उनकी भक्तिभावना में देशभक्ति का स्वर प्रमुख है । उसकी भक्ति-सुधा सलिला में अवगाहन कर पाठक मग्न भुग्न हो जाता है । शुद्ध भक्ति की कविताएँ इन्होंने कम लिखी हैं ।

भक्तरत्न हरिदास

जीवन रेखा

आपका जन्म अमृतसर के एक क्षत्रिय वंश में हुआ था । आपके पिता का नाम श्रीगुलाब सिंह था और माता का नाम रामकुमारी था । आप रामानुज के मत को मानने वाले त्यागी पुरुष थे । आप बहुत ही निर्मीक थे । आपका व्यक्तित्व बड़ा ही गम्भीर था । आप राजा रणजीत सिंह के बहुत कहने पर भी उनके दरबार में नहीं गये ।^२ आप रामोपासक भक्त थे । आपके द्वारा रचित निम्नांकित ग्रन्थ हैं । इन ग्रन्थों में भक्ति की भावगंगा का प्रबल प्रवाह बहुत ही मनोरम दीख पड़ता है—

(१) राम रहस्य (२) सार संगीत (३) नानकचन्द्र चन्द्रिका (४) रामरथो दोहावली (५) कौशलेय कवितावली (६) रामलालाम (७) ब्रजयात्रा (८) रासपञ्चाध्यायी (९) पदरत्नावली (१०) कवित्तकादम्बिनी, (११) नानक नवक (१२) एकादश स्वयं भागवत, (१३) महिम्न ।

आप पंजाबी होते हुए भी संस्कृत और हिन्दी अच्छी तरह जानते थे । आपके अधिकतर ग्रन्थ हिन्दी में हैं । संस्कृत में भी आपके ग्रन्थ हैं । अधिकांश ग्रन्थों में भक्ति का पावन, निमल प्रवाह ही है । दोहा और चौपाई लिखने में आपको गोस्वामी तुलसी की भाँति कमाल ही हासिल था । आप विविष्टा ईश भक्त के मानने वाले थे । ये भारतेन्दु जी के समकालीन थे ।

१ हिन्दी प्रदीप, भाग १९०८ ई०, जिन्द ३०, स० ३, पृ० १३१५ ।

२ श्रीभक्त रत्न हरिदास जू पावन अमृत सर वियो ।

क्षत्रिय वंश गुलार्बसिंह सुत भत रामानुज ॥

रामकुमारी-गम रत्न त्यागी-मण्डल धुज ।

सुवसु बेन बसु चद बाठ भतिक प्रमटाये ।

श्री हरि-महिमा ग्रन्थ सलित बत्तीस बनाए ।

रणजीत सिंह नप बहु कह्यो तन्पि नाहि दरसन लियो ।

श्रीभक्त रत्न हरिदास जू पावन अमृतसर किया ॥

भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग २, (उत्तराध भक्तमाल), पृ० २६६

हरिदास जी राम के अनन्य उपासक थे। राम और जानकी के युगल चरणों की उपासना वे बराबर आत्मविभोर होकर किया करते थे। भक्तिकान्ति परम्पराशा का उनकी कविता में पूर्ण निर्वक्ति पाया जाता है। कवि राम की महानता एवं ऐश्वर्य का वर्णन मिल खोलकर करता है—

गीघ को उधारिके बबध भेद मारि कै,
सुधारि सबरीहूँ सबरीतन सो दीनी हैं।
फल पाइ दे कै ताभो फल पाइपुनि,
पपासर पाइ अति कथा पाइ चीन्ही है।
रीप्यमूक जाइ सुत वायसो बनाई दाइ,
रघुराई कपिराइ प्रीति रोति चीन्ही है।
बाली बध सायक परपि सिय नायक,
हरिन के नायक ने किन्ही प्रीति पानी है ॥^१

और भी—

सिपा सु सदेश सुनि सु मुनि सुदेश देपि,
हुप सुप दोऊ दसादिपी दान रचि उर।
तब सियपति, सापा मृगपति साजि सेन,
सरे सनू सामुहे जो सासक असुर सुर ॥
अटक पटकि कपि कटक अटन करि,
तटनीस तट सुमट सुपट पुर।
मुनि सु विभीषन वि भीषन सुभ्रात तजि।
सीहीं अरि भीषन सरनि हरनि पुर।^२

आप भक्ति के क्षेत्र में प्राचीन परम्परा तथा आस्था के प्रबल समर्थक थे। इन्होंने अपनी भावनाओं में प्राचीनता का पोषण किया। आप सूर तुलसी भानि साकार भगवान् के ही उपासक थे। उनके राम अपोष्पाधिपति श्री दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र ही हैं। सलललाल उनके अनुज हैं। कवि वन प्रसंग की घटनाओं में सीताहरण का उद्घाटन बड़े ही कौशलपूर्ण ढंग से करता है—

सुनि सिय सुमति सुमित्रा सुव सुवचन गहे,
बहे ब्रुवच कुलिस ते कठोर अति।
सुनत सु लखन के प्रान कल बान भये,
कानन को मुनि गये कानन को दैव गनि ॥
सोंपि वन देवन को सीता सती सेवन को,
करि परि देवन को परम विवस मति।
अवसर पाइ सवराइ इत आइ, थाइ,
ले गयो चुराइ सिय को बनाई वेप जनि ॥^३

इस प्रकार कवि भारतेन्दुपुराणी रामभक्त कवि हैं। रामकथा काव्य के रसमय पर कवि तुलसी की विनयपत्रिका का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। उनकी भक्तिभावना में शुद्ध भक्ति की अन्त-सलिला प्रवाहित होती है।

१ हरिश्चन्द्रचन्द्रिका, सं० १०, सं० १, सन् १८७४, पृ० ३७।

२ हरिश्चन्द्रचन्द्रिका, सं० १०, सं० १, सन् १८७४, पृ० ३८।

३ वही, पृ० ३६।

ललितकिशोरी

जीवन रेखा

मुन्दल लाल कबीर अग्र-कुल-दीप लखनवी ।
ललितकिशोरी नाम धरयो हरि प्रेम अनुभवी ॥
ललित निकुञ्ज बनाय आप वृन्दावन छाये ।
रस-कलिका तहँ रची ललित लीलापद गाये ॥
रचना अति रसभरी भरी हरि रंग रंगीली ।
दिल दोबानी, दिली है चित्त जुगोली ॥
नव अनुभव की सार बसी ऊर गास गभीरी ।
स्याम रूप रुचि अमल नसीली नेह-फनीली ॥^१

आपका असली नाम मुन्दनलाल था । इनके पिता का नाम साह गोविन्दलाल था । आप अग्र-वांश वंश को सुशोभित करने वाले थे । आपका जन्मस्थान लखनऊ है, लेकिन जन्म तिथि अज्ञात है । आपने इस असार ससार को कालिक शुक्ल २ सं० १६३० वि० को छोड़ दिया । आप राधागोविन्द के शिष्य थे । आप राधा रमणीय भक्त थे । तत्कालीन मन्त्रों में प्रचलित सखी सम्प्रदाय के मानने वाले थे । इस सम्प्रदाय में अपने को भगवान की आभाकारिणी सखी मानकर और भगवान् श्रीकृष्ण को अपना प्रियतम सखा समझकर उपासना की जाती । इस सम्प्रदाय का विश्वास है कि सखीमात्र से उपासना किये बिना किसी को निकुञ्ज सेवा का अधिकार प्राप्त नहीं होता । आप इससे एक डग और बढ़ जाते हैं । आपकी यह उपासना उच्चकोटि की है । आपने अपने को सखी रूप में सौंप ही नहीं दिया बल्कि सखी का नाम भी धारण कर लिया । आपका रचना काल सं० १६१५ वि० है । आपने 'रस विलास' अष्टाध्याय और समय प्रबन्ध सम्बन्धी बड़े ही मधुर और प्रेम पूर्ण पद रचे हैं ।

आप भारतेन्दु युगीन भक्त कवि हैं ।^२ आपकी कविताएँ भक्ति भावनाओं से ओतप्रोत हैं । आपकी वाणी में ससार की निस्मारता विद्यमान है । ससार के समस्त वैभव को आपने तुच्छ समझा है ।^३ एक प्रभु ही सर्वोपरि है । आपने नाम कीर्तन की महत्ता सिद्ध की है । आपकी कुछ कविताएँ अवलोकनाय उद्भूत हैं—

१ वियाणी हरि कवि-कीर्तन, पृ० ६० ।

२ भारतेन्दु जी ने आपके बारे में लिखा है—

प्रथम लखनऊ बस जीवन सौ नेह बढ़ायो ।
तह धीजुगल-मुरूप चापि मन्दिर बनवायो ॥
द्वारपर को सुखराम रास कलियुग में कीर्तो ।
सोई भजन-आनन्द भाव-सहचरि रंग मीना ॥
लाखन पद ललितकिशोरि का नाम प्रगट बिरचि नये ।
कुल अग्रवाल पावा करन कुन्दन लाल प्रगट भये ॥
ब्रजमाधुरीसार, पृ० २६७ ।

३ छाटि बादसाही वैभव लछिमनपुर त्यागो ।

श्रीवृन्दावन वास दुत्त व्रत अति अनुगम्यो ॥
ललित निकुञ्ज बनाय राधिका रमन विराजे ।
रास विलास प्रवास लच्छ पद रचना भोजे ॥
नवमत्तमाल, पृ० १०२ ।

नयन मुख खोलो बाबु पियारे ।

बिर्वास्त नमल, कुमोदिनी मुकलित, अलिमन नत गुँजारे ॥
प्राणी निसि रविधार-आरती लिय ठनी निव दारे ॥
ललितनिसोरी सुनि यह बानी कुरकुट बिसर पुकारे ।
रजनीराज बिना मार्ग बलि निरखी पलक उधारे ॥^१

×

×

×

मे तेरे सग मुरली श्याम बजाऊँ ।

ऐसेई पिय सख छेनि है, अगुरी चपल बसाऊँ ॥
पचम रिपम निपाद सुरनि लौ, सग सग टोष सगाऊँ ।
ललितनिसोरी ईमन काफी सोरठ गाय सुनाऊँ ॥^२

मोहन, क्यों वैराग लियो ।

नासा भूँि हास भाला सै नीको ध्यान कियो ।
भली करी मिच्छा जोगी बनि भलो प्रसाद दियो ।
'ललितनिसोरी' कौन काज यह क्या कपट मियो ॥^३

ललितनिसोरी की का नवधा भक्ति में पूर्ण विश्वास था। अतः भजन के बारे में उनका विचार दशनीय है—

मन पलितैहो भजन बिन कीने ।

घन दोलत कछु काम न आवै, कमल नयन गुन चित्त बिनु दीन ।
देखत को यह जगत सजाती, तात मात अपने सुख मीन ।
ललितनिसोरी दुख मिटै ना जानवै बिना हरि चीन ॥^४

कवि की भक्तिभावना में भक्तिमालीन उपश्रमवृत्ता का पूर्ण निर्वाह पाया जाता है। उसे पूर्णविश्वास है कि इस स्वर्णवत शरीर के पान से कुछ भी फायदा नहीं है। एवमात्र दुःखभावना का नाम ही आधार है—

मुमाफिरैन रही थोरी ।

जागु जागु सुख नीद त्यागि है, होत वस्तु की थोरी ॥
मजिन दूरि, भूरि भव सागर भान कूर मति थोरी ।
ललितनिसोरी हानिम सा हर, करे जोर बर जोरी ॥^५

और भी—

साम कहा कचन तन पाय ।

भजे न भुलुल कमल दल सोचन, दुख मोवन हरि हर्षन न ध्याय ॥

१ ब्रजमाधुरीसार, पृ० २६६-२७५ ।

२ वही, पृ० २६६-७५ ।

३ वियोगी हरि (सपादक) ब्रजमाधुरी सार, २६६ ७५ ।

४ कल्याण सतवाणी विशेषांक पृ० ४३७ ।

५ वही, पृ० ४३७ ।

तन मन धन अरपन न कीन्ह, प्रान प्राणपति गुननि भ गाये ।
 धोवन धन बलघोत धाम सब, मिथ्या आप गवाय गैराये ॥
 गुरजन गर्व विमुक्त रगराते, डोलत सुख सपनि बिसराये ।
 ललितविशोरी मिटे ताप ना, बिन दूढ़ चिन्तामनि उर साये ॥^१

कवि भक्तमण्डली में पैली कुरोतिया की आर भी संकेत करता है—

साधो ऐसेइ आयु गिरानी ।
 सगत न साज लज्जात संतन, करतहि दम छत्र बिहानी ॥
 माला हाथ ललित सुनमी गर, अग अंग भगवत ध्याप मुहानी ।
 बाहिर परम विराग मजन रत, अतस मन पर-बुबति नसानी ॥
 मुख सा ध्यान ध्यान बरनत बहु, बानन रति नित बिषय-बहानी ।
 'ललितकिसोरी' इया बगे हरि, हरि सताप मुदूद मुखदानी ॥

कवि सत्तार के समस्त प्रपञ्च से ऊबकर एक मात्र आनन्दधन से प्रीति लगाने की स्पष्ट घोषणा करता है—

दुनियाँ के परपचो मे हम, भजा बछू नहिँ पाया जो ।
 भाई-बधु पिता-माता, पति सब सो चित अकु-साया जो ॥
 छोड़ छाड़ घर, गाँव गाँव, कुल, यही पथ मन भाया जो ।
 'ललितकिसोरी' आनन्दधन सा, अब हठि नेह लगाया जो ॥
 क्या करना है सतति-सपति, मिथ्या सब जग भाया है ।
 शाल-दुगाले, हीरा मोती में मन क्या भरमाया है ॥
 माता पिता, पती बधू सब गोरखपथ बनाया है ।
 ललितकिसोरी आनन्द धन हरि हिरदै कमल बगाया है ॥
 बन बन फिरना बिहतर हमरो रतन मवन नहिँ भावै है ।
 सता तरे पड़ रहने मे सुख नाहिन सब मुहावै है ॥
 सोना कर धरि सीस मला अति तबिया रुपान न आवै है ।
 ललितकिसोरी नाम हरी का जपि-जपि मन सधु पावै है ॥
 तजि दीनो जब दुनियाँ दीलत फिर बोड़ के घर जाना क्या ।
 बड़-मूल फल पाप रहै अब खट्ट मीठा खाना क्या ॥
 छिन म साही बक्स हमको मोती-माल-धजाना क्या ।
 ललितकिसोरी रूप हमारा जानै ना तहँ आना क्या ॥
 अष्टसिद्धि नवनिधि हमारी मुद्रो म हरदम रहती ।
 नही जबाहिर, मोना चाँदी, त्रिभुवन की भपति चहती ॥
 भावै न दुनियाँ की बात निलबर की धरचा सहती ।
 ललितकिसोरी पार लगावै माया की सरिता बहती ॥
 गोर-स्याम बदनाम बिंद पर जिसको बीर भबलते देखा ।
 नैन-बान, मुखकान फल फिर नहिँ नैव समलते देखा ॥

सलितकिसोरी जुगल इस्क मे बहुतो का घर घलते देखा ।
 दूवा प्रेमसिंधु का कोई हमन नही उछलते देखा ॥
 देखो री, यह नद का छाया बरछी मारे जाता है ।
 बरछी-सी तिरछी चितवन की पैनी छुरे चलाता है ॥
 हमको घायल देख बेदरदी मद-मद मुसकाता है ।
 सलितकिसोरी जलम जंगर पर नौनपुरी बुरकावा है ॥^१

इस तरह सलितकिसोरी जी भारतेन्दुयुगीन कविता की भक्तिधारा के प्रबल पोषक है । भगवान् की रासलीला का सुखानुभव प्राप्त करने के लिये कवि अपने को उस शृंगार सम्राट् श्रीकृष्ण का सखी घोषित करता है । यही कारण है कि वह कवि नाम सखी नाम के रूप में धारण करता है । उसकी भक्तिभावना में सखीभाव की मधुर उपासना का स्वच्छ सरस प्रवाह बहा ही आह्लादकारी दृष्टिगोचर होता है ।

ललितमाधुरी

जीवन रेखा

आप भक्तप्रवर सलितकिसोरी के अजुग थे । इन सोंगो की जन्म तिथि अज्ञात है । लखनऊ के नवाब घराने से आपके परिवार का अच्छा सम्बन्ध था । वियोगी हरि ने लिखा है 'लखनऊ में साह बिहारीलाल अग्रवाल नवाब के जौहरी थे, इनके पुत्र साह गोबिन्दलाल जी थे । इनकी दो स्त्रियाँ थीं । पहली स्त्री के साह रघुवरदयालु जी और साह मन्मथलाल जा नाम के दो पुत्र हुए और दूसरी स्त्री के साह कुन्दलाल जी और साह भुन्दालाल जी ।^२ अतः आपके बचपन का नाम साह कुन्दलाल जी था ।

आप दोनों भ्राताओं में खूब गाना प्रेम था । भारतेन्दु जी ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि—
 'नेता में जो लखन नरी, सां इन कलियुग माहिं किये ।'^३ आप अपने अग्रज के साथ कौटुम्बिक कलह के कारण वृन्दावन चले आय । यदि आपके अग्रज के मुख श्रोत्रधारमणीय गोस्वामी राधा गोविन्द जी थे तो आपने अपने अग्रज का ही अनुकरण किया ।

आपने भगवद्गुणानुवाद सलित पदों के द्वारा किया है । आपकी कविता में सखीभाव की उपासना ललित होती है । सखीभाव की उपासना से मस्त होकर आपने अपना नाम ही ललितमाधुरी रख लिया । नाम से सखि रूप का ही आभास होता है । नीचे आपकी कविता-माधुरी का दशान अनुपमेय है—

श्रीवृन्दावन सहज ही सलित माधुरी रूप ।

सलित त्रिमयी मामिनी, नित्य बिहार अनूप ॥^४

आम । कहा बिपरीति भई ।

जुगल चद-मुखचन बिलोचन, ठसी भुजगिनि बिन रदई ॥

१ कल्याण, संतवाणी विशेषांक, पृ० ४३७ ४३८ ।

२ वियोगी हरि (संपादन) ब्रजमाधुरी सार, पृ० २६७ ।

३ ब्रजरत्नदास (संपा०) भारतेन्दु ग्रंथालयी, दूसरा खंड, पृ० १६१, पृ० २६७ ।

४ कल्याण संतवाणी विशेषांक, पृ० ४३८ ।

वियोगी हरि (संपा०) ब्रजमाधुरी सार, पृ० २७८ ।

ललितमाधुरी बिरह विषित अनि, कदत न प्रानहुँ कठिन दर्ई ।

मो अमाग के जेदै भये कोऊ, दपति प्रीति की रीति नई ॥^१

कृष्ण भक्ति में वृन्दावन वा महत्वपूर्ण स्थान है। अतः कवि वृन्दावन आनन्द का वर्णन करते हुए आत्म विमोह हो जाता है। उसकी यह समयता देखते ही बनती है—

देखी बलि वृन्दावन आनन्द ।

नवल सरद निसि भव बसत रितु नवल सु रावा चन्द ॥

नवल मार पिक कीर कोकिला कूजत नवल मिलिद ।

रतत श्रीराये माधव मास्त सोतल मद ॥

नवल किसोर उमगन खेलत, नवल रास रम कद ।

ललित माधुरी रसिक दोउ बर, निरतत न्ये करफद ॥^२

कवि चित्तचोर श्रीकृष्ण का अनन्य उपासक है। वह उसकी रासलीला के निमित्त धीयनाय की प्रशंसा करता है—

माहून चोर पररि कैस पाऊँ ।

देखत ही दुग भरि भरि सजनी परसन को रहि रहि ललचाऊँ ॥

दुरयो निकुंज लता बन बोधिन निपट निवट मैं तोहि बताऊँ ।

ललितमाधुरी ही मे जो सग, चित्त चोरे हा आनि मिलाऊँ ॥^३

कवि कृष्ण की निकुंज लीला का अनवरत निरीक्षण करने वाले चन्द्रमा से सहेट समीप का सरम रस पान करना चाहता है—

वहा चन्द, दपति कुससात ।

मम जीवन घन प्रान पियारे दपति कौन कुंज बिलसात ।

तू छिन भल निहारे नख मख लसी-लाल मुकुमारे गात ।

तौ तन दुति अति बदन बिपुलता कहै नेति छवि निरखत नात ।

घ य धय तू धान ता जीवन कछु तौ करि बचनामृत पात ।

ललित माधुरी जरे निरई, कत अबोल दुम-ओटनि जात ॥^४

ब्रजमाधुरी सार का विश्वास है कि ललितकिमोरी के स्वस्थ हो जाने पर जितने पद बनाये अपना नाम न रखकर ननितकिसोरी की ही छाव इन्होंने दी है।^५

इस प्रकार ललितमाधुरी की भक्तिभावना में सखीभाव की प्रधानता सन्निहित होती है।

केशवदास जी महाराज

जीवन रेखा

इनकी जन्मतिथि अज्ञात है। मृत्यु के बारे में प्रयागदास ने लिखा है कि इनका देहान्त ई० सन् १६१० में हुआ।^६ इसमें मिथ्य होना है कि ये भारतेन्दुयुग के कलाकार हैं। ये एक भजनोपदेशक

१ वियोगी हरि (मपा०) ब्रजमाधुरी सार पृ० २७६ ।

२ कल्याण, सतकाशी विशेषांक पृ० ४३८ ।

३ वियोगी हरि (मपा०) ब्रजमाधुरी सार, पृ० २७६ ।

४ वियोगी हरि (मपा०) ब्रजमाधुरी सार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० २७८ ।

५ वही, पृ० २७८ ।

६ प्रयागदास शुक्ल हिन्दी साहित्य की विदम की देन, पृ० ६३ ।

थे। वेद का इन्होंने गहरा अध्ययन किया था। ये मराठी भाषी थे और तहमील सौसर के मोहगाव नामक ग्राम में रहा करते थे। हिन्दी और मराठी में पना का रचना करते थे। इनका स्वर बड़ा ही मधुर था। पल्लस्वरूप स्वचरित पदा को गा गाकर लोग का ध्यान आध्यात्म की जीर आकृष्ट करते थे।

ये नाथ सम्प्रदाय के अनुगामी थे। नागपुर की साहित्यिक एवं आध्यात्मिक भूमि में आपकी काफी प्रतिष्ठा थी। आप कृष्ण के सच्चे उपलभक थे। कृष्ण के कमल नयन को देखते ही ससार के समस्त गोरत धधे भूल जाते हैं। कृष्ण के चारे में उनका क्या विचार है यह कवि के शब्दों में सुने—

कमल नयन निरख नयन बिसर गई घषा।

देह से विदेह भई देखती स्वानना॥

जमुना तीर भरन नीर श्याम सुन्दर आयो।

नाटक रूप देखत सखी मन मेरा सुख पायो॥

गोबुल मो निजात नाही श्याम बिना कोई।

जहाँ तहाँ नद कुवर जहा बिसर गई दोई॥

तन मन हर श्याम जी ने प्रीति मो सो साई।

केणव प्रभु मिलत रोम रोम सुख पाई॥^१

आप एक सत कवि थे। अतः उनके स्वर में सदा का स्वर प्रति-रुनित होता है। सती की उपदेशात्मक शैली का आपने पूर्णरूपेण अनुरण किया है उदाहरणार्थ यह पद उपस्थित है—

संतो का साथ करो निल सोल के बात करो।

चारो का घात करो मेवा हाथ बना है॥

दास का भी सम्हाल करो चाहे सो अमाल करो।

पाचो को हुमाल करो मेवा एक माल है॥

ओमय का गजर करो करना होय तो फजर करो।

तन मन की नजर करो उजर घन का नहीं है॥

बहे सद्गुरु शिवनाथ संत सय अजब सय।

सगत से तुकाराम पगत जा बठा है॥

बहला कवि केशवनाथ मुन प्यारे गोपाल जी।

जीना है कितने दिन काहे भर ऐसा है।^२

कवि भारत दु युग में निगुण परम्परा का एक अच्छा कवि है। वे अपने को 'साहेब का सरदार' कहने में जरा सा भी सकोच नहीं करते हैं। उनका सद्गुरु पर पूर्ण विश्वास है।

सबका तो हिमाव क्या हजारा हजार है।

साखो तो फाव हुए बाप् तो अपार है॥

अब खब का हिसाब नहीं पदमनिधि सार है।

मेरे मन खजाची कुबेर सा लिलदार है॥

बहे सद्गुरु शिवनाथ मुनमुन वे माखीबुग।

कमला बहा कमलापत साहेब सरकार है॥

१ वही, पृ० ६४।

२ श्रीप्रयागदत्त शुक्ल हिन्दी साहित्य की विदर्भ की देन, नागपुर, १९६१, पृ० ६५।

बहता कवि बेशवदास नामनिधि ।

नामनिधि सुन सुन के बगाल हम साहेब के सरदार हैं ॥^१

आप भक्ति के क्षेत्र में ज्ञानमार्ग के नहीं बल्कि प्रेममार्ग के अनुयायी थे । यही कारण है कि आप भेदभाव को प्रथम नहीं देते थे । आप कहते हैं—

जहां प्रेम परायण खूब बनी, तुलसी तु किया रघुनाथ धनी ।

गुहनाथ निवृत्ति ग्यान धनी, गुरु ज्ञान दियो लख दोन धनी ।

सुन सूर, कबीरा खूब धनी, प्रभु तारलियो तुम दासी धनी ।

गुरुदत्त दिगंबर अलख धनी, सन एको जनार्दन आन धनी ।

शिवनाथ निरजन ओट धनी, सुल देवलियो गोपाल धनी ।

मुख नाम हूँ सुख प्रेम धनी, कवि बेशवदास उदास धनी ॥^२

अतः वह श्यामसलोने के दर्शन की अभिलाषी है । श्याम मुन्तर के दर्शन से भय भाग जाता है । मानव जीवन की सार्यगता इसी में है—

देखत श्याम सलोना थे, भय तो हुआ दिराना थे ।

त्रिभुट शिखर पर आसन डाना, कर भजनो की माला जी ।

सोला मन की मन में फेरे, पिया ब्रह्म रस प्याला ।

सतरानी एव बना साधो, सागी नयन की पाती ।

अलख निरजन आप जगावे, अजपा जप गिन राती ।

अनुहत बाजा बिनन बाजे, मूँदे नव दरवाजा ।

दसवीं छिड़की खोला ताला, लख लख तेज बिराजे ।

तेज बिराजे आप धीरोमा, नील वर्ण धन श्यामा ।

जानकी नाथ अनाथ के बंधु, सिंदुरा चल धामा जी ।

शिवनाथ ने बहुबिध गाया, सुन कोई बिरला पाया ।

केशवदास बहे कर जोरे, नाहन जय गमाया ॥^३

कवि संसार की नि सारता को देखकर लोगों से मोह पाश को अन्त करने को कहता है । उसका विश्वास है, सत्कार म किन्ता दिन रहना है । सामने तो काल खड़ा है । अतः है अभिमानी तू किस मद में भूला पड़ा है । कवि को मानापमान की फिक्र नहीं है । वह एक स्वर से सभी को भूल कहता है—

मूरत ! मोह हुआ है बे, हमने साहेब पाया बे ।

बड़ा महल क्या करना खासा बितने दिन है जग बासा ॥

काल खड़ा है अपने पास, क्या सासा की आसा ।

साक मई सारी ज़िदगानी, क्या भूला अभिमानी ॥

एक पटी मो है घुल धानी, असमानी सुलतानी ।

राम नाम कोई बिरला पाया, पावन अमल खाया ॥

एव पद त्व पद असि पद गाया, जाकर शून्य समाया ।

१ वही, पृ० ६५ ।

२ प्रयागदत्त शुक्ल हिन्दी साहित्य की विदग्ध की देन, नागपुर, १९६१ ई०, पृ० ६१ ।

३ वही

माथ निरजन मेरे साईं उनसे बात बमाई ॥

बेशवदास उदासी साईं, धृष्ट्य मोपा न सवाई ॥^१

कवि जानता है कि इस सत्कार में कोई निम्नी का नहीं है। इस सत्कार में यह एक तमाशा लगा है—

अजब तमाशा जग में देखा ।

कोई न यहाँ पर रहे हजारों काल भुवन में गये,

घन सुत जोरू मात खजाना ।

यहाँ के यही रहे, कोई ना साथ कुछ ले गये,

टूटा नाता जग का सारा ।

मात तात या कहो,

हमेशा कौन खान कू दये ॥

तीन दिना तो तिरिया रोवे, भाई कहा के गये ।

अकेला आप अगन मो बहे,

हुसा ठहेला आप गया है ।

बहो पुष्य क्या पाप किया है ।

जग ने जी को साथ दिया है ॥

केर नर्क मो पडा, लगा है चौरासी का घडा ।

इन दुनिया में कौन तुम्हारा क्यों गफलत में पडा ॥^२

इस प्रकार कवि अद्वैतवादी नाथ सम्प्रदाय का अनुयायी होकर भी निगुण और सगुण के बीच का रास्ता पकड़ा है। उसे स्पष्ट रूप से निगुणशब्दी या सगुणशब्दी नहीं कहा जा सकता। उसके पदों पर मराठी का स्पष्ट प्रभाव है। सत्ता की परम्परा का निर्वाह अच्छा हुआ है। उसकी वाणी में कबीर की अकलङ्कता लक्षित होती है।

मारकण्डेय लाल

जीवन रेखा

इनका जन्म आजमगढ़ जिलातगत कोवागज नामक ग्राम में हुआ था।^३ इनका जन्मकाल अज्ञात है। ये १८६२ ई० से १९०३ ई० तक बिहार के मिथिला महाराज, लक्ष्मीश्वर सिंह तथा सूर्य पुरा के राजा धीराजाराजेश्वरीप्रसाद सिंह के दरबार में रहे। बिहार की रसिक भूमि पर ही आपकी भक्तिलता पल्लवित एक पुष्पित हुई।

आपका देहान्त स० १९१३ वि० (सन् १८९६ ई०) में हुआ था।^४

कवि का अतस्तल भक्तिभाव से आतप्रोत है। उसकी रचनाओं में निगुण तथा सगुण की भक्ति रस का परिपाक बड़ा ही हृदयग्राही हुआ है। कवि निगुण राम को नयनों से निहार लेने को कहता है, नहीं तो सोने जैसी देह मिटटी में मिल जायेगी—

मैं रहते समय इनकी अवस्था ४० वर्ष की रही होगी। इसी कारण से ये भारतेन्दुकालीन हैं।

१ प्रयागदत्त शुक्ल हिन्दी साहित्य का विदम की देन, नागपुर सन् १९६१ ई०, पृ० ६२।

२ प्रयागदत्त शुक्ल हिन्दी साहित्य को विदम की देन, नागपुर, पृ० ६३।

३ मिश्रबन्धु मिश्रबन्धु वितोद, भाग ४, पृ० १२९७।

४ हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २ के सम्पादक का यही अनुमान है कि आश्रयदाताओं के दरबार

छूटि जैहैं घाम ग्राम ऊपर अराम सारी,
 बने यह हमारे उर-अतर मे डारी लै ।
 रहि जैहैं ह्याई हाथी घोडो ओ खजानो सवे,
 एको नहि जैहैं सग भले हूँ बिचारि लै ॥
 मानुष शरीर पाप राम सौं लगाय नेह,
 'चिरजीव'^१ याहि बिधि जीवन सुधारि ले ।
 सोना एसी देह यह माटी होय जैहे,
 व्यारे नह्यो जो न मानै सो तू नैनन निहारि लै ॥^२
 हिंडोरे भूलत न-दकिशोर ।

श्रीनन्दन-दन प्रिया अलवेली, श्रीराधा - बितचोर ॥

सूर्य कोटि, प्रति प्रभा बिराजत, दामिनि लक्षकरार ।

हृलसि 'भार करो गुन गावत लखि लखि प्रभु की आर ॥'^३

कवि उपास्य-युगल की मधुर लीलाओं के दर्शन में आत्मविभ्रम है। युगल सरकार को हिंडोले पर झूलते देखकर उसकी उत्कट अमिलापा अभिव्यक्ति होती है। उस सलोनी जोड़ो के प्रेमरस में अपने का रमा देने की इच्छा प्रबल हो जाती है। इस पं० में कवि का अनपेक्षा स्पष्ट परिलक्षित होती है।

रामचरणदास

जीवन रेखा

आप हिन्दी भक्ति जगत् में हमकला जी के नाम से विरगत थे। आपका जन्म सारन जिला के गगहरा नामक ग्राम में हुआ था। ये जाति के ब्राह्मण थे। बचपन का नाम नागा पाठक था। किशोरावस्था की देहली पर पहुँचते ही आपने हृदय में विराग की भावना व्याप गई। अतः आप गुज्रत्यागी विरागी होकर बैद्यनाथ घाम पहुँचे। यही आपको रामदास जी 'नृत्यरत्न' के दर्शन हुए। नृत्यरत्न जी एक पहुँचे हुए महात्मा थे। इन्हीं से आपने दीक्षा ली।

रामदास जी के आप अनन्य भक्त हो गये। वह सब ईश्वरीय प्रेरणा से ही हुआ। आप यही इनके साथ रहकर धार्मिक ग्रन्थों का अनुशीलन करने लगे। ईश्वर भजन और साधु सेवा ही आपको प्रिय था। महत रामदास जी ने आपको अपने गुडहट्टा (भागलपुर) के श्रीराममन्दिर की महची गद्दी देकर सावेत यात्रा की।^४ गुरु ने आपका नाम हसकला रख दिया। आपको यहाँ बड़ी प्रतिष्ठा मिली।

आप बहुत बड़े उपदेशक तथा भक्त कवि थे। आपके उपदेशों में भक्ति का अविरल स्रोत प्रवाहित होता है। आपके प्रवचन से प्रभावित होकर ही सीतारामचरण भगवान् प्रसाद रूपकला जी ने

१ आपका उपनाम चिरजीव था। यह कवि समाज द्वारा उपाधि इहे मिली थी। सम्मेलन पत्रिका, भाग ४५, सं० १, पौष फाल्गुन १८८० वि० पृ० ६०।

२ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० १५६।

३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० २७७।

४ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० १५६।

आपका निष्पत्ति स्वीकार किया।^१ आपने प्रतिदिन म आज भी भागलपुर मे श्रीहंसवला भगवत सक्ती संत-समाज स्थापित है।^२

आप हिन्दी एवं संस्कृत दोनो के माता थे। आपने हिन्दी मे एक धार्मिक पुस्तक 'राम महात्म्य चरित्र' का प्रणय किया था।^३ स्फुट पत्र की सन्ध्या काफी है जिससे आपकी भक्तिभावना का पता चलता है।

आप एक संतमार्गी व्यक्ति हैं। आपने विचार से यह संसार एक विचित्र पहेली है। यहाँ सभी लोग माह पाश मे बंधे हैं। एक दूसरे को देखकर मोहवश मरते हैं। लेकिन सत्य तो यह है कि यहाँ मौन निगवा है—

स्वांसुद्ध मर या जियव की वरि प्रतीति न कोय ।
ना जाने फिर स्वास को आवन होय न होय ॥
परिजन भाई बापु देये देवत नित मरत ।
अमर मोह बस आपु चाते अचरज कवन बढ ॥

एकमात्र रामनाम ही सहारा है—

कोई निषिद्ध अन्न त्याग्य सो जाते बिसरे राम,
त्याग भूत यह राखु मन रिचि जपिबो हरिनाम ।
गिय तो पन पिय तबहि जब, आठ पहर सब नाम,
पिय तेरो गुमिरन बिना जियबो कवने काम।^४

आपका देहान्त सन् १६१२ ई० मे हुआ।^५

महंत स्वामी रामानुजदास

जीवन रेखा

स्वामी जी का जन्म जयपुर के हरसोतीली ग्राम मे हुआ था।^१ ये जयपुर के विशाच मन्दिर सीताराम जी के प्रसिद्ध महंत थे। ये गौड ब्राह्मण कुल के थे। बाल्यावस्था मे इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। बचपन से ही कवि पण्डितो के सत्संग मे रहा करते थे। परिणामस्वरूप साधु संगत का अमिट प्रभाव इनके जीवन पर पड़ा। समाने होन पर इनका विवाह कर लिया गया। लेकिन विवाह का इनके जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ये भगवन्निष्ठ हो गये। अब इनका जीवन भजन, पूजा, ध्यान और स्वाध्याय मे बीतने लगा। गृहस्थाश्रम मे भी आप बड़े त्यागी पुरुष थे।

आप एक अच्छे कवि थे। सुन्दर रचना करने मे आपकी क्षमता हासिल थी। आप रूपलता जी के शिष्य थे। आपने 'सीताराम रहस्य चरित्र' नाम का एक अच्छा ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ से

१ इनकी चर्चा अग्रज वर्णित है। देखो पृष्ठ ५०१।

२ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और विहार, भाग २, पृ० १५६।

३ इगवा प्रकाशन सन् १६०२ ई० मे मुम्बै के रामधनी महतो नामक व्यक्ति मे किया था।
माताप्रसाद गुप्त हिन्दी पुस्तक साहित्य, पृ० ५८१।

४ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, पृ० ५०८।

५ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और विहार, भाग २ पृ० १५६।

६ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, पृ० ७३०।

आपकी भक्ति का परिचय मिलता है। इस ग्रंथ में पट श्रुतु विहार और अष्टयाम का वर्णन बहुत ही सुन्दर है। कवि का भक्तिभाषना पर बल्लभ सम्प्रदाय की स्पष्ट छाप है।

इनका सेवा प्रणाल गहरी भक्ति और उच्च गानावस्था अनुपम थी। य बड़े ही सेवा ध्यान ज्ञान निष्ठ थे। इनकी अष्टयाम की रचनाएँ बहुत सरस और सार भरी हैं। इन्हीं से भक्तिरस और सेवा रहस्य का तत्व अच्छा प्राप्त होता है। उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

रावरो विरद गरीब निवाज ।

मुनि मुनि मुदित होहु मन ही मन बानिक लखि महाराज ॥१६॥

ग्रह वपि सिला उधारव रघुवर एक एक गुन देख ।

सो तिनू मम हिये भये हूँ तेहि ते कछु क बिसल ।

त्रियाशील हो अति किरात त चित न द्रवै पखान ।

बदर ज्यों चबल विषयन भ पशु ज्या वृत्ति न मान ।

ऐसे सब गुनखानि तदपि कहा न करिहौ उदार ।

बहुरि आप नुपमणि दानी अति मैं नर नरक खुवार ।

सख चौरासी साग बनायेउ रीभेउ इच्छित देहु ।

नाहित कहहु छाडि तन रचना बडे आपने रोहु ।

मैं अति दीन दीनहित तुम मैं अश आप सर्वज्ञ ।

मैं अघभी तुम अघम उधारन मैं परवश तुम तज ।

वेद विदित पन राखि मापिये मोर और निज हेरी ।

रामानुज त्या जुगल माधुरी निरेखी निसनि तेरी ॥१७॥

आप युगलस्वरूप के अनन्य उपासक हैं। आपकी भक्ति रामानुगा भक्ति है। कवि के प्रस्तुत पद पर गोस्वामी तुलसीदास का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

आपका देहात स० १६३७ वि० माघ कृष्ण ३ को हुआ । २

१ करवाण, सतनागी विशेषाङ्क, पृ० ७३० ।

२ वही, पृ० ७३० ।

उपसंहार

भारतेन्दु युग के साहित्यकार और कवि प्राचीन और नवीन के संगम पर खड़े थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उनके अग्रवा थे। उन्होंने तदयुगीन साहित्यकारों को सजग किया, उन्हें एक नवीन सन्देश दिया और नवीनता को जन्म दिया। उनके सहयोगियों ने युग की धमनिया के साथ साहचर्य स्थापित कर उनके काय में सहयोग दिया। फनस्वरूप इन कवियों ने राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक आन्दोलनों का अनुसरण किया। उनकी विचारधारा में प्राचीनता के प्रति मोह कम था, लेकिन नवीनता के प्रति विशेष जाग्रद था। नवीनता का स्वर एक नवचेतना का उदबोधन इस युग के कवियों में पाया जाता जाता है।

कविता पुरानी लीक को छोड़ कर देशकाल की परिस्थितियों के अनुसार आगे बढ़ रही थी। वह नए क्षेत्रों और विषयों की ओर मुड़ रही थी। उसका यह मोड़ बिल्कुल नया था। कवियों का उत्साह धार्मिक सुधार और राजनीतिक जागृति की ओर विशेष था। उनका दृष्टिकोण नया था। लेकिन कविता में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं परिलक्षित होता है। नवीन काव्य शक्ति और कविता का नया रूप नये कलबर के साथ उपस्थित हुआ। भाग्य, भाव और शक्तों में प्राचीनता का पुट होते हुए भी एक क्रांतिकारी परिवर्तन की भूमिका की नींव पड़ गई। विद्रोह का स्वर मुखरित हुआ।

आगल माया के प्रचार और प्रसार से भारतेन्दु के सहयोगियों ने नवीन युग का स्वागत किया। साहित्य की प्रत्येक विधा को इस युग ने प्रेरणा प्रदान कर उसका सफ़र भाग्य प्रदर्शन किया। परिणामस्वरूप व्यक्ति स्वातंत्र्य और राष्ट्रीय भावना को विशेष अभिव्यक्ति मिली। कवियों की मस्ती कल्पना का पक्ष लगाकर अधिक निद्रव-द्वन्द्वता और संवेदनशीलता का सामना है। उनकी धमनियों में परम्परागत रूढ़ियों के प्रति आक्रांश, सामाजिक बंधनों के प्रति क्षेम तथा वर्तमान परिस्थिति के प्रति असन्तोष का रक्त प्रवाहित हो रहा था। तात्पर्य यह कि रोमांटिक काव्य जगत् के विधादक तत्त्व जन्म ले रहे थे। इसी नींव पर भारतेन्दु युग का काव्य जगत् खड़ा है। इन आधुनिकताओं के बावजूद भारतेन्दुकाल में भक्ति की धारा बड़ी प्रबल है। भारतेन्दु का अधिकांश पद्य-साहित्य भक्ति-परक है तथा इस युग के सैकड़ों कवियों ने भक्तिपरक रचनाएँ की।

रीतिकाल के साध्विकालीन प्रहरो में भारतेन्दु युग का आवागमन हुआ। रीतिकाल में भक्ति का स्थान सकीर्ण था। वहाँ शृंगार ही सूरसरि में राधाकृष्ण केवल सुमिरन के बहाना बन हुए थे। बासनामूलक नग्न शृंगार का अश्लील पट खुला था। राधाकृष्ण रीतिकालीन वातावरण में प्रमुख नायक-नायिका के रूप में चित्रित हो रहे थे। उनके ही माध्यम से कलुषित शृंगार को अभिव्यक्ति मिली। भारतेन्दु युग रीतिकाल को एक चुनौती था। वह रीतिकालीन परम्परा के प्रति सबका उल्लास का भाव रखता हुआ राधाकृष्ण के परम विभ्य रूप की आराधना के लिये अवसर प्रदान करता है। राधा कृष्ण के प्रति भक्ति काल के सैकड़ों वर्षों बाद यह श्रद्धा पहली बार अभिव्यक्ति होती है।

भक्ति का क्षन् विस्तृत नहीं था। लेकिन अघानुकरण का विरोध तदयुगीन सभी मक्त कवियों की वाणी का विलास है। उन्होंने आध्यात्मिक चिंतन के एक नये सोपान का सूत्रपात किया। यही समाज को सम्बद्ध करके नवीन दृष्टिकोण से नया समाज दर्शन प्रस्तुत किया गया। लेकिन इस विद्रोह या नयेपन में प्राचीनता के प्रति सहानुभूति थी। यही कारण है कि वैष्णवभक्ति अपनी परम्परागत

स्थित में परिलक्षित होती है। फलस्वरूप भारतेन्दु युग में भक्ति की निम्नांकित साधनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं—

- (१) सगुण रामभक्ति शाखा।
- (२) निगुण रामभक्तिशाखा।
- (३) अष्टछाप की कृष्णभक्ति शाखा।
- (४) राधावल्लभोय कृष्णभक्ति शाखा।
- (५) हरिदासी सम्प्रदाय की राधाकृष्ण-युगल भक्ति शाखा।
- (६) गौड़ी सम्प्रदाय की अष्टबालीन लीला भक्ति शाखा।
- (७) नवधामभक्ति शाखा।
- (८) सूफिया की मधुर भक्तिशाखा।

भारतीय शताब्दी से जो धार्मिक आन्दोलन चला था, उसकी गति अत्यन्त जिविल हो गई थी। फिर भी अनेक नये धार्मिक सम्प्रदाय इस युग में जन्म ले रहे थे। वैष्णव और शैव सम्प्रदायों का प्रचार अधिक था। परम्परागत वैष्णवता की सामान्य स्थिति थी। भक्ति के रगमध पर राम और कृष्ण के अतिरिक्त भारतेन्दु युगीन कवियों ने दास्य और विनय भावनाओं से प्रेरित होकर शिरवाली दुर्गा गणेश आदि देवी देवताओं की उपासना की। उन लोगों ने धार्मिक तीर्थ क्षेत्र-वृत्तावन मधुरा, काशी और गंगा सरयू आदि पवित्र नदियों को काव्य विषय बनाकर सञ्चित का स्तोत्र शली में स्तोत्र की एक नई विधा ही उपस्थित कर दी। उपासना की इस नई विधा को इस युग में काफी मायता मिली। डा० लक्ष्मी सागर वर्ण्य ने लिखा है कि विभिन्न देवी देवताओं की स्तुति करते हुए कवियों ने पक्ष, अष्टक, पचीसी, बत्तीसी, चालीसी आदि की रचना की है। इन रचनाओं में भक्तिकाल के अध्यात्म दर्शन का परिचय नहीं मिलता। उनमें शास्त्रीय नहीं है।^१ मिले तो कैसे मिले? भक्तिकाल भक्ति का युग था और भारतेन्दु युग सन्नति का युग। यहाँ तो प्राचीनता का रूप परिष्कृत होकर नवीनता का आवाहन करता था। अतः आध्यात्मिक चिंतन शली में भी नवीनता का होना आवश्यक था। फलतः अध्यात्म का चिंतन सामाजिक दृष्टिकोण से होने लगा। यही कारण है कि प्रबन्धात्मकता का अभाव पाया जाता है। कबल फुटकर पदा का सृजन ही इस युग में हुआ। इन फुटकर पदों में हृदय की सच्ची अनुभूति के बदले कबल धार्मिक सम्प्रदायों की शुष्क सरिता का छिन्न भिन्न प्रवाह दृष्टिगोचर हुआ। बाह्याम्बर के प्रति विरोध की सूचना सभी कवियों ने दी, जिससे भावार्थक आपद् की जगह मन्दिरों का बठोर कम विधान अपना प्रभाव अमान लगा। अतः भक्ति चिंतन का प्रधान अंग न होकर गौण रूप में ही परिलक्षित होती है। भारत दु युग में काव्य के स्तर पर जो भी भक्ति का निरूपण है, उसका स्वरूप व्यापक आन्दोलन या सामाजिक व्याप्ति में न होकर सामित तथा सजीव व्यक्तिगत घमनिष्ठा पर है। भारतेन्दु युग में जो भी भक्ति मिलता है, उसमें आस्था की साम्प्रदायिक रूप कम है।^२ फिर भी साम्प्रदायिक प्रवाह की ज्योति छोण नहीं हो पाई थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राधाचरण गोस्वामी और रघुनाथदास रामसन्धी आदि कवियों की भक्ति भावना में आध्यात्मिकता का ओज पूरा प्रवाह स्पष्ट दिख पड़ता है। इन कवियों की भक्तिभावना में मध्यकालीन सेवा पद्धति और कीर्तन पद्धति का अभाव सा पाया जाता है। जहाँ मध्यकालीन भक्तिभावना का अधानुकरण करने का प्रयास किया गया

१ डा० लक्ष्मीसागर वर्ण्य आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० ३३४।

२ हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (टंकित प्रति), नागरीप्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशमान, पृ० ६०।

है नहीं रमात्मक आग्रह की अभिव्यक्ति नवीनता का उद्घोष करती है। कवि व्यक्तिगत वर्याण की भावना से परे होकर सामाजिक बर्याण की भावना से उत्प्रेरित हो काव्य की सृष्टि कर रहे थे। उनमें स्वान्त सुखाय की भावना कम थी, लेकिन बहुजन हिताय की भावना का विशेष आग्रह था। कविहर भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, श्रीधर पाठक, बद्रीनारायण चौपुरी, बालमुकुन्द गुप्त, राधाकृष्णदास आदि की रचनाओं में भक्ति का यही नवीन रूप दृष्टिगोचर होता है। मध्यकालीन भक्ता की भाँति उनकी भक्तिभावना स्वात सुखाय नहीं बल्कि बहुजन हिताय थी।

भारतेन्दु युग के रगमच पर भक्ति एवं साधना के नाम पर प्राचीन वैष्णववाङ्मिता की ही प्रश्रय मिला। यहाँ वृष्णवक्ता की स्थिति सामान्य थी। कवियों के लिये आश्रयदाता नहीं थे। वे अब स्वतन्त्र थे। अतः उनकी भावनाओं में भावात्मक आग्रह ही परिलक्षित होता है। इस युग के साहित्यकारों में यह भक्ति दिवसित अतिरिक्त सामान्य विशेष जिस रूप में भी थी, ब्यक्तिगत उसके क्षेत्र में थी।^१ अतः भक्ति का रूप मात्र न होकर विचार प्रधान था। हृदय का अभाव और भक्ति का ही प्रधानता थी। राम और वृष्ण होना के सगुण रूप प्रधान थे। निर्गुण की धारा क्षीण हो गई थी। अतः सतिग-राम, नमोदेव, मिश्र, बलवारी लाल मिश्र, मोरार साहू, गुप्त, सहाय लाल आदि कवियों ने अपने उपदेशपूर्ण पद्यों को संसाधारण में प्रचलित करके उसे बसाए रखा। इन कवियों की भाँति भावना में उपदेशात्मकता का स्थान विशेष है। स्वयं भारतेन्दु जी के भी निर्गुण पद्य की संख्या अधिक है। इन पद्यों में ज्ञान की मात्रा अधिक है। लेकिन साहित्यिक सौन्दर्य का अभाव पाया जाता है। भाषा में अरबी, फारसी, लहो बोली आदि का मिश्रण है। इन कवियों का विषय अध्ययन नहीं था। इसी से भाषा का विकृत रूप ही दृष्टिगोचर होता है। केवल शुद्ध हृदय से भावों का उद्गार सच परिलक्षित होता है। इस प्रकार निर्गुणभक्ति धारा का प्रवाह परम्परानुमोदित काल का स्पष्ट करते हुए सगुण से सम्बन्ध जोड़ रहा था।

रामकाव्य

रामभक्ति का प्रमुख क्षेत्र अयोध्या था। भारतेन्दुयुगीन रामभक्तिवाक्य के रगमच पर रीति कालीन रसिक भावना का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। यहाँ राम वृष्ण से कम नहीं हैं। कवियों ने रामभक्ति में रसिकता का समावेश इस प्रकार कर दिया है कि राम का शील-सौन्दर्य शूभार की हाट में खूब छोट छोट से रसिक जनों के हृदय की ब्रवीभूत कर देता है। भक्तजन राम के सौन्दर्य सागर में मर्यादा का अतिरन्ध्रण कर जाते हैं। यहाँ राम तुलसी के राम से भिन्न हैं। वे वृष्ण की तरह अयोध्या और मिथिला का गलिया में विविध रसरस में भस्त दीप्त पड़ते हैं। महाराज पुराज सिंह भगवान् राम में अनन्त सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करती है, ताँहि भक्त जनों का चित्त उनके स्वरूप में रमा रहे और दर्शन की प्यास कभी भी शान्त न हो सके। भगवान् की रामायणी अपनी सुधा मृष्टि से उनके अतस्तल को सदैव पुलनायमान रख सके। राम कथा लेकर तद्वयुगेन कवियों ने कम रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। मुक्तक शाली में विनायकराव, शिवप्रसाद, गुरुदास, रत्न हरिदास रामलोचन मिश्र आदि कवियों ने रचना की। भारतेन्दु जी ने तो राम कथा को लेकर एक रामलीला नामक चम्पू काव्य की सृष्टि की है। यह एक अत्यन्त छोटी सी रचना है। इसमें गद्य का प्रयोग कम हुआ है। जहाँ पर गद्य की सृष्टि की गई है, वहाँ केवल दो भावात्मक प्रसंगाँ को जाहने मात्र के लिये। इस तरह मुक्तक शाली में रामकथा काव्य की धारा राम के मर्यादा पुरोत्तम रूप के समय का अभि-

व्यंजित नहीं कर पाती। राम का यह मर्यादा पुरुषोत्तम रूप भारत की दुर्दिनावस्था के लिए सह्य नहीं हो सका।

प्रबन्ध काव्य में दृष्टिकोण से महाराज रघुराज सिंह का रामस्वयंवर, वैजनाथ कुरमी का रामायण, बनादास का रामायण, चतुर्भुज मिश्र का रामायण, अण्णकुमार का रसिकविलास रामायण और अब्दुलाल वैद्य का पारजात रामायण प्रसिद्ध हैं। रामस्वयंवर का प्रणयन काशी नरेश महाराज ईश्वरीप्रसाद सिंह की इच्छानुसार वाल्मीकि रामायण के आधार पर हुआ। तुलसी के समान ही इसकी रचना शैली है। विशेषकर विवाह प्रसंग का उद्घाटन हा कवि की अभीष्ट या इसीलिये इसे रामस्वयंवर नाम से अभिहित किया गया है।

गोस्वामी तुलसीदास जी की शैली का हम दशरथ बनादास और वैजनाथ कुरमी के रामायण में विशेष होता है। तुलसी के बाद प्रथम बार राम कथा काव्य की प्रबन्धात्मक यहाँ दृष्टिकोचर होती है। यहाँ प्रबन्ध पदुता रचना शैली और वणनात्मक शैली का अच्छा परिचय मिलता है। कवि बाल-वणन, फूलवारी प्रसंग, विवाह लका दहन आदि कथाओं का तथा भिन्न, वसंत पावस आदि ऋतुओं का अति सुन्दर एवं मनोरम दृश्य उपस्थित करता है। अण्णकुमार के रसिक विलास रामायण की सृष्टि अपने ज्येष्ठ भ्राता के आगानुसार हुई। इसमें तुलसी की कवितावली और विनय पत्रिका की कविता शैली का अति सुन्दर उद्घाटन हुआ है। यहाँ कवि की वणनात्मक शैली का सुन्दर परिचय प्राप्त होता है।

चतुर्भुज मिश्र एक भक्त कवि थे। उन्होंने चार रामायणों (आल्हा रामायण, गयावासी रामायण, सरोज रामायण, मनोहर रामायण) का प्रणयन किया। इनमें खड़ी हिन्दी का प्रयोग मिलता है। कवि रामकथाकाव्य की एक नवीन शैली प्रदान करता है। कवि की प्रबन्धात्मकता पर इस नवीन प्रयोग से किसी प्रकार की आँव नहीं आ पाई है।

रघुनाथदास रामसनेही का विश्रामसागर नामक एक अच्छा ग्रन्थ इस युग में प्राप्त होता है। इसमें राम और कृष्ण दोनों चरित्र वर्णित हैं। कवि इसके अंतिम खंड में तुलसी के आधार पर राम चरित्र का वणन प्रस्तुत करता है। अवधी में लिखा गया यह एक अच्छा ग्रन्थ है।^१ इस तरह रोम रोम में रमने वाला राम का चरित्र प्रबन्ध और मुक्तक दोनों शलिया में वर्णित हुआ। रीतिकाशीन प्रवाह के कारण राम का शुद्ध मर्यादापुरुषोत्तम रूप शृंगार में अतिरंजित होकर अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गया।

कृष्णकाव्य

कृष्णभक्ति का केन्द्र मथुरा एवं वृन्दावन था। कृष्ण की महत्ता वैदिककाल में ही प्रतिष्ठित हो चुकी थी। राम की भक्ति उनके मर्यादा पुरुषोत्तम रूप के कारण अधिक व्यापक नहीं हो सकी। लेकिन श्रीकृष्ण का रूप तो यशोदा के लैया, दाऊ जी के गैया, ब्रजों के ब्रजैया, गौवन के चरैया तथा कालीनाथ के नयैया के रूप में अधिक प्रसिद्धि पा चुकी थी। फलतः भारते दुयुगीन कवियों के मस्तिष्क से राम का शील सम्पन्न सौन्दर्य पीछे पड़ गया। श्रीकृष्ण का मधुर रूप नयन मन में धर कर गया। पलत्वरूप श्रीकृष्ण का रूप सौन्दर्य निम्नोक्त रूपों में अभिव्यंजित होता है—

(१) व्यापक रूप में

(२) मूर्त्तिशत निरूपण के रूप में

१ डा० लक्ष्मीसागर वाष्ण्य के मतानुसार अवधी भाषा में लिखा गया एक यही अच्छा ग्रन्थ है।

डा० लक्ष्मीसागर वाष्ण्य आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० ३४०।

(३) त्रिशुद्ध भक्तिभावना के रूप में

(४) भक्ति और विलासिता के संयोग रूप में

श्रीकृष्ण का मनोमुग्धकारी रूप युग परिवर्तन की वहिन में भस्मशात नहीं हो पाया। साहित्य की यह मूल प्रवृत्ति है। यह किसी भी काल में व्याप्त रहनी है। सूरदास, नन्ददास, रसखान, मिहारी, देव आदि कवियों ने कृष्णभक्ति की मज्जुल बेलि को सीचा। इन्हीं ही भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी भी सींचें। मुक्तक एवं प्रबन्ध दोनों की समान धाराएँ इस युग में बही। श्याम के स्वरूप का वर्णन अत्यन्त ध्यापक है। कृष्ण की सरस लीलाओं का मुक्तक शरीर में विशेष वर्णन हुआ है। यहाँ भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण-सौन्दर्य से निःसृत प्रेम की अनेक पयस्वनिया बहा दी है। सरस माधुरी, जानकीवर धारण राधावल्लभ, ब्रजवल्लभ नारायण और अनितविशोरी तथा ललितमाधुरी जी न कृष्ण रूप रममाधुरी की मधुकरी प्राप्त करने के लिये अत्यन्त सरस वाणी में विनय किए हैं।

महाराज रघुराज सिंह राम और कृष्ण में भेद नहीं रखते। उन्होंने अपने अनेक पन्नों में श्रीकृष्ण की लीलाओं का बड़ा ही सुन्दर वर्णन उपस्थित किया है। उनके वर्णन विषयों में हिंडोला, नखशिख होती आदि का बड़ा ही भोहव वर्णन हुआ है। हासी प्रसंग का स्पष्ट करे ती भारतेन्दुगीन सनी भक्त कवियों ने किया है।

वैष्णव भक्ति में भक्त भगवान् को रिमाने के लिये अपना नाम बदल कर निकुंज कौल में प्रविष्ट हो जाता है। यहाँ हम परम्परा का निर्वाह पूणत पाया जाता है। ललितविशोरी जी (साह कृन्दलाल जी) और ललित मोहिनी जी (साह कुन्दलाल जी) ने मुगल दपति के निकुंजविद्वार का आनन्द इस रूप में लिया। अष्टछाप की आँधों यहाँ भी सुगुणों से नहीं मानी। भारतेन्दु जी अपने प्रियतम को रिमाने के लिये अपने कवि नाम (छाप) स्वीकृत रख सकने में समर्थ तो नहीं हो पाये, लेकिन मीरा के सन्निकट अवश्य पहुँच गये हैं। उनकी भक्ति में 'मीरा' की सी तमयता अवश्य पाई जाती है। उन्हें उपास्य की प्राप्ति का कोई डग अरुचिकर नहीं है। वह प्रियतम की प्राप्ति के लिये पूणतया कटिबद्ध है। यदि नारी रूप में श्याम-सौन्दर्य रस पान करने को मिले, तो कवि पीछे नहीं हटेगा और न वह लज्जा से मस्तक ही झुकाता है। वह तो हर प्रकार का स्वाग कर आराध्य का रंजन करता है।

भारतेन्दु जी मुक्तक काव्य के रचयिताओं में सबसे श्रेष्ठ है। उनके पन्नों में मानस की सरस अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। यहाँ पर रीतिकाल के वासना की गंध नहीं बल्कि भक्ति की सच्चाई ही परिलक्षित होती है। यद्यपि कि वर्णन विषय वही रहा है, लेकिन नूतन भावनाओं की सृष्टि करने में भी कम कमाल नहीं किया है। मुक्तक शाली में भारतेन्दु जी अष्ट छाप के उपरान्त पहले हैं जो डेढ़ सहस्र पदों का सृजन करते हैं। अष्टछाप के द्वात्रिंशत् युग कृष्ण-कथा-काव्य को एक चुनौती देता है।

कृष्ण कथा का लेकर प्रबन्ध काव्य की सृष्टि इस युग में एक दम नहीं हुई है। महाराज रघुराज सिंह का 'रिमणी परिणय' प्रबन्ध की दृष्टि से एक रचना उपलब्ध है। इसका आधार भागवत है। इसमें कृष्ण जन्म से लेकर रिमणी विवाह तक की कथा जो कवि समुपलब्ध करता है। वर्णन अनेक छंदों में प्रस्तुत है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कृष्ण अपने विष्णु रूप में प्रतिष्ठित न होकर गोपीवल्लभ के रूप में बहु चर्चित हुए। उनका पौराणिक रूप प्रायः लुप्त होने लगा था। बहुत कम कवियों ने उनके पौराणिक रूप की चर्चा की। विशेष गोपीवल्लभ के रूप में उनको सम्मान मिला। लेकिन उनका गोपी वल्लभ रूप भी रीतिकाल के रगमब से उतर कर ब्रजवनिताओं के शुद्ध हृदय में बस गया था। वहाँ प्रेम की सच्ची टीस थी। रीतिकाल में लौकिक रसिकता में बहने वाले श्रीकृष्ण का रूप माधुर्य भक्ता

के हृदय पटल पर अंकित हो गया। शृंगार की रसवती धारा अपने कगारा के बीच से बहने लगी। भारतेन्दु युग ने अपनी नवीनता से वासनामूलक शृंगार के कपाट का सदैव के लिये बंद कर दिया।

हिन्दू धर्म में विभिन्न देवी देवताओं की उपासना अति प्राचीन है। इस युग में शिव, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी आदि की उपासना के पदों का सृजन हुआ है। शिव-उपासना के लिये नर्मदेश्वर मिह का शिवा शतक स्तुत्य रचना है।

इस प्रकार भारतेन्दु युग की भक्ति में राम एवं कृष्ण के निगुण तथा सगुण दोनों रूपा की व्याख्या की गई है। यहाँ 'मूरदाम की सी दानता, रसखान की सी भरमता, भीरा की सी तमयता के दशन होते हैं, तो कबीर की सी वैराग्यमूलक अवलढता भी परिलक्षित होती है। शृंगार का सकोप और प्रेम का ममस्पर्शी आग्रह भक्तजनों का आह्वान करता है। भक्त प्रेम की रज्जु में अपने को बाँधने का साहाय्य है। इस तरह उसका भक्ति में रंगान सुखाय का भावना गुप्त हो जाती है और बहुजन हिताय की भावना का बीज पनप उठता है। फिर तो भक्ति विश्व बंधुत्व की तरफ अग्रसरित हो जाती है। भक्ति का यही बहुजन हिताय वाला नया रूप इस युग में जन्म लेता है।



सहायक-ग्रन्थ

अनुसंधान का स्वरूप
अनुसंधान की प्रक्रिया
अनुसंधान का विवेचन
अष्टछाप और बलनम संप्रदाय
अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक
मूल्यांकन
आधुनिक हिन्दी साहित्य का
विकास
आधुनिक हिन्दी कविता के काव्य
सिद्धांत
आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धांत
और समीक्षा
आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम
और सौन्दर्य
आधुनिक हिन्दी साहित्य का
इतिहास
आधुनिक काव्यधारा
आधुनिक काव्यधारा का
सांस्कृतिक स्रोत
आधुनिक हिन्दी कविता में
चित्र विधान
आधुनिक हिन्दी काव्य में
वास्तव्य रस
आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ
आधुनिक हिन्दी साहित्य
उन्नीसवीं शताब्दी
उत्तरी भारत की सत परम्परा
श्रीहितहरिवंश
श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व
स्वच्छेदतावादी काव्य
श्रीमद्भगवद्गीतासहस्र
वर्णयोगशास्त्र
श्रीचंद्रावली नाटिका
रत्नेश शतक
तुलसीदास रामायण (बालकाण्ड)

सं० डा० सावित्री सिन्हा, प्रकाशक आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ।
डा० सावित्री सिन्हा, प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।
डा० उदयमानु सिंह, प्रकाशक, हिन्दी साहित्य ससार, दिल्ली ।
डा० दीनदयाल गुप्त, प्रकाशक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
डा० भायारानी टंडन, प्रकाशक, हिन्दी साहित्य मण्डार, लखनऊ ।
डा० लक्ष्मीसागर वर्ण्य, प्रकाशक, हिन्दी परिपद, इलाहाबाद
विश्वविद्यालय ।
डा० सुरेशचंद्र गुप्त, प्रकाशक, हिन्दी साहित्य ससार, दिल्ली ।
डा० विश्वरम्भरनाथ उपाध्याय, प्रकाशक, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली ।
डा० रामेश्वरलाल लक्ष्मणवास, प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग, हाउस,
दिल्ली ।
डा० कृष्णशंकर शुक्ल, प्रकाशक, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस ।
डा० कैसरीनारायण शुक्ल, प्रकाशक सरस्वती मंदिर बनारस ।
डा० कैसरीनारायण शुक्ल, सरस्वती मंदिर, बनारस ।
डा० रामयतन सिंह भ्रमर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।
डा० श्रीनिवास शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली ।
डा० मोहनवल्लभ पंत, सरदारबल्लभ भाई विद्यापीठ, गुजरात ।
डा० रामगोपाल सिंह चौहान, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा ।
डा० लक्ष्मीसागर वर्ण्य, हिन्दी साहित्य प्रकाशन, प्रयाग ।
परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद ।
ललिताचरण गोस्वामी, वैष्णु प्रकाशन, बुदाबन ।
डा० रामचंद्र मिश्र, रणजीत प्रिंटर्स, दिल्ली ।
बाल गंगाधर तिलक, अनुवाद, माधवराव सप्रे ।
संपादक, व्यक्ति हृदय, स्टूडेंट्स प्रेस, प्रयाग ।
रामरत्न शर्मा सनाढ्य 'रत्नेश', नेशनल प्रेस, बनारस ।
बैजनाथ कुर्मी, नवसन्निधोर प्रस, लखनऊ ।

भारतीय साहित्य की सास्कृति क रेखाए	परशुराम चतुर्वेदी, साहित्य भवन, इलाहाबाद ।
भागवत दर्शन	डा० हरवशलाल शर्मा, भारत प्रवाशन, अलीगढ ।
भारीयत वाङ्मय म श्रीराधा	बलदेव उपाध्याय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना ।
भारतेदु बाबू हरिश्चन्द्र का सचित्र जीवनचरित्र	राधाकृष्णदास, तारा प्रेस, बनारस ।
भारत गीत	श्रीधर पाठक, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
भारतेदु की कविता	शिवनाथ, बच्चन सिंह, युगाग्रय प्रेस, बनारस ।
भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य	गंगाशकर मिश्र, बिडला हिन्दी प्रवाशन, बनारस ।
भारतीय राष्ट्रवाद की हिंदी साहित्य मे अभिव्यक्ति	डा० सुपमा नारायण हिंदी साहित्य सम्मेलन दिल्ली ।
महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग	डा० उदयमानु सिंह, सखनक विश्वविद्यालय ।
मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लौकतात्विक अध्ययन	डा० सत्येन्द्र, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।
मध्यकालीन धर्मसाधना	हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद ।
मनोविनोद	श्रीधर पाठक, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ।
मराठी हिन्दी कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	डा० रा० र० केलकर, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली ।
मिश्रबन्धु विनोद १ (भाग)	मिश्रबन्धु, हिंदी ग्रंथ प्रसार मण्डल, प्रयाग ।
भाग २	खण्डवा ।
भाग ३	गंगा पुस्तकालय, सखनक ।
मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन	डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, सेट्रल बुकडिपो इलाहाबाद ।
युग और साहित्य	शान्तिप्रिय द्विवेदी, इण्डियन प्रेस, प्रयाग ।
राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य	डा० विजयेन्द्र स्नातक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।
राधाकृष्णदास प्रयावली	सम्पादक श्याम सुंदरदास, इण्डियन प्रेस, प्रयाग ।
रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय	डा० भगवती सिंह, अवध साहित्य मन्दिर, बलरामपुर ।
रसिकविलास रामायण	अन्यकुमार, बिहार बन्धु प्रेस, बाक़ीपुर, पटना ।
रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना	डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना ।
रसिककाव्य की भूमिका	डा० नयेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।
वैष्णव धर्म	परशुराम चतुर्वेदी विवेक प्रकाशन, प्रयाग ।
विनयपत्रिका	सम्पादक हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर ।
वाङ्मय विमर्श	विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस ।
श्यामास्वप्न	जगमोहन मिश्र, सम्पादक डा० श्रीकृष्णलाल, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
शिवा शिवशक्त	नमोदश्वर सिंह, सम्पादक नकछ्ती तिवारी, भारत जीवन प्रेस, काशी ।

शिवसिंह सरोज
सूचीमत् और हिन्दी साहित्य
सूरदास

सूरदास और भगवद्भक्ति

साहित्य प्रकाश

सचित्र हरिश्चन्द्र

साहित्य चर्चा

सुकवि सरोज

सतसाहित्य की सामाजिक एवं

सांस्कृतिक दृष्टभूमि

सतकाव्य

सूर सौरभ

संत साहित्य

हिन्दी काव्य की भक्ति कालीन

प्रवृत्तियाँ और उनके मूल स्रोत

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक

इतिहास

हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना

हिन्दी साहित्य को बिहार की देन

हिन्दी साहित्य का उद्भव और

विकास

हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास

हिंदुत्व

हिन्दी साहित्य

हिन्दी काव्य की निर्गुण काव्यधारा

में भक्ति

हिन्दी काव्यधारा

हिन्दी और मराठी का निर्गुण

सत काव्य

स्पष्ट कविता

संस्कृति के चार अध्याय

सिक्ख गुरुओं की जीवनी

हिन्दी साहित्य का विकास

हिन्दी के दृष्टान्त कालीन

साहित्य में संगीत

हिन्दी साहित्य की भूमिका

हिन्दी भाषा और साहित्य का

इतिहास

शिवसिंह सेगर, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ ।

डा० विमलकुमार जैन, आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली ।

रामचन्द्र शुक्ल, सरस्वती मन्दिर, वाराणसी ।

डा० मुशीराम शर्मा, साहित्य भवन, इलाहाबाद ।

रमाशंकर शुक्ल, इण्डियन प्रेस प्रयाग ।

शिवनन्दन सहाय, खडग बिलास प्रेस, बाकीपुर ।

सलिला प्रसाद मुकुल, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता ।

गौरीशंकर द्विवेदी (संपादक), सनातन्यादश ग्रन्थमाला बुन्देलखण्ड ।

डा० सार्विणी शुक्ल लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन ।

परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद ।

डा० मुशीरामशर्मा शुक्ल साधना, कानपुर ।

डा० सुदर्शन सिंह मजोठिया रूपकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

सत्यदेव चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सृजन परिषद, जौनपुर ।

डा० रामकुमार वर्मा रामनारायण लाल, इलाहाबाद ।

डा० विद्यानाथ गुप्त, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली ।

कामेश्वर शर्मा, सुहृद प्रकाशन, मुजफ्फरपुर ।

रामबहोरी शुक्ल हिन्दी भवन, जालंधर ।

डा० गुलाबराय, साहित्यरत्न मण्डार, आगरा ।

रामदास गौड़ नानमण्डल, काशी ।

श्यामसुन्दरदास, इण्डियन प्रेस, प्रयाग ।

डा० श्यामसुन्दर शुक्ल बनारस विश्वविद्यालय ।

राहुल सांकृत्यायन, किताब माल, इलाहाबाद ।

डा० प्रभाकर भास्कर, चौखम्भा विश्वविद्यालय वाराणसी ।

बालमकुन्द गुप्त, सम्पादक यशोदानन्द अम्बोरी, भारत मित्र प्रेस,

कलकत्ता ।

रामधारी सिंह निनकर राजकमल दिल्ली ।

शिवनन्दन सहाय नागरीप्रचारिणी सभा, आरा ।

दृष्टान्तानन्द पत, ब्रह्मानन्द ब्रदस, मेरठ ।

डा० उषा गुप्त, लखनऊ विश्वविद्यालय ।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई ।

चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुकडिपो, दिल्ली ।

हरिश्चन्द्र चन्द्रिका
नागरी प्रचारिणी पत्रिका

”

तथा

, साहित्य सन्देश, घमघुग, हिंदुस्तान, कल्याण, वीणा, सरस्वती सम्वाद, परिपद पत्रिका ।
अथ भारतीय सम्मेलन पत्रिका ~ माधवबाद ग्रन्थालय, बनारस ।

मुघा विहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पटना में सम्प्रेषित ।

सरस्वती

”

प्रदीप विद्याविलास हिन्दी डा० मधुकर म के सौजन्य से ।

माध्यमपत्र ।

कविवचनमुघा भारतकलाभवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय सग्रह ।
हरिश्चन्द्र मैगजीन ब्रजरत्नदास सग्रह से ।

हरतलेख

हसद्वृत नागरीप्रचारिणी समा, काशी ।
बालकृष्ण भट्ट की डायरी डा० मधुकर भट्ट, के सौजन्य से ।
पारिजात रामायण नागरीप्रचारिणी समा पुस्तकालय ।
श्रीरामनाम महिमा राष्ट्रभाषा परिषद् पटना ।

